महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत —

श्रीमद्भागवत-महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ व टीका सहित]

नवम खण्ड

[एकादश स्कन्ध]

सम्पादक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा - संस्थान,

मथुरा - २८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया. अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है | इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है | पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो | इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था | सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है | सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया | तत्पश्चात पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की | अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए | पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे | तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई |

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती | हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे | इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है | नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है |

https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka

मकर संक्रांति, जनवरी 15, 2024 राधे राधे ...

एकादश स्कन्ध

अनुक्रमणिका

कृ. सं.		पृ. सं.
१.	यदुवंशका ऋषियोंको शाप	
२.	वसुदेवजीके पास श्रीनारदजीका आना और उन्हें राजा जनक तथा नौ योगीश्वरोंका संवाद सुनाना ।	१६
३.	माया, मायासे पार होनेके उपाय तथा ब्रह्म और कर्मयोगका निरूपण	४०
४.	भगवानके अवतारोंका वर्णन	६५
५.	भक्तिहीन पुरुषोंकी गति और भगवानकी पूजा विधिका वर्णन	७९
६.	देवताओंकी भगवानसे स्वधाम सिधारनेके लिए प्रार्थना तथा यादवोंको प्रभास-क्षेत्र जानेकी तैयारी करते देखकर उद्धवका भगवानके पास आना ।	१०३
७.	अवधूतीपाख्यान - पृथ्वीसे लेकर कबूतर तक आठ गुरुओंकी कथा	१२७
८.	अवधूतोपाख्यान - अजगरसे लेकर पिंगलातक नौ गुरुओंकी कथा	१५७
९.	अवधूतोपाख्यान - कुर से लेकर भृंगी तक सात गुरुओंकी कथा	१७५
१०.	लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी असारताका निरूपण	१९०
११.	बद्ध, मुक्त और भक्तजनोंके लक्षण	२०५
१२.	सत्संगकी महिमा और कर्म तथा कर्मत्यागकी विधि	२२६
१३.	हंसरूप में सनकादिकों दिये गये उपदेश का वर्णन	२३८
१४.	भक्तियोगकी महिमा तथा ध्यान विधिका वर्णन	२५७
१५.	भिन्न-भिन्न सिद्धियोंके नाम और लक्षण	२७७

१६. भगवानकी विभूतियोंका वर्णन २९२
१७. वर्णाश्रम-धर्म-निरूपण ३०९
१८. वानप्रस्थ और सन्यासीके धर्म ३३३
१९. भक्ति, ज्ञान और यम नियमादि साधनोंका वर्णन ३५३
२०. ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग ३७३
२१. गुण-दोष व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य ३८९
२२. तत्त्वों की संख्या और पुरुष प्रकृति विवेक ४०८
२३. एक तितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास ४३५
२४. सांख्ययोग ४७६
२५. तीनों गुणों की वृतियों का निरूपण
२६. पुरुरवाकी वैरोग्योक्ति ४९१
२७. क्रियायोगका वर्णन ५०५
२८. परमार्थ निरूपण ५२८
२९. भागवत धर्मोंका निरूपण और उद्धवजीका बदरिकाश्रमगमन ४४९
३०. यदुकुलका संहार ५७३
३१. श्रीभगवानका स्वधामगमन ५९५-६०७

॥ एकादश स्कन्ध ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतम् एकादशस्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुकउवाच–

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।
भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ॥ १ ॥

कृत्वादैत्यवधं कृष्णः सरामः यदुभिः वृतः भुवः अवतारयत् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम् ॥ १ ॥

सरामः कृष्णः	- बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने	**जविष्ठं**	- (कौरव-पाण्डवोंमें) प्रबल
यदुभिः वृतः	- यदुवंशियोंसे घिरे हुए	**कलिंजनयन्**	- कलह उत्पन्न करके
दैत्यवधं कृत्वा	- दैत्योंका वध करके	**भुवः भारं**	- पृथ्वीका भार
		अवतारयत्	- उतार दिया ॥ १ ॥

ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः
सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ।
कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्
हत्वा नृपान् निरहरत् क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥

ये कोपिताःसुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैः दुर्द्यूत हेलन कचग्रहण आदिभिःतान् कृत्वा निमित्तं इतर इतरतः समेतान् हत्वा नृपान् निरहरत् क्षितिभारं ईशः ॥ २ ॥

ये पाण्डुसुताः	- जो पाण्डव	**तान्-निमित्तंकृत्वा**	- उनको निमित्त बनाकर
सपत्नैः	- शत्रुओं द्वारा	**इतर इतरतः**	- परस्पर एक दूसरे द्वारा
दुर्द्यूत	- बुरे (छलपूर्ण) जुए	**समेतान्**	- चारों ओरसे आये
हेलन कचग्रहण	- अपमानों तथा (द्रौपदीके) केश पकड़ने	**नृपान् हत्वा**	- राजाओंको मरवाकर
आदिभिः	- आदिद्वारा	**ईशः-क्षितिभारं**	- भगवानने भूभार
सुबहुकोपिताः	- अत्यधिक कुपित कर दिये गये थे	**निरहरत्**	- सर्वथा दूर कर दिया ॥ २ ॥

भूभाररराजपृतना यदुभिर्निरस्य
गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं
यद् यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

भूभार राजपृतना यदुभिः निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिः अचिन्तयत् अप्रमेयः मन्ये अवनेः ननु गतः अपिअगतं हि भारं यत् यादवकुलं अहो अविषह्यनं आस्ते ॥ ३ ॥

भूभार	- पृथ्वीकी भाररूपा	**ननु अवनेः**	- निश्चय पृथ्वीका
राजपृतना	- राजाओंकीसेनाको	**भारंगतःअपि**	- भारचले जानेपर भी
स्वबाहुभिः गुप्तैः	- अपनी भुजाओंसे सुरक्षित	**अगतं मन्ये**	- बिना गया मानता हूं
यदुभिः निरस्य	- यादवों द्वारा हटाकर	**हि यत्-अविषह्यं**	- क्योंकि जो (यह) अजेय
अप्रमेयः	- प्रमाणातीत श्रीकृष्णने	**यादवकुलं**	- यादवकुल
अचिन्तयत्	- सोचा	**अहो आस्ते**	- अहो (अभी) बना है ॥ ३ ॥

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्
कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय
वेणुस्तम्बस्य वन्हिमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥

न एव अन्यतः परिभवः अस्य भवेत् कथञ्चित् मत् संश्रयस्य विभवः न हनस्य नित्यं अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणु स्तम्बस्य वन्हि इव शान्तिं उपैमि धाम ॥ ४ ॥

अस्य अन्यतः	- इसकी किसी दूसरेसे	**यदुकुलस्य**	- (अतः) यदुकुलमें
कथञ्चित्	- किसी प्रकार	**अन्तः-**	- आन्तरिक कलह
परिभवः	- पराजय	**कलिं विधाय**	उत्पन्न करके
न भवेत्	- नहीं हो सकती	**वेणुस्तम्बस्य**	- बासोंके झुरमुटमें
मत्संश्रयस्य	- मेरे आश्रममें रहनेसे	**वन्हिं इव**	- अग्निके समान
विभवः	- वैभव	**शान्तिंधाम**	- शान्ति पूर्वक अपने धाम
न हनस्य नित्यं	- अप्रतिहत और स्थायी हो गया है	**उपैमि**	- जाऊँगा ॥ ४ ॥

एवं व्यवसितो राजन् सत्यसंकल्प ईश्वरः ।
शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

एवं व्यवसितः राजन् सत्यसंकल्प ईश्वरः शाप व्याजेन विप्राणां सञ्जह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

राजन्	- राजन्	**विप्राणां**	- ब्राह्मणोंके
एवं व्यवसितः	- इस प्रकार निश्चय करके	**शाप व्याजेन**	- शापके बहाने
सत्यसंकल्प	- उन सत्यसंकल्प	**स्वकुलं-**	- अपने कुलका संहार
ईश्वरः विभुः	- समर्थ स्वामीने	**सञ्जह्रे**	किया ॥ ५ ॥

स्व मूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ।
गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥

स्वमूर्त्या लोकलावण्य निर्मुक्त्या लोचनं नृणां गीर्भिः ताः स्मरतां चित्तं पदैः तान् ईक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥

लोकलावण्य	- त्रिभुवन सुन्दर	**स्मरतां चित्तं**	- स्मरण करने वालोंके चित्त
स्वमूर्त्या	- अपनी मूर्तिसे	**पदैः**	- (उनके) चरणोंमें (लग जाते थे)
नृणांलोचनं	- मनुष्योंके नेत्रोंको	**तान् ईक्षतां**	- उनका दर्शन करके
निर्मुक्त्या	- सब ओरसे छुड़ा देने वाली	**क्रियाः**	- (सब) कार्य (भूल जाते थे) ॥ ६ ॥
गीर्भिस्ताः	- (अपनी) वाणीमें वही (प्रमुख) थे		

आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ।
तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात् स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥

आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य हि अञ्जसा न कौ तमः अनया तरिष्यन्ति इति अगात् स्वं पदं ईश्वरः ॥ ७ ॥

हि	- क्योंकि	**सुश्लोकां**	- पवित्रकीर्तनीय
अनयातमः	- इसके द्वारा (लोग) अज्ञानसे	**कीर्तिं आच्छिद्य-**	- उत्पन्न करके (उसे)
तरिष्यन्ति	- पार हो जायेंगे	**वितत्य**	- विस्तृत करके
इति	- ऐसा सोचकर	**ईश्वरः स्वं पदं**	- वे सर्वेश्वर अपने धाम
कौ नु अञ्जसा	- पृथ्वीपर अहो सरलतासे	**अगात्**	- पधारे ॥ ७ ॥

राजोवाच–

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ।
विप्रशापः कथमभूद् वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्ध उपसेविनां विप्र शापः कथं अभूत् वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मण्यानां	- ब्राह्मणोंके भक्त,	**वृष्णीनां**	- यादवोंको
वदान्यानां	- उदार	**विप्रशापः**	- ब्राह्मणोंका शाप
नित्यं वृद्ध	- सदा वड़ोंकीसेवा	**कथं अभूत**	- कैसे प्राप्त हुआ
उपसेविनां	करने वाले		॥ ८ ॥
कृष्णचेतसां	- श्रीकृष्णमें आसक्त चित्त		

यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ।
कथमेकात्मनां भेद एतत् सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥

यत् निमित्तः स वै शापः यादृशः व द्विजसत्तम कथं एकात्मनां भेद एतत् सर्वं वदस्वमे ॥ ९ ॥

द्विजसत्तम	- विप्र प्रवर !	**एकात्मनां**	- एक चित्त (यादवों) में
स वै शापः	- वह निश्चित शाप	**भेद कथं**	- फूट कैसे पड़ गयी
यत् निमित्तः	- जिस कारण सेतु हुआ,	**एतत् सर्वं**	- यह सब
वा यादृशः	- अथवा जैसा था तथा	**नः वदस्व**	- मुझे बतलाइये ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच–

बिभ्रद् वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं
कर्माचरन् भुवि सुमंगलमाप्तकामः ।
आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः
संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥

बिभ्रद् वपुः सकल सुन्दर सन्निवेशं कर्म आचरन् भुवि सुमंगलं आप्तकामः आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुं ऐच्छत कुलं स्थित कृत्यशेषः ॥ १० ॥

सकल सुन्दर	-	सम्पूर्ण सुन्दर (पदार्थोंके)	**उदारकीर्तिः**	-	प्रशस्त सुयशके साथ
सन्निवेशं	-	मानो योगसे बना हो ऐसा	**रममाणः**	-	विहार करते हुए
वपुः विभ्रत्	-	श्रीविग्रह धारणकरके	**स्थितकृत्य-शेषः**	-	अपने बचे हुए कर्तव्य को (पूरा करनेके लिए) स्थित
आप्तकामः	-	पूर्णकाम होते हुए भी	**कुलं संहर्तुं**	-	अपने कुलके उपसंहार की
भुवि सुमंगलं	-	पृथ्वीके लिए अत्यन्त मंगलमय	**ऐच्छत**	-	इच्छाकी ॥ १० ॥
कर्म आचरन्	-	कर्म करते हुए			

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि
गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ।
कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे
पिण्डारकं समगमन् मुनयो निसृष्टाः ॥ ११ ॥

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायत् जगत् कलिमल अपहराणि कृत्वा काल आत्मना निवसता यदुदेव गेहे पिण्डारकं समअगमन् मुनयः निसृष्टाः ॥ ११ ॥

कलिमल	-	कलियुगके दोषोंको	**कालआत्मना**	-	काल स्वरूपसे
अपहराणि	-	दूर करने वाले	**निवसता**	-	बसते हुए
सुमङ्गलानि	-	अत्ययन्त मंगलमय	**निसृष्टाः**	-	उनके विदा करनेपर
कर्माणि	-	कर्मोंको	**मुनयः-पिण्डारकं**	-	मुनिगण पिण्डारक क्षेत्र
गायन् कृत्वा	-	लोग वर्णन करेंगे इसलिए करके	**समअगमन्**	-	एक साथ आ गये ॥ ११ ॥
यदुदेव गेहे	-	यादव महाराज उग्रसेन की राजधानीमें			

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥१२॥

विश्वामित्रः, असितः **कण्वः दुर्वासा, भृगुः**, अंगिराः, कश्यपः, वामदेवः, अत्रिः, वशिष्ठः, नारद आदयः ॥ १२ ॥१

क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः ।
उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥

क्रीडन्तः तान् उपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः उपसंग्रह्यन पप्रच्छुः अविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥

अविनीता	- उद्दण्ड	**उपव्रज्य**	- समीप जाकर
यदुनन्दनः-	- यादव कुलके कुमार	**विनीतवत्**	- कृत्रिम नम्रतासे
कुमारा		**उपसंग्रह्य**	- प्रणाम करके
क्रीडन्तः तान्	- खेल करते हुए उनके	**पप्रच्छुः**	- पूछा ॥ १३ ॥

ते विषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् ।
एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥ १४ ॥

ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवती सुतं एषा पृच्छति वः विप्राः अन्तर्वत्नि असित् ईक्षणा ॥ १४ ॥

ते जाम्बवती सुतं	- उन्होंने जाम्बवतीके पुत्र	**एषा असित् ईक्षणा**	- यह कजरारे नेत्रों वाली
साम्बं स्त्रीवेषैः	- साम्बको स्त्रीवेशमें	**अन्तर्वत्नि**	- गर्भवती
वेषयित्वा	- सजाकर (कहा)	**विप्राः वः- पृच्छति**	- ब्राह्मणो ! आप लोगोंसे पूछती है ॥ १४ ॥

---

१. ये ऋषियोंके नाम हैं ।

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात् प्रब्रूतामोघदर्शनाः ।
प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किंस्वित् सञ्जनयिष्यति ॥ १५ ॥

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात् प्रब्रूत अमोघ दर्शनाः प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किं स्वित् सञ्जनयिष्यति ॥ १५ ॥

साक्षात् प्रष्टुं	-	स्वयं पूछनेमें	**अमोघ दर्शनाः**	-	अव्यर्थ दृष्टि वाले (आप)
विलज्जती	-	लज्जित हो रही है,	**प्रब्रूत**	-	बतलावें
प्रसोष्यन्ती	-	प्रसवमें	**किं स्वित्**	-	भला क्या
पुत्रकामा	-	पुत्र उत्पन्न करना चाहती है	**सञ्जन-**	-	उत्पन्न करेगी ?
			यिष्यति		॥ १५ ॥

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ।
जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

एवं प्रलब्धा मुनयः तान् ऊचुः कुपिता नृप जनयिष्यति वः मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

नृप	-	राजन्	**मन्दाः**	-	'मूर्खो
एवं प्रलब्धा	-	इस प्रकार ठगनेका प्रयत्न करनेपर	**वः कुल-**	-	तुम्हारे कुलका नाश
			नाशनं		करने वाला
कुपिता मुनयः	-	कुपित मुनिगण	**मुसलं-**	-	मूसल उत्पन्न करेगी
तान् ऊचुः	-	उनसे बोले	**जनयिष्यति**		॥ १६ ॥

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसन्त्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ।
साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन् मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥

तत् श्रुत्वा ते अति सन्त्रस्ता विमुच्य सहसा उदरं साम्बस्य ददृशुः तस्मिन् मुसलं खलु अयस् मयम् ॥ १७ ॥

तत् श्रुत्वा - उस (शाप) को सुनकर
ते अति-सन्त्रस्ताः - वे बहुत भयभीत होकर
सहसा - अचानक
साम्बस्य उदरं - साम्बके पेट (पर बंधा वस्त्रादि)को
विमुच्य - खोलकर
खलु अयस्मयं - अरे लोहेसे बना
मुसलं ददृशुः - मूसल देखा ॥१७॥

किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः ।
इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥१८॥

किं कृतं मन्द भाग्यैः नः किं वदिष्यन्ति नः जनाः इति विह्वलिता गेहान् आदाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥

नः मन्दभाग्यैः - 'हम अभागोंने
किं कृतं - यह क्या किया
जनाः नः - लोग हमें
किं वदिष्यन्ति - क्या कहेंगे ?
इति विह्वलिता - इस प्रकार व्याकुल होकर
मुसलं आदाय - उस मूसलको लेकर
गेहान् ययुः - घर लौट गये ॥१८॥

तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ।
राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥

तत् च उपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः राज्ञ आवेदयान् चक्रुःसर्व यादव सन्निधौ ॥ १८ ॥

मुखश्रियः - मुखकी शोभा
परिम्लान - अत्यन्त फीकी हो गयी थी
तत् च - उस (मूसल)को भी
सर्व यादव सन्निधौ - सब यदुवंशियोंकी उपस्थितिमें
सदसि उपनीय - सभामें लाकर
राज्ञ आवेदयान् - महाराज उग्रसेनसे निवेदन
चक्रुः - किया ॥ १९ ॥

श्रुत्वामोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ।
विस्मिता भयसन्त्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥

श्रुत्वा अमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप विस्मिता भय संत्रस्ता बभूवुः द्वारकौ कसः ॥ २० ॥

नृप	- राजन् !	**द्वारकौ कसः**	- द्वारिकावासी
अमोघं विप्रशापं	- अव्यर्थ ब्राह्मणोंका शाप	**विस्मिता**	- चकित एवं
श्रुत्वा च	- सुनकर तथा	**भय संत्रस्ता**	- भयसे अत्यन्त भयभीत
मुसलं दृष्ट्वा	- मूसलको देखकर	**बभूवुः**	- हो गये ॥ २० ॥

तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ।
समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥

तत् चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः समुद्र सलिले प्रास्यत् लोहं च अस्य अवशेषितम् ॥ २१ ॥

स यदुराजः	- उन यादव महाराज	**अस्य अवशेषितं**	- उससे बचे हुए
आहुकः	उग्रसेनने	**लोहं च**	- लोहेका भी
तत् मुसलं	- उस मूसलको	**समुद्र सलिले**	- समुद्रके जलमें
चूर्णयित्वा	- चूर्ण बनवाकर	**प्रास्यत्**	- फिंकवा दिया ॥२१॥

कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ।
उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन् किलैरकाः ॥ २२ ॥

कश्चित् मत्स्यः अग्रसीत् लोहं चूर्णानि तरलैः ततः उह्यमानानि वेलायां लग्नानि आसन् किल एरकाः ॥ २२ ॥

कश्चित् मत्स्यः	- किसी मछलीने	**तरलैः उह्य मानानि**	- तरंगोंसे ढोया जाकर
लोहं अग्रसीत्	- उस लोहे (के टुकड़े) को निगल लिया	**किल एरकाः**	- अहो, एरका नामक घास
ततः चूर्णानि	- वहांसे वह (लौह) चूर्ण	**आसन्**	- हो गया ॥ २२ ॥

---

१. **यह तलवारके समान लम्बे तीन अंगुलके लगभग बचके समान पौधोंकी दलदली नम भूमिमें होने वाली घास है ।**

मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ।
तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥

मत्स्यः गृहीतः मत्स्यघ्नैः जालेन अन्यैः सह अर्णवे तस्य उदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकः अकरोत् ॥ २३ ॥

मत्स्यघ्नैः	- मछली मारनेवालों द्वारा	**गृहीतः**	- पकड़ी गयी,
जालेन अन्यैः-	- जालमें दूसरी	**तस्य उदरगतं**	- उसके पेटमें पहुँचे
सह	(मछलियों)के साथ	**लोहं लुब्धकः**	- उस लोहेको एक व्याधने
अर्णवेमत्स्यः	- समुद्रमें (वह) मछली	**स शल्ये**	- बाणकी नोक बना लिया
		अकरोत्	॥ २३ ॥

भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ।
कर्तुं नैच्छद् विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

भगवान् ज्ञात सर्व अर्थ ईश्वरः अपि तत् अन्यथा कर्तुं न इच्छत् विप्रशापं कालरूप अन्वमोदत ॥ २४ ॥

ज्ञात सर्व अर्थ	- इस सब विषयोंको जानकर भी	**न इच्छत्**	- ऐसी इच्छा नहींकी
भगवान्	- भगवानने	**कालरूप**	- कालरूपसे
तत् विप्रशापं	- उस ब्राह्मणके शापको	**अन्वमोदत**	- (उसका) अनुमोदन कर दिया ॥ २४ ॥
अन्यथा कर्तुं	- व्यर्थ कर देनेमें		
ईश्वरः अपि	- समर्थ होनेपर भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १ ॥

गोविन्द भुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह अवात्सीत् नारदः अभीक्ष्णं कृष्ण उपासन लालसः ॥ १ ॥

कुरूद्वह	- कुरुकुल बालक परीक्षित !	**कृष्ण उपासन**	- श्रीकृष्णकी उपासना
गोविन्द	- गोविन्दकी	**लालसः**	- करनेकी इच्छासे
भुजगुप्तायां	- भुजाओंसे सुरक्षित	**नारदः अभीक्ष्णं**	- नारदजी बार बार
द्वारवत्यां	- द्वारिकापुरीमें	**अवात्सीत्**	- रहते ही थे ॥ १ ॥

को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम् ।
न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥

कः नु राजन् इन्द्रियवान् मुकुन्द चरणाम्बुजं न भजेत् सर्वतः मृत्युः उपास्यं अमर उत्तमैः ॥ २ ॥

राजन्	- राजन्	**उपास्यं**	- आराधनीय
नु कः-	- भला कौन इन्द्रिय	**मुकुन्द-**	- मुकुन्दके चरण कमलोंका
इन्द्रियावन्	पाने वाला	**चरणाम्बुजं**	
सर्वतः मृत्युः	- सब ओरसे मृत्युसे घिरा	**भजेत् न**	- भजन नहीं करेगा
अमर उत्तमैः	- (ब्रह्मादि) देव श्रेष्ठों द्वारा		॥ २ ॥

तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ।
अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

तं एकदा तु देवर्षिं वसुदेवः गृह आगतं अर्चितं सुखं आसीनं अभिवाद्य इदं अब्रवीत् ॥ ३ ॥

एकदा तु	- एक बार तो	**तं देवर्षिं**	- उन देवर्षिको
गृह आगतं	- घर आये	**अभिवाद्य**	- प्रणाम करके
अर्चितं	- पूजित	**वसुदेवः**	- वसुदेवजीने
सुखं आसीनं	- सुखपूर्वक बैठे	**इदं अब्रवीत्**	- यह कहा ॥ ३ ॥

वासुदेव उवाच–

भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ।
कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥

भगवन् भवतः यात्रा स्वस्तये सर्व देहिनां कृपणानां यथा पित्रोः उत्तम श्लोक वर्त्मनाम् ॥ ४ ॥

भगवन्	- भगवन्	**भवतः यात्रा**	- आपकी यात्रा
उत्तम श्लोक	- पवित्रकीर्ति	**सर्व कृपणानां**	- समस्त दुःखी
वर्त्मनां	- भगवानके मार्गमें चलने वाले	**देहिनां**	- प्राणियोंके
		स्वस्तये	- कल्याणके लिए (होती है) ॥ ४ ॥
यथा पित्रोः	- माता-पिताके समान		

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥ ५ ॥

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च सुखाय एव हि साधूनां त्वादृशां अच्युत आत्मनाम् ॥ ५ ॥

हि देव चरितं - क्योंकि देवताओंका व्यवहार
भूतानां - प्राणियोंके लिए
दुःखाय च - दुःखकाकारण तथा (कभी)
सुखाय च - सुखका भीकारण होता है;
त्वादृशां - किन्तु आपके समान
अच्युत-आत्मनां - भगवत्स्वरूप
साधूनां - साधुओंका (व्यवहार)
सुखाय एव - सुखके लिए ही (होता है) ॥ ५ ॥

भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् ।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥

भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथा एवतान् छाया इवकर्म सचिवाः साधवः दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥

ये यथा देवान् - जो जैसे देवताओंका
भजन्ति - भजन करते हैं:
देवाः अपि - देवता भी
तान् तथा एव - उनको उसीके अनुसार (फल देते हैं)
छाया इव - (क्योंकि देवता) छायाके समान
कर्म सचिवाः - कर्मके मन्त्री (अधीन) हैं
साधवः - किन्तु साधुपुरुष
दीनवत्सलाः - दीनोंपर स्नेह करने वाले होते हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान् भागवतांस्तव ।
याञ्श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतोभयात् ॥ ७ ॥

ब्रह्मन् तथा अपि पृच्छामः धर्मान् भागवतान् तव यान् श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यः मुच्यते सर्वतः भयात् ॥ ७ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन्
तथा अपि - ऐसा होनेपर भी
तव भागवतान्-धर्मान् - आपसे भागवत धर्म
पृच्छामः - पूछता हूँ
यान्-श्रद्धयाश्रुत्वा - जिनको श्रद्धापूर्वक सुनकर
मर्त्यः सर्वतः - मनुष्य सब ओरसे
भयात् मुच्यते - भयसे छूट जाता है ॥ ७ ॥

अहं किल पुरानन्तं प्रजार्थो भुवि मुक्तिदम् ।
अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥

अहं किल पुरा अनन्तं प्रजा अर्थः भुवि मुक्तिदं अपूजयम् न मोक्षाय मोहितः देवमायया ॥ ८ ॥

देवमायया	- भगवानकी मायासे	**भुवि प्रजा**	- पृथ्वीपर पुत्र प्राप्तिके
मोहितः अहं	- मोहित होकर मैंने	**अर्थं**	लिए
पुरा मुक्तिदं	- पहिले जन्ममें मोक्षदाता	**मोक्षाय न**	- मोक्षके लिए नहीं
किल अनन्तं	- अहो अनन्तपरमात्माकी	**अपूजयम्**	- पूजाकी ॥ ८ ॥

यथा विचित्रव्यसनाद् भवद्भिर्विश्वतोभयात् ।
मुच्येम ह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥

यथा विचित्र व्यसनात् भवद्भिः विश्वतः भयात् मुच्येम हि अञ्जसा एव अद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥

सुव्रत	- उत्तम व्रतवाले नारदजी	**अञ्जसा एव**	- सरलतासे ही
यथा विचित्र	- जैसे नाना प्रकारके	**अद्धा मुच्येम**	- साक्षात् मुक्त हो जाऊँ
व्यसनात् हि	- कष्टोंसे तथा	**तथा नः**	- वैसी मुझे
विश्वतः भयात्	- सब ओरके भयसे	**शाधि**	- आज्ञाकीजिए ॥ ९ ॥
भवद्भिः	- आपके माध्यमसे		

श्रीशुक उवाच—

राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ।
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥

राजन् एवं कृत प्रश्नः वसुदेवेन धीमता प्रीतः तं आह देवर्षिः हरेः संस्मारितः गुणैः ॥ १० ॥

राजन्	- राजन्	**हरेः गुणैः**	- श्रीहरिके गुणोंका
धीमता वसुदेवन	- बुद्धिमान वसुदेवजी द्वारा	**संस्मारितः**	- स्मरण कराये जानेसे
एवं कृतः प्रश्नः	- इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर	**प्रीतः देवर्षिः**	- प्रसन्न होकर देवर्षिने
		तं आह	- उनसे कहा ॥ १० ॥

नारद उवाच—

सम्यगेतद् व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ ।
यत् पृच्छसे भागवतान् धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥

सम्यक् एतत् व्यवसितं भवता सात्वत ऋषभ यत् पृच्छसे भागवतान् धर्मान् त्वं विश्व भावनान् ॥ ११ ॥

सात्वत ऋषभ	- यादव श्रेष्ठ !	**यत् त्वं**	- क्योंकि तुम
भवता एतत्	- तुम्हारा यह	**विश्व भावनान्**	- विश्व-पोषक
व्यवसितं	- निश्चय	**भागवतान् धर्मान्**	- भागवत धर्मको
सम्यक्	- उपयुक्त है	**पृच्छसे**	- पूछ रहे हो ॥ ११ ॥

श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥

श्रुतः अनुपठितः ध्यात आदृतः वा अनुमोदितः सद्यः पुनाति सद्धर्मः देव विश्व द्रुहः अपि हि ॥ १२ ॥

हि सद्धर्मः	- क्योंकि यह सद्धर्म	**देव विश्वद्रुहः**	- देवताओं सहित विश्वके द्रोही
श्रुतः अनुपठितः	- सुननेसे, फिर पढ़नेसे,	**अपि सद्यः**	- को भी तुरन्त
ध्यात आदृतः	- ध्यान करने, आदर करने		
वा अनुमोदितः	अथवा समर्थन करनेसे	**पुनाति**	- पवित्रकर देता है ॥१२॥

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः स्मारितः भगवान् अद्य देवः नारायणः मम ॥ १३ ॥

पुण्य श्रवण-	- जिनका (यश) सुनना	**नारायणः**	- नारायणका
कीर्तनः	और कहना पवित्र है	**अद्य त्वया**	- आज तुम्हारे द्वारा
परम कल्याणः	- उन परम कल्याण स्वरूप	**स्मारितः**	- स्मरण कराया गया
मम देवः	- मेरे इष्टदेव		॥ १३ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

अत्र अपि	- इस विषयमें भी	**विदेहस्य**	- विदेहके
इमं पुरातनं	- इस प्राचीन	**संवादं**	- संवादका
आर्षभाणां	- ऋषभ पुत्रोंका	**उदाहरन्ति**	- उदाहरण दिया जाता है
च महात्मनः	- तथा महात्मा		॥ १४ ॥

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः ।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥

प्रियव्रतः नाम सुतः मनोः स्वायम्भुवस्य यः तस्य अग्नीध्रः ततः नाभिः ऋषभः तत् सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥

स्वयाम्भुवस्य	- स्वायम्भुव	**ततः नाभिः**	- उनसे नाभि,
मनोः यः	- मनुके जो	**तत् सुतः**	- उनके पुत्र
प्रियव्रतनाम-	- प्रियव्रत नामके पुत्र थे	**ऋषभः स्मृतः**	- ऋषभ कहे गये हैं
सुतः			॥ १५ ॥
तस्य अग्नीध्रः	- उनके अग्नीध्र,		

तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ॥ १६ ॥

तं आहुः वासुदेव अंशं मोक्षधर्म विवक्षया अवतीर्णं सुतशतं तस्य आसीत् ब्रह्मपारगम् ॥ १६ ॥

तं मोक्षधर्म	- उन्हें मोक्षधर्म	**तस्य ब्रह्म-**	- उनके वेदके पारदर्शी
विवक्षया	- बतलानेकी इच्छासे	**पारगं**	
वासदेव अंशं	- वासुदेवके अंशसे	**सुत शतं-**	- सौ पुत्र थे ॥ १६ ॥
अवतीर्णं आहुः	- अवतरित कहा गया है	**आसीत्**	

तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ।
विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥

तेषां वै भरतः ज्येष्ठः नारायणपरायणः विख्यातं वर्षं एतत् यत् नाम्ना भारतं अद्भुतम् ॥ १७ ॥

तेषां ज्येष्ठः	- उनमें बड़े	**वै एतत्-**	- निश्चय यह अद्भुत
नारायणपरायणः	- नारायणपरायण	**अद्भुतं**	
भरतः	- भरत थे ।	**भारतं**	- (अजनाभ वर्ष) भारत नामसे
यत् नाम्ना	- जिनके नामसे	**विख्यातं**	- प्रसिद्ध हुआ ॥ १७ ॥

स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥ १८ ॥

स भुक्तभोगां त्यक्त्वा इमां निर्गतः तपसा हरिं उपासीनः तत् पदवीं लेभे वै जन्मभिः त्रिभिः ॥ १८ ॥

स इमां	- उन्होंने इस (पृथ्वी)को	**हरिं उपासीनः**	- श्री हरिकी उपासना करते हुए
भुक्तभोगां	- भोग भोगनेके पश्चात्	**वै त्रिभिः जन्मभिः**	- निश्चय तीन जन्मोंमें
त्यक्त्वा	- त्यागकर	**तत् पदवीं लेभे**	- उनका स्थान प्राप्त किया ॥ १८ ॥
तपसा निर्गतः	- तपस्याके लिए निकलकर		

तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः ।
कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥

तेषां नव नवद्वीप पतयः अस्य समन्ततः कर्मतन्त्र प्रणेतार एक अशीतिः द्विजातयः ॥ १९ ॥

तेषां	- उन (ऋषभ पुत्रों) में	**एक अशीतिः**	- इक्यासी
नव	- नौ	**कर्मतन्त्र-प्रणेतार**	- कर्मशास्त्रके प्रवर्तक
अस्य समन्ततः	- इस (भारतवर्ष) के चारों ओरके	**द्विजातयः**	- ब्राह्मण हो गये ॥१९॥
नवद्वीप पतयः	- नौ द्वीपोंके स्वामी हुए,		

नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥ २० ॥

नव अभवन् महाभागा मुनयः हि अर्थ शंसिनः श्रमणा वातरशना आत्मविद्या विशारदाः ॥ २० ॥

नव महाभागा	- नौ महाभाग	**विशारदाः**	- निपुण
हि अर्थ शंसिनः	- क्योंकि परमार्थ उपदेशक थे	**वातरशनाः**	- दिगम्बर
आत्मविद्या	- अध्यात्म विद्यामें	**श्रमणा-अभवन्**	- सन्यासी हो गये ॥ २० ॥

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ २१ ॥

कविः, हरिः, अन्तरिक्षः, प्रबुद्धः, पिप्पलायनः, आविर्होत्रः, अथ द्रुमिलः, चमसः, करभाजनः१ ॥ २१ ॥

त एते भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ।
आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन् महीम् ॥ २२ ॥

त एते भगवत् रूपं विश्वं सत् असत् आत्मकं आत्मनः व्यतिरेकेण पश्यन्तः व्यचरन्, महीम् ॥ २२ ॥

त एते	- वे इस	**आत्मनः-**	- आत्मासे अभिन्न
सत् असत्-	- कारण-कार्यरूप	**व्यतिरेकेण**	
आत्मकं		**पश्यन्तः**	- देखते हुए
भगवत्रूपं विश्वं	- भगवत्स्वरूप विश्वको	**महीं व्यचरन्**	- पृथ्वीपर विचरण करते थे ॥ २२ ॥

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्य-
गन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ।
मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथ-
विद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥

अव्याहत इष्ट गतयः सुर सिद्ध साध्य गन्धर्व यक्ष नर किन्नर नाग लोकान् मुक्ताः चरन्ति मुनि चारण भूतनाथ विद्याधर द्विज गवां भुवनानि कामं ॥ २३ ॥

---

१. ये नव योगेश्वरोंके नाम हैं ।

इष्टगतयः - जहां जाना चाहते थे
अव्याहत - उनकी गति रुकती नहीं थी,
कामं - अतः इच्छानुसार
सुरसिद्ध - देवता, सिद्ध,
साध्य गन्धर्व - साध्यगण, गन्धर्व,
यक्ष नर किन्नर - यक्ष, मनुष्य, किन्नर
नाग लोकान् - नाग लोकोंमें,
मुनि चारण - मुनि, चारण,
भूतनाथ - शंकरजीके,
विद्याधर - विद्याधर
द्विजगवां - ब्राह्मणों (ब्रह्मके) तथा गायोंके
भुवनानि - लोकोंमें
मुक्ताः चरन्ति - स्वच्छन्द घूमते थे ॥ २३ ॥

त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ।
वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥

त एकदा निमेः सत्रं उपजग्मुः यदृच्छया वितायमानं ऋषिभिः अजनाभे महात्मनः ॥ २४ ॥

अजनाभे - अजनाभ (भारत) वर्षमें
एकदा - एक बार
ऋषिभिः - ऋषियों द्वारा
वितायमानं - कराये जाते हुए
महात्मनः निमेः - महात्मा निमिके
सत्रं त - यज्ञमें वे
यदृच्छया - संयोगवश
उपजग्मुः - आगये ॥ २४ ॥

तान् दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् महाभागवतान् नृपः ।
यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥

तान् दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् महाभागवतान् नृपः यजमानः अग्नयः विप्राः सर्व एव उपतस्थिरे ॥ २५ ॥

तान् सूर्य-संकाशान् - उन सूर्यके समान तेजस्वी
महाभागवतान् - महाभागवतोंको
दृष्ट्वा - देखकर
यजमानः नृपः - यजमान राजा निमि
अग्नयः - अग्नियां,
विप्राः सर्व एव - ब्राह्मण सभी
उपतस्थिरे - स्वागतमें खड़े हो गये ॥ २५ ॥

विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ।
प्रीतः सम्पूजयाञ्चक्रे आसनस्थान् यथार्हतः ॥ २६ ॥

विदेहः तान् अभिप्रेत्य नारायणपरायणान् प्रीतः सम्पूजयान् चक्रे आसनस्थान् यथा अर्हतः ॥ २६ ॥

विदेहः	- विदेहराज निमिने	**आसनस्थान**	- आसनपर बैठे हुओंकी
तान् नारायण-	- उन्हें नारायणपरायण	**यथा अर्हतः**	- पूजा विधिसे
परायणान्		**प्रीतः**	- प्रसन्नतापूर्वक
अभिप्रेत्य	- जानकर	**सम्पूजयान् चक्रे**	- भली प्रकार पूजाकी ॥ २६ ॥

तान् रोचमानान् स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान् नव ।
पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥ २७ ॥

तान् रोचमानान् स्वरुचा ब्रह्मपुत्र उपमान् नव पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रय अवनतः नृपः ॥ २७ ॥

ब्रह्मपुत्र उपमान्	- ब्रह्माके पुत्र (सनकादि)के समान	**परमप्रीतः**	- अत्यन्त प्रसन्न होकर
		प्रश्रय अवनतः	- विनयसे झुककर
तान् स्वरुचा	- उन अपने तेजसे	**नृपः पप्रच्छ**	- राजा निमिने पूछा ॥ २७ ॥
रोचमानान् नव	- प्रकाशितनवोंसे		

विदेह उवाच–

मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान् वो मधुद्विषः ।
विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥

मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान् वः मधुद्विषः विष्णोः भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥ २८ ॥

साक्षात् भगवतः - साक्षात् भगवान
मधुद्विषः - मधुसूदनका
वः पार्षदान् - आप लोगोंको पार्षद
मन्ये - मानता हूँ
हि विष्णोः-भूतानि - क्योंकि भगवत्स्वरूप होकर
लोकानां पावनाय - लोकोंको पवित्र करनेके लिए
चरन्ति - (आप) विचरण करते हैं ॥ २८ ॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥

दुर्लभः मानुषः देहः देहिनां क्षण भंगुरः तत्र अपि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठ प्रिय दर्शनम् ॥ २९ ॥

देहिनां - प्राणियोंके लिए
मानुषः देहः - मनुष्य शरीर
दुर्लभः - पाना कठिन है
क्षण भंगुरः - (वह भी) एक क्षणमें नष्ट होने वाला है,
तत्र अपि - उसमें भी
वैकुण्ठ प्रिय - श्री हरिके प्रियजनोंका
दर्शनं - दर्शन होना
दुर्लभं मन्ये - दुर्लभ मानता हूं ॥ २९ ॥

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ॥ ३० ॥

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामः भवतः अनघाः संसारे अस्मिन् क्षण अर्धः अपि सत्संगः शेवधिः नृणाम् ॥ ३० ॥

अनघाः - निष्पाप
अत आत्यन्तिकं क्षेमं भवतः - अतः आत्यन्तिक कल्याण आप लोगोंसे
पृच्छामः - पूछता हूं
अस्मिन् संसारे - इस संसारमें
क्षण अर्धः अपि - आधे क्षणका भी
सत्संगः - सत्संग
नृणां - मनुष्यको
शेवधिः - परम निधि है ॥ ३० ॥

धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ।
यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥

धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमं यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यति आत्मानं अपि अजः ॥ ३१ ॥

यदि नः	- यदि हम लोगोंके	**यैः प्रसन्नः**	- जिससे प्रसन्न होकर
श्रुतये क्षमं	- सुनने योग्य हो तो	**प्रपन्नाय**	- शरणागतको
भागवतान्-धर्मान्	- भागवत धर्म	**अजः-**	- अजन्मा पुरुष
		आत्मानं अपि	अपनेको भी
ब्रूत	- बतलाइये	**दास्यति**	- दे देते हैं ॥ ३१ ॥

नारद उवाच—

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः ।
प्रतिपूज्याब्रुवन् प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः प्रति पूज्य अब्रुवन् प्रीत्या ससदस्य ऋत्विजं नृपम् ॥ ३२ ॥.

वसुदेव	- वसुदेवजी	**ऋत्विजं नृपं**	- ऋत्विकों और राजाकी
ते महत्तमाः	- वे महापुरुष	**प्रतिपूज्य**	- प्रशंसा करके
एवं निमिना	- इस प्रकार राजा निमिके पूछनेपर	**प्रीत्या**	- प्रेमसे
पृष्टा		**अब्रुवन्**	- बोले ॥ ३२ ॥
स सदस्य	- सदस्योंके साथ		

कविरुवाच—

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य
पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।

उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्
विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥

मन्ये अकुतश्चित् अभयं अच्युतस्य पादाम्बुज उपासनं अत्र नित्यं उद्विग्न बुद्धेः असत् आत्मभावात् विश्व आत्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥

असत्	- (देहादि) असत् पदार्थोंको	**अकुतश्चित्-भयं**	- उस सर्वथा निर्भय स्वरूप
आत्मभावात्	- अपना स्वरूप माननेके कारण	**अच्युतस्य**	- अच्युतके
उद्विग्न बुद्धेः	- अशान्त चित्त रहनेवाले	**पादाम्बुज**	- चरण कमलोंकी
विश्व आत्मना	- संसारमें आसक्त चित्त लोगोंका	**उपासनं**	- उपासनाको
भीःयत्र निवर्तते	- भय भी जहां दूर हो जाता है	**अत्र नित्यं**	- इस संसारमें नित्य
		मन्ये	- मानता हूँ ॥ ३३ ॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥ ३४ ॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया हि आत्मलब्धये अञ्जः पुंसां अविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥ ३४ ॥

अविदुषां पुंसां	- अज्ञानी जनोंके लिए	**आत्मलब्धये**	- अपनी प्रप्तिके लिए
भगवताये	- भगवानने जो निश्चित	**हि प्रोक्ता**	- क्योंकि (स्वयं) बतलाये हैं
उपाया	- उपाय	**तान् भागवतान्**	- उन्हें भागवत धर्म
अञ्जःहि	- सरलतापूर्वक ही	**विद्धि**	- समझो ॥ ३४ ॥

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित ।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥

यान् आस्थाय नरः राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित् धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेत् पतेत् न इह ॥ ३५ ॥

राजन् यान्	- राजन् जिनका	**नेत्रे निमील्य**	- आंख बन्द करके भी
आस्थाय नरः	- अवलम्बन करके मनुष्य	**धावन् वा**	- दौड़ता हुआ भी
कर्हिचित्	- कभी भी	**इह न पतेत्**	- इस मार्गसे नहीं गिरता,
प्रमाद्येत न	- असावधान नहीं होता	**न स्खलेत्**	- न फिसलता ही है ॥ ३५ ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥

कायेन वाचा मनसा इन्द्रियैः वा बुद्ध्या आत्मना वा अनुसृत स्वभावात् करोति यत् यत् सकलं परस्मै नारायणाय इति समर्पयेत् तत् ॥ ३६ ॥

कायेन वाचा	- शरीरसे, वाणीसे,	**यत् यत्-**	- जो जो
मनसा इन्द्रियैः	- मनसे, इन्द्रियोंसे,	**करोति**	करता है
बुद्ध्या वा	- बुद्धिसे अथवा	**परस्मै-**	- वहपरमपुरुष नारायणके
आत्मना वा	- अहंकारसे या	**नारायणाय**	लिए है
अनुसृत-	- जन्मान्तरसे चले आते	**इति तत्**	- ऐसा समझकर उसे
स्वभावात्	स्वभाववश	**समर्पयेत्**	- समर्पण कर दे ॥३६॥

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।
तन्मायया तो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥

भयं द्वितीय अभिनिवेशतः स्यात् ईशात् अपेतस्य विपर्ययः अस्मृतिः तत् माययातः बुध आभजेत् तं भक्त्या एक ईशं गुरुदेवता आत्मा ॥ ३७ ॥

ईशात् अपेतस्य	- ईश्वरसे विमुखकी	**भयं**	- (जरा-मृत्यु) आदिका
तत् माययातः	- उनकी मायासे		भय होता है
अस्मृतिः	- (अपने स्वरूपकी) विस्मृति हो जाती है	**गुरुदेवता-आत्मा**	- (अतः) गुरुदेवको ही आराध्य तथा परमात्मा मानकर
विपर्ययः	- तब उलटा भाव (देहादि)	**बुध**	- बुद्धिमान पुरुष
द्वितीय-अभिनिवेशतः	- अपनेसे पृथकको "मैं" माननेसे	**तं आभजेत्**	- उनकी सब प्रकारसेसेवा करे ॥ ३८ ॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो-
ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।
तत् कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥

अविद्यमानः अपि अवभाति हि द्वयोः ध्यातुः धिया स्वप्न मनोरथौ यथा तत् कर्म संकल्प विकल्पकं मनः बुधः निरुन्ध्यात् अभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥

यथा स्वप्न	- जैसा स्वप्न या	**तत् कर्म**	- अतः उसकर्मके
मनोरथौ	- मनोराज्यमें (होता है)	**संकल्प-विकल्पकं**	- संकल्प-विकल्प करने वाले
ध्यातुः धिया	- चिन्तन करने वालेकी बुद्धिके कारण	**मनः बुधः**	- मनका बुद्धिमान पुरुष
अविद्यमानः-अपि	- उपस्थित न रहनेपर भी	**निरुन्ध्यात्**	- निरोध करे
हि द्वयोः-अवभाति	- क्योंकि द्वैत प्रतीत होता है	**ततः-अभयं स्यात्**	- तब वह निर्भय हो जाता है ॥ ३८ ॥

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके गीतानि नामानि तत् अर्थकानि गायन् विलज्जः विचरेत् असंगः ॥ ३९ ॥

रथांगपाणेः	- श्रीचक्रपाणि भगवानके	**लोके गीतानि**	- लोक-वर्णित
यानि च	- जो भी	**नामानि**	- नामोंको
सुभद्राणि	- परम कल्याणमय	**विलज्जः-**	- लज्जा छोड़कर गाते
जन्मानि कर्मानि	- अवतार-चरित हैं	**गायन्**	हुए
शृण्वन्	- (उन्हें) सुनते हुए	**असङ्गः-**	- आसक्ति रहित होकर
तत् अर्थकानि	- उनके सूचक	**विचरेत्**	विचरण करे ॥ ३९ ॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्याजात अनुरागः द्रुत चित्त उच्चैः हसति अथो रोदिति रौति गायति उन्मादवत् नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥

एवं स्वप्रिय	- इस प्रकार अपने प्रियतमके	**लोकबाह्यः**	- लोक व्यवहारसे अतीत होकर
नामकीर्त्या	- नामकीर्तनका	**उन्मादवत्**	- पागलके समान
व्रतः	- नियम ले लेनेसे	**उच्चैः हसति**	- कभी अट्टहास करता है,
जात अनुरागः	- प्रीति उत्पन्न हो जाती है,	**रोदति रौति**	- रोता है या (भगवानको) पुकारता है
द्रुत चित्त	- चित्त द्रवितहो जाता है	**गायति-**	- गाता है
		नृत्यति	- या नाचता है ॥ ४० ॥

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥

खं वायुं अग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशः द्रुम आदीन् सरित् समुद्रान् च हरेः शरीरं यत् किञ्च भूतं प्रणमेत् अनन्यः ॥ ४१ ॥

खं वायुं	- आकाश, वायु,	**यत् किञ्च-भूतं**	- जो कुछ भी दिखाना है
अग्निं सलिलं	- अग्नि, जल,	**हरेः शरीरं**	- उसे श्री हरिका अंग जानकर
महीं ज्योतीषिं	- पृथ्वी, तारे,	**अनन्यः-प्रणमेत्**	- अनन्य भावसे प्रणाम करे ॥ ४१ ॥
सत्त्वानि	- प्राणी,		
दिशः द्रुम आदीन्	- दिशायें, वृक्षादि,		
च सरित्-समुद्रान् च	- तथा नदियों और समुद्रको		

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥

भक्तिः परेश अनुभवः विरक्तिः अन्यत्र च एष त्रिक एककालः प्रपद्यमानस्य यथा अश्नतः स्युः तुष्टिः पुष्टिः क्षुत् अपायः अनुघासम् ॥ ४२ ॥

यथा अश्नतः	- जैसे भोजन करते समय	**परेश भक्तिः**	- उनपरमात्मामें भक्ति,
अनुघासं	- प्रत्येक ग्रासके साथ	**अनुभवः च**	- (उनके तत्वका) **अनुभव** और
तुष्टिः पुष्टिः	- (मनका) सन्तोष (शरीरका) पोषण और	**अन्यत्र विरक्तिः**	- दूसरी ओरसे वैराग्य
क्षुत् अपायःस्युः	- क्षुधा निवृत्ति होती है	**एष त्रिक्**	- ये तीनों
प्रपद्यमानस्य	- (ऐसे ही) शरणागत होनेपर	**एककालः**	- एक ही समय (साथ-साथ) होते हैं ॥ ४२ ॥

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजं-
स्ततःपरां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥

इति अच्युत अङ्घ्रिं भजतः अनुवृत्त्या भक्तिः विरक्तिः भगवत् प्रबोधः भवन्ति वै भागवतस्य राजन् ततःपरां शान्तिं उपैति साक्षात् ॥ ४३ ॥

राजन्	- राजन् !	**भागवतस्य**	- भगवद् भक्तको
इति अनुवृत्त्या	- इसप्रकार प्रत्येक वृत्तिसे	**वै भवन्ति**	- निश्चय हो जाता है,
अच्युत अङ्घ्रिं	- अच्युत्के चरणोंका	**ततः साक्षात्**	- तब साक्षात्
भजतः	- भजन करनेसे	**परां शान्तिं**	- परम शान्ति
भक्तिः विरक्तिः	- भक्ति, वैराग्य एवं	**उपैति**	- प्राप्त करता है
भगवत् प्रबोधः	- भागवत् तत्वका ज्ञान		॥ ४३ ॥

विदेह उवाच—१

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् ।
यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥ ४४ ॥

अथ भागवतं ब्रूत यत् धर्मः यादृशः नृणां यथा चरति यत् ब्रूत यैः लिङ्गैः भगवत् प्रियः ॥ ४४ ॥

अथ भागवतं	- अब भगवद् भक्तका	**यथा चरति**	- जैसा आचरण करता है,
ब्रूत	- (लक्षण) बतलाइये	**यत् ब्रूते**	- जो कहता (उपदेश करता) है,
भगवत् प्रियः	- वह भगवानका प्रेमी	**यैः लिङ्गैः**	- जिन चिन्हों वाला होता है ॥ ४४ ॥
यत् धर्मः	- जो धर्म मानता है		
नृणां यादृशः	- मनुष्योंमें जैसा होता है,		

---

१. **अन्य प्रतियोंमें यहां "राजोवाच" है ।**

हरिरुवाच–

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥

सर्वभूतेषु यः पश्येत् भगवत् भावं आत्मनः भूतानि भगवति आत्मनि एष भागवत उत्तमः ॥ ४५ ॥

यः सर्वभूतेषु	- जो प्राणियोंमें	**भूतानि-**	- सब प्राणियोंको देखता
आत्मनः	- तथा आत्मामें	**पश्येत्**	है
भगवत् भावं	- भगवानका भाव (उपस्थिति)	**एष उत्तमः**	- यह श्रेष्ठ
		भागवत	- भगवद्भक्त है ॥४५॥
भगवति-	- तथा भगवान और		
आत्मनि	आत्मामें		

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥

ईश्वरे तत् अधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च प्रेम मैत्री कृपा उपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥ ४६ ॥

ईश्वरे प्रेम	- ईश्वरमें प्रेम	**द्विषत्सु**	- (भगवानसे) शत्रुता रखने वालोंकी
तत् अधीनेषु-	- उनके आधीन भक्तोंसे	**उपेक्षा यः-**	- उपेक्षा जो करता है
मैत्री	मित्रता,	**करोति**	
बालिशेषु	- अज्ञानियोंपर	**समध्यमः**	- वह मध्यम (भगवद्भक्त है) ॥ ४६ ॥
कृपा च	- कृपा तथा		

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥

अर्चायां एव हरये पूजां यः श्रद्धया ईहते न तत् भक्तेषु च अन्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥ ४७ ॥

यः श्रद्धया	- जो श्रद्धा पूर्वक	**तत् भक्तेषु**	- उनके भक्तोंकी
अचार्यां एव	- मूर्तिमें ही	**च अन्येषु न**	- तथा दूसरोंकी नहीं
हरये पूजां	- श्रीहरिकी पूजा	**सभक्तः**	- वह भक्त
इहते	- करता है	**प्राकृतः-**	- साधारण कहा गया है
		स्मृतः	॥ ४७ ॥

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति ।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥

गृहीत्वा अपि इन्द्रियैः अर्थान् यः न द्वेष्टि न हृष्यति विष्णोः मायां इदं पश्यन् स वै भागवतो उत्तमः ॥ ४८ ॥

इन्द्रियैः अर्थान्	- इन्द्रियोंसे उनके विषयोंको	**इदं विष्णोः**	- इस जगतको भगवान विष्णुकी
गृहीत्वा अपि	- ग्रहण करके भी	**मायां पश्यन्**	- माया देखता है
यः न द्वेष्टि	- जो उनसे द्वेष नहीं करता,	**वै स उत्तमः**	- निश्चय वह श्रेष्ठ
		भागवतः	- भगवत् भक्त है ।
न हृष्यति	- न हर्षित ही होता,		॥ ४८ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो
जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः
स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः धियां यः जन्म अप्यय क्षुत् भय तर्ष कृच्छ्रैः संसार धर्मैः अविमुह्यमानः स्मृत्या हरेः भागवत प्रधानः ॥ ४९ ॥

देह इन्द्रिय	- शरीर, इन्द्रिय,	**कृच्छ्रैः**	- कष्टोंसे
प्राण मनः	- प्राण, मन,	**अविमुह्यमानः**	- मोहित न होकर
धियां	- बुद्धिके	**हरेः स्मृत्या**	- श्रीहरिका स्मरण करता
संसार धर्मैः	- सांसारिक धर्म		रहता है
जन्म अप्यय	- जन्म-मरण,	**प्रधानः-**	- वह भगवद्भक्तोंमें
क्षुत् भय तर्ष	- भूख, भय, प्यास तथा	**भागवत**	प्रधान है ॥ ४९ ॥

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥

नकाम कर्म बीजानां यस्य चेतसि सम्भवः वासुदेव एकनिलयः स वै भागवत उत्तमः ॥ ५० ॥

यस्य चेतसि	- जिसके चित्तमें	**एक वासुदेव**	- एकमात्र वासुदेवमें ही
काम कर्म	- कामना और कर्मके	**निलयः**	- निवास करता है
बीजानां	- बीजों (संस्कारों)की	**वै स उत्तमः**	- निश्चय वह उत्तम
सम्भवः न	- उत्पत्ति ही नहीं होती,	**भागवत**	- भगवद्भक्त है ॥५०॥

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

न यस्य जन्म कर्मभ्यां न वर्ण आश्रम जातिभिः सज्जते अस्मिन् अहं भावः देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥

न जन्म	- न जन्म या कर्मसे,	**यस्य अहं भावः**	- जिसका अपनापन
कर्माभ्यां		**अस्मिन् देहे**	- इस शरीरसे
न वर्ण आश्रम	- न वर्ण-आश्रम या	**सज्जते**	- सटता (जुड़ता) है
जातिभिः	- जातिसे	**वै सः हरेः-**	- निश्चय वह श्रीहरिको
		प्रियः	प्रिय है ॥ ५१ ॥

न यस्य स्वःपर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५२ ॥

न यस्य स्वःपर इति वित्तेषु आत्मनि वा भिदा सर्वभूत समः शान्तः स वै भागवत उत्तमः ॥ ५२ ॥

वित्तेषु वा आत्मनि	- धनमें या शरीरमें	**सर्वभूत**	- सब प्राणियोंके प्रति
		समः शान्तः	- समान और शान्त है
स्वःपर इति	- 'यह अपना है, यहपराया' इस प्रकार	**वै स उत्तमः**	- निश्चय वह उत्तम
		भागवत	- भगवद्भक्त है ॥५२॥
यस्य भिदा न	- जिसकी भेद बुद्धि नहीं है,		

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ॥ ५३ ॥

त्रिभुवन विभव हेतवे अपि अकुण्ठ स्मृतिः अजित आत्म सुरादिभिः विमृग्यात् न चलति भगवत् पदारविन्दात् लव निमिषार्धं अपि यः स वैष्णव अग्रयः ॥ ५३ ॥

सुरादिभिः	- देवतादि द्वारा भी	**भगवत-**	- भगवानके चरण
अजित आत्म	- भगवत्स्वरूप चित्त	**पदार विन्दात्**	कमलोंसे
विमृग्यात्	- जो ढूँढ़ा जाता है,	**लव निमिष-**	- आधे निमेषके भी
त्रिभुवन विभव	- त्रैलोक्यका वैभव	**अर्धं**	अंशके लिए
हेतवे अपि	- पानेके लिए भी	**यः चलति न**	- जिसकी हटती नहीं
अकुण्ठ स्मृति	- कुण्ठित न होनेवाली (अरोक) स्मृति	**स वैष्णव**	- वह वैष्णवोंमें अग्रणी
		अग्रयः	है ॥ ५३ ॥

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा-
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥

भगवत उरु विक्रम अङ्घ्रि शाखा नखमणि चन्द्रिकया निरस्ततापे हृदि कथं उपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इव उदिते अर्क तापः ॥ ५४ ॥

उरुविक्रम	- अनन्तपराक्रम	**हृदि स कथं**	- हृदयमें वह (जाप) कैसे
भगवत अङ्घ्रि	- भगवानके चरणोंकी	**उपसीदतां**	- दुःख दे सकता है
शाखा नखमणि	- शाखा (अंगुलियों)के नख-मणियोंकी	**चन्द्र उदिते**	- चन्द्रोदय होनेपर
		अर्कतापः	- सूर्यके तापके
चन्द्रिकया	- ज्योतिसे	**प्रभवति इव**	- प्रभावके समान ॥५४॥
निरस्ततापे	- नष्ट हुए त्रिताप वाले		

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा-
द्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षात् हरिः अवश अभिहितः अपि अघ ओघ नाशः प्रणयरशनया धृत अङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवत प्रधान उक्तः ॥५५॥

अवश	- विवश होकर	**धृत अङ्घ्रिपद्मः**	- बँधे चरणारविन्द
अभिहतः अपि	- नामोच्चारण करनेपर भी	**यस्य हृदयं**	- जिसके हृदयको
अघओघनाशः	- समस्त पाप-प्रवाहको नष्ट करने वाले	**न विसृजति**	- नहीं छोड़ पाते
		उक्तः	- बतलाये हुओंमें
साक्षात् हरिः	- साक्षात् श्रीहरि	**स भागवत**	- वह भगवद्भक्तोंमें
प्रणय रशनया	- प्रेम-रज्जुसे	**प्रधान भवति**	- प्रमुख होता है ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

विदेह उवाच—१

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ।
मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

परस्य विष्णोः ईश्स्य मायिनां अपि मोहिनीं मायां वेदितुं इच्छामः भगवन्तः ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

ईशस्य परस्य - सर्व समर्थ परमपुरुष
विष्णोः - विष्णु भगवानकी
मायिनां अपि - मायावियोंको भी
मोहिनीं मायां - मोहित करने वाली मायाको
वेदितुं इच्छामः - जानना चाहता हूँ
भगवन्तः - भगवन् आप लोग
नः ब्रुवन्तु - मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ।
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥

न अनुतृप्ये जुषन् युष्मत् वचः हरिकथा अमृतं संसारताप निस्तप्तः मर्त्यः तत् ताप भेषजम् ॥ २ ॥

संसारताप निस्तप्तः - संसारके तापसे अत्यन्त संतप्त
मर्त्यः तत् ताप - मनुष्यके लिए उस तापकी
भेषजं - औषधि रूप
हरिकथा- अमृतं - श्रीहरिकी कथा रूप अमृतसे युक्त
युष्मत् वचः - आप लोगोंकी वाणीको
जुषन् न- अनुतृप्ये - सेवन करते हुए तृप्त नहीं होता हूँ ॥ २ ॥

---

१. अन्य प्रतियोंमें यहां "राजोवाच" है ।

अन्तरिक्ष उवाच—

एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ।
ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥

एभिः भूतानि भूत आत्मा महाभूतैः महाभुज ससर्ज उच्च अवचान् आद्यः स्वमात्रा आत्म प्रसिद्धये ॥ ३ ॥

महाभुज - वृहद्बाहु राजन्
आद्यः - अदि पुरुषने
एभिः महाभूतैः - इन पंच महाभूतोंसे
आत्म प्रसिद्धये - अपनी (मोक्षकी) पूर्ण सिद्धिके लिए
स्वमात्रा - अपनी शक्तिसे
उच्च अवचानि - बड़े छोटे
भूतानि ससर्ज - प्राणियोंकी सृष्टिकी
॥ ३ ॥

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ।
एकधा दशधाऽऽत्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः एकधा दशधा आत्मानं विभजन् जुषते गुणान् ॥ ४ ॥

एवं - इस प्रकार
पञ्च धातुभिः - पञ्चमहाभूतोंसे
सृष्टानि भूतानि - उत्पन्न प्राणियोंमें
प्रविष्टः - (अन्तर्यामी रूपसे) प्रवेश करके
एकधा - एक (मन)के रूपसे तथा
दशधा - दस (इन्द्रियों)के रूपमें
आत्मानं - अपनेको ही
विभजन् बांटते हुए
गुणान् जुषते - गुणों (विषयों)का उपभोग करते हैं ॥ ४ ॥

गुणैर्गुणान् स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ।
मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥

गुणैः गुणान् स भुञ्जान आत्म प्रद्योतितैः प्रभुः मन्यमान इदं सृष्टं आत्मानं इह सज्जते ॥ ५ ॥

प्रभुः	- समर्थ होकर भी	**इदं सृष्टं**	- इस बनाये हुए (देहादि)को
आत्म प्रद्योतितैः	- अपने ही द्वारा प्रकाशित	**आत्मानं-**	- अपना स्वरूप मानकर
स गुणैः	- वह (देहाभिमानी जीव) इन्द्रियों द्वारा	**मन्यमान**	
		इह सज्जते	- इसमें आसक्त होजाता है ॥ ५ ॥
गुणान् भुञ्जान	- विषयोंका उपभोग करता हुआ१		

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सनिमित्तानि देहभृत् ।
तत्तत्कर्मफलं गृह्णन् भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् सनिमित्तानि देहभृत् तत् तत् कर्मफलं गृह्णन् भ्रमति इह सुख इतरम् ॥ ६ ॥

देहभृत्	- देहधारी जीव	**गृह्णन्**	- पाता हुआ
सनिमित्तानि	- प्रयोजनपूर्वक	**इह सुख इतरं**	- इस संसारमें सुख तथा दूसरे दुःखमें
कर्मभिः	- कर्मेन्द्रियोंसे	**भ्रमति**	- घूमता रहता है ॥ ६ ॥
कर्माणि कुर्वन्	- कर्म करते हुए		
तत् तत्-कर्मफलं	- उन-उन कर्मोंका फल		

इत्थं कर्मगतीर्गच्छन् बह्वभद्रवहाः पुमान् ।
आभूतसम्प्लवात् सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥

इत्थं कर्मगतिः गच्छन् बहु अभद्रवहाः पुमान् आभूत सम्प्लवात् सर्ग प्रलयाः अश्नुते अवशः ॥ ७ ॥

---

१. **जो इन्द्रिय जिस गुणसे बनी है उसी विषय रूप गुणको ग्रहण करती है । जैसे गन्ध तन्मात्रासे बनी नासिका गन्ध ही ग्रहण करती है ।**

इत्थं बहु	- इस प्रकार बहुत	**आभूत-**	- महाभूतोंके प्रलयतक
अभद्रवहाः	- अकाल्याणदायी	**सम्प्लवात्**	
कर्मगतिः गच्छन्	- कर्मके वेगमें पड़कर	**सर्ग प्रलयाः**	- जन्म-मृत्यु
पुमान्	- पुरुष (जीव)	**अवशः-**	- विवश होकर
		अश्नुते	भोगता है ॥ ७ ॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ।
अनादिनिधनःकालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥

धातु उपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्य गुण आत्मकं अनादि निधनःकालः हि अव्यक्ताय अपकर्षति ॥ ८ ॥

धातु	- पञ्चमहाभूतोंकी	**अनादि निधनः**	- अनादि अनन्त
उपप्लव आसन्ने	- प्रलय समीप आनेपर	**कालः**	- काल
द्रव्य गुण-	- द्रव्य एवं गुण स्वरूप	**अव्यक्ताय**	- प्रकृतिकी ओर
आत्मकं		**अपकर्षति**	- उलटा खींचता है
व्यक्तं	- व्यक्त जगतको		॥ ८ ॥

शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि ।
तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन् प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

शतवर्षा हि अनावृष्टिः भविष्यति उल्बणा भुवि तत्काल उपचित उष्ण अर्कः लोकान् त्रीन् प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

हि भुवि	- क्योंकि तब पृथ्वीपर	**तत्काल**	- उस (प्रलय)कालसे
शतवर्षा	- सौ वर्ष तक	**उपचित**	- शक्तिप्राप्त
अति उल्बणा	- बहुत भयानक	**उष्ण अर्कः**	- प्रज्वलित सूर्य
अनावृष्टिः	- अवर्षण	**त्रीन् लोकान्**	- तीनों लोकोंको
भविष्यति	- होगा,	**प्रतपिष्यति**	- अत्यन्त संतप्त करेंगे
			॥ ९ ॥

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ।
दहन्नूर्ध्वशिखोविष्वग् वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥

पाताल तलं आरभ्य संकर्षण मुख अनलः दहन् ऊर्ध्वशिखः विष्वग् वर्धते वायुना ईरितः ॥ १० ॥

संकर्षण	- भगवान शेषके	**पाताल तलं**	- पातालके निचले भागको
मुख अनलः	- मुखसे निकली अग्नि	**दहन्**	- जलाते हुए
उर्ध्वशिखः	- ऊपर उठती लपटोंसे	**विष्वग्-**	- चारों ओर बढ़ता
वायुना ईरितः	- वायुसे प्रेरित	**वर्धते**	है ॥ १० ॥

सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ।
धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥

सांवर्तकः मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः धाराभिः हस्ति हस्ताभिः लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥

सांवर्तकः-	- फिर सांवर्तक	**वर्षति स्म**	- बरसते ही रहते हैं
मेघगणाः	नामक मेघगण	**विराट्**	- तब यह विराट् विश्व
हस्ति हस्ताभिः	- हाथीकी सूंड़के समान	**सलिले लीयते**	- जलमें लीन हो
धाराभिः	- धाराओंसे		जाता है ॥ ११ ॥
शतं समाः	- सौ वर्षतक		

ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ।
अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥ १२ ॥

ततः विराजं उत्सृज्य वैराजः पुरुषः नृप अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इव अनलः ॥ १२ ॥

नृप	- राजन् !	**विराजं उत्सृज्य**	- विराट् रूप देहको छोड़कर
ततः निरिन्धन	- तब ईंधन न रहनेपर	**सूक्ष्मं अव्यक्तं**	- सूक्ष्म प्रकृतिमें
अनलः इव	- अग्निके समान	**विशते**	- प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥
वैराजः पुरुषः	- विराट्के अभिमानी पुरुष ब्रह्मा		

वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ।
सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥

वायुना हृत गन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते सलिलं तत् धृतरसं ज्योतिष्टवाय उप कल्पते ॥ १३ ॥

वायुना	- वायुके द्वारा	**तत् धृत रसं**	-उसी (वायु)से रस धारण कर लेनेसे
हृत गन्धा भूः	- गन्धहरणकर लेनेसे पृथ्वी	**सलिलं**	- जल
सलिलत्वाय	- जलरूपा	**ज्योतिष्ट्वाय**	- अग्निरूप
कल्पते	- हो जाती है	**उपकल्पते**	- हो जाता है ॥ १३ ॥

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ।
हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥

हृत रूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते हृत स्पर्शः अवकाशेन वायुः नभसि लीयते ॥ १४ ॥

तमसा तु	- अन्धकार द्वारा तो	**अवकाशेन**	- आकाश द्वारा
हृत रूपं	- रूप तन्मात्राका हरण हो जानेसे	**हृत स्पर्शः**	- स्पर्श तन्मात्राका हरण हो जानेपर
ज्योतिः वायौ	- अग्नि वायुमें	**वायुः नभसि-**	- वायु आकाशमें लीन हो
प्रलीयते	- विलीन हो जाता है ।	**लीयते**	जाता है ॥ १४ ॥

कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ।
प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥

काल आत्मना हृत गुणं नभ आत्मनि लीयते इन्द्रियाणि मनः बुद्धिः सह वैकारिकैः नृप प्रविशन्ति हि अहंकारं स्वगुणैः अहं आत्मनि ॥ १५ ॥

काल आत्मना	- स्वयंकाल द्वारा	**मनः बुद्धिः**	- मन, बुद्धि,
हृतगुणं	- अपना गुण (शब्द) हरण हो जानेसे	**वैकारिकैः**	- वैकारिक अहंकारके साथ
नभ आत्मनि	- आकाश अहंकारमें	**सह**	
लीयते	लीन हो जाता है ।	**आत्मनि स्वगुणैः**	-अपने गुणोंके साथ
नृप	- राजन्	**हि अहंकारं**	- क्योंकि सात्त्विक अहंकारमें
इन्द्रियाणी	- इन्द्रियां,	**प्रविशन्ति**	- प्रवेश कर जाते हैं ॥ १५ ॥

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी ।
त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥

एषा माया भगवतः सर्ग स्थिति अन्तकारिणी त्रिवर्णा वर्णिता अस्मभिः किं भूयः श्रोतुं इच्छसि ॥ १६ ॥

एषा सर्ग-स्थिति	- सृष्टि, स्थिति,	**अस्माभिः**	- हमारे द्वारा
		वर्णिता	- वर्णन किया गया
अन्तकारिणी	- प्रलय करनेवाली	**भूयः किं**	- फिर क्या
त्रिवर्णा	- त्रिगुणात्मिका	**श्रोतुं इच्छसि**	- सुनना चाहते हो ॥ १६ ॥
भगवतः माया	- भगवानकी मायाका		

विदेह उवाच–

यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥

यथा एतां ऐश्वरीं मायां दुस्तरां अकृत आत्मभिः तरन्ति अञ्जः स्थूलधियः महर्ष इदं उच्यताम् ॥ १७ ॥

अकृत आत्मभिः	- अपने मनको वशमें न करने वालोंके लिए	**स्थूलधियः**	- स्थूल बुद्धि लोग
		यथा अञ्जः	- जैसे सरलतासे पार
दुस्तरां	- जिसे पार करना बहुत कठिन है	**तरन्ति**	करते हैं
		महर्ष	- महर्षिगण
एतां ऐश्वरीं मायां	- इस ईश्वरी मायाको	**इदं उच्यतां**	- यह उपाय बतलाइये ॥ १७ ॥

प्रबुद्ध उवाच–

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ।
पश्येत् पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥

कर्माणि आरभमाणानां दुःख हत्यै सुखाय च पश्येत् पाक विपर्यासं मिथुनी चारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥

मिथुनी चारिणां	- जोड़ा बनाकर रहनेवाले	**कर्माणि**	- कर्मोंका
नृणां	- मनुष्योंके	**आरभमाणानां**	- प्रारम्भ करने वालोंके
दुःख हत्यै	- दुःख नाश	**पाक विपर्यासं**	- (कर्मोंका) उलटा फल
च सुखाय	- तथा सुख प्राप्तिके लिए	**पश्येत्**	- देखे ॥ १८ ॥

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्तपशुभिःका प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥ १९ ॥

नित्य आर्तिदेन वित्तेन दुर्लभेन आत्ममृत्युना गृह अपत्य आप्त पशुभिःका प्रीतिः साधितैः चलैः ॥ १९ ॥

नित्य आर्तिदेन	- सदा रौंदने (दुःख देने) वाले	आप्त- पशुभिः	- गुरुजन तथा पशुओं द्वारा
दुर्लभेन	- मिलनेमें कठिन	चलैः	- जो चंचल (नाशवान हैं)
आत्म मृत्युना	- अपनी मृत्युका ही रूप	साधितैः	- (इनको) प्राप्त करके
वित्तेन	- धनसे,	का प्रीतिः	- क्या प्रसन्नता होगी ॥ १९ ॥
गृह अपत्य	- घर, पुत्र,		

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ २० ॥

एवं लोकं परं विद्यात् नश्वरं कर्म निर्मितम् सतुल्य अतिशय ध्वंसं यथा मण्डल वर्तिनाम् ॥ २० ॥

एवं कर्म निर्मितं	- इसी प्रकार (यहांके) कर्मोंसे बने	वर्तिनां	- शासकोंका होता है ।
परं लोकं	- परलोक (स्वर्गादि)को	अतिशयं	- ऐश्वर्य
नश्वरं	- नाशवान	सतुल्य	- तुलनामें कम-ज्यादा तथा
यथा मण्डल-	- जैसे एक-एक मण्डलोंके	ध्वंसं	- नाशवान
		विद्यात्	- जाने ॥ २० ॥

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥

तस्मात् गुरं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमं शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मणि उपशम आश्रयम् ॥ २१ ॥

तस्मात्	- इसलिए	च परे	- तथापरमब्रह्ममें
उत्तमं श्रेय	- परम कल्याणके	निष्णातं	- कुशल
जिज्ञासुं	- जिज्ञासुको	उपशम आश्रयं	- शान्ति परायण
शाब्दे ब्रह्मणि	- (शब्द ब्रह्म) वेद शास्त्रमें	गुरुं प्रपद्येत	- गुरुकी शरण लेना चाहिए ॥ २१ ॥

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः ॥ २२ ॥

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेत् गुरुः आत्मदैवतः अमायया अनुवृत्या यैः तुष्येत् आत्मा आत्मदः हरिः ॥ २२ ॥

तत्र अमायया	- वहां निश्छल भावसे	**शिक्षेत्**	- शिक्षा ग्रहण करे
अनुवृत्त्या	- सेवासे	**यैः आत्मा-**	- जिससे अपने आपको दे
आत्मदैवतः	- अपने इष्टदेव	**आत्मदः**	देने वाले
गुरुः	- गुरुसे	**हरिः तुष्येत्**	- श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं
भागवतान् धर्मान्	- भागवत धर्मकी		॥ २२ ॥

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु ।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ २३ ॥

सर्वतः मनसः असंगं आदौ संगं च साधुषु दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेषु अद्धा यथा उचितम् ॥ २३ ॥

मनसः	- मनकी	**यथा उचितं**	- जैसा उचित हो
सर्वतः असंगं	- सब ओरसे अनासक्ति		(उसके अनुसार)
च आदौ साधुषु	- तथा पहिले सत्पुरुषोंसे	**दयां मैत्रीं**	- दया, मित्रता,
संग	- आसक्ति,	**च प्रश्रयं**	- तथा नम्रताका व्यवहार
अद्धा भूतेषु	- साक्षात् (मिलने वाले)		करे ॥ २३ ॥
	प्राणियोंसे		

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥

शौचं तपः तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायं आर्जवं ब्रह्मचर्यं अहिंसां च समत्वं द्वन्द्व संज्ञयोः ॥ २४ ॥

शौचं तपः - पवित्रता, तप,
तितिक्षां च मौनं - तितीक्षा तथा मौन,
स्वाध्ययं - स्वाध्याय,
आर्जवं - सरलता,
ब्रह्मचर्यं - ब्रह्मचर्य,
अहिंसा च - अहिंसा तथा
द्वन्द्व संज्ञयोः - जो (सुख-दुःख, मान-अपमान आदि) द्वन्द्व कहलाते हैं
समत्वं - उनमें समता ॥ २४ ॥

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित् ॥ २५ ॥

सर्वत्र आत्म ईश्वर अनु ईक्षां कैवल्यं अनिकेततां विविक्त चीरवसनं सन्तोषं येन केनचित् ॥ २५ ॥

सर्वत्र - सब कहीं
आत्म - (चेतन रूपसे) आत्माको (तथा)
ईश्वर - (नियन्ता रूपसे) ईश्वरको
अनु ईक्षां - बराबर देखना,
कैवल्यं - अकेले रहना,
अनिकेततां - अपना घर बनाये बिना रहना,
विविक्त - [illegible]कान्त-सेवन,
चीरवसनं - चीर वस्त्र पहिनना,
येनकेनचित् - जो कुछ मिल जाय उसीसे
सन्तोषं - सन्तोष कर लेना ॥ २५ ॥

श्रद्धां भागवतेशास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥

श्रद्धां भागवते शास्त्रे अनिन्दाम् अन्यत्र च अपि हि मनः वाक् कर्मदण्डं च सत्यं शम दमाः अपि ॥ २६ ॥

हि अन्यत्र च - क्योंकि दूसरोंकी
अपि अनिन्दां - भी निन्दा नहीं करनी है
भागवते शास्त्रे - भागवत शास्त्रमें
श्रद्धां - श्रद्धा
मनः वाक् - मन, वाणी,
कर्मदण्डं - शरीरका संयम,
च सत्यं - तथा सत्य और
शम दमौः अपि - शम (मनकी शान्ति) दम (इन्द्रिय संयम्) भी (पालन करे) ॥ २६ ॥

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेः अद्भुत कर्मणः जन्म कर्म गुणानां च तत् अर्थे अखिल चेष्टितम् ॥ २७ ॥

अद्भुत कर्मणः - अद्भुत कर्मा
हरेः जन्म - श्रीहरिके अवतार,
कर्म च गुणानां - लीला तथा गुणोंका
श्रवणं कीर्तन - श्रवण, वर्णन
ध्यानं - चिन्तन
तत् अर्थे - उनके लिए ही
अखिल चेष्टितं - समस्त क्रिया करना ॥ २७ ॥

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥ २८॥

इष्टं दत्तं तपः जप्तं वृत्तं यत् च आत्मनः प्रियं दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥ २८ ॥

इष्टं दत्तं - यज्ञ, दान,
तपः जप्तं - तप, जप,
यत् च - और जो भी
आत्मनः प्रियं - अपनेको प्रिय हैं वे
दारान् सुतान् - स्त्री, पुत्र,
गृहान् प्राणान् - घर, प्राणोंका
यत् परस्मै - जोपरम पुरुषको
निवेदनं - सौंप देना है ॥ २८ ॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

एवं कृष्ण आत्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदं परिचर्यां च उभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥ २९ ॥

एवं कृष्ण - इसी प्रकार श्रीकृष्णको
आत्म नाथेषु - अपना स्वामी माननेवाले
मनुष्येषु च - मनुष्योंसे ही
सौहृदं - मित्रता रखना,
उभयत्र - (स्थावर-जंगम) दोनों प्रकारके प्राणियोंकी
च महत्सु - तथा महान्
साधुषु नृषु - साधु पुरुषोंकी
परिचर्यां - सेवा ॥ २९ ॥

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥

परस्पर अनुकथनं पावनं भगवत् यशः मिथः रतिः मिथः तुष्टिः निवृत्तिः मिथ आत्मनः ॥ ३० ॥

पावनं	- पवित्र करने वाले	**मिथो रतिः**	- (इससे)परस्पर प्रीति,
भगवत् यशः	- भगवानके सुयशका	**मिथः तुष्टिः**	- परस्पर सन्तोष तथा
परस्पर-	- आपसमें बार बार	**मिथः आत्मनः**	- परस्पर आध्यात्मिक
अनुकथनं	वर्णन करना	**निवृत्तिः**	शान्ति प्राप्त करना ॥ ३० ॥

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥

स्मरन्तः स्मारयन्तः च मिथः अघ ओघहरं हरिं भक्तया सञ्जातया भक्तया बिभ्रति उत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥

अघ ओघ	- पापोंकी बाढ़को	**भक्त्या**	- इस (साधनात्मिका) भक्तिसे
हरं हरिं	- नष्ट करने वाले श्रीहरिको	**सञ्जातया**	- उत्पन्न हुई
मिथः	- परस्पर	**भक्त्या**	- (प्रेमात्मिका) भक्ति द्वारा
स्मरन्तः च-	- स्मरण करते तथा	**उत्पुलकां तनुं**	- रोमाञ्चित शरीर
स्मारयन्तः	स्मरण कराते हुए	**विभ्रत**	- धारण करते हैं ॥ ३१ ॥

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥

क्वचित् रुदन्ति अच्युत चिन्त्या क्वचित् हसन्ति नन्दन्ति वदन्ति अलौकिकाः नृत्यन्ति गायन्ति अनुशीलयन्ति अजं भवन्ति तूष्णीं परम एत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥

क्वचित्- - कभी अच्युतको (पाने) की चिन्तासे
अच्युत चिन्तया
रुदन्ति - रोते हैं,
क्वचित् हसन्ति - कभी हँसने लगते हैं,
नन्दन्ति - आनन्दित होते हैं,
अलौकिकाः- - अलौकिक बातें कहते हैं
वदन्ति
नृत्यन्ति गायन्ति - नाचते हैं, गाते हैं,
अजं- - उन अजन्माको ढूंढ़ते हैं,
अनुशीलयन्ति
परं एत्य - उन परमपुरुषके पास पहुंचका अनुभव करके
निर्वृताः - शान्त होकर
तूष्णीं भवन्ति - चुप हो जाते हैं ॥३२॥

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्तया तत् उत्थया नारायणपरः मायां अञ्जः तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

इति भागवतान् - इस प्रकार भागवत धर्मोंको
धर्मान्
शिक्षन् - सीखते हुए
तत् उत्थया - उससे उत्पन्न
भक्तया - भक्ति द्वारा
नारायणपरः - नारायण परायण
दुस्तरां मायां - दुष्पार मायाको
अञ्जः तरति - सरलतासे पार हो जाता है ॥ ३३ ॥

विदेह उवाच–

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणःपरमात्मनः ।
निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

नारायण अभिधानस्य ब्रह्मणःपरमात्मनः निष्ठां अर्हथ नः वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥

हि यूयं	- क्योंकि आप लोग	**ब्रह्मणः-**	- परमब्रह्मपरमात्माका
ब्रह्मवित्तमाः	- ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं (आपको)	**परमात्मनः**	
		निष्ठां नः	- स्वरूप हमको
नारायण-	- नारायण नाम वाले	**वक्तुं अर्हथ**	- बतलाना चाहिए
अभिधानस्य			॥ ३४ ॥

पिप्पलायन उवाच–

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद् बहिश्च ।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥

स्थिति उद्भव प्रलय हेतुः अहेतुः अस्य यत् स्वप्न जागर सुषुप्तिषु सत् बहिः च देह इन्द्रिय असु हृदयाननि चरन्ति येन सञ्जीवितानि तत् अवेहि परं नरेन्द्र ॥ ३५ ॥

नरेन्द्र	- महाराज !	**देह इन्द्रिय**	- शरीर, इन्द्रियां,
अहेतुः	- जो (स्वयं) निष्कारण होकर	**असुहृदयानि**	- प्राण, अन्तःकरण
		येन-	- जिसके द्वारा जीवित
अस्य प्रलय-	- इस जगतकी प्रलय	**सञ्जीवितानि**	किये जाकर
स्थिति	स्थिति एवं	**चरन्ति**	- (अपना) काम करते हैं,
उद्भव हेतुः	- उत्पत्तिका कारण हैं,	**तत् परं-**	- उसे परमात्मा जानो
यत् स्वप्न-	- जो स्वप्न, जागरण	**अवेहि**	॥ ३५ ॥
जागर	तथा		
सुषुप्तिषु सत्	- सुषुप्तिमें रहता हुआ भी		
बहिः च	- (उनसे) बाहर भी है,		

नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा
प्राणेन्द्रियाणि च यथानलमर्चिषः स्वाः ।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूल-
मर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥

न एतत् मनः विशति वाक् उत चक्षुः आत्मा प्राण इन्द्रियाणि च यथा अनल अर्चिषः स्वाः शब्दः अपि बोधक निषेधतया आत्ममूलं अर्थ उक्तं आह यत् ऋते न निषेध सिद्धिः ॥ ३६ ॥

एतत् मनः	- यह मन,	**आत्ममूलं**	- जो मूल रूपसे आत्मा
वाक् चक्षुः	- वाणी,नेत्र,	**अर्थ उक्तं-**	- (निषेधके) अर्थ रूपमें
आत्मा प्राण	- बुद्धि, प्राण,	**उवाह**	कहा जाता है
उत इन्द्रियाणि	- तथा इन्द्रियां,	**बोधक**	- उसका ज्ञान कराने वाला
यथा अनल	- जैसे अग्निमें		है (क्योंकि)
स्वाः अर्चिषः	- (उसकी) अपनी किरणें	**यत् ऋते**	- जिसके बिना (निषेध-
न विशति	- नहीं प्रवेश करतीं		करने वालेके बिना)
शब्दः अपि	- (श्रुतियोंके) शब्द भी	**निषेध सिद्धिः**	न-निषेधकी ही सिद्धि
निषेधतया	- निषेधरूपसे		नहीं होती ॥ ३६ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ
सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ।
ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति
ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥

सत्त्वं रजः तम इति त्रिवृत एकं आदौ सूत्रं महान् अहं इति प्रवदन्ति जीवं ज्ञान क्रिया फल रूपतया उरुशक्ति ब्रह्म एव भाति सत् असत् च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥

आदौ एकं	- आदिमें वह एक ही था,	**जीवं अहं**	- जीवकी उपाधिसे अहं
सत्त्वं रजः तम	- (फिर सृष्टिके लिए) सत्त्व, रज,	**इति प्रवदन्ति**	- इस प्रकार (उसीको) कहते हैं
इति त्रिवृत	- इस प्रकार त्रिगणमय (प्रकृति)	**फलरूप तया**	- (इस सृष्टि) फलरूपमें
ज्ञानं महान्	- ज्ञान प्रधान होनेसे महत्तत्त्व,	**सत् असत्**	- कारण-कार्यरूपमें
क्रिया सूत्रं	- क्रिया प्रधान होनेसे सूत्रात्मा,	**च तयोः यत् परं**	- तथा उससे जो परे हैं,
		उस शक्ति	- अनन्त शक्ति
		ब्रह्म एव भाति	- ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है ॥ ३७ ॥

नात्मा जजान मरिष्यति नैधतेऽसौ
न क्षीयते सवनविद् व्यभिचारणां हि ।
सर्वत्र शाश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं
प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥

न आत्मा जजान न मरिष्यति न एधते असौ न क्षीयते सवनवित् व्यभिचारिणां हि सर्वत्र शाश्वत् अनपायि उपलब्धिमात्रं प्राणः यथा इन्द्रिय बलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥

आत्मा न जजान	- आत्मा न उत्पन्न, हुआ,	**सर्वत्र शाश्वत् अनपायि**	- सब कहीं सदा - निर्विघ्न (एकरस)
न मरिष्यति	- न मरेगा,	**उपलब्धिमात्रं**	- अनुभूति स्वरूप है,
असौ न एधेत	- यह न बढ़ता है	**यथा इन्द्रिय बलेन**	- जैसे इन्द्रियोंकी शक्तिसे
न क्षीयते	- न घटता है,	**एकः सत् प्राणः विकल्पितं**	-एक ही प्राण सत्ता - अनेक रूप लगती है ॥ ३८ ॥
हि व्यभिचारिणां	- क्योंकि परिवर्तन शील सबकी		
सवन वित्	- प्रत्येक दशाका साक्षी है,		

अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु
प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ।
सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते
कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥

अण्डेषु पेशिषु तरुषु अविनिश्चितेषु प्राणः हि जीवं उपधावति तत्र-तत्र सन्ने यत् इन्द्रियगणे अहमिच प्रसुप्ते कूटस्थ आशयं ऋते तत् अनुस्मृतिः नः ॥ ३९ ॥

अण्डेषु	- अण्डजोंमें,	**इन्द्रियगणे-**	- इन्द्रियोंके (सुषुप्ति)में
पेशिषु	- मांसपेशियों वालोंमें,	**सन्ने**	निश्चेष्ट हो जानेपर,
तरुषु	- वृक्षादिमें	**अहमिच-**	- अहंकारके भी सो
अविनिश्चितेषु	- जिनकी उत्पत्तिका निश्चय नहीं१	**प्रसुप्ते**	जानेपर
		आशयंऋते	- अन्तःकरणको छोड़कर
हि प्राणः	- क्योंकि प्राण ही उनमें	**तत् कूटस्थ**	- वह कूटस्थ (आत्मा) रह
तत्र-तत्र	उन योनियोंमें		जाता है
जीवं उपधावति	- जीवके पीछे लगा रहता है,	**नः-**	- जिससे हमें पीछे (सुषुप्ति)
		अनुस्मृतिः	की स्मृति रहती है ॥ ३९ ॥

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या
चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि ।
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं
साक्षाद् यथामलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥

---

१. जैसे जूं खटमल आदि पहिले स्वेदसे उत्पन्न होते हैं और फिर अण्डा देते हैं । तितली कीड़ेके शरीरसे उत्पन्न होती है ।

यर्हि अब्जनाभ चरण एषणया उरु भक्त्या चेतः मलानि विधमेत् गुण कर्मजानि तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत् आत्म तत्त्वं साक्षात् अथ अमल दृशः सवितृ प्रकाशः ॥ ४० ॥

यर्हि अब्जनाभ	- जब पद्मनाभ भगवानके	**तस्मिन्**	- (उसके) पूर्ण शुद्ध होनेपर
चरण उरु-	- चरणों (की प्राप्ति)	**विशुद्ध**	उसमें
एषणया	की तीव्र इच्छासे	**साक्षात्-**	- साक्षात् आत्मतत्त्वकी
भक्तया	- (उत्पन्न) भक्तिसे	**आत्मतत्त्वं**	
गुण कर्मजानि	- गुणों एवं कर्मोंके	**उपलभ्यत**	- प्राप्ति होती है
मलानि	- मैलको	**यथा अमलदृशः**	-जैसे निर्मलनेत्रोंसे
चेतः विधमेत्	- चित्त सम्पूर्ण दूर कर देता है तो	**सवित् प्रकाशः**	- सूर्यका प्रकाश ॥ ४० ॥

विदेह उवाच—१

कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ।
विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥

कर्मयोगं वदत नः पुरुषः येन संस्कृतः विधूय इह आशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥ ४१ ॥

नः कर्म योगं	- मुझे कर्म योग	**कर्माणि आशु**	- कर्मोंको शीघ्र
वदत	बतलाइये	**विधूय**	- निवृत्त करके
येन संस्कृतः	- जिनसे शुद्ध हुआ	**परं नैष्कर्म्यं**	- परम निष्कर्मता (ज्ञान)
पुरुषः इह	- पुरुष इसी जीवनमें	**विन्दते**	- प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥

एवं प्रश्नमृषीन् पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ।
नाब्रुवन् ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ४२ ॥

---

१. **अन्य भ्रांतियोंमें यहाँ राजोवाच है ।**

एवं प्रश्नं ऋषीन् पूर्वं अपृच्छं पितुः अन्तिके न आब्रुवन् ब्रह्मणः पुत्राः तत्र कारणं उच्यताम् ॥ ४२ ॥

एवं प्रश्नं	- इसी प्रकारका प्रश्न	**ब्रह्मणः पुत्राः**	- उन ब्रह्माजीके पुत्रों (सनकादि)ने
पितुः अन्तिके	- पिता (मनु)के समीप	**अब्रुवन् न**	- बतलाया नहीं
पूर्वं ऋषीन्	- पहिले ऋषियोंसे	**तत्रकारणं**	- इसका कारण
अपृच्छं	- मैंने पूछा था (किन्तु)	**उच्यतां**	- बतलाइये ॥ ४२ ॥

आविर्होत्र उवाच—

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥

करम अकर्म विकर्म इति वेदवादः न लौकिकः वेदस्य ईश्वर आत्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥

कर्म	- कर्तव्य कर्म,	**लौकिकः न**	- लौकिक नहीं है
अकर्म	- अकरणीय (निषिद्ध) कर्म,	**वेदस्य**	- वेदके
विकर्म	- विशेष (अधिकारी)के कर्म	**ईश्वर-आत्मत्वात्**	- ईश्वर स्वरूप होनेके कारण
इति वेदवादः	- यह वेदका विषय है,	**तत्र सूरयः**	- उस (वेद)में विद्वान भी
		मुह्यन्ति	- मोहित (सन्देह ग्रस्त) हो जाते हैं ॥ ४३ ॥

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥

परोक्षवादः वेदः अयं बालानां अनुशासनं कर्म मोक्षाय कर्माणि विधत्ते हि अगदं यथा ॥ ४४ ॥

हि अयं वेदः - क्योंकि यह वेद
परोक्षवादः - परोक्ष (कुछ छिपाकर) बोलने वाला है
बालानां - बच्चोंको
यथा अगदं - जैसे (मीठी कहकर) दवा (दी जाती है)
अनुशासनं - आज्ञा देता है,
कर्म मोक्षाय - कर्मोंसे छुटकारेके लिए
कर्माणि- - कर्मोंका विधान करता
विधत्ते है ॥ ४४ ॥

नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ।
विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥

न आचरेत् यः तु वेद उक्तं स्वयं अज्ञः अजितेन्द्रियः विकर्मणा हि अधर्मेण मृत्योः मृत्युं उपैति सः ॥ ४५ ॥

हियः स्वयं - क्योंकि जो स्वयं
अज्ञः अज्ञानी
अजितेन्द्रियः तु - इन्द्रियोंको नहीं जीतनेपर भी
वेद उक्तं - वेदकी आज्ञाका
आचरेत् न - पालन नहीं करता
सः विकर्मेण - वह (अधिकारी) विशेषके कर्म
अधर्मेण - या अधर्मके द्वारा
मृत्योः मृत्युं - मरकर यमराजके पास
उपैति - पहुँचता है ॥ ४५ ॥

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥

वेद उक्तं एव कुर्वाणः निःसंगाः अर्पितं ईश्वरे नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचन अर्था फलश्रुतिः ॥ ४६ ॥

निःसंगः - आसक्ति रहित होकर,
ईश्वरे अर्पितं - ईश्वरार्पण करके
वेद उक्तं एव - वेदाज्ञाके अनुसार ही
कुर्वाणः - (कर्म) करते हुए
नैष्कर्म्यां - कर्मोंने निवृत्त होनेसे प्राप्त होने वाला
सिद्धिं लभते - सफलता (ज्ञान) प्राप्त करता है
फल श्रुतिः - उस (कर्म)की महिमा तो
रोचन अर्था - (उसमें) रुचि उत्पन्न करने को है ॥ ४६ ॥

य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥

यः आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुःपर आत्मनः विधिना उपचरेत् देवं तन्त्र उक्तेन चकेशवम् ॥ ४७ ॥

यः आशु	- जो शीघ्र	तन्त्र उक्तेन	- तन्त्रों (पाञ्चरात्र)में बतलाया
पर आत्मनः	- (अपने)परमात्म स्वरूपकी	विधिना च	- विधिसे ही
हृदयग्रन्थिं	- हृदकी गांठ (देहात्मबुद्धि)	केशवं देवं	- आराध्य देवकेशवकी
निर्जिहीर्षुः	- खोल देना चाहता हो (वह)	उपचरेत्	- पूजा करे ॥ ४७ ॥

लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शितागमः ।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः ॥ ४८ ॥

लब्ध अनुग्रह आचार्यात् तेन सन्दर्शित आगमः महापुरुषं अभ्यर्चेत् मूर्त्या अभिमतया आत्मनः ॥ ४७ ॥

आचार्यात्	- आचार्यसे	अभिमतया	- अभीष्ट
अनुग्रह लब्ध	- कृपा (दीक्षा) प्राप्त करके	मूर्त्या	- मूर्तिमें
तेन सन्दर्शित	- उनके द्वारा बतलायी	महापुरुषं	- भगवान पुरुषोत्तमकी
आगमः	- विधिसे	अभ्यर्चेत्	- भली प्रकार पूजा करे ॥ ४८ ॥
आत्मनः	- अपनी		

शुचिः सम्मुखमासीनः प्राण संयमनादिभिः ।
पिण्डं विशोध्य संन्यास कृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥

शुचिः सम्मुख आसीनः प्राण संयम आदिभिः पिण्डं विशोध्य संन्यासकृत रक्षः अर्चयेत् हरिम् ॥ ४९ ॥

शुचिः सम्मुख	- पवित्र होकर सामने	**पिण्डं विशोध्य**	- शरीर-शुद्धि करके
आसीनः	बैठकर	**संन्यासः**	- अंग-कर न्यासादिसे
प्राण संयम	- प्राणायाम (आचमन)	**कृतरक्षः**	- रक्षा-सम्पन्न करके
आदिभिः	- आदिके द्वारा	**हरिं अर्चयेत्**	- श्रीहरिकी पूजा करे ॥ ४९ ॥

अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ।
द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥

अर्चा आदौ हृदये च अपि यथा लब्ध उपचारकैः द्रव्य क्षिति आत्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य च आसनम् ॥ ५० ॥

अर्चा आदौ	- मूर्ति आदिमें	**द्रव्य क्षिति**	- (पहिले) पूजा पदार्थों तथा पृथ्वीको
च हृदये अपि	- तथा हृदयमें भी	**आत्म लिङ्गानि**	- अपने पूजा उपकरणोंको,
यथा लब्ध	- जो प्राप्त हो	**सम्पाद्य**	- स्वच्छ करके
उपचारकैः	- (उस) सामग्रीसे (पूजा करे)	**प्रोक्ष्य च-आसनं**	- धोकर तथा आसन देकर ॥ ५० ॥

पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ।
हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥ ५१ ॥

पाद्य आदीन् उपकल्प्य अथ सन्निध आप्य समाहितः हृद आदिभिः कृतन्यासः मूलमन्त्रेण च अर्चयेत् ॥ ५१ ॥

पाद्य आदीन्	- (अर्घ्य) पाद्य आदि	**हृद आदिभिः**	- हृदय आदिमें
उपकल्प्य	- प्रस्तुत करके,	**कृतन्यासः**	- न्यास करके
सन्निध आप्य	- उन्हें समीप रखकर	**मूलमन्त्रेण च**	- (दीक्षामें प्राप्त) मूल मन्त्रसे ही
अथ समाहितः	- फिर एकाग्र होकर	**अर्चयेत्**	- पूजा करे ॥ ५१ ॥

सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥

साङ्ग उपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः पाद्य अर्घ्य आचमनीय आद्यैः स्नानवासः विभूषणैः ॥ ५२ ॥

तां तां मूर्तिं	- उन उन मूर्तियोंकी	**पाद्य अर्घ्य**	- पाद्य, अर्घ्य,
सांग	- (करपादादि) अंगों सहित	**आचमनीय**	- आचमन,
उपांगां	- (आयुधादि) उपांगोंकी,	**स्नानवासः**	- स्नान, वस्त्र,
सपार्षदां	- पार्षदोंके साथ	**विभूषणैः आद्यैः**	- आभूषण आदिसे (पूजा करे) ॥ ५२ ॥
स्वमन्त्रतः	- उनके अपने मन्त्रोंसे		

गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ।
सांगं सम्पूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥

गन्ध माल्य अक्षत स्रग्भिः धूप दीप उपहारकैः सांगं सम्पूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेत् हरिम् ॥ ५३ ॥

गन्ध माल्य	- चन्दन, पुष्प,	**सांग विधिवत्**	- सम्पूर्ण अंगों सहित विधिपूर्वक
अक्षत स्रग्भिः	- अक्षत, माला,	**सम्पूज्य**	- भली प्रकार पूजा करके
धूप दीप	- धूप, दीप,	**स्तवैः स्तुत्वा**	- स्तोत्रोंसे स्तुति करके
उपहारकैः	- उपहार (नैवेद्य) द्वारा	**हरिं नमेत्**	- श्री हरिको प्रणाम करे ॥ ५३ ॥

आत्मानं तन्मयं ध्यायन् मूर्तिं सम्पूजयेद्धरेः ।
शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

आत्मानं तन्मयं ध्यायन् मूर्तिं सम्पूजयेत् हरेः शेषां आधाय शिरसि स्वाधाम्नि उद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥

आत्मानं - अपनेको
तन्मयं - भगवन्मय
ध्यायन् - ध्यान करते हुए
हरेः मूर्तिं - श्री हरिकी मूर्तिकी
सम्पूजयेत् - पूजा करनी चाहिए,
शेषां शिरसि - बचे (निर्माल्य) को मस्तकपर
आधाय - चढ़ाकर
सत्कृतं - सत्कारपूर्वक
स्वधाम्नि - अपने स्थानपर (मूर्तिको)
उद्वास्य - उठाकर स्थापित करे
॥ ५४ ॥

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ।
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

एवं अग्नि अर्क तोय आदाः अतिथौ हृदये च यः यजति ईश्वरं आत्मानं अचिरात् मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

हि यः एवं - क्योंकि जो इस प्रकार
अग्नि अर्क - अग्नि, सूर्य,
तोयादाः - जलादिमें,
अतिथौ च - अतिथि तथा
हृदये - हृदयमें
आत्मानं ईश्वरं - अपने स्वामी भगवानकी
यजति सः - पूजा करता है वह
अचिरात्- - शीघ्र मुक्त हो जाता है
मुच्यते ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

विदेहउवाच—

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ।
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

यानि यानि इह कर्माणि यैः यैः स्वच्छन्द जन्मभिः चक्रे करोति कर्ता वा हरिः तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥

हरिः इह	- श्री हरिने इस लोकमें	**चक्रे करोति**	- किये हैं, कर रहे हैं,
यैः यैः	- जिन जिन	**वा कर्ता**	- या आगे करेंगे,
स्वच्छन्द जन्मभिः	- स्वेच्छा अवतारोंमें	**तानि नः ब्रुवन्तु**	- उन्हें मुझे बतलाइये ॥ १ ॥
यानि यानि कर्माणि	- जो जो चरित		भा० मू० ४३

द्रुमिल उवाच—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः ।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

यः वा अनन्तास्य गुणान् अनन्तान् अनुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः रजांसि भूमेः गणयेत् कथञ्चित् कालेन न एव अखिल शक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

यः वा - जो कोई भी
अनन्तस्य - भगवान अनन्तके
अनन्तान् गुणान् - अनन्त गुणोंको
अनुक्रमिष्यन् - गिनना चाहता है,
स तु बाल - वह तो बालक
बुद्धिः बुद्धि है,
कथञ्चित् - किसी प्रकार
कालेन - दीर्घकालमें
भूमेः रजांसि - पृथ्वीके धूलिकणोंको
गणयेत् - (कोई) गिन भी ले, किन्तु
अखिल - समस्त शक्तियोंके आश्रय
शक्ति धाम्नः भगवानके
न एव - (गुणोंकी गणना) नहीं हो सकती ॥ २ ॥

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः
पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधान-
मवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

भूतैः यदा पञ्चभिः आत्म सृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् स्व अंशेन विष्टः पुरुष अभिधानं अवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

यदा आत्मसृष्टैः - जब अपने ही बनाये
पञ्चभिः भूतैः - पञ्च महाभूतोंसे
विराजं पुरं - विराट् (ब्रह्माण्ड) रूप पुर
विरचय्य तस्मिन् - निर्मित करके उसमें
आदिदेवः - आदिदेव
नारायण - नारायण
स्व अंशेन - अपने अंशसे प्रविष्ट
विष्टः हुए
पुरुष अभिधानं - (तब) पुरुष नामको
अवाप - प्राप्त हुए (उन्हें पुरुष कहा गया)

यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो
यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ।
ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा
सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥

यत् काय एष भुवन त्रय सन्निवेशः यस्य इन्द्रियैः तनुभृतां उभय इन्द्रियाणि ज्ञानं स्वतः श्वसनतः बलं ओज ईहा सत्त्व आदिभिः स्थिति लय उद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥

यत्काय	- जिनके शरीरमें	**श्वसनतः**	- उनकी श्वांससे
एष भुवन त्रय	- यह त्रिभुवन	**बलं ओज-**	- शरीरबल, इन्द्रिय बल,
सन्निवेशः	- स्थित हैं,	**ईहा**	तथा क्रिया शक्ति जगते
यस्य इन्द्रियाणि	- जिनकी इन्द्रियोंसे		हैं
तनुभृतां	- शरीर धारियोंकी	**सत्त्व-**	- सत्त्वादि (गुणों) द्वारा वे
उभय इन्द्रियाणि	- दोनों प्रकारकी	**आदिभिः**	ही
	(कर्मइन्द्रिय तथा ज्ञान)	**स्थिति लय**	- स्थिति, प्रलय
	इन्द्रियां बनी हैं	**उद्भव-**	- सृष्टिके आदिकर्ता हैं
ज्ञानं स्वतः	- स्वयं उनके स्वरूपसे	**आदिकर्ता**	॥ ४ ॥
	ज्ञान होता है ।		

आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे
विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ।
रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य
इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

आदाः अभूत् शतधृती रजसा अस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिः द्विज धर्मसेतुः रुद्रः अप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इति उभ्दव स्थिति लयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

अस्य सर्गे - इस संसारकी सृष्टिके लिए
आदाः रजसा - आरम्भमें रजोगुणके आश्रयसे
शतधृती अभूत् - ब्रह्मा हुए,
स्थितौ - स्थितिके लिए
द्विजधर्मसेतुः - ब्राह्मणों एवं धर्म मर्यादाकी रक्षाके लिए,
क्रतुपतिः विष्णुः - यज्ञपति विष्णु एवं
अप्ययाय - प्रलयके लिए
तमसा रुद्रः - तमोगुणके आश्रयसे रुद्र हुए
इति प्रजासु - इस प्रकार प्रजाकी
सततं उद्भव- बराबर सृष्टि,
स्थिति लयाः - स्थिति और प्रलय होती है ॥ ५ ॥

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां
नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः ।
नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म
योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

धर्मस्य दक्ष दुहितरि अजनिष्ट मूर्त्यां नारायणः नर ऋषि प्रवरः प्रशान्तः नैष्कर्म्य लक्षणं उवाच चचार कर्म यः अद्य अपि च आस्त ऋषिवर्य निषेवित अङ्घ्रि ॥ ६ ॥

धर्मस्य - धर्मकी (पत्नी)
दक्ष दुहितरि - दक्षपुत्री मूर्तिसे
मूर्त्यां
ऋषि प्रवरः - ऋषि श्रेष्ठ
प्रशान्तः - अत्यन्त शान्त
नारायणः - नारायण और
नरः अजनिष्ट - नर रूपमें उत्पन्न हुए
नैष्कर्म्य लक्षण - नैष्कर्म्य (मोक्ष) स्वरूप वाले
कर्म उवाच - कर्मका उपदेश किया तथा
यः अद्य अपि च - और जो अब तक भी
ऋषिवर्य - श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा
निषेवित- - सेवित चरण
अङ्घ्रिः
चचार आस्त - (उसका) आचरण कर रहे हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति
कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ।
गत्वाप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः
स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

इन्द्रः विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षति इति कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदरि उप आख्यं गत्वा अप्सरः गण वसन्त सुमन्द वातैः स्त्री प्रेक्षण इषुभिः अविध्यत् तत् महि अज्ञः ॥ ७ ॥

मम धाम	- मेरा पद	**अप्सरःगण**	- अप्सराओंके समूह,
जिघृक्षति	- छीनना चाहते हैं	**बसन्त**	- बसन्त ऋतु-मन्द पवनके
इति विशङ्क्य	- ऐसी आशंका करके	**सुमन्द वातैः**	साथ
इन्द्रः सगणं	- इन्द्रने गणोंके साथ	**गत्वा**	- जाकर
कामं न्ययुङ्क्त	- कामको (तपो भ्रष्ट करनेके लिए) नियुक्त किया,	**तत् महि अज्ञः**	- उनकी महिमासे अनजान
		स्त्री प्रेक्षण-	- स्त्रियोंके कटाक्ष
		इषुभिः	वाणोंसे
सबदरि उप-	- वह बदरीनाथ कहे	**अविध्यत्**	- (उन्हें) मारने लगा
आख्यं	जाने वाले धामके पास		॥ ७ ॥

विज्ञाय शक्रकृतमक्रमादिदेवः
प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ।
मा भैष्ट भो मदन मारुत देववध्वो
गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥

विज्ञाय शक्रकृत मक्रं आदिदेवः प्राह प्रहस्य गत विस्मय एजमानान् मा भैष्ट भो मदन मारुत देववध्वः गृह्णीत नः बलिं अशून्यं इमं कुरुध्वम् ॥८॥

आदिदेवः - उन आदिदेवने
शक्रकृत - इन्द्रका किया हुआ
मक्रं विज्ञाय - पाखण्ड जानकर
गत विस्मय - बिना चकित हुए
एजमानान् - कांपते हुओंसे
प्राह - कहा
भो मदन मारुत - काम, पवन,
देववध्वः - देवांगनाओं
मा भैष्ट - डरो मत
नः बलिंगृह्णीत - हमारा उपहार ग्रहण करो,
इमं अशून्यं - इस आश्रमको सूना मत
कुरुध्वं - करो (जाओ मत)
॥ ८ ॥

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः
सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ।
नैतद् विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं
स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥

इत्थं ब्रुवति अभयदे नरदेव देवाः सव्रीड नम्र शिरसः सघृणं तं ऊचुः न एतत् विभो त्वयि परे अविकृते विचित्रं स्व आराम धीः निकर आनत पादपद्मे ॥ ९ ॥

नरदेव - राजन्
इत्थं अभयदे - इस प्रकार अभय देने वाले
सघृणं - दयालु (भगवान)से
सव्रीड - लज्जासे
नम्र शिरसः - सिर झुकाये
देवाः तं ऊचुः - देवाता उनसे बोले
स्वारामधी - आत्माराम चित्त
निकर - लोगोंके द्वारा
नतपादपद्मे - नमस्कृत चरण कमल
विभो त्वयि - प्रभो ! आप
अविकृते - निर्विकार
परे एतत् - परम पुरुषके लिए यह
विचित्रं न - आश्चर्यकी बात नहीं है.
॥ ९ ॥

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः
स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥

त्वां सेवतां सुरकृता बहवः अन्तरायाः स्व ओकः विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते न अन्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान् धत्ते पदं त्वं अविता यदि विघ्न मूर्ध्नि ॥ १० ॥

स्व ओकः	- अपने निवासका	**बर्हिषि स्वभागान्**	- यज्ञोंमें अपने भागका
विलङ्घ्य	- उल्लंघन करके	**बलीन् ददतः**	- उपहार देने वाले
ते परमं पदं	- आपकेपरमपदको	**अन्यस्य न**	- दूसरोंको (विघ्न) नहीं करते,
व्रजता	- जाने वाले		
त्वां सेवतां	- आपकीसेवा करने वालोंके लिये	**यदि त्वं-अविता**	- पर यदि आप रक्षक हैं तो
बहवः-अन्तरायाः	- बहुतसे विघ्न	**विघ्न मूर्ध्नि**	- (आपके भक्त) विघ्नोंके सिरपर
सुरकृता	- देवता करते हैं; किन्तु	**पदं धत्ते**	- पैर रखते हैं (ठोकर मारते हैं) ॥ १० ॥

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्या-
नस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ।
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गो-
र्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

क्षुत् तृट् त्रिकाल गुण मारुत जैह्व्य शैश्न्यान् अस्मान् अपारजलधीन् अतितीर्यकेचित् क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोः मज्जन्ति दुश्चर तपः च वृथा उत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

केचित्	- कोई लोग
क्षुत् तृट्	- भूख-प्यास
त्रिकालगुण	- तीनोंकालोंके गुण (सर्दी, गर्मी, वर्षा)
मारुत	- प्राण वायु
जैह्व्य शैश्न्यान्	- जीभ और उपस्थके विषय
जलधीन	- समुद्रोंको
अस्मान् अपार	- हम अपार
अतितीर्य	- पार करके (इन्हें जीतकर)
विफलस्य	- निष्फल
क्रोधस्यवशं	- क्रोधके वश
यान्ति	- हो जाते हैं (जैसे)
गोः पदे	- गायके खुरसे बने गड्ढेमें
मज्जन्ति	- डूब गये हों,
दुश्चर-तपः च	- अत्यन्त कठिन तपस्या को भी
वृथा उत्सृजन्ति	- व्यर्थ त्यागते हैं ॥ ११ ॥

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भतदर्शनाः ।
दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियः अति अद्भुत दर्शनाः दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीः विभ्रः ॥ १२ ॥

इति तेषां	- इस प्रकार उनके
प्रगृणतां	- स्तुति करते हुए ही
विभुः	- समर्थ भगवानने
अति अद्भुत दर्शनाः	- अत्यन्त अद्भुत लावण्यमयी
स्वर्चिताः	- सुसज्जिता
शुश्रूषां कुर्वतीः	- (भगवानकी)सेवा करती हुई
स्त्रियः-दर्शयामास	- स्त्रियां दिखलायीं ॥ १२ ॥

ते देवानुचरादृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ।
गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥

ते देवा अनुचरा दृष्टवा स्त्रियः श्रीः इव रूपिणीः गन्धेन मुमुहुः तासां रूप औदार्य हतश्रियः ॥ १३ ॥

ते देव अनुचराः - वे देवताओंके अनुचर
स्वपिणीः श्रीः इव - स्वरूप धारिणी लक्ष्मीके समान
स्त्रियः दृष्ट्वा - उन स्त्रियोंको देखकर
तासां रूप-औदार्य - उनके सौन्दर्यकी अधिकतासे
हतश्रियः - श्री हीन होकर
गन्धेन मुमुहुः - उनकी अंग-गन्धसे मूर्छित हो गये ॥ १३ ॥

तानाह देवदेवेशः प्रणतान् प्रहसन्निव ।
आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥

तान् आह देव देवेशः प्रणतान् प्रहसन् इव आसां एकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्ग भूषणाम् ॥ १४ ॥

तान् प्रणतान् - उन प्रणाम करते हुओं से
प्रहसन् इव - हँसते हुएसे
देव देवेशः आह - उन देवदेवेश्वरने कहा
आसां एकतमां - इनमेंसे किसी एक
सवर्णां - अपने वर्ण वाली (अप्सरा) का
स्वर्ग भूषणां - स्वर्गको सुशोभित करनेके लिए
वृङ्ध्वं - वरण (स्वीकार) कर लो ॥ १४ ॥

ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः ।
उर्वशीमप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥

ओम् इति आदेशं आदाय नत्वा तं सुरवन्दिनः उर्वशीं अप्सरः श्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥

सुरवन्दिनः - वे देवताओंके बन्दीजन
ओम् इति - (अच्छा इस प्रकार
आदेशं आदाय - अनुमति लेकर
तं नत्वा - उनको प्रणाम करके
अप्सरः श्रेष्ठां - अप्सराओंमें श्रेष्ठ
उर्वशीं-पुरस्कृत्य - उर्वशीको आगे करके
दिवं ययुः - स्वर्ग गये ॥ १५ ॥

इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् ।
ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥

इन्द्राय आनम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसां ऊचुः नारायण बलं शक्रः तत्त्रास विस्मितः ॥ १६ ॥

त्रिदिवौकसां - देवताओंके
शृण्वतां सदसि - सुनते हुए सभामें
इन्द्राय आनम्य - इन्द्रको प्रणाम करके
नारायण बलं - नारायणकी शक्तिका
ऊचुः - वर्णन किया
शक्रः तत्त्रास - इन्द्र उनके भयसे
विस्मितः - चकित रह गये
॥ १६ ॥

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं
दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः ।
विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्ण
स्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

हंस स्वरूप अवदत् अच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभः भगवान् पिता नः विष्णुः शिवाय जगतां कलया अवतीर्णः तेन आहृता मधुभिदा श्रुतयः हयास्ये ॥ १७ ॥

जगतां शिवाय - जगत्के कल्याणके लिए
कलया - अपनी कलासे अवतार
अवतीर्णः लेकर
अच्युत विष्णुः - अच्युत भगवान विष्णुने
हंस स्वरूप - हंसके रूपमें
दत्तः कुमार - दत्त आत्रेय, सनत्
कुमारादि,
नः पिता- - हमारे पिता ऋषभ
ऋषभः देवने
आत्मयोगं - अध्यात्म योगका
अवदत् - उपदेश किया,
तेन मधुभिदा - उन्हीं मधुसूदनने
हयास्ये - हयग्रीव अवतार लेकर
श्रुतयः- - (दैत्य द्वारा हरणकी
आहृताः गयी) श्रुतियां लौटायीं
॥ १७ ॥

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये
क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम् ।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे
ग्राहात् प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥

गुप्तः अप्यये मनुः इला औषधयः च मात्स्ये क्रौडे हतः दितिज उद्धरता अम्भसः क्ष्मां कौर्मे धृतः अद्रिः अमृत उन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपन्नं इभराजं अमुञ्चत् आर्तम् ॥ १८ ॥

मात्स्ये	- मत्स्यावतारमें	**कौर्मे**	- कच्छपावतारमें
अप्यये	- प्रलयके समय	**अमृतमथने**	- अमृत मन्थनके लिए
मनुः इला	- मनु, पृथ्वी,	**स्वपृष्ठे**	- अपनी पीठपर
च औषधयः	- तथा औषधियोंकी	**अद्रिः धृतः**	- मन्दराचलको धारण किया
गुप्ता	- रक्षाकी,	**आर्तं प्रपन्नं**	- व्याकुल शरणागत
क्रौडे अम्भसः	- वाराहवतारमें प्रलय जलसे	**इभराजं**	- गजराजको
क्ष्मां उद्धरतः	- पृथ्वीका उद्धार करते समय	**ग्राहात्-अमुञ्चत्**	- ग्राहसे छुड़ाया ॥ १८ ॥
दितिजहतः	- दितिपुत्र हिरण्यात्रको मारा,		

संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च
शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा
जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

संस्तुन्वताः अब्धि पतितान् श्रमणान् ऋषीन् च शक्रं च वृत्रवधतः तमसि प्रविष्टम् देवस्त्रियः असुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्ने असुरेन्द्रं अभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

अब्धि पतितान्	- मानो समुद्रमें गिर गये हों	**असुरगृहे**	- असुरके घरमें
श्रमणान् ऋषीन्	- सन्यासी वालखिल्य ऋषियोंको१	**पिहिता अनाथा**	- वन्दिनी अनाथा
वृत्रवधतः	- वृत्रासुरको मारनेसे	**देवस्त्रियः**	- देवांगनाओंको (भगवानने बचाया)
तमसि प्रविष्टम्	- (ब्रह्म हत्याके भयसे) अन्धकारमें (सरोवर जलमें) छिपे	**सतां अभयाय**	- सत्पुरुषोंको निर्भय करनेके लिए
शक्रं च	- इन्द्रको भी,	**नृसिंहे**	- नृसिंहावतारमें
		असुरेन्द्रं जघ्ने	- दैत्यराज हिरण्य-कशिपुको मारा ॥ १९॥

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे
हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभिः ।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बलेः क्ष्मां
याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥

देव असुरे युधि च दैत्यपतीन् सुर अर्थे हत्वा अन्तरेषु भुवनानि अदधात् कलाभिः भूत्वा अथ वामन इमां अहरत् बलेः क्ष्मां याच्ञा छलेन सम अदात् अदितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥

देव असुरे-युधि च	- देवासुर संग्राममें भी	**अथ वामनं-भूत्वा**	- और वामन बनकर
सुर अर्थे	- देवताओंके लिए	**याच्ञा छलेन**	- मांगनेके बहानेसे
दैत्यपतीन् हत्वा	- दैत्य नायकोंको मारा,	**बलेः क्ष्मां**	- बलिकी पृथ्वीको
अन्तरेषु	- मन्वन्तरोंमें	**आहरत्**	- छीनकर
कलाभिः	- कलावतारसे	**अदितेः सुतेभ्यः**	- अदितिके पुत्रों (देवताओंको)
भुवनानि	- लोकोंकी	**सम अदात्**	- पूरी दे दी ॥ २० ॥
अदधात्	- रक्षाकी,		

---

१. **कथा है कि बालखिल्य ऋषि महर्षि कश्यपके लिए समिधा लेने गये तो गायके खुरसे बने गड्ढेमें गिर गये । वह उनके लिए समुद्रके समान था । उससे उन्हें भगवानने निकाला ।**

निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो
रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलङ्क
सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥

निःक्षत्रियां अकृत गां च त्रिः सप्तकृत्वः रामः तु है हयकुल अप्यय भार्गव अग्निः सः अब्धिं बबन्ध दशवक्त्रं अहन् सलंकं सीतापतिः जयति लोकं अलघ्न कीर्तिः ॥ २१ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः	- तीन सात (इक्कीस) बार	सः अब्धिं- बबन्ध	- उन्हीं भगवानने समुद्र बांधा
गां निःक्षत्रियां	- पृथ्वी क्षत्रियहीन भी	सलंकं	- लंकाके साथ
अकृत	- बनाया,	दशवक्त्रं अहन्	- दशाननको नष्ट किया
रामःतु	- वे परशुराम तो	लोकमलघ्न	- लोक पापनाशक
हैहयकुल	- हैहयवंशके लिए	कीर्तिः	- सुयशवाले
भार्गव	- भृगुवंशमें उत्पन्न	सीतापतिः- जयति	- सीतानाथ सर्वत्र विजयी हैं ॥ २१ ॥
अप्यय अग्निः	- प्रलयाग्नि ही थे,		

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा
जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान्
शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥

भूमेः भर अवतरणाय यदुषु अजन्मा जातः करिष्यति सुरैः अपि दुष्कराणि वादैः विमोहयति यक्षकृतः अतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यत् अन्ते ॥ २२ ॥

अजन्मा - वे अजन्मा
भूमेःभर - पृथ्वीके भारको
अवतरणाय - उतारनेके लिए
यदुषु जातः - यदुवंशमें उत्पन्न होकर
सुरैः अपि - देवताओंके लिए भी
दुष्कराणि - करनेमें अत्यन्त कठिन कार्य
करिष्यति - करेंगे
अतदर्हान् - अनधिकारी
यज्ञकृतः - यज्ञ करने वालोंको
वादैः विमोहयति - (बुद्धावतारमें) तर्कोंसे भ्रममें डालेंगे,
कलौ अन्ते - कलियुगके अन्तमें
शूद्रान् क्षितिभुजो - शुद्र राजाओंको
न्यहनिष्यत् - (कल्कि अवतारमें) मारेंगे ॥ २२ ॥

एवं विधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः ।
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

एवं विधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः भूरीणि भूरियशसः वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

महाभुज - महाबाहोः
भूरियशसः - अनन्तकीर्ति
जगत्पतेः - जगदीश्वरके
एवं विधानि - इस प्रकारके
भूरीणि जन्मानि -बहुतसे अवतार
च कर्माणि - तथा लीलायें
वर्णितानि - (ऋषियोंने) वर्णन किये हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

विदेह उवाच–

भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः ।
तेषामशान्तकामानां का निष्ठा विजितात्मनाम् ॥ १ ॥

भगवन्तं हरिं प्रायः न भजन्ति आत्मवित्तमाः तेषां अशान्तकामानं का निष्ठा अविजित आत्मनां ॥ १ ॥

आत्म वित्तमा - आत्म ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महापुरुषो	**अशान्त-** - (जिनकी) कामनायें शान्त
भगवन्तं हरिं - भगवान श्रीहरिका जो	**कामानां** हुई नहीं,
प्रायः न- - प्रायः भजन नहीं करते,	**तेषां अविजित-** - उन अजितेन्द्रिय
भजन्ति	**आत्मनां-** लोगोंकी
	का निष्ठा - क्या गति होती है ॥ १ ॥

चमस उवाच–

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह ।
चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥

मुख बाहु उरु पादेभ्यः पुरुषस्य आश्रमैः सह चत्वारः जज्ञिरे वर्णा गुणैः विप्र आदयः पृथक् ॥ २ ॥

पुरुषस्य - परम पुरुषके	**चत्वारः वर्णा-** - चारों वर्णोंके लोग
मुख बाहु - मुख, भुजा	**आश्रमैः सह** - (चारों) आश्रमोंके साथ
उरु पादेभ्यः - जांघों और चरणोंसे	**गुणैः पृथक्** - अपने-अपने पृथक्-पृथक् गुणोंसे युक्त
विप्र आदयः - ब्राह्मण आदि	**जज्ञिरे** - उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

यः एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥ ३ ॥

यः एषां पुरुषं साक्षात् आत्मप्रभवं ईश्वरं न भजन्ति अवजानन्ति स्थानात् भ्रष्टाः पतन्ति अधः ॥ ३ ॥

यः आत्मप्रभवं	- जो अपने जन्मदाता,	**अवजानन्ति**	- उपेक्षा करते हैं
एषां ईश्वरं	- इनके स्वामीका	**स्थानात् भ्रष्टाः**	- वे स्थान भ्रष्ट होकर
भजन्ति न	- भजन नहीं करते,	**अधः पतन्ति**	- और नीचे गिरते हैं ॥ ३ ॥

दूरेहरिकथाःकेचिद् दूरेचाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

दूरे हरिकथाःकेचित् दूरे च अच्युत कीर्तनाः स्त्रियः शूद्र आदयः च एव ते अनुकम्प्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

केचित्	- कोई	**च अच्युत-**	- तथा भगवानका
स्त्रियः च	- स्त्रियां तथा	**कीर्तनाः**	गुणगान करने वालोंसे भी
शूद्र आदयः	- शूद्र आदि भी		
एव		**दूरे**	- दूर पड़ गये हैं,
हरिकथाः	- भगवत्कथासे दूर पड़ गये हैं	**भवादृशां**	- आप जैसोंके
		ते अनुकम्प्या-	वे दयाके पात्र हैं ॥४॥

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् ।
श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ॥ ५ ॥

विप्रः राजन्य वैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पद अन्तिकं श्रौतेन जन्मना अथ अपि मुह्यन्ति आम्नाय वादिनः ॥ ५ ॥

विप्रः राजन्य - ब्राह्मण, क्षत्रिय
च वैश्यौ - तथा वैश्य
श्रौतेन जन्मना - वैदिकजन्म (यज्ञोपवीत आदि संस्कारों)से
हरेः पद- - श्रीहरिके चरणोंका
अन्तिकं सामीप्य
प्राप्ताः अथअपि - पाकर फिर भी
आम्नाय वादिनः - अर्थवादमें लगकर
मुह्यन्ति - भ्रममें पड़ जाते हैं ॥५॥

कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः ।
वदन्ति चाटुकान् मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥

कर्मणि अकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डित मानिनः वदन्ति चाटुकान् मूढा यया माध्व्या गिरा उत्सुकाः ॥ ६ ॥

कर्मणि-अकोविदाः - कर्म-रहस्यसे अनजान
स्तब्धा - अहंकारसे जकड़े
मूर्खाः - मूर्खःकिन्तु
पण्डित मानिनः - अपनेको पण्डित मानने वाले
यया - जिन
माध्व्या गिरा - मीठी बातोंके प्रति (अर्थवादसे)
उत्सुकाः - उत्सुक होकर
मूढा - वे मूर्ख
चाटुकान्-वदन्ति - चापलूसीकी बातें करते हैं ॥ ६ ॥

रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ।
दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥

रजसा घोर संकल्पाः कामुका अहि मन्यवः दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्ति अच्युत प्रियान् ॥ ७ ॥

रजसा - रजोगुणी होनेसे
घोरसंकल्पाः - उग्र संकल्पवाले,
कामुका - कामुक,
अहि मन्यवः - सर्पके समान क्रोधी,
दाम्भिका - पाखण्डी,
मानिनः पापा - अभिमानी, पापिष्ठ वे
अच्युत प्रियान् - अच्युतके प्रियभक्तोंकी
विहसन्ति - हँसी उड़ाते हैं ॥ ७ ॥

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो
गृहेषु मैथुन्यपरेषु चाशिषः ।
यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं
वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥

वदन्ति ते अन्यः अन्यं उपासित स्त्रियः गृहेषु मैथुन्य परेषु च आशिषः यजन्ति असृष्टान् अविधान् अदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशून् अतत् विदः ॥ ८ ॥

ते अतत् विदः	- वे अज्ञानी	**असृष्टान्**	- अन्नदान रहित,
उपासित स्त्रियः	- स्त्रियोंकी सेवा करने वाले	**अविधान्**	- विधिहीन
		अदक्षिणं-	- बिना दक्षिणा दिये यज्ञ
अन्यः अन्यं	- एक दूसरेसे	**यजन्ति**	करते हैं और
मैथुन्य सुखेषु	- स्त्री-सहवास सुखवाले	**वृत्त्यै परं**	- पेट भरनेके लिए
गृहेषु परेषु	- गार्हस्थ्य परायणताकी	**पशून् घ्नन्ति**	- पशुओंको मारते हैं ॥ ८ ॥
आशिषः च-	- अभिलाषाओंका ही		
वदन्ति	वर्णन करते हैं		

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया
त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ।
जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्
सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः ॥ ९ ॥

श्रिया विभूत्या अभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा जात स्मयेन अन्धधियः सह ईश्वरान् सतः अवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः ॥ ९ ॥

श्रिया विभूत्या	- धन-वैभव,	**अन्धधियः**	- अन्ध बुद्धि
अभिजनेन	- कुलीनता,	**खलाः**	- वे दुष्ट
विद्यया त्यागेन	- विद्या, त्याग	**सह ईश्वरान्**	- ईश्वरके साथ
रूपेण बलेन	- सौन्दर्य, बल तथा	**हरि प्रियान्-**	- श्रीहरिके प्रिय
कर्मणा	- कर्मसे	**सतः**	संतोंका
जात स्मयेन	- उत्पन्न घमण्डसे	**अवमन्यन्ति**	- अपमान करते हैं ॥९॥

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं
यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम् ।
वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा
मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ॥ १० ॥

सर्वेषु शश्वत् तनुभृत्सु अवस्थितं यथा खं आत्मानं अभीष्टं ईश्वरं वेद उपगीतं च न शृण्वते अबुधा मनोरथानां प्रवदन्ति वार्तया ॥ १० ॥

सर्वेषु तनुभृत्सु	- सब शरीर धारियोंमें	**वेद उपगीतं**	- वेदोंमें भी वर्णन
यथा खं	- जैसे आकाश है (वैसे)	**च**	होनेपर भी
शश्वत् अवस्थितं	- निरन्तर स्थित	**शृण्वते न**	- सुनते नहीं
आत्मानं अभीष्टं	- अपनेको भी प्रिय	**अबुधा**	- वे अज्ञानी
ईश्वरं	- ईश्वरका	**मनोरथानां च**	- अपनी अभिलाषाओंकी ही
		वार्तया-	- बातें करते रहते हैं
		प्रवदन्ति	॥ १० ॥

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा
नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना ।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ-
सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥

लोके व्यवाय आमिष मद्यसेवा नित्याः तु जन्तोः न हि तत्र चोदना व्यवस्थितिः तेषु विवाह यज्ञ सुराग्रहैः असु निवृत्तिः इष्टा ॥ ११ ॥

लोके व्यवाय	- संसारमें मैथुन,	**तेषु विवाह**	- उनकी विवाह,
आमिष मद्य	- मांस, शराबका	**यज्ञ सुराग्रहैः**	- यज्ञ तथा सौत्रामणि यज्ञमें
सेवा हि-	- सेवन तो क्योंकि	**व्यवस्थितिः**	- व्यवस्थासे
नित्याः तु	सदासे (अपने आप) चलता है	**असु निवृत्तिः**	- (शास्त्रको) प्राणियोंकी
तत्र चोदना न	- इसमें शास्त्राज्ञाकी आवश्यकता नहीं है	**इष्टा**	निवृत्ति अभीष्ट है ॥ ११ ॥

धनं च धर्मैकफलं यतो वै
ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति ।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य
मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानं अनुप्रशान्ति गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य दुरन्तवीर्यं मृत्युं न पश्यन्ति ॥ १२ ॥

च	- तो (यहाँ चकार अर्थ तु है)	**गृहेषु**	- मनुष्य फिर भी धनका उपयोग काम योगमें
धर्मैकफलं	- भगवत्प्रीति करने वाले धर्मके लिये है	**युञ्जन्ति**	- करते हैं
यतः वै	- धर्मसे ही निश्चय	**कलेवरस्य**	- देहकी
ज्ञानम्	- परमतत्वका ज्ञान	**दुरन्तवीर्यं**	- कभी भी न टलने वाले
सविज्ञानम्	- ज्ञानकी अपरोक्ष अनुभूति सिद्ध होती है	**मृत्युं**	- मृत्युको
अनु	- अनुभूतिके बाद	**न**	- नहीं
प्रशान्ति	- अशना-पियासादिके न रहनेसे शान्ति अर्थात् मोक्ष होती है	**पश्यन्ति**	- देखते हैं ॥ १२ ॥

यद् घ्राणभक्षो विहितः सुराया-
स्तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या
इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥

यत् घ्राण भक्षः विहितः सुरायाः तथा पशोः आलभनं न हिंसा एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥ १३ ॥

यत् सुरायाः - क्योंकि (सौत्रामणि यज्ञमें) शराबका
घ्राण भक्षः - सूंघ लेनेका
विहितः - विधान है
तथा पशोः - इसी प्रकार (यज्ञ)में पशुके
आलभनं - सम्पूर्ण शरीरके स्पर्शका (विधान) है
हिंसा न - मारनेका नहीं,
एवं व्यवायः - इसी प्रकार मैथुनका
प्रजया - सन्तानोत्पादनके लिए (विधान) है
रत्या न - सुख भोगनेके लिए नहीं,
एवं विशुद्धं - इस प्रकारके अत्यन्त शुद्ध
स्वधर्म न-विदुः - अपने धर्मको नहीं जानते ॥ १३ ॥

ये त्वनेवं विदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः ।
पशून् द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान् ॥ १४ ॥

ये तु अनेवं विदः असन्तः स्तब्धाः सत् अभिमानिनः पशून् द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान् ॥ १४ ॥

ये तु अनेवं-विदः - जो भी ऐसा न जानने वाले
असन्तः स्तब्धाः - दुष्ट मूर्ख
सत् अभिमानिनः - अपनेको श्रेष्ठ मानने वाले
विस्रब्धाः - भ्रममें पड़े हुए
पशून् द्रुह्यन्ति - पशु-हिंसा करते हैं
प्रेत्य ते च - मरनेपर वही (पशु)
तान् खादन्ति - उन्हें खाते हैं ॥ १४ ॥

द्विषन्तःपरकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् ।
मृतके सानुबन्धेऽस्मिन् बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ॥ १५ ॥

द्विषन्तःपरकायेषु स्व आत्मानं हरिं ईश्वरं मृतके स अनुबन्धे अस्मिन् बद्ध स्नेहाः पतन्ति अधः ॥ १५ ॥

अस्मिन् मृतके	- इस मुर्दे (शरीर) से	**स्वआत्मनं**	- अपने आत्मरूप तथा
स अनुबन्धे	- इसके सम्बन्धियोंके साथ	**ईश्वरं हरिं**	- स्वामी श्री-हरिसे
बद्ध स्नेहाः	- स्नेहकी गांठ बांधेपर	**द्विषन्तः**	- द्वेष करते हुए
परकायेषु	- दूसरे शरीरोंमें (स्थित)	**अधः पतन्ति**	- अधः पतित होते हैं ॥ १५ ॥

ये कैवल्यमसम्प्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् ।
त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥

ये कैवल्यं असम्प्राप्ता ये च अतीताः च मूढ़तां त्रैवर्गिका हिअक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥

ये कैवल्यं	- जो मोक्ष	**हि ते**	- क्योंकि वे
असम्प्राप्ता	- नहीं पासके हैं	**त्रैवर्गिका**	- अर्थ, धर्म,काममें ही
च ये मूढतां च	- तथा जो मूर्खतासे भी	**अक्षणिका**	- सदा लगे रहने वाले हैं
अतीताः	- पार हो चुके हैं (थोड़े समझदार हैं)	**आत्मानं**	- आत्म घात
		घातयन्ति	(जैसा ही) कर रहे हैं ॥ १६ ॥

एत आत्महनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः ।
सीदन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥ १७ ॥

एत आत्महनः अशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः सीदन्ति अकृतकृत्या वै कालध्वस्त मनोरथाः ॥ १७ ॥

अज्ञाने ज्ञान- - अज्ञानको ही ज्ञान
मानिनः मानने वाले
एत आत्महनः - ये आत्मघाती
अशान्ता - अशान्त (लोग)
वै कालध्वस्त - निश्चयकालके द्वारा नष्ट किये गये
मनोरथाः - अभिलाषा होनेसे
सीदन्ति - कष्ट पाते हैं ॥ १७ ॥

हित्वात्यायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः ।
तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥

हित्वा अति आयास रचिता गृह अपत्य सुहृत् श्रियः तमः विशन्ति अनिच्छन्तः वासुदेवपराङ् मुखाः ॥ १८ ॥

वासुदेव - भगवान वासुदेवसे
पराङ्मुखाः - विमुख लोग
अति आयास-रचिता - बहुत परिश्रमसे बनाये
गृह अपत्य - घर, पुत्र,
सुहृत् श्रियः - सम्बन्धी, धनको
अनिच्छन्तः - इच्छा न होनेपर भी
हित्वा - छोड़कर
तमः विशन्ति- नरक जाते हैं ॥ १८ ॥

विदेह उवाच– १

कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णःकीदृशो नृभिः ।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥

कस्मिन्काले स भगवान् किं वर्णः कीदृशः नृभिः नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तत् इह उच्यताम् ॥ १९ ॥

स भगवान् - वे भगवान्
कस्मिन् काले - किस युगमें,
किं वर्णः - किस रूपमें,
कीदृशः नृभिः - कैसे लोगों द्वारा
वा केन नाम्ना - या किस नामसे,
केन विधिना - किस विधिसे
पूज्यते - पूजित होते हैं
तत् इह उच्यतां - वह यहां बतलावें ॥ १९ ॥

करभाजन उवाच—

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः ।
नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः इत्येषु केशवः नाना वर्ण अभिधा आकारः नाना एव विधिना इज्यते ॥ २० ॥

कृतं त्रेता	- सतयुग, त्रेता,	**अभिधा आकारः**	- नाम एवं रूपवाले
द्वापरं च	- द्वापर और	**केशवः**	- केशव
कलिः इत्येषु	- कलियुग, इनमें	**नाना विधिना एव**	- अनेक विधियोंसे ही
नाना वर्णः	- अनेक वर्ण,	**इज्यते**	- पूजे जाते हैं ॥२०॥

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू ॥ २१ ॥

कृते शुक्लः चतुर्बाहुः जटिलः वल्कल अम्बरः कृष्ण अजिनः उपवीत अक्षान् बिभ्रत् दण्ड कमण्डलू ॥ २१ ॥

कृते शुक्लः	- सतयुगमें श्वेत वर्ण,	**कृष्ण अजिनः**	- काले मृगका चर्म,
चतुर्बाहुः	- चतुर्भुज	**उपवीत अक्षान्**	- यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला,
जटिलः	- जटाधारी,	**दण्ड कमण्डलू**	- दण्ड-कमण्डलु
वल्कल अम्बरः	- वल्कल वस्त्र पहिने,	**विभ्रत्**	- धारण किये (भगवानका स्वरूप होता है) ॥२१॥

मनुष्यास्तु तदा शान्ताः निर्वैराः सुहृदः समाः ।
यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥

मनुष्याः तु तदा शान्ताः निर्वैराः सुहृदः समाः यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥ २२ ॥

तदा मनुष्याः तु - उस समयके मनुष्यतो
शान्ताः निर्वैराः - शान्त, वैरहीन,
सुहृदः समाः - सबके हितैषी, समदर्शी (होते हैं)
देवं तपसा - (वे) भगवानकी तपस्या,
च शमेन - तथा मनकी शान्ति
च दमेन - इन्द्रिय-दमनसे
भजन्ति - आराधना करते हैं ॥२२॥

हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः ।
ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तःपरमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥

हंसः सुपर्णः वैकुण्ठः धर्मः योगेश्वरः अमलः ईश्वरः पुरुषः अव्यक्तःपरमात्मा इति गीयते ॥ २३ ॥

हंसः सुपर्णः - हंस, सुपर्ण,
वैकुण्ठः धर्मः - वैकुण्ठ, धर्म,
योगेश्वरः अमलः - योगेश्वर, अमल,
ईश्वरः पुरुषः - ईश्वर, पुरुष,
अव्यक्तः-परमात्मा - अव्यक्त,परमात्मा,
इति गीयते - इन (नामों)से (भगवानका) कीर्तन होता है ॥२३॥

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥

त्रेतायां रक्त वर्णः असौ चतुर्बाहुः त्रिमेखलः हिरण्यकेशः त्रयी आत्मा स्रुक् स्रुवा आदि उपलक्षणः ॥ २४ ॥

त्रेतायां - त्रेता युगमें
असौ रक्तवर्णः - यह (भगवान) लाल-वर्णके
चतुर्बाहुः - चतुर्भुज
त्रिमेखलः - तीन मेखला धारी
हिरण्यकेशः - सुनहलेकेश
त्रयी आत्मा - यज्ञ स्वरूप
स्रुक् स्रुवा आदि उपलक्षणः - स्रुक, स्रुवा आदि धारण करते हैं ॥ २४ ॥

तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ।
यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥

तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिं यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥

तदा धर्मिष्ठा	- उस समयके धर्मात्मा	**हरिं**	- श्री हरिकी
ब्रह्मवादिनः	- वेदवादी	**त्रय्या विद्या**	- त्रयी विद्या-यज्ञके द्वारा
मनुजा	- मनुष्य	**यजन्ति**	- आराधना करते हैं
सर्वदेवमयं	- सर्व देवस्वरूप		॥ २५ ॥

विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ।
वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥

विष्णुः यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः वृषा कपिः जयन्तः च उरुगाय इति ईर्यते ॥ २६ ॥

विष्णुः यज्ञः	- विष्णु, यज्ञ,	**वृषाकपिः जयन्तः**	- वृषा कपि, जयन्त
पृश्नि गर्भः	- पृश्नि गर्भ,	**च उरुगाय**	- तथा उरुगाय
सर्वदेव उरुक्रमः	- सर्वदेव, उरुक्रम,	**इति ईर्यते**	- इन (नामों)से (भगवानका)कीर्तन होता है ॥ २६ ॥

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ।
श्रीवत्सादिभिरअंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ २७ ॥

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निज आयुधः श्रीवत्स आदिभिः अंकैः च लक्षणैः उपलक्षितः ॥ २७ ॥

द्वापरे	- द्वापर युगमें	**श्रीवत्स अंकैः**	- श्री वत्स चिन्ह
भगवान् श्यामः	- भगवान श्याम वर्ण,	**आदिभिः-**	- आदि चिन्होंसे भी
पीतवासा	- पीताम्बर धारी,	**लक्षणैः च**	
निज आयुधः	- अपने (शंख, चक्र, गदा, पद्म) आयुध वाले,	**उपलक्षितः**	- युक्त होते हैं ॥ २७ ॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ।
यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराज उपलक्षणं यजन्ति वेद तन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवः नृप ॥ २८ ॥

नृप - राजन् !
तदा मर्त्या - उस समयके मनुष्य
परं जिज्ञासवः - परमतत्त्वको जाननेकी इच्छासे
तं महाराज - उन महाराजाके
उपलक्षणं - चिह्न (छत्र, चँवर) युक्त
पुरुषं - परम पुरुषकी
वेद तन्त्राभ्यां - वैदिक-तान्त्रिक विधिसे
यजन्ति - आराधना करते हैं ॥ २८ ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥ २९ ॥

ते वासुदेवाय - (यह प्रार्थना करते हैं) आप वासुदेवको
नमः च - नमस्कार, तथा
संकर्षणाय नमः - संकर्षणको नमस्कार
तुभ्यं भगवते - आप भगवान
प्रद्युम्नाय च - प्रद्युम्न एवं
अनिरुद्धाय नमः - अनिरुद्धको नमस्कार ॥ २९ ॥

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ।
विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूत आत्मने नमः ॥ ३० ॥

ऋषये नारायणाय - ऋषि नारायण,
महात्मने पुरुषाय - महात्मा नर,
विश्वेश्वराय - जगदीश्वर,
विश्वाय - जगत्स्वरूप
सर्वभूत आत्मने - समस्त प्राणिस्वरूपको
नमः - नमस्कार ॥ ३० ॥

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।
नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगत् ईश्वरं नाना तन्त्र विधानेन कलाः अपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥

इति द्वापर	- इस प्रकार द्वापर युगमें	**विधानेन-**	- विधियोंसे स्तुति करते
उर्वीश जगत्	- महाराज रूपमें	**स्तुवन्ति**	हैं
ईश्वरं	जगत्पतिकी	**यथा कलाः-**	- जैसे कलियुगमें
नाना तन्त्र	- अनेक तन्त्रोंकी	**अपि**	भी
		शृणु	- (आराधना करते हैं उसे) सुनो ॥ ३१ ॥

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥

कृष्णवर्णं त्विषा अकृष्णं सांग उपांग अस्त्र पार्षदं यज्ञैःसंकीर्तन प्रायैः यजन्ति हि सुमेधसः ॥ ३२ ॥

हि सुमेधसः	- क्योंकि जो उत्तम बुद्धिवाले हैं	**अस्त्र पार्षदं**	- अस्त्रों एवं पार्षदों युक्त भगवानकी
कृष्णवर्णं	- श्यामवर्ण	**संकीर्तन प्रायैः**	- संकीर्तन प्रधान
त्विषा अकृष्णं	- उज्ज्वलकान्ति	**यज्ञैः यजन्ति**	- यज्ञोंसे आराधना करते हैं ॥ ३२ ॥
सांग उपांग	- सम्पूर्णांग उपांग (सायुध)		

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥

ध्येयं सदा परिभवघ्नं अभीष्टदः अहं तीर्थ आस्पदं शिव विरिञ्चि नुतं शरण्यं भृत्य आर्तिहं प्रणतपाल भव अब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३३ ॥

ध्येयं	- (वे लोग प्रार्थना करते हैं) ध्यान करने योग्य	**शरण्यं**	- शरणदाता,
सदा परिभवघ्नं	- नित्य सांसारिक पराजयोंके निवारक,	**भृत्य आर्तिहं**	- सेवक-संकटनाशक,
अभीष्टदः	- अभीष्टदाता	**प्रणतपाल**	- शरणागत-रक्षक
तीर्थ आस्पदं	- (गंगारूपी) तीर्थके आश्रय,	**भव अब्धिपोतं**	- संसार सागरके जहाज
शिव विरिञ्चि नुतं	- शंकर एवं ब्रह्मासे वन्दित,	**महापुरुष**	- हे महापुरुष
		ते चरणारविन्दं	- आपके चरण कमलोंकी
		अहं वन्दे	- हम वन्दना करते हैं ॥ ३३ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुर ईप्सित राज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यत् अगात् अरण्यं मायामृगं दयित ईप्सितं अन्वधावत् . वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ ३४ ॥

धर्मिष्ठ	- आप परम धर्मात्मा हैं	**दयित ईप्सित**	- प्रियाके चाहे हुए
यत्	- क्योंकि	**माया मृगं**	- माया मृगके
आर्य वचसा	- पिताकी आज्ञासे (आप)	**अन्वधावत्**	- पीछे दौड़ पड़े
सुरईप्सितं	- देवताओंको भी अभीष्ठ	**महापुरुष ते**	- महापुरुष आपके
सुदुस्त्यज	- अत्यन्त दुस्त्याज्य	**चरणारविन्दं**	- चरण कमलोंकी
राज्यलक्ष्मीं	- राज्य वैभवका	**वन्दे**	- (हम) वन्दना करते हैं ॥ ३४ ॥
त्यक्त्वा	- त्याग करके		
अरण्यं अगात्	- वनमें चले गये (वहां)		

एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान् युगवर्तिभिः ।
मनुजैरिज्यते राजन् श्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥

एवं युग अनुरूपाभ्यां भगवान् युगवर्तिभिः मनुजैः इज्यते राजन् श्रेयसां ईश्वरः हरिः ॥ ३५ ॥

राजन् - राजन् !
एवं युगवर्तिभिः - इस प्रकार उन युगोंमें
युग अनुरूपाभ्यां- युगानुसार रहने वाले
मनुजैः - मनुष्यों द्वारा
श्रेयसां ईश्वरः - सम्पूर्ण कल्याणोंके स्वामी
हरिः इज्यते - श्री हरि उपासित होते हैं ॥ ३५ ॥

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥

कलिं सभाजयन्ति आर्या गुणज्ञाः सारभागिनः यत्र संकीर्तनेन एव सर्वः स्वार्थः अभिलभ्यते ॥ ३६ ॥

यत्र संकीर्तनेन - जिस युगमें संकीर्तनसे
एव ही
सर्वः स्वार्थः - सब स्वार्थ (परमार्थ)की
अभिलभ्यते - सम्पूर्ण प्राप्ति हो जाती है
गुणज्ञाः आर्या - (उसका) गुण जानने वाले श्रेष्ठ पुरुष
सारभागिनः - सारग्राही होनेसे
कलिं-समाजयन्ति - कलियुगका आदर करते हैं ॥ ३६ ॥

न ह्यतःपरमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥

न हि अतःपरमः लाभः देहिनां भ्राम्यतां इह यतः विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ॥ ३७ ॥

इह भ्राम्यतां - इस संसारमें भटकते हुए
हि अतःपरमः - क्योंकि इससे बड़ा
लाभः देहिनां न - लाभ जीवके लिए नहीं है कि
यतःपरमां शान्ति - जिससेपरम शान्ति
विन्देत - प्राप्त हो और
संसृतिः-नश्यति - जन्म-मरण चक्र नष्ट हो जाय ॥ ३७ ॥

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम् ।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥

कृत आदिषु प्रजा राजन् कलाः इच्छन्ति सम्भवं कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ ३८ ॥

राजन् - राजन् !
कृत आदिषु प्रजा - सतयुग आदिकी प्रजा भी
कलाः सम्भवं - कलियुगमें उत्पन्न होना
इच्छन्ति - चाहते हैं
खलु कलौ - क्योंकि कलियुगमें
नारायण-परायणाः - नारायणपरायण (भक्त)
भविष्यन्ति - होंगे ॥ ३८ ॥

क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥

क्वचित् क्वचित् महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥

महाराज - महाराज !
क्वचित् क्वचित् - (दूसरे स्थानोंमें) कहीं-कहीं
च द्रविडेषु - तथा द्रविड प्रान्तमें
भूरिशः - बहुत अधिक,
यत्र ताम्रपर्णी नदी - जहां ताम्रपर्णी नदी,
कृतमाला - कृतमाला,
पयस्विनी - पयस्विनी हैं ॥ ३९ ॥

कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥ ४० ॥

कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुज ईश्वर प्रायः भक्ता भगवति वासुदेवे अमल आशयाः ॥ ४० ॥

मनुज ईश्वर	- महाराज !	**तासां जलं**	- उनका जल पीते हैं
च महापुण्या	- तथा अत्यन्त पवित्र	**पिबन्ति**	
कावेरी	- कावेरी	**प्रायः अमल-**	- प्रायः निर्मल अन्तःकरण
प्रतीची च	- प्रतीची और महानदी	**आशयाः**	
महा नदी	हैं:	**भगवति**	- भगवान वासुदेवके
ये मनुजा	- जो मनुष्य	**वासुदेवे**	
		भक्ता	- भक्त होंगे ॥ ४० ॥

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां
न किंकरो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं
गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥

देव ऋषि भूत आप्त नृणां पितॄणां न किंकरः न अयं ऋणी च राजन् सर्व आत्मना यः शरणं शरण्यं गतः मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ ४१ ॥

राजन्	- राजन् !	**मुकुन्दं शरणं**	- मुकुन्दकी शरण गया
यः कर्तं	- जो कर्तापनके	**गतः**	
	अभिमानको	**अयं देव ऋषि**	- यह देवता, ऋषि,
परिहृत्य	- त्यागकर	**भूत नृणां**	- प्राणी तथा मनुष्य (अतिथि)
सर्वआत्मना	- सम्पूर्ण हृदयसे	**पितॄणां**	- और पितरोंका
शरण्यं	- शरणदाता	**न किंकरः**	- न सेवक है
		न ऋणी च	- न ऋणी ही है ॥४१॥

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्त अन्य भावस्य हरिः परेशः विकर्म यत् च उत्पतितं कथञ्चित् धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥ ४२ ॥

त्यक्त अन्य भावस्य	- दूसरी सब भावनाओंको छोड़कर	**यत् विकर्म**	- यदि किसी विशेष कर्मके उल्लंघनका दोष
स्वपादमूलं	- अपने चरणोंका	**उत्पतितं च**	- लग भी जाय तो
भजतः प्रियस्य	- भजन करनेवाले प्रिय भक्तको	**परेशः हरिः**	- परमेश्वर श्री हरि
कथञ्चित्	- किसी प्रकार	**हृदि-**	- उसके हृदयमें भली
		सन्निविष्टः	प्रकार विराजमान
		सर्वं धुनोति	- सब (दोषों)को नष्ट कर देते हैं ॥ ४२ ॥

नारद उवाच–

धर्मान् भागवतानित्थं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ।
जायन्तेयान् मुनीन् प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥

धर्मान् भागवतान् इत्थं श्रुत्वा अथ मिथिला ईश्वरः जायन्तेयान् मुनीन् प्रीतः स उपाध्यायः हि अपूजयात् ॥ ४३ ॥

हि मिथिला ईश्वरः	- क्योंकि वे मिथिला नरेश (ज्ञानी) थे	**स उपाध्यायः**	- पुरोहितोंके साथ
इत्थं	- इस प्रकार	**जायन्तेयान्**	- जयन्तीके पुत्र योगेश्वरोंकी
भागवतान् धर्मान्	- भागवत धर्मको	**अपूजयत्**	- पूजाकी ॥ ४३ ॥
श्रुत्वा प्रीतः अथ	- सुनकर प्रसन्न होकर फिर		

ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ।
राजा धर्मानुपातिष्ठन्नावाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥

ततः अन्तः दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः राजा धर्मान् उप आतिष्ठन् अवाप परमां गतिम् ॥ ४४ ॥

ततः सर्वलोकस्य	- फिर सब लोगोंके	**राजा धर्मान्**	- राजा निमि उन धर्मोंका
पश्यतः	- देखते हुए	**उप आतिष्ठन्**	- पालन करके
सिद्धाः अन्तः-	- वे सिद्ध अन्तर्ध्यान	**परमां गतिं**	- परमपद पा गये
दधिरे	हो गये	**अवाप**	॥ ४४ ॥

त्वमप्येतान् महाभाग धर्मान् भागवताञ्छुतान् ।
आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥

त्वं अपि एतान् महाभाग धर्मान् भागवतान् श्रुतान् आस्थितः श्रद्धया युक्तः निःसंगः यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥

महाभाग	- महाभाग !	**श्रद्धायुक्तः**	- श्रद्धा सहित
त्वं अपि एतान्	- तुम भी इन	**आस्थितः**	- स्थित होकर
श्रुतान्	- श्रुति	**निः संगः**	- आसक्तिहीन होकर
भागवतान् धर्मान्	- भागवत धर्मपर	**परं यास्यसे**	- परम पद जाओगे
			॥ ४५ ॥

युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् ।
पुत्रतामगमद् यद् वां भगवानीश्वरो हरिः ॥ ४६ ॥

युवयोः खलु दम्पत्योः यशसा पूरितं जगत् पुत्रतां अगमत् यत् वां भगवान् ईश्वरः हरिः ॥ ४६ ॥

खलु युवयोः - अहो आप दोनों
दम्पत्योः - दम्पतिके
यशसा जगत् - सुयशसे पूरा संसार
पूरितं - भर गया है,
यत् भगवान् - क्योंकि भगवान
ईश्वरः हरिः - सर्वेश्वर श्रीहरि
वां पुत्रताम् - आप दोनोंके पुत्र
अगमत् बने हैं ॥ ४६ ॥

दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः ।
आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥

दर्शन आलिंगन आलापैः शयन आसन भोजनैः आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्र स्नेहं प्रकुर्वतोः ॥ ४७ ॥

कृष्णे पुत्रस्नेहं - श्रीकृष्णसे पुत्र स्नेह
प्रकुर्वतोः - पूर्णतः करते हुए (उनके)
दर्शन आलिंगन - दर्शन, आलिंगन,
शयन आसन - (एक साथ) सोने-बैठने,
भोजनैः - भोजन करनेसे
वां आत्मा- - आप दोनोंने
पावितः अपनेको पवित्र कर लिया है ॥ ४७ ॥

वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्र-
शाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ।
ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ
तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

वैरेण यं नृपतयः शिशुपाल पौण्ड्र शाल्व आदयः गति विलास विलोकन आद्यैः ध्यायन्त आकृत धियः शयन आसन आदौ तत् साम्यं आपुः अनुरक्तधियां पुनः किम् ॥ ४८ ॥

शिशुपाल - शिशुपाल
पौण्ड्र शाल्व - पौण्ड्रक शाल्व
आदयः नृपतयः - आदि नरेश
वैरेण - वैर भावसे
गति विलास - चलनेके ढंग, चेष्टा
विलोकन आद्यैः - दृष्टिपात आदि
आकृति धियः - आकृतिमें लगी बुद्धिसे
यं शयन आसन - जिन्हें सोते-बैठते
आदौ ध्यायन्त - के समय चिन्तन करते हुए
तत् साम्यं आपुः - जिनकी समता (सायुज्य) पा गये
पुनः अनुरक्त - फिर (उनमें) आसक्त
धियां किम् - चित्तोंका क्या पूछना

॥ ४८ ॥

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ।
मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥ ४९ ॥

सर्वात्मनि, ईश्वरे माया मनुष्यभावेन-गूढैश्वर्ये-परे-अन्वये-कृष्णे अपत्यबुद्धिं मा अकृथाः ॥ ४९ ॥

सर्वात्मनि - सब अवतारोंके आत्मा
ईश्वरे - जगत्के जन्मादिकर्ता
माया मनुष्य-भावेन - लीला करनेके लिये मनुष्यका रूप प्रकट करके
गूढैश्वर्ये - अपनाऐं ऐश्वर्ये छिपाने वाले
परे सर्वकारणातीत
अव्यये - अविनाशी
कृष्णे - सबको अपनी ओर आकर्षित कर आनन्द देने वाले कृष्णमें
अपत्य - पुत्र
बुद्धिं - ये मेरा ही पुत्र है
मा - ऐसा मत्
अकृथाः - समझो ॥ ४९ ॥

भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम् ।
अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥ ५० ॥

भूभार असुर राजन्य हन्तवे गुप्तये सतां अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशः लोके वितन्यते ॥ ५० ॥

भूभार	- पृथ्वीके भाररूप	**अवतीर्णस्य**	- अवतार लेकर
असुर राजन्य	- असुर राजाओंको	**निर्वृत्यै**	- (जीवोंको) शान्ति देनेके
हन्तवे	मारनेके लिए		लिए
सतां गुप्तये	- सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिए	**लोकेयशः**	- संसारमें अपना सुयश
		वितन्यते	फैला रहे हैं ॥५०॥

श्रीशुक उवाच–

एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ।
देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥

एतत् श्रुत्वा महाभागः वसुदेवः अति विस्मितः देवकी च महाभागा जहतुः मोहं आत्मनः ॥ ५१ ॥

एतत् श्रुत्वा	- यह सुनकर	**च महाभागा**	- तथा
अति विस्मितः	- अत्यन्त चकित	**देवकी**	महाभागा देवकीने
महाभागः	- महाभाग वसुदेवजीने	**आत्मनः मोहं**	- अपना मोह
वसुदेवः		**जहतुः**	- त्याग दिया ॥ ५१ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद् यः समाहितः ।
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

इतिहासं इमं पुण्यं धारयेत् यः समाहितः स विधूय इह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

यः समाहितः	- जो एकाग्रचित्त होकर	**स इह शमलं**	- वह इसी जीवनमें शोकादि
इमं पुण्यं	- इस पवित्र	**विधूय**	- दूर करके
इतिहासं	- इतिहासको	**ब्रह्म भूयाय**	- ब्रह्मस्वरूप हो जाता है
धारयेत्	- धारण करता है	**कल्पते**	॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ ब्रह्माऽऽत्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ।
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥

अथ ब्रह्मा आत्मजैः देवैः प्रजा ईशैः आवृतः अभ्यगात् भवः च भूत भव्य ईशः ययौ भूतगणैः वृतः ॥ १ ॥

अथ आत्मजैः	- फिर पुत्रों,	**च भूत-**	- तथा भूत-भविष्यके
दैवैः प्रजा ईशैः	- देवताओं, प्रजापतियोंसे	**भव्य ईशः**	स्वामी
आवृतः ब्रह्मा	- घिरे ब्रह्माजी	**भूतगणैः वृतः**	- भूतगणोंसे घिरे
अभ्यगात्	- आ पहुँचे	**भवः ययौः**	- शंकर जी आये ॥१॥

इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ।
ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥ २ ॥

इन्द्रः मरुत्भिः भगवान् आदित्या वसवः अश्विनौ ऋभवः अंगिरसः रुद्रा विश्वे साध्याः च देवताः ॥ २ ॥

मरुत्भिः	- मरुद्गणोंके साथ	**ऋभवः अंगिरसः**	- ऋभुगण, वृहस्पति,
भगवान् इन्द्रः	- भगवान् इन्द्र,	**रुद्रा विश्वे**	- एकादशरुद्र, विश्वेदेवा
आदित्याः	- द्वादश आदित्य	**च साध्याः-**	- तथा साध्य देवता
वसवः अश्विनौ	- आठो वसु, दोनों अश्विनी कुमार,	**देवताः**	॥ २ ॥

गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ।
ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥

गन्धर्व अप्सरसः नागाः सिद्ध चारण गुह्यकाः ऋषयः पितरः च एव स विद्याधर किन्नराः ॥ ३ ॥

गन्धर्व- - गन्धर्व, अप्सरायें,	**गुह्यकाः ऋषयः** -यक्ष, ऋषिगण,
अप्सरसः	**पितरः-** -पितर, विद्याधरोंके साथ
नागाः सिद्ध- - नाग, सिद्ध, चारण,	**सविद्याधर**
चारण	**किन्नराः एव च**-किन्नर लोग भी ॥ ३ ॥

द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ।
वपुषा येन भगवान् नरलोकमनोरमः ।
यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥

द्वारकां उप संजग्मुः सर्वे कृष्ण दिदृक्षवः वपुषा येन भगवान् नरलोक मनोरमः यशः वितेने लोकेषु सर्व लोक मल अपहम् ॥ ४ ॥

सर्वलोक - समस्त लोकोंका	**लोकेषु यशः** - सम्पूर्ण
मल अपहं - पापनाशक	**वितेने** लोकोंमें अपने सुयशका
नरलोक मनोरमं- विश्व सुन्दर	विस्तार किया था ।
येन वपुषा - जिस शरीरसे	**कृष्ण दिदृ-** - उस श्रीकृष्ण रूपके
	क्षवः दर्शनकी इच्छासे
	सर्वे द्वारकां - सब द्वारिकाके
	उप संजग्मुः - समीप (गगनमें) आये
	॥ ४ ॥

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ।
व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुदुतदर्शनम् ॥ ५ ॥

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः व्यचक्षत अवितृप्त अक्षाः कृष्णं अद्भुदुत दर्शनम् ॥ ५ ॥

तस्यां महर्द्धिभिः - उस महान ऋद्धियोंसे
समृद्धायां - वैभव सम्पन्ना
विभ्राजमानायां - अत्यन्त सुशोभिता पुरीमें
अवितृप्त अक्षाः - अतृप्तनेत्रोंसे
अद्भुत दर्शनं - विचित्र लावण्ययुक्त
कृष्णं व्यचक्षत - श्रीकृष्णका दर्शन किया ॥ ५ ॥

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् ।
गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग उद्यान उपगैः माल्यैः छादयन्तः यदूत्तमं गीर्भिः चित्र पदार्थाभिः तुष्टुवुः जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग उद्यान - स्वर्गके बगीचोंमें
उपगैः माल्यैः - उत्पन्न पुष्पोंसे
यदूत्तमं - यादव श्रेष्ठको
छादयन्तः - ढँकते हुए
चित्रपदार्थाभिः - विचित्र पद एवं अर्थ वाली
गीर्भिः - वाणीसे
जगदीश्वरं - उन जगदीश्वरकी
तुष्टुवुः - स्तुतिकी ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः—

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं
बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तै-
र्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धि इन्द्रियप्राण मनः वचोभिः यत् चिन्त्यते अन्तः हृदि भाव युक्तैः मुमुक्षुभिः कर्ममय उरुपाशात् ॥ ७ ॥

नाथ	- स्वामी !	**भावयुक्तैः**	- भावपूर्वक
कर्ममय	- कर्मरूपी	**चिन्त्यते**	- ध्यान किये जाते हैं
उरुपाशात्	- विकट फन्दोंसे	**ते पदारविन्दं**	- आपके उन चरण कमलोंमें
मुमुक्षुभिः	- छूटनेकी इच्छा वालों द्वारा	**बुद्धि इन्द्रिय**	- बुद्धि, इन्द्रिय,
यत् अन्तः हृदि	- जो हृदयके भीतर	**प्राण मनः वचोभिः**	- प्राण, मन, वाणीसे
		नताः स्म	- (हम) प्रणत हैं ॥ ७ ॥

त्वं मायया त्रिगुणयाऽऽत्मनि दुर्विभाव्यं
व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ।
नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै
यत् स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

त्वं मायया त्रिगुणया आत्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजसि अवसि लुम्पसि तत् गुणस्थः न एतैः भवान् अजित कर्मभिः अज्यते वै यत् स्वे सुखे अव्यवहिते अभिरतः अनवद्यः ॥ ८ ॥

त्वं त्रिगुणया मायया	- आपत्रिगुणमयी मायासे	**एते कर्मभिः**	-पर इन कर्मोंसे
आत्मनि	- अपने आपमें ही	**भवान् अजित**	-आप अपराजित
तद्गुणस्थः	- उन गुणोंमें स्थित होकर	**वै अज्यते न**	-निश्चय लिप्त नहीं होते
दुर्विभाव्यं व्यक्तं	- अचिन्त्य व्यक्त जगत्को	**यत् अव्यवहिते**	-क्योंकि अखण्ड
सृजसि लुम्पसि	- उत्पन्न करते, प्रलय करते हैं	**स्वसुखे अभिरतः**	-आत्मानन्दमें निमग्न
		अनवद्यः	-निर्दोष हैं ॥ ८ ॥

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां
विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-
सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

शुद्धिः नृणां न तु तथा इड्य दुःआशयानां विद्या श्रुत अध्ययन दान तपः क्रियाभिः सत्त्व आत्मनां ऋषभ ते यशसि प्रवृद्ध सत् श्रद्धया श्रवण सम्भृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

ईड्य ऋषभ	- स्तुति करने योग्योंमें सर्वश्रेष्ठ !	**क्रियाभिः**	- तथा कर्मोंसे
		तथा तुशुद्धिः न	- वैसी शुद्धि तो नहीं होती
दुःआशयानां	- मलिन अन्तःकरण		
नृणां	- मनुष्योंकी	**यथा सत्त्व आत्मनां**	- जैसी सात्त्विक चित्त लोगोंकी
विद्याश्रुत	- उपासना, श्रवण,		
अध्ययन	- वेदाध्ययन	**श्रवण सम्भृतया**	- कानोंमें पड़ते हुए
दान तपः	- दान, तपस्या,	**ते यशसि**	- आपके यशके द्वारा
		प्रवृद्ध सत् श्रद्धया	- बढ़ी हुई सात्विक श्रद्धासे
		स्यात्	- होती है ॥ ९ ॥

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः
क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ।
यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भि-
र्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥

स्यात् नः ततव अङ्घ्रिः अशुभ आशय धूमकेतुः क्षेमाय यः मुनिभिः आर्द्रहृदि उह्यमानः यः सात्वतैः सम विभूतय आत्मवद्भिः व्यूहे अर्चितः सवनशः स्वः अतिक्रमाय ॥ १० ॥

अशुभ आशय - मलिन अन्तःकरणके लिए
धूमकेतुः - अग्निके समान
तव अङ्घ्रि - आपके चरण
नः क्षेमाय स्यात् - हमारे कल्याणकारी हों,
यः मुनिभिः - जो मननशील साधकों द्वारा
आर्द्रहृदि उह्यमानः - द्रवित हृदयमें ढोये जाते हैं,
यः सात्वतैः - जो (पाञ्चरात्रो पासक) भक्तों द्वारा
सम विभूतय - समान ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए
सवनशः - प्रत्येक दिन (जिनका)
व्यूहे अर्चितः - चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण,- प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) रूपमें पूजा करते हैं
आत्मवद्भिः - जितेन्द्रिय पुरुषों द्वारा
स्वः- अतिक्रमाय - स्वर्गका अतिक्रमण करके (ऊर्ध्वगतिके लिए जिनकी पूजा होती है) ॥१०॥

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ
त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ।
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां
जिज्ञासुभिःपरमभागवतैःपरीष्टः ॥ ११ ॥

यः चिन्त्यते प्रयतपाणिभिः अध्वर अग्नौ त्रय्या निरुक्त विधिना ईश हविः गृहीत्वा अध्यात्मयोग उत योगिभिः आत्ममायां जिज्ञासुभिःपरम भागवतैःपरीष्टः ॥ ११ ॥

ईश - स्वामी !
त्रय्या निरुक्त - वेदत्रयी द्वारा निर्दिष्ट
विधिना - विधिसे (याज्ञिक लोग)
प्रयत पाणिभिः - संयत हाथोंमें
हविः गृहीत्वा - हविष्य लेकर
यः अध्वर अग्नौ - जिनका यज्ञाग्निमें
चिन्त्यते - चिन्तन करते हैं,
आत्ममायां - आपकी मायाके
जिज्ञासुभिः - जिज्ञासु
योगिभिः - योगियों द्वारा
अध्यात्मयोग - अध्यात्मयोगसे
उतपरम- भागवतैः - तथा श्रेष्ठ भगवद्भक्तों द्वारा
परीष्टः - (जिन्हें) परम इष्ट माना जाता है ॥ ११ ॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं
संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ।
यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो
भूयात् सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालया इमं संस्पर्धिनी भगवती प्रति पत्निवत् श्रीः यः सुप्रणीतं अमुया अर्हणं आददत् नः भूयात् सदा अङ्घ्रि अशुभ आशय धूमकेतुः ॥ १२ ॥

विभो	- प्रभो !	**अमुया अर्हणं**	- इस (वासी वनमाला)का पूजन भी
तव इयं	- आपकी इस	**आददत्**	- स्वीकार करते हैं,
पर्युष्टया	- बासी	**नः सदा-**	- हमारे लिए सदा (उन
वनमालया	- वनमालासे	**अङ्घ्रि**	आपके) चरण
भगवती श्रीः	- भगवती लक्ष्मी	**आशय अशुभ**	- अन्तःकरणके मलके लिए
प्रतिपत्निवत्	- विरोधिनी सौतके समान	**धूमकेतुः**	- (भस्म करने वाले) अग्नि
संस्पर्धिनी	- स्पर्धा करती हैं; किन्तु	**भूयात्**	हों ॥ १२ ॥
यः सुप्रणीतं	- जो भावपूर्वक लायी		

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको
यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ।
स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्
पादः पुनातु भगवन् भजतामघं नः ॥ १३ ॥

केतुः त्रिविक्रम युतः त्रिपतत् पताकः यः ते भय अभयकरः असुर देव चम्वोः स्वर्गाय साधुषु खलेषु इतराय भूमन् पादः पुनातु भगवन् भजतां अघं नः ॥ १२ ॥

त्रिविक्रम-	- (वामनावतारमें विराट्
युतः	रूपसे)
	तीनों लोक नापते समय
केतुः	- (जो आपका चरण)
	ध्वजा लगता था,
त्रिपतत्	- (उससे) तीन धाराओंमें
	गिरती (गंगा)
पताकः	- पताकायें लगती थीं
यः ते	- जो आपके (चरण)
असुर चम्वोः	- असुरसेनाके लिए
भयदेव-	- भय तथा देवताओंको
अभयकरः	निर्भय करने वाले,
साधुषु	- साधु पुरुषोंको ऊर्ध्व
स्वर्गाय	लोक
खलेषु-	- दुष्टोंको दूसरे (अधोलोक
इतराय	देनेवाले हैं)
भूमन् भगवन्	- सर्वव्यापक भगवान
पादः न-	- (आपके वे) चरण हम
भजतां	भजन करने वालोंको
अघं पुनातु	- पापोंसे पवित्र कर दें
	॥ १३ ॥

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति
ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोःपरस्य
शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

नसि ओत गाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मा आदयः तनुभृतः मिथुः अर्द्यमानाःकालस्य ते प्रकृति पुरुषयोःपरस्य शं नः तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥ १४ ॥

ब्रह्मा आदयः	- ब्रह्मा आदि
तनुभृतः	- समस्त शरीर धारी
मिथुः अर्द्यमानाः	- परस्पर ही टकराते हुए
नसिओत	- नाककी रस्सीसे बँधे
गाव इव	- बैलोंके समान
यस्य वशे-	- जिसके वशमें हो
भवन्ति	जाते हैं
ते कालस्य	- उन आपकाल रूप
प्रकृति पुरुषयोः	- प्रकृति और पुरुष (जीव)से
परस्य-	- श्रेष्ठ पुरुषोत्तमके
पुरुषोत्तमस्य	
चरणः नः	- चरण हमें
शं तनोतु	- शान्ति प्रदान करें
	॥ १४ ॥

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ।
सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः
कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥ १५ ॥

अस्य असि हेतुः उदय स्थिति संयमानां अव्यक्त जीव महतां अपि कालं आहुः सः अयं त्रिणाभिः अखिल अपचये प्रवृत्तःकालः गभीररय उत्तम पूरुषः त्वम् ॥ १५ ॥

अस्य उदय	- इस जगत्की उत्पत्ति,	**स अयं**	- वहये
स्थिति संयमानां	- स्थिति, संहारके	**त्रिणाभिः**	- (सर्दी, गर्मी, वर्षा) तीनकें चक्रवाले
हेतुः असि	- (आप)कारण हैं,	**अखिल उपचये**	- सबको समेट लेने वाले
अव्यक्त जीव	- प्रकृति, पुरुष,	**गभीररय**	- गम्भीर वेग
महतां अपि	- महत्तत्त्वके भी	**कालः प्रवृत्तः**	- कालके रूपमें सक्रिय
कालं आहुः	- (नियन्त्रक) काल (आपको) शास्त्रने कहा है,	**त्वं उत्तम-पूरुषः**	- आप पुरुषोत्तम हैं ॥ १५ ॥

त्वत्तः पुमान् समधिगम्य यया स्ववीर्यं
धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ।
सोऽयं तयानुगत आत्मन आण्डकोशं
हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥ १६ ॥

त्वत्तः पुमान् सम अधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महान्तं इव गर्भं अमोघवीर्यः सः अयं तया अनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिः आवरणैः उपेतम् ॥ १६ ॥

त्वत्तः पुमान् - आपसे यह पुरुष
समधिगम्य - भली प्रकार एक होकर
अमोघवीर्यः - अमोघ वीर्य होकर
यया महान्तं - जिस मायामें
इव महत्तत्त्वरूप
गर्भं धत्ते - गर्भाधान करता है,
सः अयं - वही यह (महत्तत्त्व) रूप पुरुष
तया अनुगत - उस मायाके साथ होकर
बहिः आवरणैः - बाहरी (पंच महाभूत, अहंकार और मन इन सात) आवरणोंसे
उपेतं - युक्त
हैमं आण्डकोशं - स्वर्णिम ब्रह्माण्डकी
ससर्ज - रचना करता है ॥ १६ ॥

तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो
यन्मायययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ।
अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो
येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तत् तस्थुषः च जगतः च भवान् अधीशः यत् मायया उत्थ गुण विक्रियय उपनीतान् अर्थान् जुषन् अपि हृषीकपते न लिप्तः ये अन्ये स्वतः परिहृतात् अपि बिभ्यति स्म ॥ १७ ॥

तत् हृषीकपते - अतः हृषीकेश
तस्थुषः च - स्थावरों तथा
जगतः च - जंगमोंके भी
भवान् अधीशः - आप स्वामी हैं,
मायया उत्थ - मायासे उत्पन्न
गुण विक्रियय - गुणोंके विकारोंसे
उपनीतान् - उपलब्ध कराये गये
अर्थान् जुषन् - भोगोंको भोगते हुए
अपि भी
न लिप्तः - उनसे लिप्त नहीं होते,
ये अन्ये - जो दूसरे हैं (वे)
स्वयं- - स्वयं उनका
परिहृतात् अपि त्याग करके भी
बिभ्यतिस्म - (उनसे आसक्तिके भयसे) डरते रहते हैं ॥ १७ ॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि-
भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणै
र्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥ १८ ॥

स्माय अवलोक लव दर्शित भाव हारि भ्रूमण्डल प्रहित सौरत मन्त्र शौण्डैः पत्न्यः तु षोडश सहस्रं अनङ्बाणैः यस्य इन्द्रियं विमथितुं करणैः न विभ्व्यः ॥ १८ ॥

स्माय अवलोक	- मुस्कान भरी तिरछी चितवनसे	**षोडश सहस्र**	- सोलह सहस्र
लव दर्शित	- किञ्चित् दिखालायी गयी	**पत्न्यः तु**	- पत्नियां तो
भाव हारि	- मनोहारिणी	**यस्य इन्द्रियं**	- जिनकी इन्द्रियोंका
भ्रूमण्डल प्रहित	- भौहोंके नचाने तथा	**विमथितुं**	- मन्थन करनेमें
सौरत मन्त्र	- सुरत आलापोंके	**करणैः**	- अपने साधनोंसे
शौण्डैः अनंग	- परिपुष्टकाम बाणोंसे	**विभ्व्यः न**	- सफल नहीं हुईं
बाणैः			॥ १८ ॥

विभ्व्यस्तवामृत कथोदवहास्त्रिलोक्याः
पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ।
आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसंगै-
स्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ॥ १९ ॥

विभ्व्यः तव अमृत कथा उदवहाः त्रिलोक्याः पाद अवनेज सरितः शमलानि हन्तुं आनुश्रवं श्रुतिभिः अङ्घ्रिजं अंगसंगैः तीर्थद्वयं शुचिषदः त उपस्पृशन्ति ॥ १९ ॥

तव अमृत कथा	- आपकी अमृतमयी कथा	**श्रुतिभिः**	- कानोंके द्वारा (कथाको)
उदवहाः	- की नदी और	**आनुश्रवं**	- एक दूसरेसे सुनकर और
पाद अवनेज	- चरण प्रक्षालनसे निकली	**अङ्घ्रिजं**	- चरणोंसे निकली (गंगा)को
सरितः	- सुरसरिता (दोनों)	**अंग संगैः**	- शरीरसे डुबकी लगाकर
त्रिलोक्याः-	- तीनों लोकोंके पापोंको	**तीर्थद्वयं**	- दोनों तीर्थोंका
शमलानि		**उपस्पृशन्ति**	- (जो) सेवन करते हैं
हन्तुं विभ्यः	- नाश करनेमें समर्थ हैं,	**त शुचिषदः**	- वे पवित्रतम हैं ॥ १९ ॥

बादरायणिरुवाच–

इत्यभिष्टूय विबुधैःसेशः शतधृतिर्हरिम्
अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥ २० ॥

इति अभिष्टूय विबुधैः स ईशः शतधृतिः हरिं अभ्य भाषत गोविन्दं प्रणम्य अम्बरं आश्रितः ॥ २० ॥

इति विबुधैः	- इस प्रकार देवताओं तथा	**प्रणम्य**	-प्रणाम करके
सईशः	- शंकर जीके साथ	**अम्बरं आश्रितः**	-आकाशमें स्थित होकर
हरिं गोविन्दं	- श्री हरि गोविन्दकी	**अभ्य भाषत**	-अच्छी तरह बोले
अभिष्टूय	- स्तुति करके		॥ २० ॥

ब्रह्मोवाच–

भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो ।
त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥ २१ ॥

भूमेः भार अवताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो त्वं अस्माभिः अशेष आत्मन् तत् तथा एव उपपादितम् ॥ २१ ॥

अशेष आत्मन् - सर्वात्मा !
प्रभो - प्रभो
पुरा अस्माभिः - पहिले हम लोगों द्वारा
भूमेः भार - पृथ्वीका भार
अवताराय - उतारनेके लिए
विज्ञापितः - (आपसे) प्रार्थनाकी गई थी
तत् तथा एव - उसे वैसी ही
उपपादितं - (आपने) सम्पन्न कर दी ॥ २१ ॥

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया ।
कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥ २२ ॥

धर्मः च स्थापितः सत्सु सत्यसन्धेषु वै त्वया कीर्तिः च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोक मल अपहा ॥ २२ ॥

वै सत्य सन्धेषु - निश्चय सत्यपरायण
सत्सु च - सत्पुरुषोंके लिए ही
धर्मः स्थापितः - धर्मकी स्थापना कर दी,
सर्वलोक - सब लोकोंकी
मल अपहा - पाप नाशिनी
कीर्तिः च दिक्षु - (अपनी)कीर्ति भी दिशाओंमें
त्वया विक्षिप्ता - आपने फैला दी ॥२२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद् रूपमनुत्तमम् ।
कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥

अवतीर्य यदोः वंशे विभ्रत् रूपं अनुत्तमं कर्माणि उद्दामवृत्तानि हिताय जगतः अकृथाः ॥ २३ ॥

यदोः वंशे - यदुवंशमें
अवतीर्य - अवतार धारण करके
अनुत्तमं - जिससे श्रेष्ठ दूसरा नहीं है ऐसा
रूपं विभ्रत् - रूप धारण करके
जगतः हिताय - संसारके कल्याणके लिए
उद्दाम वृत्तानि - सीमातीत पराक्रम वाले
कर्माणि अकृथा - कर्म (आपने) किये ॥ २३ ॥

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ ।
शृण्वन्तःकीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥ २४ ॥

यानि ते चरितानि ईश मनुष्याः साधवः कलौ शृण्वन्तःकीर्तयन्तः च तरिष्यन्ति अञ्जसा तमः ॥ २४ ॥

ईश	- स्वामी !	**शृण्वन्तः च**	- सुनेंगे और
यानि ते	- आपके जो चरित हैं	**कीर्तयन्तः च**	- वर्णन भी करेंगे (वे)
चरितानि	उनको	**अञ्जसा तमः**	- सरलतापूर्वक अज्ञानसे
कलौ साधवः	- कलियुगमें साधु पुरुप	**तरिष्यन्ति**	- पार हो जायंगे ॥२४॥
मनुष्याः			

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम ।
शरच्छतं व्यतीताय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

यदुवंशे अवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम शरत् शतं व्यतीताय पञ्चविंश अधिकं प्रभो ॥ २५ ॥

प्रभो पुरुषोत्तम	- प्रभो पुरुपोत्तम	**पञ्चविंश अधिकं**	- पच्चीस अधिक
यदुवंशे	- यदुवंशमें	**शतं शरत्**	- सौ वर्ष (एक सौ पच्चीस वर्प)
भवतः-	- आपको अवतार लिए		
अवतीर्णस्य		**व्यतीताय**	- बीत गये ॥ २५ ॥

नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ।
कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ २६ ॥

न आधुना ते अखिल आधार देवकार्य अवशेषितं कुलं च विप्र शापेन नष्टप्रायं अभूत् इदम् ॥ २६ ॥

अखिल आधार	- सर्वाधार !	**च इदं कुलं**	- और यह (यदु) कुल भी
ते अधुना	- आपके लिए अब	**विप्रशापेन**	- ब्राह्मणोंके शापसे
देवकार्य	- देवताओंका (कोई) काम	**नष्टप्रायं**	- प्रायः नष्ट
अवशेषितं न	- बचा नहीं है,	**अभूत्**	- हो चुका है ॥ २६ ॥

ततः स्वधामपरमं विशस्व यदि मन्यसे ।
सलोकाँल्लोकपालान् नः पाहि वैकुण्ठकिङ्करान् ॥ २७ ॥

ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे सलोकान् लोकपालान् नः पाहि वैकुण्ठ किंकरान् ॥ २७ ॥

ततः यदि-	- अतः यदि आपकी	**सलोकान्**	- लोकोंके साथ
मन्यसे	इच्छा हो	**नः वैकुण्ठ**	- हम वैकुण्ठके सेवक
स्वपरमं धाम	- अपने परम धाममें	**किंकरान्**	
विशस्व	- प्रवेश कीजिए	**लोकपालान्**	- लोकपालोंकी
		पाहि	- रक्षा कीजिए ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच–

अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ।
कृतं वःकार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥

अवधारितं एतत् मे यत् अत्थ विबुध ईश्वर कृतं वःकार्यं अखिलं भूमेः भारः अवतारितः ॥ २८ ॥

विबुध ईश्वर	- देवताओंके स्वामीः	**वः अखिलंकार्यं**	-आप लोगोंका सबकार्य
यत् अत्थ	- आप जो कहते हैं	**कृतं**	-कर दिया
एतत् मे	- यह मैंने	**भूमेः भारं**	-पृथ्वीका भार
अवधारितं	- सोच लिया है,	**अवतारितः**	-उतार दिया ॥ २८ ॥

तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ।
लोकं जिघृक्षद् रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥

तत् इदं यादवकुलं वीर्यशौर्य श्रिय उद्धतं लोकं जिघृक्षत् रुद्धं मे वेलया इव महा अर्णवः ॥ २९ ॥

तत् इदं - सो यह
वीर्य शौर्य - पराक्रम, शूरता,
श्रिय उद्धतं - लक्ष्मीसे उद्धत
यादवकुलं - यदुकुल
लोकं- - लोकोंको ग्रस लेना चाहता
जिघृक्षति है,
महाअर्णवः - महासागरके
वेला इव - किनारेके समान
मे रुद्धं - मैंने रोक रखा है ।।२९।।

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ।
गन्तास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ।। ३० ।।

यदि असंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलं गन्ता अस्मि अनेन लोकः अयं उद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ।। ३० ।।

यदि दृप्तानां - यदि घमंडी
यदूनां विपुलं - यादवोंके विशाल
कुलं कुलको
असंहृत्य - नष्ट किये बिना
गन्ताअस्मि - चला जाऊंगा तो
अयं लोकः - यह संसार
उद्वेलेन - मर्यादाहीन होकर
विनङ्क्ष्यति - नष्ट हो जायेगा ।।३०।।

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ।
यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ।। ३१ ।।

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विज शापतः यास्यामि भवनं ब्रह्मन् एतत् अन्ते तव अनघ ।। ३१ ।।

अनघ ब्रह्मन् - निष्पाप ब्रह्माजी !
इदानीं- - इस समय ब्राह्मणोंके
द्विजशापतः शापसे
कुलस्य नाश - इस कुलका नाश
आरब्धः - प्रारम्भ हो गया है
एतत् अन्ते - इसके समाप्त हो जानेपर
तव भवनं - आपके धाम होकर
यास्यामि - जाऊंगा ।। ३१ ।।

श्रीशुक उवाच–

इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तम् ।
सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥

इति उक्तः लोकनाथेन स्वयम्भूः प्रणिपत्य तं सह देवगणैः देवः स्वधाम समपद्यत ॥ ३२ ॥

लोकनाथेन	- सर्व लोकेश्वरके	**स्वयम्भूः देवः**	- ब्रह्मदेवजी
इति उक्तः	- ऐसा कहनेपर	**देवगणैः सह**	- सुरगणोंके साथ
तं प्रणिपत्य	- उनको प्रणाम करके	**स्वधाम समपद्यत**	- अपने धाम पहुँच गये ॥ ३२ ॥

अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् ।
विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान् समागतान् ॥ ३३ ॥

अथ तस्यां महा उत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् विलोक्य भगवान् आह यदुवृद्धान् सम आगतान् ॥ ३३ ॥

अथ तस्यां द्वारवत्यां	- फिर उस द्वारिकापुरीमें	**विलोक्य सम-उपागतान्**	- देखकर अपने समीप आये
समुत्थितान्	- चारों ओर होते	**यदु वृद्धान्**	- यादववृद्धोंसे
महा उत्पातान्	- बड़े अपशकुनोंको	**भगवान् आह**	- भगवानने कहा ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच–

एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः ।
शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥

एते वै सुमहा उत्पाता व्युत्तिष्ठन्ति इह सर्वतः शापः च नः कुलस्य आसीत् ब्राह्मणेभ्यः दुःअत्ययः ॥ ३४ ॥

वै इह एते - निश्चय यहां ये
सुमहा उत्पाता - अत्यन्त बड़े अपशकुन
सर्वतः- - चारों ओर हो रहे हैं
व्यतिष्ठन्ति

च नः कुलेभ्यः - और हमारे कुलको
दुः अत्ययः - दुष्पार
ब्राह्मणेभ्यः - ब्राह्मणोंसे
शापः आसीत् - शाप भी मिला है
॥ ३४॥

न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ।
प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव माचिरम् ॥ ३५ ॥

न वस्तव्यं इह अस्माभिः जिजीविषुभिः आर्यकाः प्रभासं सुमहत् पुण्यं यास्यामः अद्य एव मा चिरम् ॥ ३५ ॥

आर्यकाः - श्रेष्ठपुरुषोः
जिजीविषुभिः - जीनेकी इच्छा वाले
अस्माभिः - हम लोगोंको
इह न वस्तव्यं - यहां नहीं ठहरना चाहिए

अद्य एव - आज ही
सुमहत् पुण्यं - अत्यन्त पवित्र क्षेत्र
प्रभासं यास्यामः - हम प्रभास जायंगे
मा चिरम् - विलम्ब मतकीजिए
॥ ३५ ॥

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ।
विमुक्तः किल्बिषात् सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥ ३६ ॥

यत्र स्नात्वा दक्षशापात् गृहीतः यक्ष्मणा उडुराट् विमुक्तः किल्बिषात् सद्यः भेजे भूयः कला उदयम् ॥ ३६ ॥

दक्षशापात् - दक्षके शापसे
यक्ष्मणा गृहीतः - राजयक्ष्मासे ग्रस्त
उडुराट् यत्र - चन्द्रमाने जहां स्नान
स्नात्वा करके

सद्यः किल्बिषात् - तत्काल पापजन्य रोगसे
विमुक्तः भूयः - छूटकर फिर
कला उदयं भेजे - कलाओंका उदय प्राप्त किया ॥ ३६ ॥

वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् ।
भोजयित्वोशिजो विप्रान् नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥

वयं च तस्मिन् आप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् भोजयित्वा उशिजः विप्रान् नाना गुणवता अन्धसा ॥ ३७ ॥

वयं च तस्मिन्	- हम लोग भी उस (प्रभास क्षेत्र) में	**नाना गुणवता**	- अनेक प्रकारके गुणवान
		अन्धसा उशिजः	- पकवानोंसे
आप्लुत्य	- स्नान करके	**विप्रान्**	श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको
पितॄन् सुरान्	- पितरों एवं देवताओंका	**भोजयित्वा**	- भोजन करावेंगे
तर्पयित्वा	- तर्पण करके		॥ ३७ ॥

तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै ।
वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥

तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धया उप्त्वा महान्ति वै वृजिनानि तरिष्यामः दानैः नौभिः इव अर्णवम् ॥ ३८ ॥

तेषु पात्रेषु	- उन सत्पात्रोंको	**वृजिनानि**	- संकटोंसे
श्रद्धया वै	- श्रद्धापूर्वक निश्चय दान	**दानैः**	- दान रूपी
दानानि		**नौभिः-**	- नौकासे समुद्रकी भाँति
उप्त्वा महान्ति	- करके महान्	**अर्णवं इव**	
		तरिष्यामः	- पार हो जायेंगे
			॥ ३८ ॥

श्रीशुक उवाच–

एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनन्दन ।
गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान् समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

एवं भगवता आदिष्टा यादवाः कुलनन्दन गन्तुं कृतधियः तीर्थं स्यन्दानान् समयूयुजन् ॥ ३९ ॥

कुलनन्दन	- कुलनन्दन परीक्षित !	**तीर्थं गन्तुं**	- (प्रभास) तीर्थ जानेका
एवं भगवता	- इस प्रकार भगवान द्वारा	**कृतधियः**	- निश्चय करके
आदिष्टा-	- आदेश पाकर यादव	**स्यन्दनान्**	- रथोंको
यादवाः	लोग	**समयूयुजन्**	- भली प्रकार जोतने लगे ॥ ३९ ॥

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजन् श्रुत्वा भगवतोदितम् ।
दृष्ट्वारिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥

तत् निरीक्ष्य उद्धवः राजन् श्रुत्वा भगवत उदितम् दृष्ट्वा अरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णं अनुव्रतः ॥ ४० ॥

राजन्	- राजन् !	**भगवता उदितं**	- भगवानकी बात
नित्यं कृष्णं	- श्रीकृष्णके नित्य	**श्रुत्वा**	- सुनकर
अनुव्रतः उद्धवः	- अनुयायी उद्धव	**घोराणि-**	- घोर अपशकुनोंको
तत् निरीक्ष्य	- वह (यादवोंकी तैयारी) देखकर	**अरिष्टानि**	
		दृष्ट्वा	- देखकर ॥ ४० ॥

विविक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ।
प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ॥ ४१ ॥

विविक्त उपसंगम्य जगतां ईश्वर ईश्वरं प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिः तं अभाषत ॥ ४१ ॥

जगतां ईश्वर-	- जगदीश्वरोंके भी	**पादौ शिरसा**	- चरणोंपर सिर रखकर
ईश्वरं	स्वामी श्रीकृष्णके	**प्रणम्य**	- प्रणाम करके
विविक्त-	- एकान्तमें समीप जाकर	**प्राञ्जलिः**	- हाथ जोड़कर
उपसंगम्य		**तं अभाषत**	- उनसे बोले ॥ ४१ ॥

उद्धव उवाच–

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ।
संहृत्यैतत् कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् ।
विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥

देव देव ईश योगेश पुण्य श्रवणकीर्तन संहृत्य एतत् कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान् विप्रशापं समर्थः अपि प्रत्यहन् न यत् ईश्वरः ॥ ४२ ॥

देवदेवईश - देव देवेश्वर !
योगेश - योगेश्वर !
पुण्य-श्रवणकीर्तन - जिनकी लीला सुनकर और कीर्तन करके जीव पवित्र होता है
भवान् नूनं - वह आप निश्चय
एतत् कुलं-संहृत्य - इस कुलका संहार करके
लोकं सन्त्यक्ष्यते - इस लोकका त्याग करेंगे
यत् ईश्वरः - क्योंकि आप ईश्वर हैं,
समर्थः अपि - समर्थ होते हुए भी
यत् विप्रशापं - क्योंकि ब्राह्मणोंके शापको
प्रत्यहन् न - मिटाया नहीं है
॥ ४२ ॥

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपिकेशव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥ ४३ ॥

न अहं तव अङ्घ्रि कमलं क्षण अर्धं अपि केशव त्यक्तुं सम उत्सहे नाथ स्वधाम नय मां अपि ॥ ४३ ॥

नाथकेशव - स्वामी केशव !
अहं तव - मैं आपके चरण
अङ्घ्रि कमलं कमलोंको
अर्धक्षणं अपि - आधे क्षणके लिए भी
त्यक्तुं न सम-उत्सहे - छोड़नेका तनिक भी उत्साह नहीं करता
मां अपि - (अतः) मुझे भी
स्वधाम नय - अपने धाम ले चलिये
॥ ४३ ॥

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परम मंगलं कर्णपीयूषं आस्वाद्य त्यजति अन्य स्पृहां जनः ॥ ४४ ॥

कृष्ण	- श्रीकृष्ण !	**तव विक्रीडितं**	- आपकी लीलाओंका
नृणांपरम-	- मनुष्योंके लिए परम	**आस्वाद्य जनाः**	- स्वाद लेकर लोग
मंगलं	मंगलदायी	**अन्य स्पृहां**	- दूसरी इच्छायें
कर्ण पीयूष	- कानोंके लिए अमृतके समान	**त्यजति**	- त्याग देते हैं ॥ ४४ ॥

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ।
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥

शय्या आसन अटन स्थान स्नान क्रीडा अशन आदिषु कथं त्वां प्रियं आत्मानं वयं भक्ताः त्यजे महि ॥ ४५ ॥

शय्या आसन	- सोते-बैठते,	**वयं भक्ताः**	- हम आपके भक्त
अटन स्थान	- घूमते-खड़े,	**आत्मानं प्रियं**	- अपनेपरम प्रिय
स्नान क्रीड़ा	- स्नान या खेलमें,	**त्वां कथं-**	- आपको कैसे
अशन आदिषु	- भोजन आदिमें (साथ रहने वाले)	**त्यजे महि**	छोड़ सकते हैं ॥ ४५ ॥

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलंकारचर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥ ४६ ॥

त्वया उपभुक्त स्त्रक्गन्ध वासः अलंकार चर्चिताः उच्छिष्ट भोजिनः दासाः तव मायां जये महि ॥ ४६ ॥

त्वया उपभुक्त - आपकी उपभोगकी हुई
स्रक्गन्ध - माला, चन्दन,
वासः अलंकार - वस्त्र, आभूषणसे
चर्चिताः - अलंकृत
तव उच्छिष्ट भोजिनः - आपकां जूठा खाने वाले
दासाः - हमसेवक
मायां जये महि - मायाको जीत लेंगे ॥ ४६ ॥

वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ।
ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥

वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः ब्रह्म आख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः सन्यासिनः अमलाः ॥ ४७ ॥

यः वात रशना - जो दिगम्बर
श्रमणा ऋषयः - तपस्वी ऋषि,
ऊर्ध्व मन्थिनः - आजन्म ब्रह्मचारी,
शान्ताः अमलाः - शान्त, निर्मलचित्त,
सन्यासिनः - सर्वस्वत्यागी हैं (वे)
ते ब्रह्म आख्यं धामयान्ति - आपके ब्रह्म नामक धाम जाते हैं ॥ ४७ ॥

वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु ।
त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥

वयं तु इह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्म वर्त्मसु त्वत् वार्तया तरिष्यामः तावकैः दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥

महायोगिन् - महायोगिन् !
वयं तु इह - हम तो इस संसारमें
कर्म वर्त्मसु - कर्म मार्गमें
भ्रमन्तः - भटकते हुए
तावकैः त्वत् वार्तया - आपके भक्तोंसे आपकी चर्चा करते हुए
दुस्तरं तमः - दुष्पार अज्ञानसे
तरिष्यामः - पार हो जायंगे ॥४८॥

स्मरन्तःकीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च ।
गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥

स्मरन्तःकीर्तन्यतः ते कृतानि गदितानि च गति उत्स्मिते क्षणक्ष्वेलि यत् नृलोक विडम्बनम् ॥ ४९ ॥

ते गदितानि	- आपके उपदेश तथा	**क्षण क्ष्वेलि**	- सामयिक हास-परिहासको
यत् नृलोक	- जो मनुष्य लोकमें	**स्मरन्तः-**	- स्मरण एवं वर्णन करते
विडम्बनं कृतानि	- लीलायें (आपने) की हैं	**कीर्तयन्तः**	हुए (आपकी माया
च उत्स्मिते	- तथा मुस्कान		पार कर लेंगे) ॥४९॥

श्रीशुक उवाच–

एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः ।
एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत॥५०॥

एवं विज्ञापितः राजन् भगवान् देवकी सुतः एकान्तिनं प्रियं भृत्यं उद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

राजन्	- राजन् !	**एकान्तिनं प्रियं**	- अनन्य प्यारे
एवं विज्ञापितः	- इस प्रकार प्रार्थना	**भृत्यं उद्धवं**	- सेवक उद्धवसे
	करनेपर	**समभाषत**	- कहा ॥ ५० ॥
भगवान् देवकी-	- भगवान देवकी-नन्दनने		
सुतः			

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ।
ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वास मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

यत् आत्थ मां महाभाग तत् चिकीर्षितं एव मे ब्रह्मा भवः लोकपालाः स्वः वास मे अभिकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

महाभाग	- महाभाग उद्धव !	**ब्रह्मा भवः**	- ब्रह्मा, शिवजी तथा
यत् मां आत्थ	- जो मुझसे कह रहे हो	**लोकपालाः**	लोकपाल लोग
तत् मे	- वही मेरी करनेकी	**मे स्वः वासः**	- मेरा ऊपरी (अपने)
चिकीर्षितं	इच्छा है		लोकमें रहना
		अभिकाङ्क्षिणः	- चाहते हैं ॥ १ ॥

मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ।
यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥

मया निष्पादितं हि अत्र देवकार्यं अशेषतः यत् अर्थं अवतीर्णः अहं अंशेन ब्रह्मणा अर्थितः ॥ २ ॥

हि ब्रह्मणा अर्थितः	- क्योंकि ब्रह्माकी प्रार्थनासे	**अत्र देवकार्यं**	- इस लोकमें वह देवताओंकाकाम
अहं अंशेन	- मैं अपने अंश (बलरामजी)के साथ	**मया अशेषतः निष्पादितं**	- मैंने सम्पूर्ण रूपसे पूरा कर दिया है ॥ २ ॥
यत् अर्थं- अवतीर्णः	- जिस प्रयोजनके लिए अवतरित हुआ था		

कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ।
समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥

कुलं वै शाप निर्दग्धं नङ्क्ष्यति अन्यः अन्य विग्रहात् समुद्रः सप्तमे अह्नि एतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥

वै शाप निर्दग्धं - निश्चय शापसे जला हुआ
कुलं अन्यः - यदुकुल एक दूसरेके
अन्य साथ
विग्रहात् - युद्ध करके नष्ट हो
नङ्क्ष्यति जायगा
सप्तमे अह्नि - आजसे सातवें दिन
समुद्रः एतां - समुद्र
पुरीं च इस पुरीको भी
प्लावयिष्यति - डुबा देगा ॥ ३ ॥

यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ।
भविष्यत्यचिरात् साधो कलिनापि निराकृतः ॥ ४ ॥

यर्हिएव अयं मया त्यक्तः लोकः अयं नष्ट मंगलः भविष्यति अचिरात् साधो कलिना अपि निराकृतः ॥ ४ ॥

साधो - साधु उद्धव !
यर्हिएव अयं - जैसे ही यह लोक
मया त्यक्तः - मेरा द्वारा छोड़ा जायेगा
नष्ट मंगलः - समस्त मंगल नष्ट हुआ
अचिरात् अयं - तत्काल यह
लोकः लोक
कलिना अपि - कलियुग द्वारा भी
निराकृतः - आक्रान्त
भविष्यति - हो जायेगा ॥ ४ ॥

न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ।
जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥

न वस्तव्यं त्वया एव इह मया त्यक्ते महीतले जनः अधर्म रुचिः भद्र भविष्यति कलौयुगे ॥ ५ ॥

भद्र	- कल्याणमय उद्धव !	**इह न वस्तव्यं**	- यहां नहीं रहना चाहिए
मया महीतले	- मेरे पृथ्वीको छोड़	**कलौयुगे**	- (क्योंकि) कलियुगमें
त्यक्ते	देनेपर	**जनः रुचिः**	- लोगोंकी रुचि
त्वया एव	- तुमको भी	**अधर्म-**	- अधर्मकी हो जायेगी
		भविष्यति	॥ ५ ॥

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजन बन्धुषु मयि आवेश्य मनः सम्यक् समदृक् विचरस्व गाम् ॥ ६ ॥

त्वं तु	- तुम तो	**मयि सम्यक्**	- मुझमें भली प्रकार
स्वजन बन्धुषु	- आत्मीय सम्बन्धियोंका	**मनः आवेश्य**	- चित्त प्रविष्ट करके
सर्वं स्नेहं	- सब स्नेह परित्याग	**समदृक्**	- समदर्शी होकर
परित्यज्य	करके	**गां विचरस्व**	- पृथ्वीपर विचरण करो ॥ ६ ॥

यदिदं मनसा वाचा चक्षुभ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥ ७ ॥

यत् इदं मनसा वाचा चक्षुभ्यां श्रवण आदिभिः नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि माया मनोमयम् ॥ ७ ॥

यत् इदं	- यह जो जगत	**गृह्यमाणं च**	- ग्रहण होता है तथा
मनसा वाचा	- मनसे, वाणीसे,	**नश्वरं**	- नाशवान है उसे
चक्षुभ्यां	- नेत्रोंसे	**मनोमयं**	- मनसे बनी
श्रवण आदिभिः	- कर्णादि इन्द्रियोंसे	**मायां विद्धि**	- माया समझो ॥ ७ ॥

पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ।
कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

पुंसः अयुक्तस्य नाना अर्थः भ्रमः स गुण दोष भाक् कर्म अकर्म विकर्म इति गुण दोष धियः भिदा ॥ ८ ॥

अयुक्तस्य पुंसः	- चंचल चित्त पुरुषको	**कर्म अकर्म**	- कर्तव्य, अकर्तव्य
नाना अर्थ भ्रमः	- पदार्थोंके अनेक होनेका भ्रम होता है,	**विकर्म इति**	- विशेष अधिकारीके कर्म यह
सगुण दोष भाक्	- वही गुण-दोषका भागी होता है,	**गुण दोष धियः भिदा**	- गुण-दोषमयी बुद्धिसे - भेद होता है ॥ ८ ॥

तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥

तस्मात् युक्त इन्द्रियग्रामः युक्तचित्त इदं जगत् आत्मन् ईक्षस्व विततं आत्मानं मयि अधीश्वरे ॥ ९ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**आत्मन् विततं**	- अपने भीतर ही व्याप्त
युक्त इन्द्रियग्रामं	- इन्द्रिय समूहको संयमित करके	**ईक्षस्व**	- देखो और
		आत्मा नं मयि	- अपने आपको मुक्त
युक्त चित्तं	- एकाग्रचित्तसे	**अधीश्वरे**	- सर्वेश्वरमें (स्थित देखो) ॥ ९ ॥
इदं जगत्	- इस जगतको		

ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ।
आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥ १० ॥

ज्ञान विज्ञान संयुक्त आत्मभूतः शरीरिणां आत्म अनुभव तुष्ट आत्मा न अन्तरायैः विहन्यसे ॥ १० ॥

ज्ञान विज्ञान	- (शास्त्रीय) ज्ञान तथा (अनुभव रूप) विज्ञानसे	**तुष्ट आत्मा**	- सन्तुष्ट चित्त
		अन्तरायैः	- विघ्नोंसे
संयुक्त	- युक्त होकर	**विहन्यसे न**	- पीड़ित नहीं होगे ॥ १० ॥
शरीरिणां	- समस्त देहधारियोंके		
आत्मभूतः	आत्म-स्वरूप होकर		

दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ।
गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥ ११ ॥

दोष बुद्ध्या उभय अतीतः निषेधात् न निवर्तते गुण बुद्ध्या च विहितं न करोति यथा अर्भकः ॥ ११ ॥

उभय अतीतः - (गुण-दोष) दोनोंसे परे स्थित (ज्ञानी)
दोष बुद्ध्या - "यह दोष है" इस विचारसे
निषेधात् - (शास्त्र) निषिद्ध कर्मोंसे
निवर्तते न - निवृत्त नहीं होता
च गुण बुद्ध्या - और गुण मानकर
विहितं न - (शास्त्र) विहित
करोति कर्म नहीं करता
यथा अर्भकः - जैसे बालक (स्वेच्छानुसार करता है)
॥ ११ ॥

सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ।
पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥

सर्वभूत सुहृत् शान्तः ज्ञान विज्ञान निश्चयः पश्यन् मत् आत्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥

सर्वभूत सुहृत् - समस्त प्राणियोंका हितैषी,
शान्तः - शान्त
ज्ञान विज्ञान निश्चयः - ज्ञान और विज्ञानसे दृढ़ निश्चय
विश्वं मत्-आत्मकं - विश्वको मेरा स्वरूप
पश्यन् वै - देखता हुआ निश्चय
पुनः न विपद्येत - फिर (जन्म-मरणकी) विपत्तिमें नहीं पड़ता
॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच–

इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप ।
उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥ १३ ॥

इति आदिष्टः भगवता महाभागवतः नृप उद्धवः प्रणिपत्य आह तत्त्व जिज्ञासुः अच्युतम् ॥ १३ ॥

नृप	- राजन् !	**उद्धवः-**	- उद्धवने दण्डवत् प्रणाम
भगवता इति	- भगवान द्वारा इसप्रकार	**प्रणिपत्य**	करके
आदिष्टः	- आदेश देनेपर	**तत्त्व**	- आत्मतत्त्वको
महाभागवतः	- परम भगवद् भक्त	**जिज्ञासुः**	- जाननेकी इच्छासे
		अच्युतं	- अच्युतसे कहा ॥ १३ ॥

उद्धव उवाच–

योगेश योगविन्यास योगात्मन् योगसम्भव ।
निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥ १४ ॥

योगेश योग विन्यास योग आत्मन् योग सम्भव निःश्रेयसाय मे प्रोक्तः त्यागः सन्यास लक्षणः ॥ १४ ॥

योगेश	- योगेश्वर !	**मे निःश्रेयसाय**	- मेरेपरम कल्याणके लिए
योग-विन्यास	- योगके आद्य प्रवर्तक !	**सन्यास लक्षणं**	- सन्यास रूप
योग आत्मन्	- योग स्वरूप !	**त्यागः प्रोक्तः**	- त्यागका (आपने) उपदेश किया ॥ १४ ॥
योग सम्भव	- योगसे प्राप्त होने वाले प्रभु !		

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः ।
सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥

त्यागः अयं दुष्करः भूमन्कामानां विषय आत्मभिः सुतरां त्वयि सर्व आत्मन् अभक्तैः इति मे मतिः ॥ १५ ॥

भूमन् इति मे - भगवन् ! मैं ऐसा
मतिः समझता हूँ कि
अयं त्याग - यह त्याग
विषय आत्मनां - विषयोंमें लगे चित्त
कामानां - सकाम लोगोंके लिए
त्वयि सर्व आत्मन् - आप सर्वात्माके
अभक्तेः - जो भक्त नहीं है उनके
सुतरां लिए तो और भी
दुष्करः - करना कठिन है
॥ १५ ॥

सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढ-
स्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ।
तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं
संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥

सः अहं मम अहं इति मूढ मतिः विगाढ त्वत् मायया विरचित आत्मनि स अनुबन्धे तत्त्व अञ्जसा निगदितं भवता यथा अहं संसाधयामि भगवन् अनुशाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥

स अहं - वह मैं
अहं मम इति - 'मैं, मेरा' इस प्रकारकी
त्वत् मायया - आपकी माया द्वारा
विरचित - बनाये
स अनुबन्धे आत्मनि - सम्बन्धियों सहित देहमें
विगाढ मतिः - अत्यत दृढ़ बुद्धि हो गया हूँ,
भवता निगदितं - आप द्वारा उपदिष्ट
तत्त्वं यथा - तत्त्वको जैसे
अञ्जसा - सरलतासे, सिद्ध करलूँ
संसाधयामि (अपना लूँ वैसे)
भृत्यं अनुशाधि - सेवकको समझाइये
॥ १६ ॥

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं
वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ।
सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे
ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः॥ १७ ॥

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन् आत्मनः अन्यं वक्तारं ईश विबुधेषु अपि न अनुचक्षे सर्वे विमोहित धियः तव मायया इमे ब्रह्मा आदयः तनुभृतः बहिः अर्थ भावाः ॥ १७ ॥

ईश ते आत्मन्	- स्वामी ! आप आत्म स्वरूप	**न अनुचक्षे**	- नहीं देखता हूँ
ते स्वदृश	- आप स्वयं प्रकाश	**इमे ब्रह्मा आदयः**	- ये ब्रह्मा आदि
आत्मनः अन्यं	- से भिन्न अपने लिए	**सर्वे तनुभृतः**	- सब देहधारी
सत्यस्य वक्तारं	- सत्यको समझाने वाला	**तव मायया**	- आपकी मायासे
विबुधेषु अपि	- देवताओंमें भी	**विमोहितधियः**	- अत्यन्त मोहित बुद्धि
		बहिः-अर्थभावाः	- बाहर पदार्थ मानने वाले हैं ॥ १७ ॥

तस्माद् भवन्तमनवद्यमनन्तपारं
सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ।
निर्विण्णधीरहमुह वृजिनाभितप्तो
नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

तस्मात् भवन्तं अनवद्यं अनन्तपारं सर्वज्ञं ईश्वरं अकुण्ठ विकुण्ठ धिष्ण्यं निर्विण्ण धीः अहं उह वृजिन अभितप्तः नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

तस्मात् अहं	- इसलिए मैं	**सर्वज्ञ ईश्वरं**	- सर्वज्ञ, सर्व-समर्थ,
उहवृजिन	- निश्चित रूपसे इस (आवागमन) संकटसे	**अकुण्ठ**	- अप्रतिहत,
		विकुण्ठ धिष्ण्यं	- वैकुण्ठवासी
अभितप्तः	- अत्यन्त सन्तप्त	**नरसखं नारायणं**	- नरके सखा नारायणकी
निर्विण्णधीः	- विरक्त चित्त होकर	**शरणं प्रपद्ये**	- शरण लेता हूँ ॥ १८ ॥
भवन्तं अनवद्यं	- आप निर्दोष		
अनन्तपारं	- अपरिछिन्न,		

श्रीभगवानुवाच–

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्व विचक्षणाः सम उद्धरन्ति हि आत्मानं आत्मना एव अशुभ आशयात् ॥ १९ ॥

लोकतत्त्व - लोकके तत्त्वको जाननेमें	**अशुभ आशयात्** -मलिन अन्तःकरणसे
विचक्षणाः मनुजा- निपुण मनुष्य	**आत्मना एव** - अपने आप ही
हि प्रायेण - क्योंकि प्रायः	**आत्मानं** - अपनेको पूर्णतः निकाल
	समउद्धरन्ति लेते हैं ॥ १९ ॥

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ॥ २० ॥

आत्मनः गुरुः आत्म एव पुरुषस्य विशेषतः यत् प्रत्यक्ष अनुमानाभ्यां श्रेयः असाः अनुविन्दते ॥ २० ॥

पुरुषस्य - मनुष्यका	**यत् प्रत्यक्ष** - क्योंकि प्रत्यक्ष और
विशेषतः - विशेष रूपसे	**अनुमानाभ्यां** - अनुमानोंके द्वारा
आत्मनः गुरुः - अपना गुरु	**असाः श्रेयः** - यह कल्याण
आत्म एव - वह स्वयं है	**अनुविन्दते** - प्राप्त करता है ॥२०॥

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः ।
आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥ २१ ॥

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्य योग विशारदाः आविः तरां प्रपश्यन्ति सर्व शक्ति उपबृंहितम् ॥ २१ ॥

सांख्ययोग - सांख्य और योगमें
विशारदाः धीराः - निपुण धैर्यशाली लोग
सर्वशक्ति - (मन, इन्द्रियादि) सम्पूर्ण शक्तियोंसे
उपबृंहितं - समन्वित
मां च पुरुषत्वे - मुझे भी पुरुष रूपमें
आविस्तरां - (अपने भीतर) स्थित
प्रपश्यन्ति - साक्षात्कार कर लेते हैं ॥ २१ ॥

एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापदः ।
बह्व्यः सन्तिपुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥

एक द्वि त्रि चतुष्पादः बहुपादः तथा अपदः बह्व्यः सन्ति पुरः सृष्टाः तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥

एक द्वित्रिचतुः - एक, दो, तीन, चार
पादः बहुपादः - पैरवाले, बहुत पैरवाले
तथा अपदः - तथा बिना पैर वाले
बह्व्यः पुरः - बहुत सी पुरियां (शरीर)
सृष्टाः - (मैंने) उत्पन्नकी हैं,
तासां मे - उनमें मुझे
पौरुषी प्रिया - पुरुष (शरीर) प्रिय है ॥ २२ ॥

अत्र मां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ।
गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥ २३ ॥

अत्र मां मार्गयन्ति अद्धा युक्ता हेतुभिः ईश्वरं गृह्यमाणैः गुणैः लिंगैः अग्राह्यं अनुमानतः ॥ २३ ॥

अत्र मां ईश्वरं - इस (शरीर) में मुझ ईश्वरको
गुणैः लिंगैः - गुणों तथा चिन्होंसे
अग्राह्यं - ग्रहण न होनेवाले किन्तु
अनुमानतः - अनुमानके द्वारा
गृह्यमाणं - ग्रहण होने वालेको
युक्ता हेतुभिः - संयत चित्त लोग कारणोंके द्वारा
अद्धा मार्गयन्ति - साक्षात् ढूँढ़ते हैं ॥ २३ ॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥ २४ ॥

यत्र अपि उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं अवधूतस्य संवादं यदोः अमित तेजसः ॥ २४ ॥

अत्र अपि - इस विषयमें भी
इमं पुरातनं - यह प्राचीन
अवधूतस्य - अवधूतका तथा
अमित तेजसः - असीम तेजस्वी
यदोः संवादं - यदुका संवाद रूप
इतिहासं - इतिहासका
उदाहरन्ति - उदाहरण दिया जाता है ॥ २४ ॥

अवधूतं द्विजं कञ्चिच्चरन्तमकुतोभयम् ।
कविं निरीक्ष्यतरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥

अवधूतं द्विजं कञ्चित् चरन्तं अकुतः भयं कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥

कञ्चित् अवधूतं - किसी अवधूत
तरुणं द्विजं - युवा ब्राह्मणको
अकुतः भयं - सब ओरसे निर्भय
चरन्तं कविं - घूमते बुद्धिमान
निरीक्ष्य - देखकर
धर्मवित् यदुः - धर्मज्ञ यदुने
पप्रच्छ - पूछा ॥ २५ ॥

यदुरुवाच—

कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ।
यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥ २६ ॥

कुतः बुद्धिः इयं ब्रह्मन् अकर्तुः सुविशारदा यां आसाद्य भवान् लोकं विद्वान् चरति बालवत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मन् - ब्रह्मन् !
अकर्तुः - कुछ न करने वाले (आपको)
इयं सुविशारदा - यह अत्यन्त निपुणा
बुद्धिः कुतः - बुद्धि कहांसे (मिल गयी)
भवान् यां आसाद्य - आप जिसे पाकर
लोकं विद्वान् - लोक रीतिको जानते हुए भी
बालवत् चरति - बालकके समान व्यवहार करते हैं ॥ २६ ॥

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ।
हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥

प्रायः धर्म अर्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः हेतुना एव सम ईहन्ते आयुषः यशसः श्रियः ॥ २७ ॥

प्रायः मानवाः - प्रायः मनुष्य
धर्म अर्थकामेषु - धर्म, अर्थ, काममें
च विवित्सायां - तथा तत्त्वजिज्ञासामें
आयुषः यशसः - आयु, यश तथा
श्रियः हेतुना- - लक्ष्मी (पाने) के
एव- कारणसे ही
समईहन्ते - पूरी चेष्टा करते हैं ॥ २७ ॥

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः ।
न कर्ता नेहसे किञ्चिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ २८ ॥

त्वं तु कल्पः कविः दक्षः सुभगः अमृत भाषणः न कर्ता न ईहसे किञ्चित् जड़ उन्मत्त पिशाचवत् ॥ २८ ॥

त्वं तु कल्पः - आप तो समर्थ,
कविः दक्षः - बुद्धिमान, निपुण,
सुभगः - सुन्दर,
अमृत भाषणः - मधुर भाषी हैं (फिर भी)
न कर्ता - न कुछ करते हैं
न किञ्चित्-ईहसे - न कोई इच्छा करते हैं,
जड़ उन्मत्त - मूर्ख, पागल,
पिशाचवत् - प्रेताविष्टसे (रहते) हैं ॥ २८ ॥

जनेषु दह्यमानेषुकामलोभदवाग्निना ।
न तप्यसेऽग्निना मुक्तोगंगाम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥

जनेषु दह्यमानेषु काम लोभ दवाअग्निना न तप्यसे अग्निना मुक्तः गंगा अम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥

काम लोभ	- काम और लोभकी	**अग्निना मुक्तः**	- इस अग्निसे बचे हुए
दव अग्निना	- दावाग्निसे	**गंगा अम्भःस्थ**	- गंगा जलमें खड़े
जनेषु दह्यमानेषु	- लोगोंके जलते रहनेपर भी	**द्विपः इव**	- हाथीके समान
		तप्यसे न	- (आप) संतप्त नहीं होते हो ॥ २९ ॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् ।
ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतःकेवलात्मनः ॥ ३० ॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन् आत्मनि आनन्दकारणं ब्रूहि स्पर्श विहीनस्य भवतःकेवल आत्मनः ॥ ३० ॥

हि त्वं स्पर्श	- क्योंकि आप (ऐन्द्रिक	**आत्मनि आनन्द**	- अपने चित्तमें आनन्दका
विहीनस्य	भोगोंके) स्पर्शोंसे रहित	**कारणं पृच्छतां**	- कारण पूछने वाले
केवल आत्मनः	- अकेले ही अपनेआप हैं	**नः त्वं ब्रूहि**	- मुझे आप बतलाइये ॥ ३० ॥
ब्रह्मन् भक्तः	- ब्रह्मन् ! आपसे		

श्रीभगवानुवाच–

यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ।
पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥ ३१ ॥

यदुना एवं महाभागः ब्रह्मण्येन सुमेधसा पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रय अवनतं द्विजः ॥ ३१ ॥

महाभागः - महाभाग
ब्रह्मण्येन - ब्राह्मणभक्त
सुमेधसा - उत्तमबुद्धि
प्रश्रय अवनतं -नम्रतासे झुके हुए
यदुना सभाजितः-यदु द्वारा सत्कार करके
एवं पृष्टः -इस प्रकार पूछे जानेपर
द्विजः प्राह -वे ब्राह्मण बोले
॥ ३१ ॥

ब्राह्मण उवाच–

सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ।
यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान्शृणु ॥ ३२ ॥

सन्ति मे गुरवः राजन् बहवः बुद्धि उपाश्रिताः यतः बुद्धिं उप आदाय मुक्तः अटामि इह तान् शृणु ॥ ३२ ॥

राजन् - राजन् !
बुद्धि - (अपनी) बुद्धिका
उपाश्रिताः आश्रय लेकर
मे बहवः - (बनाये गये) मेरे बहुतसे
गुरवः सन्ति - गुरु हैं,
यतः बुद्धिं उप आदाय - जिनसे समझ लेकर
इह मुक्तः - इस संसारमें मुक्त
अटामि होकर घूमता हूँ
तान् शृणु - उनको सुनो ॥ ३२ ॥

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥

पृथिवी वायुः आकाशं आपः अग्निः चन्द्रमा रविः कपोतः अजगरः सिन्धुः पतंगः मधुकृत् गजः ॥ ३३ ॥

पृथिवी वायुः - पृथ्वी, वायु,
आकाशं आपः - आकाश, जल,
अग्निः चन्द्रमा - अग्नि, चन्द्रमा,
रविः कपोतः - सूर्य,
अजगरः कबूतर, अजगर,
सिन्धुः पतंगः - समुद्र, पतिंगा,
मधुकृत् गजः - मधुमक्खी, हाथी ॥३३॥

मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥

मधुहा हरिणः मीनः पिंगला कुररः अर्भकः कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥ ३४ ॥

मधुहा हरिणः	- शहद निकालने वाला, हरिण,	**कुमारी शरकृत्**	- कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला,
मीनः पिंगला	- मछली, पिंगला वेश्या,	**सर्पः ऊर्णनाभिः**	- सर्प, मकड़ी,
कुररः अर्भकः	- चील पक्षी, बालक,	**सुपेश कृत्**	- रेशमका कीड़ा ॥३४॥

एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ।
शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥ ३५ ॥

एते मे गुरवः राजन् चतुः विंशतिः आश्रिताः शिक्षा वृत्तिभिः एतेषां अन्वशिक्षं इह आत्मनः ॥ ३५ ॥

राजन्	- राजन् !	**एतेषां वृत्तिभिः**	- इनके व्यवहारकी
एते चतुः विंशतिः	- इन चौबीस	**शिक्षा**	- शिक्षासे
गुरवः मे आश्रितः	- गुरुओंका मैंने आश्रय लिया है	**इह आत्मनः**	- यहां अपनेको (मैंने)
		अन्वशिक्षं	- सिखलाया है ॥ ३५ ॥

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ।
तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥

यतः यत् अनुशिक्षामि यथा वा नाहुष आत्मज तत् तथा पुरुष व्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥

नाहुष आत्मज	- नहुष नन्दन ययातिके कुमार !	**अनुशिक्षामि**	- शिक्षा लेता हूँ
पुरुष व्याघ्र	- पुरुष सिंह !	**तत् तथा ते**	- उसे वैसे तुमसे
यत् यत् वा यथा	- जिससे जो या जैसे	**कथयामि निबोध**	- बतलाता हूँ, सुनो ॥ ३६ ॥

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।
तद् विद्वान् न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥

भूतैः आक्रम्यमाणः अपि धीरः दैववश अनुगैः तत् विद्वान् न चलेत् मार्गात् अनु अशिक्षं क्षितेः व्रतम् ॥ ३७ ॥

दैववश अनुगैः	- प्रारब्धके वश उसके अनुसार चलने वाले	**तत् विद्वान्**	- यह जानने वाला
भूतैः-	- प्राणियोंके द्वारा	**मार्गात् न-**	- (अपने) पथसे विचलित
आक्रम्यमाणः-	आक्रमण किये जानेपर	**चलेत्**	न हो
अपि	भी	**क्षितेः व्रतं**	- यह पृथ्वीका व्रत
		अन्वशिक्षं	- (उससे मैंने) सीखा है ॥ ३७ ॥

शश्वत्परार्थसर्वेहःपरार्थैकान्तसम्भवः ।
साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यःपरात्मताम् ॥ ३८ ॥

शश्वत् पर अर्थ सर्व इहःपर अर्थै एकान्त सम्भवः साधुः शिक्षेत भूभृतः नग शिष्यःपर आत्मताम् ॥ ३८ ॥

शश्वत्	- निरन्तर	**नग शिष्यः**	- पर्वतोंसे शिक्षा लेने वाला
पर अर्थ सर्व-	- दूसरोंके लिये ही	**भूभृतः**	- पर्वतोंसे (यह)
इहः	समस्त चेष्टा करना,	**पर आत्मतां**	- दूसरेके लिए अपनेको रखना
एकान्त पर अर्थ	- एकमात्र दूसरोंके लिए ही	**साधु शिक्षेत्**	- भली भांति सीखे ॥ ३८ ॥
सम्भवः	- जीवन धारण करना		

प्राणवृत्त्यैव सन्तुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः ।
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥

प्राण वृत्त्या एव सन्तुष्येत् मुनिः न एव इन्द्रिय प्रियैः ज्ञानं यथा न नश्येत न अवकीर्येत वाक् मनः ॥ ३९ ॥

मुनिः - मननशील साधक
प्राणवृत्त्या एव - प्राण धारण मात्रसे ही
सन्तुष्येत् - सन्तुष्ट रहे
इन्द्रिय प्रियैः - इन्द्रियोंके प्रिय (विषयों) में
न एव - नहीं ही (लगे)
यथा ज्ञानं ननश्येत - जिससे ज्ञान नष्ट न हो,
वाङ्मनः - वाणी और मनको
न अवकीर्येत - बिखेरे (संसार व्यवहारमें लगावे) नहीं ॥ ३९ ॥

विषयेष्वाविशन् योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ।
गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

विषयेषु आविशन् योगी नाना धर्मेषु सर्वतः गुणदोष व्यपेत आत्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥

वायुवत् - वायुके समान
सर्वतः नाना-धर्मेषु - सब कहीं अनेक प्रकारके धर्म (गुण) वाले
विषयेषु - विषयोंमें
आविशन् योगी - प्रवेश करता हुआ भी साधक
गुण-दोष - (उनके) गुण-दोषसे
व्यपेत आत्मा - चित्तको पृथक रखकर
विषज्जेत न - (उनमें) आसक्त न हो ॥ ४० ॥

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ।
गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥

पार्थिवेषु इह देहेषु प्रविष्टः तत् गुण आश्रयः गुणैः न युज्यते योगी गन्धैः वायुः इव आत्मदृक् ॥ ४१ ॥

पार्थिवेषु - पृथ्वीके गुण वाले
गन्धैः - गन्धसे
वायुः इव - वायुके समान
आत्मदृक्योगी - आत्मदर्शी योगी
देहेषु प्रविष्टः - शरीरमें आकर
तत् गुण आश्रयः - उसके गुणोंका सहारा लेकर भी
गुणैः न-युज्यते - गुणोंसे युक्त नहीं होता ॥ ४१ ॥

अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु
ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ।
व्याप्त्याव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो
मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥

अन्तः हितः च स्थिर जंगमेषु ब्रह्म आत्म भावेन समन्वयेन व्याप्त्या अव्यवच्छेदं असंगं आत्मनः मुनिः नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥

स्थिर जंगमेषु - स्थावर-जंगम (सब प्राणियों) में
अन्तः च हितः - भीतर और बाहर
ब्रह्म-आत्म भावेन - ब्रह्मात्मैक्य भावसे
समन्वयेन - सम्पूर्ण रूपसे सर्वत्र
व्याप्त्या - व्याप्त होनेके कारण
मुनिः आत्मनः - मननशील साधक आत्माको
अव्यवच्छेदं - अखण्ड
असंगं - संगहीन
नभस्त्वं विततं - आकाशके समान व्यापक
भावयेत् - भावना करे ॥ ४२ ॥

तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ।
न स्पृश्यते नभस्तद्वत् कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥

तेजः अबन् न मयैः भावैः मेघाद्यैः वायुना इरितैः न स्पृश्यते नभः तद्वत्कालसृष्टैः गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥

तेजः अबन् - आगके जलनेसे
न मयैः भावैः - जलके बरसनेसे,
मेघ आद्यैः - बादल आदिसे,
वायुना ईरितैः - वायुके चलनेसे
नभः न स्पृश्यते - आकाश स्पर्शित नहीं होता,
कालसृष्टैः गुणैः - कालके द्वारा उत्पन्न गुणोंसे
तद्वत् पुमान् - उसी प्रकार आत्मा (अछूता रहता है) ॥ ४३॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ।
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धः माधुर्यः तीर्थ भूः नृणां मुनिः पुनाति अपां मित्रं ईक्ष उपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥

प्रकृतितः अपां - स्वभावसे ही जल (जैसे)	**मुनिः मित्रं** - (ऐसे ही) मननशील साधक सौहार्द्र,
स्वच्छः स्निग्धः - स्वच्छ, चिकना,	**ईक्ष उपस्पर्श** - दर्शन, स्पर्श तथा
माधुर्यः - मधुर तथा	**कीर्तनैः पुनाति** - वर्णनसे पवित्र करता है ॥ ४४ ॥
नृणां तीर्थ भूः - मनुष्योंको पवित्र करने वाला है	

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ।
सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥ ४५ ॥

तेजस्वी तपसा दीप्तः दुर्धर्षः उदरभाजनः सर्वभक्षः अपि युक्त आत्मा न आदत्ते मलं अग्निवत् ॥ ४५ ॥

युक्त आत्मा - संयत चित्त साधक	**सर्वभक्षः अपि** - सब कुछ खा लेनेपर भी
तेजस्वी - तेजस्वी,	**अग्निवत्** - अग्निके समान
तपसा दीप्तः - तपस्यासे प्रज्वलित,	**मलं न आदत्ते** - (वस्तुओंके) दोष नहीं ग्रहण करता ॥ ४५ ॥
दुर्धर्षः - दुर्धर्ष (जो दबाया न जासके)	
उदर भाजन - केवल पेट रूपी पात्र वाला	

क्वचिच्छन्नः क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ।
भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन् प्रागुत्तराशुभम् ॥ ४६ ॥

क्वचित् छन्नः क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छतां भुङ्क्ते सर्वत्र दातॄणां दहन् प्राक् उत्तर अशुभम् ॥ ४६ ॥

क्वचित् छन्नः - (अग्निके ही समान) कहीं अप्रकट
क्वचित् स्पष्टः - और कहीं प्रकट रूपसे
उपास्यः श्रेय - सेवा करने वालेका कल्याण
इच्छतां - चाहता हुआ
दातृणां - दाताके
प्राक् उत्तर - पिछले और आगेके
अशुभं दहन् - पापोंको भस्म करता हुआ
भुङ्क्ते - भोजन करता है ॥ ४६ ॥

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ।
प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥ ४७ ॥

स्वमायया सृष्टं इदं सत् असत् लक्षणं विभुः प्रविष्ट ईयते तत् तत् स्व रूपः अग्निः इव एधसि ॥ ४७ ॥

विभुः - सर्वव्यापकपरमात्मा
स्वमायया - अपनी मायासे
सृष्टं इदं - निर्मित इस
सत् असत्-लक्षणं - कारण-कार्य रूप संसारमें
एधसि अग्निः-इव - ईंधनमें अग्निके समान
तत् तत् स्वरूपः - उन्हीं उन्हींके रूपमें
ईयते - चेष्टा करते हैं ॥ ४७ ॥

विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः ।
कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥ ४८ ॥

विसर्ग आद्याः श्मशान अन्ता भावा देहस्य न आत्मनः कलानां इव चन्द्रस्यकालेन अव्यक्त वर्त्मना ॥ ४८ ॥

अव्यक्त वर्त्मना - अस्पष्ट गति
कालेन - कालके द्वारा
चन्द्रस्य-कलानां इव - चन्द्रमाकी कलाओंके समान
विसर्ग आद्याः - गर्भाधानसे लेकर
श्मशान अन्ता - श्मशानमें (मरनेपर) समाप्त होने वाली
भावा देहस्य - सब अवस्थायें शरीरकी होती हैं
आत्मनः न - आत्माकी नहीं ॥ ४८ ॥

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ।
नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ॥ ४९ ॥

कालेन हि ओघ वेगेन भूतानां प्रभव अप्ययः नित्याः अपि न दृश्येते आत्मनः अग्नेः यथा अर्चिषाम् ॥ ४९ ॥

यथा अग्नेः	- जैसे अग्निकी	**भूतानां**	- प्राणियोंका
अर्चिषां	- लपटें (निकलती-मिटती रहती हैं)	**प्रभव अप्ययः**	- उत्पत्ति-विनाश
		नित्यः अपि	- सदा होते रहनेपर भी
हि कालेन	- क्योंकि कालके	**दृश्येते न**	- दीखता नहीं है ॥ ४९ ॥
ओघ वेगेन	- प्रवाहके वेगसे		

गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति ।
न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥

गुणैः गुणान् उपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति न तेषु युज्यते योगी गोभिः गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥

गोपतिः	- सूर्य	**गुणैः गुणान्**	- इन्द्रियों द्वारा गुणों (विषयों)को
गोभिः गाइव	- किरणोंसे जैसे पृथ्वीका (रस खींचते तथा)	**योगी उपादत्ते**	- योगी ग्रहण करता है (और त्यागता है)
यथाकालं	- समय आनेपर उसे	**तेषु युज्यते न-**	पर उनसे आसक्त नहीं होता ॥ ५० ॥
विमुञ्चति	छोड़ते हैं		

बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ।
लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥

बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः लक्ष्यते स्थूलमतिभिः आत्मा च अवस्थितो अर्कवत् ॥ ५१ ॥

स्थूलमतिभिः	- स्थूल बुद्धिवालों द्वारा	**व्यक्तिस्थ इव**	- एक एक घटमें होनेके समान
अर्कवत्-	- सूर्यके समान बाहर		
अवस्थितो	स्थित	**तद्गतः**	- उसीमें प्रविष्ट
च स्वेन भेदेन	- होकर भी अपने भेद प्रतिविम्बके	**लक्ष्यते**	- दीखनेसे
		आत्मा बुध्यते	- आत्मा (देहस्थ) जान पड़ता है ॥ ५१ ॥

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ।
कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

न अति स्नेहः प्रसंगः वा कर्तव्यः क्वअपि केनचित् कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

क्वअपिकेनचित्	- कहीं किसीके भी साथ	**कुर्वन् दीनधीः**	- करनेपर दीन बुद्धि
अति स्नेहः वा	- बहुत प्रेम अथवा	**कपोत इव**	- कबूतरके समान
प्रसंगः	- आसक्ति	**सन्तापं विन्देत**	- सन्ताप पाता है ॥ ५२ ॥
न कर्तव्यः	- नहीं करना चाहिए		

कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ।
कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः ॥ ५३ ॥

कपोतः कश्चन अरण्ये कृत नीडः वनस्पतौ कपोत्या भार्यया सार्धं उवास कतिचित् समाः ॥ ५३ ॥

कश्चन कपोतः	- कोई कबूतर	**कृतनीडः**	- घोंसला बनाकर
भार्यया-	- पत्नी कबूतरीके साथ	**कतिचित् समाः**	- कुछ वर्ष
कपोत्या सार्धं		**उवास**	- बसा रहा ॥ ५३ ॥
अरण्ये वनस्पतौ	- वनमें वृक्षपर		

कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ।
दृष्टिं दृष्ट्वाङ्गमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥

कपोतौ स्नेह गुणित हृदयौ गृहधर्मिणी दृष्टिं दृष्ट्या अंग अंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥

स्नेह गुणित	- बढ़ते स्नेहसे	**दृष्ट्या दृष्टिं**	- दृष्टिसे (कबूतरकी) दृष्टि,
हृदयौ	- हृदय वाली	**अंगेन अंग**	- शरीरसे शरीर,
गृह धर्मिणी	- गृहस्थ धर्मवाली	**बुद्ध्या बुद्धिं**	- बुद्धिसे बुद्धिको
कपोतौ	- कबूतरीने	**बबन्धतुः**	- बाँध लिया ॥ ५४ ॥

शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ।
मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥

शय्या आसन अटन स्थान वार्ता क्रीडा अशन आदिकं मिथुनी भूय विस्रब्धौ चेरतुः वनराजिषु ॥ ५५ ॥

शय्या आसन	- सोने-बैठने,	**मिथुनी भूय**	- दोनों एक साथ मिलकर
अटन स्थान	- घूमने-रुकने,	**विस्रब्धौ**	- (परस्पर) विश्वास करके
वार्ता क्रीडा	- बातचीत, खेलने	**वन राजिषु**	- जंगलोंमें
आदिषु	- आदिमें	**चेरतुः**	- घूमते थे ॥ ५५ ॥

यं यं वाञ्छति सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता ।
तं तं समनयत् कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥

यं यं वाञ्छति सा राजन् तर्पयन्ति अनुकम्पिता तं तं सम अनयत् कामं कृच्छ्रेण अपि अजित इन्द्रियः ॥ ५६ ॥

राजन्	- राजन् !	**कामं वाञ्छन्ति**	- भोगोंको चाहती थी
अनुकम्पिता	- कृपा पूर्ण होकर	**अजित इन्द्रियः**	- इन्द्रियोंको न जीतने वाला (वह)
तर्पयन्ति	- (पतिको) तृप्त करती हुई	**तं तं कृच्छ्रेण अपि**	- वह (भोग) कष्टसे भी
सा यं यं	- वह (कबूतरी) जिन-जिन	**सम अनयत्**	- पूरा ले आता था ॥ ५६ ॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णतीकाल आगते ।
अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णतीकाल आगते अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥ ५७ ॥

सती कपोती - साध्वी कबूतरीने
प्रथमं गर्भं - पहिला गर्भ
गृह्णती - धारण करके
काल आगते - समय आनेपर
स्वपत्युः सन्निधौ -अपने पतिके समीप
नीडे अण्डानि - घोंसलेमें अण्डे
सुषुवे - उत्पन्न किये ॥ ५७ ॥

तेषुकाले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः ।
शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिःकोमलाङ्गतनूरुहाः ॥ ५८ ॥

तेषुकाले व्यजायन्त रचित अवयवा हरेः शक्तिभिः दुर्विभाव्याभिःकोमल अंग तनूरुहाः ॥ ५८ ॥

हरेः- - श्री हरिकी अचिन्त्य
दुर्विभाव्याभिः
शक्तिभिः - शक्ति द्वारा
अवयवा रचिताः - अंगोंका निर्माण होजानेपर
तेषुकाले - उन (अण्डों)से समयपर
कोमल अंग - कोमल शरीर तथा
तनूरुहाः - रोओं वाले (शावक)
व्यजायन्त - उत्पन्न हुए ॥ ५८ ॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ ।
शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥ ५९ ॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्र वत्सलौ शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृत्तौ कल भाषितैः ॥ ५९ ॥

तासां कलभाषितैः - उनके मधुर स्वरसे
कूजितं शृण्वन्तौ - कूजनको सुनते हुए
निर्वृत्तौ दम्पती - आह्लादित दम्पति
पुत्र वत्सलौ - पुत्रोंपर वात्सल्य रखने वाले
प्रजाः पुपुषतुः - सन्तानोंका पोषण करते थे ॥ ५९ ॥

तासां पतत्त्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ।
प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ ६० ॥

तासां पतत्त्रैः सुस्पर्शैः कूजितैः मुग्ध चेष्टितैः प्रति उद्गमैः अदीनानां पितरौ मुदं आपतुः ॥ ६० ॥

तासां सुस्पर्शैः	- उनके सुखद स्पर्श वाले	**अदीनानां**	- बिना किसी दुःखके
पतत्त्रैः	- पंखोंसे,	**प्रति उद्गमैः**	- अपने पास (फुदक) आनेसे
कूजितैः	- बोलनेसे	**पितरौ**	- माता-पिता
मुग्ध चेष्टितैः	- भोली चेष्टाओंसे तथा	**मुदं आपतुः**	- आनन्द पाते थे ॥६०॥

स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ।
विमोहितौ दीनधियौ शिशून पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥

स्नेह अनुबद्ध हृदयाः अन्यः अन्यं विष्णु मायया विमोहितौ दीनधियौ शिशुन् पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥

विष्णु मायया	- भगवान विष्णुकी मायासे	**स्नेह अनुबद्ध**	- स्नेहसे दृढ़ बँधे
विमोहितौ	- अत्यन्त मोहित	**हृदयाः**	- हृदय वाले
दीनधियौ	- व्यग्रचित्त	**प्रजाः शिशून्**	- अपनी सन्तान शिशुओंका
अन्यः अन्यं	- एक दूसरेसे	**पुपुषतुः**	- पोषण करते थे ॥६१॥

एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थं तौ कुटुम्बिनौ ।
परितःकानने तस्मिन्नर्थिनौया चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥

एकदा जग्मतुः तासां अन्न अर्थं तौ कुटुम्बिनौ परितःकानने तस्मिन् अर्थिनौ चेरतुः चिरम् ॥ ६२ ॥

एकदा तौ	- एक बार वे	**तस्मिन्कानने**	- उस वनमें
कुटुम्बिनौ	- परिवार वाले	**अर्थिनौ**	- चारेके लिए
तासां अन्न अर्थं	- उनके आहारके लिए	**चिरं परितः**	- देर तक चारों ओर
जग्मतुः	- गये और	**चेरतुः**	- घूमते रहे ॥ ६२ ॥

दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद् यदृच्छातो वनेचरः ।
जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥ ६३ ॥

दृष्ट्वा तान् लुब्धकः कश्चित् यदृच्छतः वनेचरः जगृहे जालं आतत्य चरतः स्व आलय अन्तिके ॥ ६३ ॥

यदृच्छतः	- संयोगवश	**अन्तिके चरन्तं**	-समीप घूमते
वनेचर कश्चित्	- वनमें घूमते हुए किसी	**दृष्ट्वा**	-देखकर
लुब्धकः	- बहेलिये ने	**जालं आतत्य**	-जाल फैलाकर
तान् स्व आलय	- उन (शावकों)को अपने निवासके	**जगृहे**	- पकड़ लिया ॥ ६३ ॥

कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ।
गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥

कपोतः च कपोती च प्रजापोषे सदा उत्सुकौ गतौ पोषणं आदाय स्वनीडं उपजग्मतुः ॥ ६४ ॥

प्रजापोषे	- सन्तानोंके पोषणके लिए	**गतौ पोषणं**	- चारा लेने गये थे
सदा उत्सुकौ	- सदा उत्सुक	**आदाय**	- लेकर
कपोतः च	- कबूतर और	**स्वनीडं**	- अपने घोंसलेके
कपोती च	- कबूतरी भी	**उपजग्मतुः**	- समीप लौट आये ॥६४॥

कपोती स्वात्मजान् वीक्ष्य बालाकाञ्जालसंवृतान् ।
तानभ्यधावत् क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥ ६५ ॥

कपोती स्व आत्मजान् वीक्ष्य बालकान् जाल संवृतान् तान् अभ्यधावत् क्रोशन्ती क्रोशतः भृश दुःखिता ॥ ६५ ॥

कपोती	- कबूतरी	**क्रोशतः वीक्ष्य**	- चिल्लाते हुए देखकर
स्व आत्मजान्	- अपने पुत्र	**भृश दुःखिता**	- अत्यन्त दुःखी होकर
बालकान्	- शावकोंको	**क्रोशन्ती**	- चिल्लाई हुई
जाल संवृतान्	- जालमें पूरे फँसे	**तान्-**	- उनकी ओर दौड़ पड़ी
		अभ्यधावत्	॥ ६५ ॥

सासकृत् स्नेहगुणिता दीनचित्ताजमायया ।
स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान् पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥ ६६ ॥

सा असकृत् स्नेह गुणिता दीन चित्ता अजमायया स्वयं च अबध्यत शिचा बद्धान् पश्यन् अपस्मृतिः ॥ ६६ ॥

असकृत् स्नेह	- निरन्तर स्नेहकी	**अपस्मृतिः**	- स्मृति भ्रष्ट होनेसे
गुणिता सा	- रस्सीसे बँधी वह	**बद्धान् पश्यन्**	- बँधे हुए (शावकों) को देखती हुई
अज मायया	- अजन्मा पुरुषकी मायासे	**स्वयं च**	- स्वयं भी
दीन चित्ता	- दुःखी चित्त	**शिचा अबध्यत**	- जालमें बँध गयी ॥ ६६ ॥

कपोतश्चात्मजान् बद्धानात्मनोऽप्यधिकान् प्रियान् ।
भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥

कपोतः च आत्मजान् बद्धान् आत्मनः अपि अधिकान् प्रियान् भार्यां च आत्मसमां दीनः विललाप अति दुःखितः ॥ ६७ ॥

कपोतः च	- कबूतर भी	**प्रियां भार्यां च**	- प्यारी पत्नीको भी
आत्मनः अपि	- अपने शरीरसे भी	**बद्धान्**	- बँध जानेसे
अधिकान् प्रियान्	- अधिक प्रिय	**दीनः अति**	- दीन अत्यन्त दुःखी होकर
आत्मजान्	- अपने पुत्रोंको	**दुःखितः**	
च आत्म समां	- तथा अपने शरीरके समान	**विललाप**	- विलाप करने लगा ॥ ६७ ॥

अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ।
अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥

अहो मे पश्यत अपायं अल्प पुण्यस्य दुर्मतेः अतृप्तस्य आकृतार्थस्य गृहः त्रैवर्गिकः हतः ॥ ६८ ॥

अहो मे	- हाय ! मुझ अल्प-	**अकृतार्थस्य**	- आशायें पूरी हुए विना ही
अल्पपुण्यस्य	पुण्य	**त्रैवर्गिकः**	- अर्थ, धर्म,काम देने वाला
दुर्मतेः	- दुर्बुद्धि	**गृहः हतः**	- घर नष्ट हो गया ॥ ६८ ॥
अतृप्तस्य	- अतृप्तका		
अपायं पश्यत	- विनाश तो देखो कि		

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता ।
शून्ये गृहे मां सन्त्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥ ६९ ॥

अनुरूपा अनुकूला च यस्य मे पतिदेवता शून्ये गृहे मां सन्त्यज्य पुत्रैः स्वः याति साधुभिः ॥ ६९ ॥

अनुरूपा	- अपने अनुरूप	**मां शून्ये गृहे**	- मुझे सूने घरमें
च अनुकूला	- तथा अनुकूल रहने वाली	**परित्यज्य**	- छोड़कर
पति देवता	- पतिको देवता मानने वाली	**साधुभिः पुत्रैः**	- साधु पुत्रोंके साथ
यस्य मे	- जो मेरी (पत्नी)	**स्वः याति**	- स्वर्ग जा रही है ॥६९॥

सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ।
जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥

सः अहं शून्ये गृहे दीनः मृतदारः मृत प्रजः जिजीविषे किं अर्थं वा विधुरः दुःख जीवितः ॥ ७० ॥

मृतदारः	- पत्नीके मरनेपर	**शून्ये गृहे**	- सूने घरमें
मृत प्रजः	- सन्तानोंके मरनेपर	**वा किं अर्थं**	- भला किस प्रयोजनसे
विधुरः दुःख	- विधुर होकर दुःखसे	**सः अहं दीनः**	- वह मैं दुःखिया
जीवितः	जीनेके लिए	**जिजीविषे**	- जीवित रहनेकी इच्छा करुंगा ॥ ७० ॥

तांस्तथैवावृताञ्छिग्भिर्मृत्युग्रस्तान् विचेष्टतः ।
स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥

तान् तथा एव आवृतान् शिक्भिः मृत्युग्रस्तान् विचेष्टतः स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन् अपि अबुधः अपतत् ॥ ७१ ॥

तान् तथा एव	- उनको उस प्रकार ही	**पश्यन् अपि**	- देखते हुए भी
शिक्भिः	- जालसे पूरे जकड़े हुए	**कृपणः अबुधः**	-वह दुःखी अज्ञानी
आवृतान्		**स्वयं च शिक्षु**	-अपने आप जालमें
विचेष्टतः	- तड़फड़ाते हुए	**अपतत्**	- गिर पड़ा ॥ ७१ ॥
मृत्युग्रस्तान्	- मौतसे ग्रस्त		

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ।
कपोतकान् कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥ ७२ ॥

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहेमेधिनं कपोतकान् कपोतीं च सिद्ध अर्थः प्रयया गृहम् ॥ ७२ ॥

क्रूरः लुब्धकः - निर्दय बहेलिया
तं गृहमेधिनं - उस गृहस्थ
कपोतं-कपोतकान् - कबूतर, कबूतरके बच्चों
च कपोतीं लब्ध्वा - कबूतरीको पाकर
सिद्ध अर्थः - प्रयोजन पूरा हो जानेसे
गृहं प्रययौ - घर चला गया
॥ ७२ ॥

एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्त्रिवत् ।
पुष्णन् कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥ ७३ ॥

एवं कुटुम्बि अशान्त आत्मा द्वन्द्व आरामः पतत्त्रिवत् पुष्णन् कुटुम्बं कृपणः स अनुबन्धः अवसीदति ॥ ७३ ॥

एवं अशान्त आत्मा - इसी प्रकार अशान्त चित्त
द्वन्द्व आरामः - (सुख-दुःखवादि) द्वन्द्वोंमें सुख मानने वाला
कुटुम्बी-पतत्त्रिवत् - कुटुम्बनान पक्षीकी भाँति
कृपणः - दीन होकर
कुटुम्बं पुष्णन् - अपने कुटुम्बका पोषण करता हुआ
स अनुबन्धः - सम्बन्धियोंके साथ
अवसीदति - कष्ट पाता रहता है
॥ ७३ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत् सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारं अपावृतं गृहेषु खगवत् सक्तः तं आरूढ़च्युतं विदुः ॥ ७४ ॥

यः अपावृतं मुक्तिद्वारं मानुषं लोकं प्राप्य - जो खुले हुए मोक्षके द्वार रूप मनुष्य शरीर पाकर
खगवत् - पक्षीकी भांति
गृहेषुसक्तः - घरमें आसक्त होता है
तं आरूढ़च्युतं - (शास्त्र) उसे 'आरूढ़च्युत'
विदुः - जानते हैं ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोध्यायः

ब्राह्मण उवाच–

सुखमैन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च ।
देहिनां यद् यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद् बुधः ॥ १ ॥

सुखं ऐन्द्रियकं राजन् स्वर्गे नरक एव च देहिनां यत् यथा दुःखं तस्मात् न इच्छेत तत् बुधः ॥ १ ॥

राजन्	- राजन् !	**स्वर्गे व नरक**	- स्वर्ग या नरकमें भी
देहिनां-	- प्राणियोंको जैसे जो	**एव च**	(मिलता है)
यथा-दुःखं	दुःख (स्वयं मिलता है)	**तस्मात् बुधः**	- इसलिए बुद्धिमान
ऐन्द्रियकं सुखं	- इन्द्रियों द्वारा होने वाला सुख	**तत् न इच्छेत**	- उसकी इच्छा न करे ॥ १ ॥

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा ।
यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकं एव वा यदृच्छयाएव आपतितं ग्रसेत् आजगरः अक्रियः ॥ २ ॥

यदृच्छया एव	- प्रारब्धवश अपने आप ही	**महान्तं**	- बहुत या थोड़ा ही
आपतितं	- स्वयं आगया	**स्तोकं एव**	
सुमृष्टं ग्रासं	- बहुत उत्तम भोजन	**ग्रसेत्**	- खा ले
वा विरसं	- अथवा नीरस	**आजगरः**	- अजगरके समान
		अक्रियः	- निष्क्रिय रहे ॥ २ ॥

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ।
यदि नोपनमेद् ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥

शयीत अहानि भूरीणि निराहारः अन् उपक्रमः यदि न उपनमेत् ग्रासः महा अहिः इव दिष्ट भुक् ॥ ३ ॥

यदि ग्रासः	- यदि भोजनं	भूरीणि अहानि	- बहुत दिनों तक
उपनमेत् न	- समीप (स्वयं) न आवे तो	निराहारः	- बिना कुछ खाये
		अन् उपक्रमः	- कोई प्रयत्न किये बिना
महा अहिः इव	- अजगरके समान	शयीत	- सोता रहे ॥ ३ ॥
दिष्ट भुक्	- (उसे) प्रारब्ध भोग मानकर		

ओजःसहोबलयुतं बिभ्रद् देहमकर्मकम् ।
शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥ ४ ॥

ओजः सहः बलयुतं बिभ्रत् देहं अकर्मकं शयानः वीतनिद्रः च न ईहेत इन्द्रियवान् अपि ॥ ४ ॥

ओजः सहः	- मनोबल, इन्द्रिय बल,	इन्द्रियवान् अपि	- सब इन्द्रियोंके सक्षम होनेपर भी
बलयुतं देहं	- शरीर बलयुक्त शरीर	वीतनिद्रः च	- बिना नींदके ही
बिभ्रत्	- धारण किये तथा	अकर्मकं शयानः	- निष्क्रिय पड़ा हुआ
		ईहेत न	- चेष्टा न करे ॥ ४ ॥

मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ।
अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥

मुनिः प्रसन्न गम्भीरः दुर्विगाह्यः दुरत्ययः अनन्तपारः हि अक्षोभ्यः स्तिमित उदइव अर्णवः ॥ ५ ॥

मुनिः अर्णवः - मनन शील साधक
इव समुद्रके समान
प्रसन्न गम्भीरः - निर्मल, गम्भीर,
दुर्विगाह्यः - (उसका भाव) अथाह
दुरत्ययः - दुष्पार
अनन्तपारः - असीम (होना चाहिए)
हि स्तिमित- - क्योंकि स्थिर जलके
उद समान
अक्षोभ्यः - (किसी कारण उसमें) क्षोभ उत्पन्न करना सम्भव नहीं होना चाहिए ॥ ५ ॥

समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ।
नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥

समृद्धिकामः हीनः वा नारायणपरः मुनिः न उत्सर्पेत न शुष्येत सरित्भिः इव सागरः ॥ ६ ॥

सरित्भिः - सरिताओं द्वारा
समृद्धिकामः - बढ़ना चाहता हो
वा हीनः - या उनसे रहित हो
सागरः इव - समुद्रके समान
नारायणपरः- - नारायणपरायण मुनि
मुनिः
न उत्सर्पेत - न हर्षोत्फुल बने,
न शुष्येत् - न (शोकसे) सूखे ॥६॥

दृष्टवा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

दृष्टवा स्त्रियं देवमायां तत् भावैः अजित इन्द्रियः प्रलोभितः पतति अन्धे तमसि अग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

देवमायां स्त्रियं - भगवानकी मायारूपा स्त्रीको
दृष्ट्वा अजित - देखकर इन्द्रियोंको
इन्द्रियः न जीतने वाला
तत् भावैः - उसके हाव-भावसे
प्रलोभितः - प्रलोभित होकर
अग्नौ पतंगवत् - अग्निमें पतिंगेके समान
अन्धे तमसि - घोर अन्धकार (अज्ञान)में
पतति - गिरता है ॥ ७ ॥

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादि-

द्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।

प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या

पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥

योषित् हिरण्य आभरण अम्बर आदिद्रव्येषु माया रचितेषु मूढ़ः प्रलोभित आत्मा हि उपभोग बुद्ध्या पतंगवत् नश्यति नष्ट दृष्टिः ॥ ८ ॥

योषित् हिरण्य - स्त्री, स्वर्ण,
आभरण अम्बर - आभूषण, वस्त्र,
आदि माया-रचितेषु - आदि माया-निर्मित
द्रव्येषु हि - द्रव्योंमें क्योंकि
उपभोग बुद्ध्या - उनका उपभोग करनेका विचार है,
मूढ़ः प्रलोभित आत्मा - मूर्खका चित्त प्रलुब्ध हो जाता है
नष्ट दृष्टिः - (अतः) अन्धा होकर
पतंगवत् नश्यति - पतिंगेके समान नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

स्तोकं स्तोकं ग्रसेद् ग्रासं देहो वर्तेत यावता ।

गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥

स्तोकं स्तोकं ग्रसेत् ग्रासं देहः वर्तेत यावता गृहात् अहिंसत् न अतिष्ठेत् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥

मुनिः माधुकरीं वृत्तिं - मननशील साधक भौंरेके व्यवहारके समान
गृहात् अहिंसत् - गृहस्थोंको बिना कष्ट दिये
न अतिष्ठेत् - वहाँ ठहरे बिना
यावता देहः-वर्तेत - जितनेसे शरीरकार्यशील रहे
स्तोकं स्तोकं ग्रासं ग्रसेत् - थोड़ा-थोड़ा भोजन लेकर ग्रहण करे ॥ ९ ॥

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः ।
सर्वतः सारमादधात् पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥

अणुभ्यः च महत्भ्यः च शास्त्रेभ्यः कुशलः नरः सर्वतः सारं आदधात् पुष्पेभ्यः इव षट् पदः ॥ १० ॥

पुष्पेभ्यः	- फूलोंसे	**महत्भ्यः च**	- बड़े भी
षट्पदः इव	- भ्रमरके समान	**शास्त्रेभ्यः**	- शास्त्रोंमेंसे
कुशलः नरः	- चतुर मनुष्य	**सर्वतः सारं**	- सब ओरसे उनका सार
अणुभ्यः च	- छोटे तथा	**आदधात्**	- ग्रहण करे ॥ १० ॥

सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् ।
पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न सङ्ग्रही ॥ ११ ॥

सायंतनं श्वः तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितं पाणिपात्र उदर अमात्र मक्षिका इव न सङ्ग्रही ॥ ११ ॥

भिक्षितं	- भिक्षामें मिले पदार्थको	**पाणिपात्रः**	- हाथका बर्तन तथा
सायंतनं	- शामके लिए	**उदर अमात्र**	- पेटका मटका रखे
वाश्वः तनं	- अथवा कलके लिए	**मक्षिका इव**	- मधुमक्खीकी भंगति
संगृह्णीत न	- रखनेको न लेवे,	**संग्रहीत न**	- संग्रह करनेवाला न बने ॥ ११ ॥

सायन्तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः ।
मक्षिका इव सङ्गृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥

सायंतनं श्वः तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः मक्षिका इव सङ्गृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥ १२ ॥

भिक्षुकः	- भिक्षा जीवी (साधु) को	**मक्षिका इव**	- मधुमक्खीके समान
सायंतनं	- शामके लिए	**संगृह्णन्**	- संग्रह करनेपर
वा श्वः तनं	- अथवा कलके लिए	**तेन सह**	- उस (संग्रह)के साथ नष्ट
संगृह्णीत न	- संग्रह न करे	**विनश्यति**	हो जाता है ॥ १२ ॥

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि ।
स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अंगसंगतः ॥ १३ ॥

पदा अपि युवतीं भिक्षुः न स्पृशेत् दारवीं अपि स्पृशन् करि इव बध्येत करिण्या अंग संगतः ॥ १३ ॥

भिक्षुः पदा अपि	- सन्यासी पैरसे भी	**स्पृशन्**	- स्पर्श करनेपर
दारवीं अपि	- लकड़ीकी बनी भी	**करिण्य-अंग-संगतः**	- हथिनीके शरीर स्पर्शसे
युवतीं-स्पृशेत् न	- युवा स्त्रीका स्पर्श न करे,	**करि इव-बध्येत**	- हाथीके समान बन्धनमें पड़ जाता है ॥ १३ ॥

नाधिगच्छेत स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ।
बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ १४ ॥

न अधिगच्छेत स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचित् मृत्युं आत्मनः बल अधिकैः स हन्येत गजैः अन्यैःगजः यथा ॥ १४ ॥

प्राज्ञः	- विवेकी पुरुष	**सबल अधिकैः**	- (करनेपर) वह अधिक बलवान
आत्मनः मृत्युं	- अपनी मृत्युके समान	**गजैः अन्यैः गजः**	- हाथी द्वारा दूसरे हाथीके
स्त्रियं	- स्त्रीको	**यथा हन्येत**	- समान मारा जाता है ॥ १४ ॥
कर्हिचित् न अधिगच्छेत	- कभी भी अधिकृतन करे		

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद् दुःखसञ्चितम् ।
भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थवित्मधु ॥ १५ ॥

न देयं न उपभोग्यं च लुब्धैः यत् दुःख सञ्चितम् भुङ्क्ते तत् अपि तत् च अन्यः मधुहाइव अर्थवित् मधु ॥ १५ ॥

न देयं - न दानके लिए है
च न उपभोग्यं - और न अपने उपभोगके लिए है
यत् लुब्धैः - जो लोभी द्वारा
दुःख सञ्चितं - कष्टसे किया गया संग्रह है
तत् च अपि - उसे भी
तत् अर्थ - उस धनको जानने वाला
वित् अन्यः दूसराकोई
मधुहा मधु - शहद निकालने वाले
इव द्वारा शहदके समान
भुङ्क्ते - खा लेता है ॥ १५ ॥

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः ।
मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥

सुदुःख उपार्जितैः वित्तैः आशासानां गृह आशिषः मधुहा इव अग्रतः भुङ्क्ते यतिः वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥

गृहमेधिनां - गृहस्थों द्वारा
सुदुःख- - बड़े कष्टसे कमाये
उपार्जितैः
वित्तैः गृह- - धन द्वारा घरकीकामनायें
आशिषः
आशासानां - पूरा करना चाहने वालोंके यहां
मधुहा इव - शहद निकालने वालेकी भाँति
वै यतिः - निश्चय साधु
अग्रतः भुङ्क्ते - पहिले भोजन करते हैं ॥ १६ ॥

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित् ।
शिक्षेत हरिणाद् बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥ १७ ॥

ग्राम्यगीतं न शृणुयात् यतिः वनचरः क्वचित् शिक्षेत हरिणात् बद्धात् मृगयोः गीत मोहितात् ॥ १७ ॥

वनचरः यतिः - वनमें घूमने वाला सन्यासी
क्वचित् ग्राम्य - कभी भी वैषयिक
गीतं गायन
न शृणुयात् - नहीं सुने,
मृगयोः गीत - शिकारीके संगीतसे
मोहितात् - सम्मोहित होकर
बद्धात् हरिणात् - बन्धनमें पड़े हिरणसे
शिक्षेत - यह शिक्षा ग्रहण करे ॥ १७ ॥

नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् ।
आसां क्रीडनको वश्य ऋष्यशृंगो मृगीसुतः ॥ १८ ॥

नृत्यवादित्र गीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषितां आसां क्रीडनकः वश्य ऋष्यशृंगः मृगीसुतः ॥ १८ ॥

ग्राम्याणि योषितां- विषयी स्त्रियोंके
नृत्यवादित्र - नृत्य, वाद्य,
गीता निजुषन् - गायनका रस लेनेसे
मृगीसुतः - हिरणीके पुत्र
ऋष्य शृंगः - ऋष्य शृंग
आसां क्रीडनकः -इनके खिलौनेके समान
वश्य - वशमें होगये ॥ १८ ॥

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥

जिह्वया अति प्रमाथिन्या जनः रस विमोहितः मृत्युं ऋच्छति असत् बुद्धिः मीनः तु बडिशैः यथा ॥ १९ ॥

अतिप्रमाथिन्यां - अत्यन्त मथ देने वाली
जिह्वया - जीभके द्वारा
रस विमोहितः - स्वादके पीछे अत्यन्त मोहित
असत् बुद्धिः जनः - दुर्बुद्धि मनुष्य
यथा बडिशैः - जैसे बंसीमें लगे चारेसे
मीनः तु - मछलियां तो (मारी जाती हैं)
मृत्युं ऋच्छति - मृत्यु पाता है ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः ।
वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥

इन्द्रियाणि जयन्ति आशु निराहारा मनीषिणः वर्जयित्वा तु रसनं तत् निरन्नस्य वर्धते ॥ २० ॥

मनीषिणः	- धीर पुरुष	**तु रसनं वर्जयित्वा**	- किन्तु जीभको छोड़कर
निराहारा	- भोजन त्याग कर	**तत् निरन्नस्य**	-वह निराहार रहनेसे
इन्द्रियाणि	- इन्द्रियोंको	**वर्धते**	-बलवान होती है
आशु जयन्ति	- शीघ्र जीत लेते हैं		॥ २० ॥

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रियः पुमान् ।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥

तावत् जितेन्द्रियः न स्यात् विजित अन्य इन्द्रियः पुमान् न जयेत् रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥

रसनं यावत्	- जीभको जब तक	**जितेन्द्रियः-न स्यात्**	- जितेन्द्रिय नहीं है
जयेत् न	- जीत न ले	**जितेरसे**	- रसनाको जीत लेनेपर
तावत् पुमान्	- तब तक पुरुष	**सर्वं जितं**	- सब (इन्द्रियां) जीत ली
विजित अन्य इन्द्रियः	- दूसरी इन्द्रियोंको जीत लेनेपर भी		गयीं ॥ २१ ॥

पिंगला नाम वेश्याऽऽसीद् विदेहनगरे पुरा ।
तस्या मे शिक्षितं किञ्चिन्निबोध नृपनन्दन ॥ २२ ॥

पिंगला नाम वेश्या आसीत् विदेहनगरे पुरा तस्या मे शिक्षितं किञ्चित् निबोध नृपनन्दन ॥ २२ ॥

नपृनन्दन निबोध	- राजकुमार सुनो !	**वेश्या आसीत्**	- वेश्या थी,
पुरा विदेह-नगरे	- पहिले विदेह पुरी मिथिलामें	**तस्या मे-किञ्चित्**	- उससे मैंने कुछ
पिंगला नाम	- पिंगला नामकी	**शिक्षितं**	- सीखा ॥ २२ ॥

सा स्वैरिण्येकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती ।
अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥

सा स्वैरिणी एकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती अभूत्काले बहिर्द्वारि विभ्रती रूपं उत्तमम् ॥ २३ ॥

एकदा सा	- एक बार वह	**उत्तमं रूपं**	- श्रेष्ठ रूप-शृंगार धारण
स्वैरिणी	स्वेच्छाचारिणी	**विभ्रती**	करके
कान्तं संकेत	- प्रियको एकान्तमें	**बहिःद्वारि**	- दरवाजेके बाहर
उपनेष्यती	- ले जानेकी इच्छासे	**काले अभूत्**	- देर तक खड़ी रही ॥ २३ ॥

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान् पुरुषर्षभ ।
ताञ्शुल्कदान् वित्तवतःकान्तान् मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥

मार्ग आगच्छतः वीक्ष्य पुरुषान् पुरुष ऋषभ तान् शुल्कदान् वित्तवतःकान्तान् मेने अर्थकामुका ॥ २४ ॥

पुरुष ऋषभ	- पुरुष श्रेष्ठ !	**तान् वित्तवतः**	- उन्हें धनी
अर्थकामुका	- वह धन चाहने वाली	**शुल्कदान्**	- (अपना) मूल्य देने वाला
मार्ग आगच्छतः	- उस मार्गसे आते हुए	**कान्तान् मेने**	- प्रिय समझा ॥ २४ ॥
पुरुषान् वीक्ष्य	- पुरुषोंको देखकर		

आगतेष्वपयातेषु सा सङ्केतोपजीविनी ।
अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥

आगतेषु अपयातेषु सा सङ्केत उप जीवनी अपि अन्यः वित्तवान् कः अपि मां उप एष्यति भूरिदः ॥ २५ ॥

आगतेषु	- आने वालेके	**अपि अन्यः**	- (सोचती थी) फिर दूसरा
अपयातेषु	- आगे चले जानेपर	**कः अपि वित्तवान्**	- कोई भी धनी
सा सङ्केत उपजीवनी	- वह संकेत-जीवनी (वेश्य)	**भूरिदः मां उप एष्यति**	- बहुत देने वाला मेरे समीप आवेगा ॥ २५ ॥

एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बती ।
निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

एवं दुराशया ध्वस्त निद्रा द्वारि अवलम्बती निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥

एवं दुराशया - इस प्रकार दुराशासे
द्वारि अवलम्बती - द्वारपर खड़े
ध्वस्त निद्रा - निद्रा नष्ट हो गयी,
प्रविशती - कभी भीतर जाते,
निर्गच्छन्ती - फिर (बाहर) निकलते
निशीथं-समपद्यत - पूरी आधी रात हो गयी ॥ २६ ॥

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः ।
निर्वेदःपरमो जज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥

तस्या वित्त आशया शुष्यत् वक्त्राया दीन चेतसः निर्वेदःपरमः जज्ञे चिन्ताहेतुः सुख आवहः ॥ २७ ॥

वित्त आशया - धनकी आशासे
शुष्यत् वक्त्राया - सूखते मुखवाली
दीन चेतसः - दुःखी चित्त
तस्या चिन्ता हेतुः - उसे चिन्ताकेकारण
सुख आवहः - सुखदायक
परमः निर्वेदः जज्ञे - परम वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥

तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ।
निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥ २८ ॥

तस्या निर्विण्ण चित्ताया गीतं शृणु यथा मम निर्वेद आशा पाशानां पुरुषस्य यथा हि असिः ॥ २८ ॥

आशा पाशानां - आशाकी रस्सीमें जकड़े
यथा मम- - मेरे जैसे
पुरुषस्य पुरुषोंके लिए
हि निर्वेदअसिः - क्योंकि वैराग्य रूपी तलवारके संमान है
तस्या निर्विण्य - उस वैराग्ययुक्त
चित्ताया गीतं - चिन्ताका गीत
शृणु सुनो ॥ २८ ॥

न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति ।
यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ॥ २९ ॥

न हि अंग अजात निर्वेदः देह बन्धं जिहासति यथा विज्ञान रहितः मनुजः ममतां नृप ॥ २९ ॥

अंग नृप - प्रिय राजन्
हि अजात - क्योंकि वैराग्य उत्पन्न
निर्वेदः हुए बिना
देहबन्धं - शरीरकी आसक्ति
न जिहासति - नहीं छोड़ी जा पाती
यथा विज्ञान - जैसे तत्त्वज्ञान रहित
रहितः
मनुजः ममतां - मनुष्य ममत्व (नहीं छोड़ पाता) ॥ २९ ॥

पिंगलोवाच–

अहो मे मोहवितर्तिं पश्यताविजितात्मनः ।
या कान्तादसतःकामं कामये येन बालिशा ॥ ३० ॥

अहो मे मोह वितर्तिं पश्यत अविजित आत्मनः या कान्तात् असतःकामं कामये येन बालिशा ॥ ३० ॥

अहो मे अविजित - अहो मुझ
आत्मनः अजितेन्द्रियकी
मोह वितर्ति- - मोहका विस्तार तो
पश्यत देखो
येन बलिशा - जिससे मूर्खा होकर
या असतः - जो दुष्ट
कान्तात्कामं - प्रियोंसे भोग
कामये - चाहती हूँ ॥ ३० ॥

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं
वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ।
अकामदं दुःखभयादिशोक-
मोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥ ३१ ॥

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यं इमं विहाय अकामदं दुःख भय आदि शोक मोहप्रदं तुच्छं अहं भजे अज्ञा ॥ ३१ ॥

रतिप्रदं	- सुखदाता,	**अकामदं**	- कामना न पूरी करने वाले
नित्यं वित्त-	- नित्य धन के दाता	**दुःख भय**	- दुःख, भय,
प्रदं		**आदिशोक**	- चिन्ता, शोक,
इमं रमणं	- इन (भगवान रूपी) स्वामीको	**मोह प्रदं**	- मोह देने वाले
		तुच्छं भजे	- तुच्छ लोगोंकी सेवा करती हूँ ॥ ३१ ॥
समीपे सन्तं	- अपने पास रहते		
विहाय अहं अज्ञा	- छोड़कर मैं मूर्खा		

अहो मयाऽऽत्मा परितापितो वृथा
सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ।
स्त्रैणान्नराद् यार्थतृषोऽनुशोच्यात्
क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३२ ॥

अहो मया आत्मा परितापितः वृथा सांकेत्य वृत्त्या अति विगर्ह्यवार्तया स्त्रैणात् नरात् या अर्थतृषः अनु शोच्यात् क्रीतेन वित्तं रतिं आत्मना इच्छती ॥ ३२ ॥

अहो अति विगर्ह्य	- अहो अत्यन्त निन्दित	**या अर्थतृषः**	- जो धनकी तृष्णासे
		अनुशोच्यात्	- बराबर चिन्ता करती हुई
सांकेत्य वृत्त्या	- वेश्या वृत्तिकी	**स्त्रैणात् नरात्**	- स्त्री जित् पुरुषों द्वारा
वार्तया	- आजीविका द्वारा	**क्रीतेन आत्मना**	- स्वयं खरीदी जाकर
मया आत्मा	- मैंने अपने चित्तको	**रतिं वित्तं**	- रति तथा धन
वृथा परितापितः	- व्यर्थ संतप्त किया	**इच्छती**	- चाहती थी ॥ ३२ ॥

यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्य-
स्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ।
क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्
विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥ ३३ ॥

यत् अस्थिभिः निर्मित वंश वंश्य स्थूणं त्वचा रोम नखैः पिनद्धं क्षरम् नवद्वारं अगारं एतत् विट् मूत्र पूर्णं मत् उपैतिका अन्या ॥ ३३ ॥

यत् अस्थिभिः - जो हड्डियोंके द्वारा
वंश - बाँसोंके
वंश्य स्थूणं - सीधे-तिरछे खम्भोंसे
निर्मित - बने
त्वचा रोम - चमड़ा, रोम
नखैः पिनद्धं - नखोंसे ढका हुआ,
क्षरत् नवद्वार - बहते हुए नौ द्वारों वाले,
विट् मूत्र पूर्णं - विष्ठा-मूत्रसे भरे
एतत् अगारं - इस घरको
मत् का अन्या - मुझे छोड़कर कौन दूसरी
उपैति - सेवन करेगी ॥ ३३ ॥

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ।
यान्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात् काममच्युतात् ॥ ३४ ॥

विदेहानां पुरे हि अस्मिन् अहं एक एव मूढ धीः या अन्यं इच्छन्ति असति अस्मात् आत्मदात् कामं अच्युतात् ॥ ३४ ॥

हि अस्मिन् - क्योंकि इस
विदेहानां पुरे - विदेहोंके नगरमें
एक एव - अकेली
मूढ धीः अहं - मूढ़ बुद्धिमें
असति - असाध्वी हूँ
या अस्मात् - जो इन
कामं आत्मदात् - इच्छा करते ही अपनेको दे देने वाले
अच्युतात् - अच्युतसे
अन्यं इच्छन्ति - भिन्नको चाहती हूँ ॥ ३४ ॥

सुहृत् प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् ।
तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥

सुहृत् प्रेष्ठतमः नाथ आत्मा च अयं शरीरिणां तं विक्रीय आत्मने एव अहं रमे अनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥

अयं आत्मा च - यह आत्मा तो
शरीरिणां - शरीर धारियोंका
सुहृत् प्रेष्ठतमः - हितैषी,परमप्रिय
नाथ - स्वामी है
आत्मने एव - अपने शरीर द्वारा ही मैं
अहं
तं विक्रीय - उसे खरीदकर
रमा यथा - लक्ष्मीके समान
अनेन रमे - इसीके साथ रमण करुंगी
॥ ३५ ॥

कियत् प्रियं ते व्यभजन् कामा ये कामदा नराः ।
आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥

कियत् प्रियं ते व्यभजन् कामा ये कामदा नराः आद्य अन्तवन्तः भार्याया देवा वा काल विद्रुताः ॥ ३६ ॥

आद्य अन्तवन्तः - आदि (जन्मने) अन्त (मरने) वाले
कामदा नराः - कामना पूरी करने वाले मनुष्य
ते - तेरी
वा काल विद्रुताः - अथवाकालसे सन्त्रस्त
देवा भार्याया - देवता अपनी पत्नियोंका
कियत् प्रियं - कितना प्रिय
व्यभजन् - दे सके हैं ॥ ३६ ॥

नूनं मे भगवान् प्रीतो विष्णुःकेनापि कर्मणा ।
निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ॥ ३७ ॥

नूनं मे भगवान् प्रीतः विष्णुःकेन अपि कर्मणा निर्वेदः अयं दुराशा या यत् मे जातः सुख आवहः ॥ ३७ ॥

नूनंकेन अपि	- निश्चय किसी भी	**यत् दुराशाया**	- जो बुरी आशा वाली
कर्मणा मे	- कर्मसे मुझपर	**मे सुख आवहः**	- मुझे सुख देने वाला
भगवान विष्णुः	- भगवान् विष्णु प्रसन्न	**अयं निर्वेदः**	- यह वैराग्य
प्रीतः	हुए हैं	**जातः**	उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः ।
येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥ ३८ ॥

मा एवं स्युः मन्द भाग्यायाः क्लेशा निर्वेद हेतवः येन अनुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शमं ऋच्छति ॥ ३८ ॥

मन्द भाग्यायाः	- (मुझ) अभागिनीके लिए	**येन अनुबन्धं**	- जिससे सब सम्बन्ध
क्लेशा निर्वेद	- क्लेश उस वैराग्यके	**निर्हृत्य पुरुषः**	- सम्पूर्ण त्यागकर पुरुष
हेतवः	कारण	**शमं ऋच्छति**	- शान्ति पाता है
एवं मा स्युः	- इस प्रकार नहीं होने चाहिए		॥ ३८ ॥

तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः ।
त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३९ ॥

तेन उपकृतं आदाय शिरसा ग्राम्य संगताः त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तं अधीश्वरम् ॥ ३९ ॥

तेन उपकृतं	- इसलिए उनके उपकारको	**दुराशाः त्यक्त्वा**	- दुराशा त्यागकर
शिरसा आदाय	- सिरसे स्वीकार करके	**तं अधीश्वरं**	- उन्हीं सर्वेश्वरकी
ग्राम्य संगताः	- विषय भोगकी आसक्ति रूपी	**शरणं व्रजामि**	- शरणमें जाऊँगी ॥ ३९ ॥

सन्तुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती ।
विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥

सन्तुष्टा श्रद्दधत् एतत् यथा लाभेन जीवती विहारामि अमुना एव अहं आत्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥

यथा लाभेन - प्रारब्धानुसार प्राप्तसे
जीवती जीवन निर्वाह करके
सन्तुष्टा - सन्तुष्ट रहती
एतत् श्रद्दधत् - इस (भगवत् कृपापर) श्रद्धा करके
अमुना आत्मना - इन अपने
वै रमणेन एव - निश्चित स्वामीसे ही
विहरामि - विहार करूँगी ॥ ४० ॥

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ।
ग्रस्तं कालाहिनाऽऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥ ४१ ॥

संसार कूपे पतितं विषयैः मुषित ईक्षणं ग्रस्तं काल अहिना आत्मानं कः अन्यः त्रातुं अधीश्वरः ॥ ४१ ॥

संसार कूपे - संसार रूपी कुयेंमें
पतितं गिरे हुए,
विषयैः - विषय भोगों द्वारा
मुषित ईक्षणं - दृष्टि चुराये (अन्धे बनाये)
काल अहिना -काल रूपी सर्प द्वारा
ग्रस्तं आत्मानं -पकड़े गये अपनेको
त्रातुं कः अन्यः -बचानेमें कौन दूसरा
अधीश्वरः -समर्थ हैं ॥ ४१ ॥

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् ।
अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालहिना जगत् ॥ ४२ ॥

आत्मा एव हि आत्मनः गोप्ता निर्विद्येत यदा अखिलात् अप्रमत्त इदं पश्येत् ग्रस्तं काल अहिना जगत् ॥ ४२ ॥

हि यदा - क्योंकि जब
अखिलात् - सबसे
निर्विद्येत - विरक्त हो जाता है
आत्मा एव - स्वयं ही
आत्मनः गोप्ता - अपना रक्षक हो जाता है,
अप्रमत्त - (अतः) असावधान हुए बिना
इदं जगत् - इस संसारको
काल अहिना - काल रूपी सर्प द्वारा
ग्रस्तं पश्येत् - पकड़ा देखे ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण उवाच–

एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् ।
छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥ ४३ ॥

एवं व्यवसित मतिः दुराशां कान्त तर्षजां छित्त्वा उपशमं आस्थाय शय्यां उपविवेश सा ॥ ४३ ॥

एवं व्यवसित-	- इस प्रकार बुद्धिसे	**उपशमं-**	- वैराग्यका आश्रय लेकर
मतिः	निश्चय करके	**आस्थाय**	
कान्त तर्षजां	- प्रियोंकी तृष्णासे उत्पन्न	**सा शय्यां**	- वह पलंगपर
दुराशां छित्त्वा	- दुराशा काटकर	**उपविवेश**	- सो गयी ॥ ४३ ॥

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४४ ॥

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं यथा संछिद्य कान्त आशां सुखं सुस्वाप पिंगला ॥ ४४ ॥

हि आशा	- क्योंकि आशा	**यथाकान्त आशां**	- जैसे प्रियोंकी आशा
परमं दुःखं	- सबसे बड़ा दुःख है,	**संछिद्य पिंगला**	- काटकर पिंगला
नैराश्यं	- निराश रहना	**सुखं सुष्वाप**	- सुखपूर्वक सो गयी
परमं सुखं	- सबसे बड़ा सुख है,		॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच–

परिग्रहो हि दुःखाय यद् यत्प्रियतमं नृणाम् ।
अनन्तं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः ॥ १ ॥

परिग्रहः हि दुःखाय यत् यत् प्रियतमं नृणां अनन्तं सुखं आप्नोति तत् विद्वान् यः तु अकिञ्चनः ॥ १ ॥

हि नृणां यत्-	- क्योंकि मनुष्योंको जो	**तत् विद्वान्**	- इसे समझकर
यत्	जो	**यः तु-**	- जो कुछ भी नहीं रखता
प्रियतमं परिग्रहः-	अत्यन्त प्रिय है उसका संग्रह	**अकिञ्चनः**	वह
		अनन्तं सुखं	- अनन्त (परमात्माका) सुख
दुःखाय	- दुःखकाकारण होता है	**आप्नोति**	- पाता है ॥ १ ॥

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ।
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥ २ ॥

सामिषं कुररं जघ्नुः बलिनः ये निरामिषाः तत् आमिषं परित्यज्य स सुखं सम विन्दत ॥ २ ॥

सामिषं कुररं	- मांस लिए चीलको	**तत् आमिषं**	- उस मांसको
ये निरामिषाः	- जो बिना मांस वाले (चील)	**परित्यज्य स**	- छोड़कर वह (चील)
		सुखं समविन्दत	- चैन पा गया ॥ २ ॥
बलिनः जघ्नुः	- बलवान थे, मारने लगे		

न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् ।
आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥

न मे मानाः अवमानौ स्तो न चिन्ता गेह पुत्रिणां आत्मक्रीड आत्मरतिः विचरामि इह बालवत् ॥ ३ ॥

मे मानाः - मुझे मान अपमानकी
अवमानौ
न स्तौ - (चिन्ता) नहीं है
गेह पुत्रिणां - घर-पुत्रवालों जैसी
चिन्ता न - चिन्ता नहीं है
आत्मक्रीड - अपनेसे ही खेलता,
आत्मरतिः - अपनेमें ही सुखी
बालवत् इह - बच्चोंके समान यहां
विचरामि - विचरण करता हूँ
॥ ३ ॥

द्वौवेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥

द्वौः एव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ यः विमुग्धः जडः बालः यः गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥

द्वाः एव - दो ही (प्रकारके पुरुष)
चिन्तया मुक्तौ चिन्तासे छूटे
परमानन्द - परमानन्द निमग्न
आप्लुतौ (रहते हैं)
यः विमुग्धः - जो ज्ञान रहित
जडः बालः - मूर्ख बालक है (या)
यः गुणेभ्यः - जो त्रिगुणोंसे
परं गतः - पार पहुंच गया है
॥ ४ ॥

क्वचित् कुमारी त्वात्मानं वृणानान् गृहमागतान् ।
स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥

क्वचित् कुमारी तु आत्मानं वृणानान् गृहं आगतान् स्वयं तान् अर्हयामास क्वअपि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥

क्वअपि बन्धुषु - कहीं भी सम्बन्धियोंके
यातेषु - चले जानेपर
आत्मानं - अपनेको वरण करने
वृणानान् वालोंके
गृह आगतान् - घर आनेपर
क्वचित् कुमारी तु - कोई कन्या तो
स्वयं तान् - स्वयं उनका
अर्हयामास - सत्कार करने लगी
॥ ५ ॥

तेषामभ्यवहारार्थं शालीन् रहसि पार्थिव ।
अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥

तेषां अभ्यवहार अर्थं शालीन् रहसि पार्थिव अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाः चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६ ॥

पार्थिव	- राजन् !	**अवघ्नन्त्याः**	- कूटते समय
तेषां अभ्यवहार	- उनको भोजन करानेके	**प्रकोष्ठस्थाः**	- कलाईमें पड़ी
अर्थं	लिए	**शंखाः महत्**	- चूड़ियां बहुत
रहसि शालीन्	- एकान्तमें धान	**स्वनं चक्रुः**	- शब्द करने लगीं
			॥ ६ ॥

सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ।
बभञ्जैकैकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥

सा तत् जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः बभञ्ज एक एकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योः अशेषयत् ॥ ७ ॥

सा तत्	- उसने उस (शब्द) को	**एक एकशः**	- एक-एक करके
जुगुप्सितं मत्वा	- निन्दित समझकर	**शंखान् बभञ्ज**	- चूड़ियोंको तोड़ डाला,
ततः महती-	- तब बहुत लज्जित	**पाण्योः द्वौ द्वौ**	- हाथोंमें दो दो
व्रीडिता	होकर	**अशेषयत्**	- बची रहने दीं ॥ ७ ॥

उभयोरप्यभूद् घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शंखयोः ।
तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद् ध्वनिः ॥ ८ ॥

उभयोः अपि अभूत् घोषः हि अवघ्नन्त्याः स्म शंखयोः तत्र अपि एकं निःअभिदत् एक स्मात् न अभवत् ध्वनिः ॥ ८ ॥

अवघ्नन्त्याः - कूटते समय
उभयोः - उन दोनों
शंखयोः अपि - चूड़ियोंसे भी
हि घोषः अभूत् - क्योंकि शब्द होने लगा
तत्र अपि एकं - उनमेंसे भी एक एकको
निः अभिदत् - तोड़ दिया
एक स्मात् - अकेली (चूड़ी)से
ध्वनिः न - शब्द नहीं हुआ
अभवत् ॥ ८ ॥

अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिन्दम ।
लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥

अनु अशिक्षं इमं तस्या उपदेशं अरिन्दम लोकान् अनुचरत एतान् लोकतत्त्व विवित्सया ॥ ९ ॥

अरिन्दम - शत्रुनाशक राजन् !
तस्या इमं - उसके (व्यवहारसे) यह
उपदेशं - यह उपदेश
अनुअशिक्षं - पीछे (मैंने) सीखा कि
लोकतत्त्व - लोगोंका तत्त्व
विवित्सया - जाननेकी इच्छासे
एतान् लोकान् - इन लोगोंमें
अनुचरत् - विचरण करते समय
॥ ९ ॥

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तस्मात् कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥

वासे बहूनां कलहः भवेत् वार्ता द्वयोः अपि एक एव चरेत् तस्मात् कुमार्या इव ककंणः ॥ १० ॥

बहूनांवासे - बहुतोंके साथ रहनेसे
कलहः - झगड़ा और
द्वयोः अपि - दो के होनेपर भी
वार्ता भवेत् - बातचीत होती है
तस्मात् - इसलिए
कुमार्या- - उस कन्याके कंगनके
कंकणः समान
एक एव - अकेला ही विचरण करे
चरेत् ॥ १० ॥

मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ।
वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥ ११ ॥

मनः एकत्र संयुञ्ज्यात् जितश्वासः जित आसनः वैराग्य अभ्यास योगेन ध्रियमाणं अतन्द्रितः ॥ ११ ॥

जित आसनः - आसनजय करके	**योगेन ध्रियमाणः** - युक्त होकर बार-बार रोककर
जितश्वासः - प्राणजय करके	
अतन्द्रितः - सावधान होकर	**मनः एकत्र** - मनको एक स्थानमें
वैराग्य अभ्यास - वैराग्य-अभ्यास	**संयुञ्ज्यात्** - लगावे ॥ ११ ॥

यस्मिन् मनो लब्धपदं यदेत-
च्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् ।
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च
विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ॥ १२ ॥

यस्मिन् मनः लब्धपदं यत् एतत् शनैः शनैः मुञ्चति कर्म रेणून सत्त्वेन वृद्धेन रजः तमः च विधूय निर्वाणं उपैति अन इन्धनम् ॥ १२ ॥

यस्मिन् लब्धपदं - जिसमें लगकर	**सत्त्वेन वृद्धेन** - फिर सत्त्व गुण बढ़नेसे
यत् एतत् मनः - क्योंकि यह मन	**रजः च तमः** - रजोगुण और तमोगुणको
शनैः शनैः - धीरे-धीरे	**विधूय** - नष्ट करके
कर्म रेणून् - कर्मोंका मैल	**अन इन्धनं** - ईंधन न रहनेसे (स्वयं भी)
मुञ्चति - छोड़ देता है	**निर्वाणं उपैति** - बुझ जाता है ॥ १२ ॥

तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो
न वेद किञ्चिद् बहिरन्तरं वा ।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्त-
मिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥

तत एव आत्मनि अवरुद्ध चित्तः न वेद किञ्चित् बहिः अन्तरं वा यथा इषुकारः नृपतिं व्रजन्तं इषौ गत आत्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥

आत्मनि अवरुद्ध	- आत्मामें निरुद्ध	**यथा इषौ गत**	- जैसे बाणमें चित्त वाला
चित्तः तत एव	- चित्त उसी समय	**आत्मा**	अवरुद्ध
किञ्चित् बहिः	- कुछ भी ाहर	**इषुकारः**	- बाण बनाने वाला
वा अन्तरं न	- अथवा भीतर नहीं	**पार्श्वे व्रजन्तं**	- बगलसे जाते
वेद	जानता	**नृपतिं न-**	- राजाको नहीं देख सका
		ददर्श	॥ १३ ॥

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥ १४ ॥

एक चारि अनिकेतः स्यात् अप्रमत्तः गुहाशयः अलक्ष्यमाण आचारैः मुनिः एकः अल्प भाषणः ॥ १४ ॥

मुनिः	- मननशील साधक	**आचारैः-**	- आचरणसे पहिचाना न
एक चारि	- अकेला घूमने वाला	**अलक्ष्माण**	जाय
अनिकेतः स्यात्	- बिना घर बनाये रहे,	**एकः**	- अकेला रहे और कम
अप्रमतः	- सावधान रहे, गुफादिमें	**अल्पभाषणः**	बोले ॥ १४ ॥
गुहाशयः	सो रहे,		

गृहारम्भोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ।
सर्पःपरकृतं वेश्म प्रविशय सुखमेधते ॥ १५ ॥

गृह आरम्भः अति दुःखाय विफलः च अध्रुव आत्मनः सर्पःपरकृतं वेश्म प्रविश्य सुखं एधते ॥ १५ ॥

अध्रुव आत्मनः	- अनित्य शरीरके लिए	**परकृतं वेश्म**	- दूसरेके बनाये घरमें
गृह आरम्भः	- मकान बनाना	**प्रविश्य सर्पः**	- घुसकर सर्प
अति दुःखाय	- अत्यन्त दुखदायी	**सुखं एधते**	- सुखपूर्वक बढ़ता है
च विफलः	- तथा निष्फल है,		॥ १५ ॥

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ।
संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १६ ॥

एकः नारायणः देवः पूर्व सृष्टं स्वमायया संहृत्य काल कलया कल्प अन्त इदं ईश्वरः ॥ १६ ॥

एकः नारायणः - अकेले भगवान नारायणने
देवः
स्वमायया - अपनी मायासे
पूर्व सृष्टं इदं - पहिले उत्पन्न किये जगतको
कल्प अन्त - कल्पान्त (प्रलया)के समय
काल कलया - अपनीकाल रूप कलासे
ईश्वरः संहृत्य - उन समर्थने समेट लिया ॥ १६ ॥

एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ।
कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ।
सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥

एक एव अद्वितीयः अभूत् आत्म आधारः अखिल आश्रयःकालेन आत्म अनुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु सत्त्व आदिषु आदि पुरुषः प्रधान पुरुष ईश्वरः ॥ १७ ॥

प्रधान पुरुष - प्रकृति और पुरुष (नीव) के
ईश्वरः - स्वामी
अखिल आश्रयः - सर्वाधार
आदिपुरुषः - आदिपुरुष
कालेन सत्व - कालके द्वारा सत्त्व
आदिषु गुणादि
शक्तिषु - शक्तियोंके
साम्यं नीतासु - साम्यावस्थामें पहुँचा देनेपर
आत्म अनुभावेन - अपने प्रभावसे
आत्म आधारः - अपने ही आधारसे
एक एव - अकेले ही
अद्वितीयः- - अद्वितीय हो गये
अभूत् ॥ १७ ॥

परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ।
केवलानुभवानन्दसन्दोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥

परअवराणां परम आस्ते कैवल्य संज्ञितःकेवल अनुभव आनन्द सन्दोहः निरुपाधिकः ॥ १८ ॥

परअवराणां	- कारण-कार्यसे	**केवल अनुभव**	- केवल ज्ञान एवं
परमः	- अतीत	**आनन्द सन्दोहः**	- आनन्दघन
कैवल्य संज्ञितः	- कैवल्य नाम वाले	**निरुपाधिकः**	- उपाधिरहित
		आस्ते	- रहते हैं ॥ १८ ॥

केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ।
संक्षोभयन् सृजत्यादौ तया सूत्रमरिन्दम ॥ १९ ॥

केवल आत्म अनुभावेन स्वमायां त्रिगुण आत्मिकां संक्षोभयन् सृजति आदौ तया सूत्रं अरिन्दम ॥ १९ ॥

अरिन्दम	-शत्रु दमनकर्ता राजन् !	**स्वमायां**	- अपनी मायाको
आदौकेवल	-(सृष्टिके) प्रारम्भमें नहीं केवल पुरुष	**संक्षोभयन्**	- क्षुब्ध करते हुए
		तथा सूत्रं-	- उसके द्वारा सूत्रात्माको
आत्म अनुभावेन	-अपने प्रभावसे	**सृजति**	उत्पन्न करते हैं
त्रिगुण आत्मिकां	-त्रिगुण स्वरूपा		॥ १९ ॥

तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् ।
यस्मिन् प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥

तां आहुः त्रिगुण व्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतः मुखं यस्मिन् प्रोतं इदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥ २० ॥

यस्मिन् इदं विश्वं - जिसमें यह विश्व
प्रोतं - पिरोया है,
येन पुमान् - जिसके द्वारा जीव
संसरते - जन्म-मरण चक्रमें पड़ता है,
तां विश्वतः-मुखं - उस सब ओर
सृजन्तीं - सृष्टि करती (माया) को
त्रिगुण व्यक्तिं - त्रिगुणोंकी प्रकट अवस्था
आहुः - कहा जाता है ॥२०॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां सन्तत्य वक्त्रतः ।
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥ २१ ॥

यथा ऊर्णनाभिः हृदयात् ऊर्णां संतत्य वक्त्रतः तया विहृत्य भूयः तां ग्रसति एवं महेश्वरः ॥ २१ ॥

यथा उर्णनाभिः - जैसे मकड़ी
हृदयात् वक्त्रतः - हृदयसे मुख द्वारा
ऊर्णां संतत्य - जाला फैलाकर
तया विहृत्य - उससे खेलकर
भूयः तां ग्रसति - फिर उसे निगल लेती है
महेश्वरः एवं - परमेश्वर भी ऐसा ही करता है ॥ २१ ॥

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥ २२ ॥

यत्र यत्र मनः देही धारयेत् सकलं धिया स्नेहात् द्वेषात् भयात् वा अपियाति तत् तत् सरूपताम् ॥ २२ ॥

देही सकलं धिया - जीव सम्पूर्ण बुद्धिसे
स्नेहात् द्वेषात् - स्नेहसे, द्वेषसे,
वा भयात् अपि - अथवा भयसे भी
यत्र-यत्र - जहां-जहां
मनः धारयेत् - मनको लगाता है
तत् तत्-सरूपतां - उसी उसीका स्वरूप
याति - पा लेता है ॥ २२ ॥

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः ।
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्व रूपमसन्त्यजन् ॥ २३ ॥

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः याति तत् सात्मतां राजन् पूर्व रूपं असन् त्यजन् ॥ २३ ॥

राजन्	- राजन् !	**ध्यायन्**	- ध्यान करता हुआ
कीटः तेन	- क्रीड़ा उस (भृंगी) द्वारा	**पूर्वरूपं-**	- अपने पहिले रूपका
कुड्यां प्रवेशितः	- मिट्टीके उसके घरमें बन्द किया	**असन् त्यजन्**	त्याग किये बिना ही
पेशस्कृतं	- उस घर बनाने वाले (भृंगी) का	**तत् सात्मतां**	- उस (भृंगी) का स्वरूप
		याति	- हो जाता है ॥ २३ ॥

एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः ।
स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

एवं गुरुभ्यः एतेभ्यः एषा मे शिक्षिता मतिः स्व आत्म पशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥

प्रभो	- महाराज !	**स्व आत्म**	- अपने शरीरसे
एवं एतेभ्यः	- इस प्रकार इतने	**उपशिक्षितां**	- सीखी हुई
गुरुभ्यः एषा	- गुरुओंसे यह	**बुद्धिं मे वदतः**	- चतुराई मैं बतला रहा हूँ
मतिः मे-	- बुद्धिमानी मैंने सीखी है,		
शिक्षिता		**शृणु**	- सुनो ॥ २४ ॥

देहो गुरुर्मम विरक्तिर्विवेकहेतु-
र्बिभ्रत् स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ।
तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि
पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥

देहः गुरुः मम विरक्ति विवेक हेतुः विभ्रत् स्म सत्त्व निधनं सतत अत्युः उदर्कम् तत्त्वानि अनेन विमृशामि यथा तथा अपि पारक्यं इति अवसितः विचरामि असंगः ॥ २५ ॥

विरक्ति विवेक - वैराग्य और विवेकका
हेतुः देहः - कारण होनेसे शरीर
मम गुरुः - मेरा गुरु है,
सत्त्व निधनं - रहना और मरना,
अत्युः उदर्कं - पतन और उत्थान
सतत विभ्रत् - बराबर धारण करता है
स्म

यथा अनेन - जैसे इसके द्वारा
तत्त्वानि- - तत्त्व-विचार
विमृशामि करता हूँ
तथा अपि - उसी प्रकार
पारक्यं इति - 'यहपराया है' इस प्रकार
अवसितः - निश्चय होनेसे
असंगः- - (इससे) अनासक्त होकर
विचरामि विचरण करता हूं ।।२५।।

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्
पुंण्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ।
स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः
सृष्ट्वास्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ।। २६ ।।

जाया आत्मज अर्थ पशु भृत्य गृह आप्त वर्गान् पुष्णाति यत् प्रियचिकीर्षया वितन्वन् स्व अन्ते सकृच्छ्रं अवरुद्ध धनः स देहः सृष्ट्वा अस्य बीजं अवसीदति वृक्षधर्मा ।। २६ ।।

यत् प्रिय - जिस (शरीर)का प्रिय
चिकीर्षया - करनेकी इच्छासे
जाया आत्मज - स्त्री, पुत्र,
अर्थ पशु भृत्य - धन, पशु,सेवक,
गृह आप्तवर्गान् - घर, श्रेष्ठ जनोंका
वितन्वन् - विस्तार करते हुए

सकृच्छ्रं - बड़े कष्टसे
अवरुद्ध धनः - धन इकट्ठा करके
पुष्णाति - पोषण करता है
स्व अन्ते - अपने अन्तके समय
वृक्षधर्मा - वृक्षके समान धर्म वाला
अस्य बीजं - इस (जीव) के लिये
सृष्ट्वा (शरीरका) बीज उत्पन्न करके
स देहः- - वह देह दुःखका बीज
अवसीदति बीज बो जाता है ।।२६।।

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्वच कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

अपुम् कर्हि जिह्वा एकतः अपकर्षति तर्षा शिश्नः अन्यतः त्वक् उदरं श्रवणं घ्राणः अन्यतः चपलदृक क्वच कर्मशक्तिः बह्व्यः सपत्न्यः इवे गेह पतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥

अमुम्	- देहाभिमानी जीवको	**घ्राणः**	- गन्ध सूंघनेकी ओर
कर्हि	- कभी	**अन्यतः**	- दूसरी तरफ
जिह्वा	- जीभ	**चपलदृक्**	- चंचल दृष्टि रूपके प्रति
एकतः	- एक ओर यानी रसकी ओर	**क्वच**	- और कभी
		कर्मशक्ति	- कर्मेन्द्रिय अपने-अपने विषयकी ओर खींचती हैं
अपकर्षति	- खींचती है	**बह्व्य**	- बहुत
नर्षा	- पिपासा जलकी ओर	**सपत्न्य**	- स्त्रियोंकी
शिश्नः	- उपस्थेन्द्रिय मैथुनकी तरफ	**इव**	- तरह (जैसे एक ही स्वामीको स्त्रियां अपनी ओर खींचती हैं वैसे ही
अन्यतः	- दूसरी तरफ		
त्वक्	- स्पर्शकी ओर		
उदरम्	- पेट अन्नकी ओर		
श्रवणं	- श्रवणेन्द्रिय (कान) शब्दोंकी तरफ	**गेह पतिम्**	- जीवको सारी इन्द्रियां
		लुनन्ति	- अपने-अपने विषयकी ओर खींचती हैं ॥ २७ ॥

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् ।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥ २८ ॥

सृष्ट्वा पुराणि विविधानि अजया आत्म शक्तया वृक्षान् सरीसृप पशून् खग दंश मत्स्यान् तैः तैः अतुष्ट हृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मअवलोक धिषणं मुदं आप देवः ॥ २८ ॥

देवः-आत्मशक्तया	- भगवानने अपनी शक्ति	पुराणि सृष्ट्वा	- पुर (शरीर) बनाकर
अजया-	- माया द्वारा अनेक	तैः तैः अतुष्ट हृदयः	- उन उनसे असन्तुष्ट चित्त
विविधानि	प्रकारके	ब्रह्म अवलोक	- ब्रह्म साक्षात्कारके
वृक्षान् सरीसृप	- वृक्ष, सरीसृप,	धिषणं	- स्थान
पशून् खग	- पशु, पक्षी,	पुरुषं विधाय	- मनुष्यको बनाकर
दंश मत्स्यान्	- डंसने वाले, मछलियाँ आदि	मुदं आप	- आनन्द प्राप्त किया ॥ २८ ॥

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

लब्ध्वा सदुर्लभं इदं बहु सम्भव अन्ते मानुष्यं अर्थ दम् अनित्यं अपि इह धीरः तूर्णं यतेत न पतेत् अनुमृत्यु यावत् निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥ २९ ॥

धीरः	- धीर पुरुष	इह अनुमृत्यु	- इस संसारमें मृत्युके पीछे
बहु सम्भव अन्ते	- बहुत जन्मोंके पश्चात्	यावत् न-पतेत्	- जब तक (यह) गिर न जाय
इदं सुदुर्लभं	- इस अत्यन्त दुर्लभ	निःश्रेयसाय	- परम कल्याणके लिए
अनित्यं अपि	- अनित्य होनेपर भी	तूर्णं यतेत	- शीघ्र प्रयत्न करे
अर्थ दं	- परमार्थ प्रदायक	खलु विषयः	- अरे विषय भोग तो
मानुष्यं लब्ध्वा	- मनुष्य शरीर पाकर	सर्वतः स्यात्	- सब कहीं प्राप्त हो सकते हैं ॥ २९ ॥

एवं सञ्जातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि ।
विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहङ्कृतिः ॥ ३० ॥

एवं सञ्जात वैराग्यः विज्ञान आलोक आत्मनि विचरामि महीं एतां मुक्त संगः अनहं कृतिः ॥ ३० ॥

आत्मनि	- अपने	**मुक्त संगः**	- आसक्ति त्यागकर
विज्ञान आलोक	- विज्ञानके प्रकाशसे	**अनहं कृतिः**	- अहंकार रहित होकर
एवं वैराग्यः	- इस प्रकार वैराग्य	**एतां महीं**	- इस पृथ्वीपर
सञ्जात	- उत्पन्न होनेसे	**विचरामि**	- विचरण करता हूँ ॥३०॥

न ह्येकस्माद् गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥

न हि एकस्मात् गुरोः ज्ञानं सुस्थिरं स्यात् सुपुष्कलं ब्रह्म एतत् अद्वितीयं वै गीयते बहुधा ऋषिभिः ॥ ३१ ॥

हि एक स्मात्	- क्योंकि एक ही	**वै एतत ब्रह्म**	- निश्चय यह ब्रह्म
गुरोः ज्ञानं	- गुरुसे ज्ञान	**अद्वितीयं**	- अद्वितीय है पर
सुस्थिरं सुपुष्कलं	- सुस्थिर और बहुत व्यापक	**ऋषिभिः बहुधा**	- ऋषियों द्वारा अनेक प्रकारसे
न स्यात्	- नहीं होता	**गीयते**	- वर्णन किया जाता है ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच–

इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः ।
वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥ ३२ ॥

इति उक्त्वा स यदुं विप्रः तं आमन्त्र्य गभीर धीः वन्दितः अभ्यर्थितः राज्ञा ययौ प्रीतः यथा आगतम् ॥ ३२ ॥

स गभीर धीः - वह गम्भीर बुद्धि
विप्रः यदुं इति - ब्राह्मण यदुसे इतना
उक्त्वा कहकर
तं आमन्त्र्य - उनसे अनुमति लेकर
राज्ञा वन्दितः - उन राजा द्वारा प्रणमित एवं
अभ्यर्थितः - सत्कृत होकर
यथा आगतं - जैसे आया था
प्रीतः ययौः - प्रसन्न होकर चला गया ॥ ३२ ॥

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ।
सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

अवधूत वचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः सर्व संग विनिर्मुक्तः समचित्तः बभूव ह ॥ ३३ ॥

नः पूर्वेषां - हमारे पूर्वजोंके भी
स पूर्वजः - वे पूर्वज
अवधूत वचः- - अवधूतकी बात सुनकर
श्रुत्वा
सर्वसंग- - समस्त आसक्तियोंसे
विनिर्मुक्तः छूटकर
ह समचित्तः - दृढ़ समदर्शी
बभूव - होगये ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

मयोदितेषववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥

मया उदितेषु अवहितः स्व धर्मेषु मत् आश्रयः वर्ण आश्रम कुल आचारं अकाम आत्मा सम आचरेत् ॥ १ ॥

मत् आश्रयः	- मेरी शरण लेकर	**अवहितः**	- एकाग्र चित्त होकर
अकाम आत्मा	- निष्काम भावसे	**वर्ण आश्रम**	- वर्ण-आश्रम तथा
मया उदितेषु	- मेरे द्वारा उपदिष्ट	**कुल आचारं**	- कुलाचारका
स्वधर्मेषु	- अपने धर्मोंका	**समआचरेत्**	- भली प्रकार पालन करेगा ॥ १ ॥

अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ।
गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥

अन्वीक्षेत विशुद्ध आत्मा देहिनां विषय आत्मनां गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्व आरम्भ विपर्ययम् ॥ २ ॥

विशुद्ध आत्मा	- शुद्ध चित्त पुरुष	**तत्त्व ध्यानेन**	- सत्य समझनेकेकारण
विषय आत्मनां	- विषयोंमें लगे चित्त	**सर्व आरम्भ**	- सभी प्रारम्भोंका
देहिनां गुणेषु	- शरीर धारियोंका विषयोंको	**विपर्ययं**	- उलटा फल
		अन्वीक्षेत	- देखे ॥ २ ॥

सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ।
नानात्मकत्वाद् विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥

सुप्तस्य विषय आलोकः ध्यायतः वा मनोरथः नाना आत्मकत्वात् विफलः तथा भेद आत्म धीः गुणैः ॥ ३ ॥

सुप्तस्य वा - सोते समय अथवा
मनोरथः- - मनोरथोंका चिन्तन
ध्यायतः करते हुए
विषय आलोकः - अनेक विषय देखता है,
तथा गुणैः - ऐसे ही (जागते समय) इन्द्रियोंके द्वारा
भेद आत्मधीः - भेदमयी अपनी बुद्धि
नाना- - अनेक रूपा होनेसे
आत्मकत्वात्
विफलः - निष्फल होती है ॥३॥

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥

निवृत्तं कर्मसेवेत प्रवृत्तं मत्परः त्यजेत् जिज्ञासायां संप्रवृत्तः न आद्रियेत् कर्म चोदनाम् ॥ ४ ॥

मत्परः - मेरा परायण भक्त
निवृत्तं कर्मसेवेत - (संसारसे) छुड़ाने वाले कर्म करे
प्रवृत्तं त्यजेत् - लगाने वालोंको त्याग दे,
जिज्ञासायां - तत्त्व जिज्ञासाके
संप्रवृत्तः - ठीक जाग जानेपर
कर्म चोदनां - कर्म करनेकी (शास्त्रीय) प्रेरणाका भी
आद्रियेत् न - आदर न करे ॥ ४ ॥

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित् ।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥

यमान् अभीक्ष्णंसेवेत नियमान् मत्परः क्वचित् मत् अभिज्ञं गुरुं शान्तं उपासीत मत् आत्मकम् ॥ ५ ॥

मत्परः - मेरापरायण भक्त
यमान् अभीक्ष्णं - (अहिंसा, सत्यादि) यमोंका बराबर
नियमान् - तथा (शौच, तपादि) नियमोंको
क्वचित्सेवेत - कभी कभीसेवन करे
मत् अभिज्ञं - मेरे स्वरूपको जानने वाले
शान्तं मत्-आत्मकं - शान्त, मेरे ही स्वरूप
गुरुं उपासीत - गुरुकी उपासना करे ॥५॥

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढ़सौहृदः ।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥

अमानि अमत्सरः दक्षः निर्ममः दृढ़ सौहृदः असत्वरः अर्थ जिज्ञासुः अनसूयुः अमोघवाक् ॥ ६ ॥

अमानि-	- अभिमानहीन,	**असत्वरः**	- बिना जल्दबाजीका,
अमत्सरः	डाह रहितं	**अर्थ जिज्ञासुः**	- तत्त्व जिज्ञासायुक्त,
दक्षः निर्ममः	- कार्यकुशल, ममताहीन,	**अनसूयुः**	- गुणमें दोष न देखने वाला,
दृढ़ सौहृदः	- (गुरुसे) दृढ़ सौहार्द्र रखने वाला,	**अमोघवाक्**	- व्यर्थ न बोलने वाला (होना चाहिए) ॥ ६ ॥

जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ।
उदासीनः समं पश्यन् सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥

जाया अपत्य गृह क्षेत्र स्वजन द्रविण आदिषु उदासीनः समं पश्यन् सर्वेषु अर्थं इव आत्मनः ॥ ७ ॥

जाया अपत्य	- स्त्री-पुत्र,	**सर्वेषु अर्थं इव**	- सबमें विशेषता रहितकी भांति
गृह क्षेत्र	- घर, भूमि,	**समं आत्मनः-**	- समान आत्माको देखे
स्वजन द्रविण	- स्वजन, धन	**पश्यन्**	॥ ७ ॥
आदिषु उदासीनः	- आदिसे उदासीन होकर		

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद् देहादात्मेक्षिता स्वदृक् ।
यथाग्निर्दारुणो दाह्याद् दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥

विलक्षणः स्थूल सूक्ष्मात् देहात् आत्म ईक्षिता स्वदृक् यथा अग्निः दारुणः दाह्यात् दाहकः अन्यः प्रकाशकः ॥ ८ ॥

स्थूल सूक्ष्मात् - स्थूल सूक्ष्म
देहात् - शरीरादिसे
आत्म विलक्षणः - आत्मा विलक्षण
ईक्षिता स्वदृक् - द्रष्टा और स्वयं प्रकाश है,
यथा अग्निः - जैसे अग्नि
दाह्यात् दारुणः - जलायी जाने वाली लकड़ीसे
दाहकः- - जलाने वाला और
प्रकाशकः प्रकाशक
अन्यः - भिन्न है ॥ ८ ॥

निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् ।
अन्तःप्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

निरोधः उत्पत्ति अणु वृहत् नाना त्वं तत् कृतान् गुणान् अन्तः प्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

निरोधः उत्पत्ति - नाश-जन्म,
अणु वृहत् - छोटा-बड़ापना
नानात्वं - अनेक रूपता
तत् कृतान्-गुणान् - उस (लकड़ी)के बनाये गुणोंको
अन्तः प्रविष्ट - उसके भीतर प्रवेश करके
आधत्त - (अग्नि) धारण कर लेता है
एवंपरः - इसी प्रकार परमात्मा
देहगुणान् - शरीरके गुणोंको (धारण कर लेता है) ॥ ९ ॥

योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ।
संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः ॥ १० ॥

यः असौ गुणैः विरचितः देहः अयं पुरुषस्य हि संसारः तत् निबन्धः अयं पुंसः विद्याच्छित् आत्मनः ॥ १० ॥

हि यः असौ - क्योंकि जो यह
पुरुषस्य - पुरुषका
गुणैः विरचितः-देहः - गुणोंसे निर्मित शरीर है
तत् निबन्धः - उसीके साथ बँधा
अयं संसारः - यह संसार है (जो)
पुंसः आत्मनः - पुरुषकी आत्म
विद्याच्छित् - विद्यासे कटने वाला है ॥ १० ॥

तस्माज्जिज्ञासयाऽऽत्मानमात्मस्थं केवलं परम् ।
संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥

तस्मात् जिज्ञासया आत्मानं आत्मस्थं केवलं परं संगम्य निरसेत् एतत् वस्तु बुद्धिं यथा क्रमम् ॥ ११ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**संगम्य**	- साक्षात्कार करके
जिज्ञासया	- जिज्ञासाके द्वारा	**यथाक्रमं**	- क्रमानुसार
आत्मस्थं	- अपने भीतर स्थित	**एतत् वस्तु**	- इस सत्यत्व
केवलं परं-	- अद्वितीयपरमात्माका	**बुद्धिं**	बुद्धिको
आत्मानं		**निरसेत्**	- मिटा देना चाहिए ॥११॥

आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः ।
तत्सन्धानं प्रवचनं विद्यासन्धिः सुखावहः ॥ १२ ॥

आचार्यः अरणिः आद्यः स्यात् अन्तेवासि उत्तर अरणिः तत् सन्धानं प्रवचनं विद्या सन्धिः सुख आवहः ॥ १२ ॥

आचार्यः आद्यः	- आचार्य आदि (नीचेकी)	**तत् सन्धानं**	- इनके मिलनसे
अरणिः स्यात्	- अरणि होते हैं,	**प्रवचनं**	- प्रवचन होता है,
अन्तेवासि	- ब्रह्मचारी	**सुख आवहः**	- सुखदायक
उत्तर अरणिः	- ऊपरकी अरणि है,	**विद्या सन्धिः**	- विद्या (इनकी) सन्धि है ॥ १२ ॥

वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धि-
र्धुनोति मायां गुणसम्प्रसूताम् ।
गुणांश्च सन्दह्य यदात्ममेतत्
स्वयं च शाम्यत्यसमिद् यथाग्निः ॥ १३ ॥

वैशारदी सा अति विशुद्ध बुद्धिः धुनोति मायां गुण सम्प्रसूतां गुणान् च सन्दह्य यत् आत्मं एतत् स्वयं च शाम्यति असमित् यथा अग्निः ॥ १३ ॥

सा अति - वह (विद्यारूपा)
वैशारदी अत्यन्त निपुणा
विशुद्ध बुद्धिः - परमशुद्ध बुद्धि
गुण सम्प्रसूतां - गुणोंसे उत्पन्न हुई
मायां धुनोति - मायाको नष्ट कर देती है
गुणान् च सन्दह्य - गुणोंको भी भस्म करके
यत् एतत् -जब यह आत्मा
आत्मं ही (रह जाता है)
यथा असमित् -जैसे समिधा हीन
अग्निः अग्नि
स्वयं च शाम्यति -स्वयं ही बुझ जाती है ॥ १३ ॥

अथैषां कर्मकर्तृणां भोक्तृणां सुखदुःखयोः ।
नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥

अथ एषां कर्म कर्तृणां भोक्तृणां सुख दुःखयोः नानात्वं अथ नित्यत्वं लोक काल आगम आत्मनाम् ॥ १४ ॥

अथ एषां - यदि इन
कर्म कर्तृणां - कर्मोंके कर्ताओं तथा
सुख-दुःखयोः भोक्तृणां - सुख-दुःखके भोक्ताओंको,
लोककाल - देश, काल,
आगम आत्मनां - शास्त्र-विधिसे बनोंको
नानात्वं - अनेक स्वरूप
अथ नित्यत्वं - और नित्यरूप ॥१४॥

मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ।
तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

मन्यसे सर्व भावानां संस्था हि औत्पत्तिकी यथा वतत् तत् आकृति भेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥

सर्वभावानां - सब पदार्थोंकी
यथा औत्पत्तिकी - जैसी जन्मजात
संस्था मन्यसे - स्थिति है, मानते हो तो
हि तत् तत् - क्योंकि उन उन
आकृति भेदेन - आकृतियोंके भेदसे (वैसी)
धीः जायते - बुद्धि उत्पन्न होती
च भिद्यते - तथा भिन्न-भिन्न बनती है ॥ १५ ॥

एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ।
कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥

एवं अपि अंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतःकाल अवयवतः सन्ति भावा जन्म आदयः असकृत् ॥ १६ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**काल अवयवतः**	- कालके अंग (वर्षादि)से
एवं अपि	- ऐसा होनेपर भी	**जन्म आदयः भावा**	- जन्म आदि अवस्थायें
सर्वेषां देहिनां	- सभी जीवोंका	**असकृत् सन्ति**	- निरन्तर (बदलती) रहती हैं ॥ १६ ॥
देह योगतः	- शरीरके संयोगसे		

अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते ।
भोक्तुश्चदुःखसुखयोःको न्वर्थो विवशं भजेत् ॥ १७ ॥

अत्र अपि कर्मणां कर्तुः अस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते भोक्तुः च दुःख सुखयोःकः नु अर्थः विषवशं भजेत् ॥ १७ ॥

अत्र अपि	- इस (सिद्धान्त) में भी	**लक्ष्यते**	- दीखती है,
कर्मणां कर्तुः	- कर्मोंके कर्ताकी	**दुःख सुखयोः**	- फिर दुःख-सुखका
च भोक्तुः	- तथा भोक्ताकी	**नु कः अर्थः**	- भला क्या प्रयोजन है ?
अस्वातन्त्र्यं च	- पराधीनता ही	**विवशं भजेत्**	- (वह तो उसे) विवश होकर भोगता है ॥१७॥

न देहिनां सुखं किञ्चिद् विद्यते विदुषामपि ।
तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥ १८ ॥

न देहिनां सुखं किञ्चित् विद्यते विदुषां अपि तथा च दुःखं मूढानां वृथा अहंकरणं परम् ॥ १८ ॥

देहिनां - शरीरधारी
विदुषां अपि - विद्वान्को भी
किञ्चित् सुखं - कुछ भी सुख
न विद्यते - नहीं होता (देखा जाता है)
तथा च मूढानां - ऐसे ही मूर्खोंको
दुःखं - दुःख (होता नहीं पाया जाता)
अहंकरणं - (इसमें अपने कर्तृत्वका) अहंकार करना
परं वृथा - अत्यन्त व्यर्थ है ॥१८॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः ।
तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद् यथा ॥ १९ ॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुख दुःखयोः ते अपि अद्धा न विदुः योगं मृत्युः न प्रभवेत् यथा ॥ १९ ॥

यदि सुख दुःखयोः - यदि सुख-दुःखके
प्राप्ति च - मिलने और नष्ट
विघातं - करनेका
जानन्ति - (उपाय) जानते भी हों तो
ते अपि - वे भी
यथा मृत्युः - जैसे मृत्यु
प्रभवेत् न - प्रभाव न डाल सके
अद्धा योगं - (इसका) साक्षात् उपाय
न विदुः - नहीं जानते ॥ १९ ॥

को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके ।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥ २० ॥

कः नु अर्थः सुखयति एनं कामः वा मृत्युः अन्तिके आघातं नीयमानस्य वध्यस्य एव न तुष्टिदः ॥ २० ॥

वध्यस्य एव - मारे जाने वाले हीको
आघातं - मारे जानेके स्थानपर
नीयमानस्य - ले जाये जाते हुए
तुष्टिदः न - (जैसेकोई पदार्थ) सन्तोषदायी नहीं होता
नु कः अर्थः - भला कौन सा धन
वा कामः - अथवा भोग
मृत्युः अन्तिके - मृत्युके समीप (खड़े)
एनं सुखयति - इस (जीव) को सुखी करेगा ॥ २० ॥

श्रुतं च दृष्टवद् दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ।
बह्वन्तरायकामत्वात् कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥

श्रुतं च दृष्टवत् दुष्टं स्पर्धा असूया अत्यय व्ययैः बहु अन्तराय काम त्वात् कृषिवत् च अपि निष्फलम् ॥ २१ ॥

स्पर्धा असूया	- परस्परकी होड़, गुणोंमें दोष दृष्टि,	**कामत्वात्**	- कामका विषय होनेसे
अत्यय व्ययैः	- नाश और व्ययके कारण	**बहु अन्तराय**	- (उसमें) बहुतसे विघ्नोंसे
श्रुतं च	- सुना हुआ स्वर्ग भी	**कृषिवत् च**	- खेतीके समान ही (उसका साधन)
दृष्टवत् दुष्टं	- देखे संसारके समान दोषयुक्त है	**निष्फलं अपि**	- निष्फल भी (हो सकता है) ॥ २१ ॥

अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ।
तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥

अन्तरायैः अविहतः यदि धर्मः स्व अनुष्ठितः तेन अपि निर्जितं स्थानं यथा गच्छन्ति तत् शृणु ॥ २२ ॥

यदि स्व अनुष्ठितः	- यदि अपना अनुष्ठान किया	**तेन अपि**	- उससे भी
		निर्जितं स्थानं	- जीते (प्राप्त) स्थानपर
धर्मः अन्तरायैः	- धर्म विघ्नोंसे	**यथा गच्छन्ति**	- जैसे जाते हैं
अविहतः	- नष्ट न हो जाय तो	**तत् शृणु**	- उसे सुनो ॥ २२ ॥

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ।
भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान् ॥ २३ ॥

इष्ट्वा इह देवता यज्ञैः स्वः लोकं याति याज्ञिकः भुञ्जीत देववत् तत्र भोगान् दिव्यान् निज अर्जितान् ॥ २३ ॥

इह यज्ञैः - इस लोकमें यज्ञोंके द्वारा
देवता इष्ट्वा - देवताओंकी आराधना करके
याज्ञिकः - यज्ञकर्ता
स्वः लोकं याति - स्वर्ग लोक जाता है,
तत्र निज अर्जितान् - वहाँ अपने कमाये
दिव्यान् भोगान् - दिव्य भोगोंको
देववत् भुञ्जीत - देवताओंके समान भोगता है ॥ २३ ॥

स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ।
गन्धर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

स्वपुण्य उपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते गन्धर्वैः विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥ २४ ॥

स्वपुण्य उपचिते - अपने पुण्योंसे बने
शुभ्रे विमान - उज्ज्वल विमानपर
गन्धर्वैः - गन्धर्वों द्वारा
उपगीयते - प्रशंसित होता
देवीनां हृद्य वेषधृक् - देवियोंका मनमोहन वेश धारण करके
मध्ये विहरन् - उनके बीच विहार करता है ॥ २४ ॥

स्त्रीभिःकामगयानेन किंकिणीजालमालिना ।
क्रीडन् न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥

स्त्रीभिः कामग यानेन किंकिणी जाल मालिना क्रीडन् न वेद आत्मपातं सुरा आक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥

किंकिणी जाल - घंटियोंके जालकी
मालिना - माला वाले
कामग यानेन - इच्छानुसार चलने वाले विमानसे
सुर आक्रीडेषु - देवताओंकी विहार स्थलियोंमें
स्त्रीभिः- - स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करता
क्रीडन्
निर्वृतः - आनन्दमग्न
आत्मपातं - (एक दिन) अपना गिराया जाना
न वेद - नहीं जानता ॥ २५ ॥

तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते ।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः ॥ २६ ॥

तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत् पुण्यं समाप्यते क्षीणपुण्यः पतति अर्वाक् अनिच्छन् काल चालितः ॥ २६ ॥

तावत् स्वर्गे	- तब तक स्वर्गमें	**क्षीण पुण्यः**	- पुण्य क्षय हो जानेपर
प्रमोदते	- आनन्द मनाता है	**अनिच्छन्**	- इच्छा न होनेपर भी
यावत् पुण्यं	- जब तक (उसके) पुण्य	**काल चालितः**	- कालके द्वारा हटाये जानेसे
समाप्यते	- समाप्त नहीं हो जाते	**अर्वाक् पतति**	- नीचे गिरता है ॥२६॥

यद्यधर्मरतः संगादसतां वाजितेन्द्रियः ।
कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥ २७ ॥

यत् अधर्मरतः संगात् असतां वा अजित इन्द्रियःकाम आत्मा कृपणः लुब्धः स्त्रैणः भूत विहिंसकः ॥ २७ ॥

यत् असतां-संगात्	- क्योंकि दुष्टोंके संगसे	**अधर्मरतः**	- अधर्ममें लगकर
		कृपणः लुब्धः	- कंजूस, लोभी,
वा अजितेन्द्रियः	- अथवा इन्द्रियोंको न जीतनेके कारण	**स्त्रैणः**	- स्त्रीजित्
		भूत विहिंसकः	- प्राणियोंको मारने वाला (हो गया) ॥ २७ ॥
काम आत्मा	- कामना वश चित्त		

पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन् ।
नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥ २८ ॥

पशून अविधिना आलभ्य प्रेत भूत गणान् यजन् नरकान् अवशः जन्तुः गत्वा याति उल्बणं तमः ॥ २८ ॥

अविधिना - विधि न होनेपर भी
पशून् आलभ्य - पशुओंकी बलि देकर
प्रेत भूतगणान् - प्रेत-भूतगणोंकी
यजन् - पूजा करके
जन्तुः अवशः - जीव विवश होकर
नरकान् गत्वा - नरकोंमें जाकर
उल्बणं तमः- - घोर अज्ञानमें
याति पड़ता है ॥ २८ ॥

कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः ।
देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥

कर्माणि दुःख उदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः देहम् आभजते तत्र किं सुखं मर्त्य धर्मिणः ॥ २९ ॥

पुनः तैः देहेन - फिर (स्वर्ग या नरकसे आकर) प्राप्त उन शरीरोंसे
दुःख उदर्काणि - दुःख उत्पन्न करने वाले
कर्माणि कुर्वन् - कर्मोंको करते हुए
देहम् आभजते - शरीर ही पाता रहता है
तत्र मर्त्यधर्मिणः - इस मार्गमें मरण धर्मा जीवको
किं सुखं - क्या सुख है ॥ २९ ॥

लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् ।
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥

लोकानां लोकपालानां मत् भयं कल्प जीविनां ब्रह्मणः अपि भयं मत्तः द्विपरार्ध पर आयुषाम् ॥ ३० ॥

कल्प जीविनां - एक कल्प तक जीने वाले
लोकानां - लोकोंको एवं
लोकपालानां- लोकपालोंको
मत् भयं - मुझ (कालरूप) से भय है
द्विपरार्ध - दो परार्ध की
पर आयुषां - लम्बी आयुवाले
ब्रह्मणः अपि - ब्रह्माको भी
मत् भयं - मुझसे भय है ॥ ३० ॥

गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् ।
जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥

गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणः अनुसृजते गुणान् जीवः तु गुण संयुक्तः भुङ्क्ते कर्मफलानि असौ ॥ ३१ ॥

गुणाः कर्माणि	- (सत्वादि) गुण कर्मोंको	**असौ गुण**	- यह गुणोंसे संयुक्त
सृजन्ति	- उत्पन्न करते हैं	**संयुक्तः**	
गुणः गुणान्	- गुण-गुणोंको ही	**जीवः तु**	- जीव तो
अनुसृजते	- एकके बाद एक उत्पन्न करते हैं,	**कर्मफलानि**	- कर्मोंका फल
		भुङ्क्ते	- भोगता है ॥ ३१ ॥

यावत् स्याद् गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः ।
नानात्वमात्मनो यावत् पारतन्त्र्यं तदैव हि ॥ ३२ ॥

यावत् स्यात् गुण वैषम्यं तावत् नाना त्वं आत्मनः नानात्वं आत्मनः यावत् पारतन्त्र्यं तत् एव हि ॥ ३२ ॥

यावत्	- जबतक	**नानात्वं**	- अनेक रूपता (भासती) है
गुण वैषम्यं-	- गुणोंमें विषमता रहती है,	**हि यावत्**	- क्योंकि जबतक
स्यात्		**आत्मनः-**	- आत्मामें अनेक रूपता है
तावत्-	- तब तक आत्मामें	**नानात्वं**	
आत्मनः		**तत् एव-**	- तब तक परतन्त्रता है
		पारतन्त्र्यं	॥ ३२ ॥

यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् ।
य एतत् समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥

यावत् अस्य अस्वतन्त्रत्वं तावत् ईश्वरतः भयं यः एतत् सम उपासीरन् ते मुह्यन्ति शुच अर्पिताः ॥ ३३ ॥

यावत् अस्य	- जब तक इसकी	**यः एतत्**	- जो इस (भेद बुद्धि)को
अस्वतन्त्रत्वं	- पराधीनता है	**सम उपासीरन्**	- थोड़ी भी अपनाते हैं
तावत् ईश्वरतः	- तब तक ईश्वरसे	**ते शुच अर्पिताः**	-वे शोक ग्रस्त होकर
भयं	भय है,	**मुह्यन्ति**	- मोहित होते हैं ॥३३॥

काल आत्माऽऽगमो लोकः स्वभावो धर्म एव च ।
इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥

काल आत्मा आगमः लोकः स्वभावः धर्म एव च इति मां बहुधा प्राहुः गुणव्यतिकरे सति ॥ ३४ ॥

गुणव्यतिकरे सति	- गुणोंमें विकार होनेपर	**च धर्म एव**	- तथा धर्म भी
		इति मां	- इस प्रकार मुझे
काल आत्मा	- काल, आत्मा,	**बहुधा प्राहुः**	- अनेक प्रकारसे कहा (वर्णन किया) जाता है ॥ ३४ ॥
लोकः स्वभावः	- लोक, स्वभाव (प्रकृति)		

उद्धव उवाच–

गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः ।
गुणैर्न बद्ध्यते देही बद्ध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

गुणेषु वर्तमानः अपि देहजेषु अनपावृतः गुणैः न बद्ध्यते देही बद्ध्यते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥

विभो	- प्रभो !	**देहीकथं**	- जीव कैसे
देहजेषु	- शरीरसे उत्पन्न होने वाले	**अनपावृतः**	- (उनसे) ढके बिना
गुणेषु	- (सुख-दुःखादि) गुणोंमें	**गुणैः न बद्ध्यते**	- गुणोंसे नहीं बँधता
वर्तमानः अपि	- रहता हुआ भी	**वा बद्ध्यते**	- अथवा बँध जाता है ? ॥ ३५ ॥

कथं वर्तेत विहरेत् कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः ।
किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥

कथं वर्तेत विहरेत् कैः वा ज्ञायेत लक्षणैः किं भुञ्जीत उत विसृजेत् शयीत आसीत याति वा ॥ ३६ ॥

कथं वर्तेत	- कैसे व्यवहार करे ?	**किं भुञ्जीत**	- क्या खाय
वा विहरेत्	- अथवा (किनके साथ) रहे ?	**उत विसृजेत्**	- या छोड़ दे ?
		शयीत आसीत	- सोये, बैठे,
कैः लक्षणैः ज्ञायेत	- किन लक्षणोंसे जाना जाय	**वा याति**	- अथवा चलता रहे ? ॥ ३६ ॥

एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

एतत् अच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर नित्यमुक्त नित्यबद्ध एक एव इति मे भ्रमः ॥ ३७ ॥

प्रश्न विदांवर	- प्रश्नोंको समझने वालोंमें श्रेष्ठ !	**एक एव**	- एकही
		नित्यमुक्तः	- नित्यमुक्त और
अच्युत	- अच्युतः	**नित्यबद्ध**	- नित्य बद्ध है,
एतत् मे प्रश्नं	- इन मेरे प्रश्नोंको	**इति मे भ्रमः**	- यही मुझे सन्देह है ॥ ३७ ॥
ब्रूहि	- बतलाओ		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

बद्धोमुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥ १ ॥

बद्धः मुक्त इति व्याख्या गुणतः मे न वस्तुतः गुणस्य माया मूलत्वात् न मे मोक्षः न बन्धनम् ॥ १ ॥

बद्धः मुक्त	- बद्ध और मुक्त	**गुणस्य**	- गुणोंके
इति व्याख्या	- ऐसी व्याख्या	**माया मूलत्वात्**	- माया मूलक होनेसे
गुणतः	- गुणोंको लेकर (होती है)	**मे न मोक्षः**	- मेरा न मोक्ष है,
वस्तुतः मे न	- वस्तुतः मेरी नहीं है,	**न बन्धनं**	- न बन्धन ॥ १ ॥

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहापत्तिश्च मायया ॥
स्वप्नो यथाऽऽत्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥ २ ॥

शोक मोहौ सुखं दुःखं देह आपत्तिः च मायया स्वप्नः यथा आत्मनः ख्यातिः संसृतिः न तु वास्तवी ॥ २ ॥

यथा स्वप्नः	- जैसे स्वप्न	**देह आपत्तिः**	- शरीरकी प्राप्ति,
आत्मनः ख्यातिः	- बुद्धिका विवर्त है (ऐसे ही)	**च संसृतिः**	- तथा जन्म-मरण चक्र
		मायया तु	- मायासे ही है
शोक मोहौ	- शोक, मोह,	**वास्तवी न**	- वास्तविक नहीं है
सुखं दुःखं	- सुख, दुःख,		॥ २ ॥

विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ।
मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥

विद्या अविद्ये मम तनू विद्धि उद्धव शरीरिणां मोक्ष बन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**मम तनू**	- मेरे शरीर हैं (इनमें)
मे मायया	- मेरी मायासे	**आद्ये मोक्ष**	- पहिली (विद्या) मोक्ष (दूसरी)
विनिर्मिते	- बनाये हुए	**बन्धकरी**	- बन्धन देने वाली है ॥ ३ ॥
विद्या अविद्ये	- विद्या और अविद्या रूप		

एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ॥
बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ॥४॥

एकस्य एव मम अंशस्य जीवस्य एव महामते बन्धः अस्य अविद्यया अनादिः विद्यया च तथा इतरः ॥ ४ ॥

महामते	- महाबुद्धिमान उद्धव !	**अनादिः-अविद्यया**	- अनादि अविद्यासे
एकस्य एव	- एक ही	**अस्य बन्धः**	- इसका बन्धन है
मम अंशस्य	- मेरे अंश	**च विद्यया तथा**	- एवं विद्यासे इसी प्रकार
जीवस्य एव	- जीवका ही	**इतरः**	- दूसरा (मोक्ष होता है) ॥ ४ ॥

अथं बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ।
विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते विरुद्ध धर्मिणः तात स्थितयोः एक धर्मिणि ॥ ५ ॥

तात	- प्रिय उद्धव !	**बद्धस्य मुक्तस्य**	- बद्ध एवं मुक्तकी
एक धर्मिणि	- एक ही धर्ममें	**अथ ते**	- अब तुमसे
स्थितयोः	- रहने वाले	**वैलक्षण्यं वदामि**	- विलक्षणता बतलाता हूँ ॥ ५ ॥
विरुद्ध धर्मिणः	- विरोधी धर्म वाले		

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ
यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्न-
मन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

सुपर्णौ एतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छया एतौ कृतनीडौ च वृक्षे एकः तयोः खादति पिप्पल अन्नं अन्यः निरन्नः अपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

एतौ	- ये दोनों (जीव-अन्तर्यामी ईश्वर)	**तयोः एकः**	- उनमेंसे एक (जीव)
सुपर्णौ सदृशौ	- समान पक्षी	**पिप्पल-**	- पीपलके फल खाता है
सखायौ	- मित्र हैं,	**अन्नं खादति**	(शरीरके कर्मफल भोगता है)
यदृच्छया एतौ	- संयोगवश ये दोनों	**अन्यः निरन्नः-**	- दूसरा (अन्तर्यामी)
वृक्षे च-	- वृक्ष (शरीर) में ही	**अपि**	निराहार होनेपर भी
कृतनीडौ	घोंसला बनाये हैं	**भूयान् बलेन**	- बहुत बलवान है ॥६॥

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वा-
नपिप्पलादो न तु पिप्पलादः ।
योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो
विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

आत्मानं अन्यं च स वेद विद्वान् अपिप्पलादः न तु पिप्पलादः यः अविद्यया युक् स तु नित्यबद्धः विद्यामयः यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

अपिप्पलादः - पीपलके फल न खाने वाला
विद्वान् आत्मानं - विद्वान अपनेको
च अन्यं वेद - और दूसरेको भी जानता है
तुपिप्पलादः न - किन्तु पीपलके फल खाने वाला नहीं जानता
यः अविद्यया - (इस प्रकार) जो
युक् अविद्याग्रस्त है
स तु नित्यबद्धः - वह तो नित्य बद्ध है,
यः विद्यामयः - जो विद्यामय है
स तु नित्यमुक्तः - वह तो नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥

देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद् यथोत्थितः ।
अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा ॥ ८ ॥

देहस्थः अपि न देहस्थः विद्वान् स्वप्नात् यथा उत्थितः अदेहस्थः अपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृक् यथा ॥ ८ ॥

विद्वान् - ज्ञानी
यथा स्वप्नात् - जैसे स्वप्नसे
उत्थितः - जग गया हो,
देहस्थः अपि - शरीरमें रहते हुए भी
अदेहस्थः - शरीरमें नहीं रहता और
कुमतिः - दुर्बुद्धि (पुरुष)
यथा स्वप्न दृक् - जैसे स्वप्न देखता हो
अदेहस्थः अपि - शरीरमें न रहनेपर भी
देहस्थः - शरीरमें रहता है ॥ ८ ॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ।
गृह्यमाणेष्वहंकुर्यान्न विद्वान् यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥

इन्द्रियैः इन्द्रिय अर्थेषु गुणैः अपि गुणेषु च गृह्यमाणेषु अहं कुर्यात् न विद्वान् यः तु अविक्रियः ॥ ९ ॥

यः तु अविक्रियः - जो तो निर्विकार
विद्वान् - ज्ञानी है (वह)
इन्द्रियैः - इन्द्रियों द्वारा
इन्द्रिय अर्थेषु - इन्द्रियोंके विषयोंको
च गुणैः - तथा गुणों द्वारा
गुणेषु गृह्यमाणेषु - गुणोंके ग्रहण होनेपर
अहं न कुर्यात् - (उनमें अपने कर्तापनका) अहंकार न करे ॥९॥

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा ।
वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबद्ध्यते ॥ १० ॥

दैव आधीने शरीरे अस्मिन् गुण भाव्येन कर्मणा वर्तमानः अबुधः तत्र कर्ता अस्मि इति निबद्ध्यते ॥ १० ॥

अस्मिन् दैव-	- इस दैवके वशमें रहने	**तत्र वर्तमानः**	- वहां (केवल) रहता
आधीने	वाले		हुआ
शरीरे	- शरीरमें	**अबुधः**	- अज्ञानी
गुण भाव्येन	- गुणोंके द्वारा होने वाले	**कर्ता अस्मि**	- 'मैं करने वाला हूँ'
कर्मणा	- कर्मोंमें	**इति निबध्यते**	- इस (अहंकार)से बँध जाता है ॥ १० ॥

एवं विरक्तः शयने आसनाटनमज्जने ।
दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥ ११ ॥

एवं विरक्तः शयने आसन अटनमज्जने दर्शन स्पर्शन घ्राण भोजन श्रवण आदिषु ॥ ११ ॥

एवं शयने	- इस प्रकार सोने,	**स्पर्शन घ्राण**	- छूने, सूंघने,
आसन अटन	- बैठने, घूमने,	**भोजन श्रवण**	- भोजन, सुनने
मज्जने दर्शन	- स्नान करने, देखने,	**आदिषु विरक्तः**	- आदिसे उदासीन रहे ॥ ११ ॥

न तथा बद्ध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् ।
प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः ॥ १२ ॥

न तथा बद्ध्यते विद्वान् तत्र तत्र अदयन् गुणान् प्रकृतिस्थः अपि असंसक्तः यथा खं सविता अनलः ॥ १२ ॥

प्रकृतिस्थः अपि - प्रकृतिमें स्थित होकर भी
तत्र तत्र गुणान् - उन उन स्थितियोंमें गुणोंका
अदयन् - उपभोग करके
यथा खं - जैसे आकाश
सविता अनलः - सूर्य और अग्नि
असंसक्तः - अनासक्त रहकर
विद्वान् तथा - ज्ञानी इनके समान ही
बध्यते न - बन्धनमें नहीं पड़ता
॥ १२ ॥

वैशारद्येक्षयासंगशितया छिन्नसंशयः ।
प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद् विनिवर्तते ॥ १३ ॥

वैशारद ईक्षया असंग शितया छिन्न संशयः प्रतिबद्ध इव स्वप्नात् नानात्वात् विनिवर्तते ॥ १३ ॥

असंग शितया - असंगतासे तीक्ष्ण हुई
वैशारद ईक्षया - निपुण निरीक्षण दृष्टिसे
छिन्न संशयः - सन्देहोंको काटकर
स्वप्नात् - स्वप्नसे
प्रतिबद्ध इव - जागे हुएके समान
नानात्वात् - अनेकतासे
विनिवर्तते - उपराम हो जाता है
॥ १३ ॥

यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् ।
वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥ १४ ॥

यस्य स्युः वीत संकल्पाः प्राण इन्द्रिय मनः धियां वृत्तयः स विनिर्मुक्तः देहस्थः अपि हि तत् गुणैः ॥ १४ ॥

यस्य प्राण - जिसकी प्राण,
इन्द्रिय मनः - इन्द्रिय, मन,
धियां वृत्तयः - बुद्धिकी चेष्टायें
वीत संकल्पाः - संकल्प रहित होती हैं
स्युः
स देहस्थः अपि - वह शरीरमें रहता हुआ भी
तद्गुणैः - उसके गुणोंसे
विनिर्मुक्तः सर्वथा मुक्त है ॥ १४॥

यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्त्रैर्येन किञ्चिद् यदृच्छया ।
अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥

यस्य आत्मा न हिंस्यते हिंस्रैः येन किञ्चित् यदृच्छया अर्च्यते वा क्वचित् तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥

यस्यबुधः	- जिस ज्ञानीका	**यदृच्छया**	- संयोगवश
आत्मा हिंस्रैः	- चित्त हिंसको (उत्पीडकों) द्वारा	**वा अर्च्यते**	- अथवा (उनके द्वारा) सत्कृत होनेपर
न हिंस्यते	- नहीं पीड़ित होता,	**व्यतिक्रियतेन**	- विकृत (हर्षित) नहीं होता ॥ १५ ॥

न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा ।
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥ १६ ॥

न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साधु असाधु वा वदतः गुण दोषाभ्यां वर्जितः समदृक् मुनिः ॥ १६ ॥

साधु कुर्वतः	- अच्छाकाम करने वालेकी	**दोषाभ्यां**	- दोषोंके द्वारा
गुण वदतः	- गुण बतलाते हुए	**निन्देत न**	- निन्दा न करे
स्तुवीत न	- प्रशंसा न करे	**मुनिः वर्जितः**	- मुनि (दोनोंसे) रहित
वा असाधु	- अथवा बुरा (करने वालेकी)	**समदृक्**	- समदर्शी रहे ॥ १६ ॥

न कुर्यान्न वदेत् किञ्चिन्न ध्यायेत् साध्वसाधु वा ।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥

न कुर्यात् न वदेत् किञ्चित् न ध्यायेत् साधु असाधु वा आत्मारामः अनया वृत्त्या विचरेत् जडवत् मुनिः ॥ १७ ॥

साधु वा असाधु	- अच्छा या बुरा	**आत्मारामः**	- आत्मामें ही रमण करने वाला
किञ्चित् न	- कुछ भी न	**मुनिः-**	- मननशील इस वृत्तिसे
कुर्यात् न वदेत्	- न करे, न बोले,	**अनयावृत्त्या**	
न ध्यायेत्	- न सोचे,	**जडवत्-**	- मूर्खके समान विचरण
		विचरेत्	करे ॥ १७ ॥

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि ।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥

शब्द ब्रह्मणि निष्णातः न निष्णायात् परे यदि श्रमः तस्य श्रमफलः हि अधेनुं इव रक्षतः ॥ १८ ॥

शब्द ब्रह्माणि	- शब्दब्रह्म वेदमें	**हि अधेनुं**	- क्योंकि दूध न देने वाली
निष्णातः	- निपुण होकर	**रक्षतः इव**	- (गाय) के पालनके समान
यदि परे	- यदि परमब्रह्ममें	**तस्य श्रमः**	- उसका परिश्रम
निष्णायात् न	- निपुण नहीं हुआ तो	**श्रमफलः**	- परिश्रम रूपी फल ही देता है ॥ १८ ॥

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां
देहं पराधीनमसत्प्रजां च ।
वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं
हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥

गां दुग्धदोहां असतीं च भार्यां देहं पराधीनं असत् प्रजां च वित्तं तु अतीर्थी कृतं अंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःख दुःखी ॥ १९ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
दुग्ध दोहां गां - दूधसे उतरी गाय,
च असतीं भार्यां - तथा कुलटा पत्नी,
पराधीनं देहं - पराधीन शरीर,
असत् प्रजां - दुष्ट सन्तान
अतीर्थीकृतं - (दानसे) पवित्र न बनाये गये
वित्तं तु - धनको भी
च मयाहीनां-वाचं - तथा मेरे वर्णनसे रहित वाणीको
दुःख रक्षति - कष्ट उठाकर रक्षा करने वाला
दुःखी - दुःखी होता है ॥१९॥

यस्यां न मे पावनमंग कर्म
स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ।
लीलावतारेप्सित जन्म वा स्याद्
वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥

यस्यां न मे पावनं अंग कर्म स्थिति उद्भव प्राण निरोधं अस्य लीला अवतार ईप्सित जन्म वा स्यात् वन्ध्यां गिरं तां बिभृयात् न धीरः ॥ २० ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
यस्यां मे - जिसमें मेरे
अस्य स्थिति - इस विश्वकी स्थिति,
उद्भव प्राण-निरोधं - उत्पत्ति, जीवन-निरोध (प्रलय) के
पावनं कर्म वा - पवित्र कर्ता कर्म अथवा
लीला अवतार -लीला पूर्वक अवतार
जन्म ईप्सित -लेकर अभीष्ट चरितकी
न स्यात् -चर्चा न हो
तां वन्ध्यां गिरं -उस वन्ध्या वाणीको
धीरः- -धीर पुरुष धारण
बिभृयात् न न करे ॥ २० ॥

एवं जिज्ञासयापोह्य नानात्वभ्रममात्मनि ।
उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥

एवं जिज्ञासया अपोह्य नानात्व भ्रमं आत्मनि उपारमेत विरजं मनः मयि अर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥

एवं जिज्ञासया	- इस प्रकार जिज्ञासा द्वारा	**विरजं मनः**	- निर्मल मन
आत्मनि	- आत्मामें	**मयि सर्वगे**	- मुझ सर्व व्यापकको
नानात्व भ्रमं	- अनेक होनेका भ्रम	**अर्प्य**	अर्पित करके
अपोह्य	- दूर करके	**उपारमेत**	- उपराम हो जाय ॥२१॥

यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् ।
मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥

यदि अनीशः धारयितुं मनः ब्रह्मणि निश्चलं मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥

यदि ब्रह्मणि	- यदि ब्रह्ममें	**सर्वाणि कर्माणि**	- सब कर्मोंको
निश्चलं मनः	- निश्चल मन	**मयि निरपेक्षः**	- मेरे लिए निरपेक्ष होकर
धारयतुं	- लगानेमें	**समाचर**	- भली प्रकार करो
अनीशः	- असमर्थ हो तो		॥ २२ ॥

श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन् सुभद्रा लोकपावनीः ।
गायन्ननुस्मरन् कर्म जन्म चाभिनयन् मुहुः ॥ २३ ॥

श्रद्धालुः मे कथाः शृण्वन् सुभद्रा लोकपावनीः गायन् अनुस्मरन् कर्म जन्म च अभिनयन् मुहुः ॥ २३ ॥

मे सुभद्रा	- मेरी मंगलमयी	**अनुस्मरन्**	- बार-बार चिन्तन करते हुए
लोकपावनीः	- सब लोकोंको पवित्र करने वाली	**च जन्म कर्म**	- तथा अवतार लीलाका
कथाः श्रद्धालुः	- कथाको श्रद्धापूर्वक	**मुहुः अभिनयन्**	- बार-बार अभिनय करके
शृण्वन् गायन्	- सुनते, वर्णन करते		॥ २३ ॥

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन् मदपाश्रयः ।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥

मत् अर्थे धर्मकाम अर्थान् आचरन् मत् अपाश्रयः लभते निश्चलां भक्तिं मयि उद्धव सनातने ।। २४ ।।

उद्धव	- उद्धव !	**मत् अपाश्रयः**	- मेरा आश्रय लेकर
मत् अर्थे	- मेरे लिए	**मयि सनातने**	- मुझ शाश्वत पुरुषमें
धर्मकाम	- धर्म, काम,	**निश्चलां भक्तिं**	- निश्चल भक्ति
अर्थान् आचरन्	- अर्थका पालन करता हुआ	**लभते**	- प्राप्त करता है ।।२४।।

सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता ।
स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ।। २५ ।।

सत्संग लब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता स वै मे दर्शितं सद्भिः अञ्जसा विन्दते पदम् ।। २५ ।।

सत्संग लब्धया	- सत्संगसे प्राप्त	**दर्शितं**	- दिखलाये मार्गसे
मयि भक्तत्या	- मुझमें भक्तिसे	**स मां उपासिता**	-वह मेरी उपासना करके
वै स सद्भिः	- निश्चय वह सत्पुरुषों द्वारा	**अञ्जसा मे पदं**	-सरलतासे मेरा पद
		विन्दते	- पाता है ।। २५ ।।

उद्धव उवाच–

साधुस्तवोत्तमश्लोक मतःकीदृग्विधः प्रभो ।
भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ।। २६ ।।

साधुः तव उत्तम श्लोक मतःकीदृक् विधः प्रभो भक्तिः त्वयि उपयुज्येत कीदृशी सद्भिः आदृता ।। २६ ।।

प्रभो	- प्रभो !	**सद्भिः आदृताः**	- सत्पुरुषों द्वारा आदरकी जाने वाली
उत्तम श्लोक	- पुण्यकीर्तिः	**कीदृशी भक्तिः**	- कैसी भक्ति
तव मतः	- आपके मतसे	**त्वयि उपयुज्येत**	- आपकीकी जाती है ।। २६ ।।
साधुःकीदृक् विधः	- साधु कैसे लक्षणोंके होते हैं ?		

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ।
प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥

एतत् मे पुरुष अध्यक्ष लोक अध्यक्ष जगत् प्रभो प्रणताय अनुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥

पुरुष अध्यक्ष	- जीवोंके स्वामी !	**मे प्रणताय**	- मुझ विनम्र
लोक अध्यक्ष	- सब लोकोंके स्वामी !	**अनुरक्ताय**	- अपने प्रेमी
जगत् प्रभो	- जगन्नाथ !	**च प्रपन्नाय**	- तथा शरणागतको
		एतत् कथ्यतां	- यह बतलाइये ॥२७॥

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः ।
अवतीर्णोऽसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥

त्वं ब्रह्मपरमं व्योम पुरुषः प्रकृतेःपरः अवतीर्णः असि भगवन् स्व इच्छा उपात्त पृथक् वपुः ॥ २८ ॥

भगवन्	- भगवन् !	**स्व इच्छा**	- अपनी इच्छासे
त्वं प्रकृतेःपरः	- आप प्रकृतिसे परे	**पृथक् वपुः**	- पृथक शरीर धारण करके
परमं व्योम	- चिदाकाशरूप	**उपात्त**	
ब्रह्म पुरुषः	- ब्रह्म, पुरुषोत्तम	**अवतीर्णः असि**	- अवतरित हुए हैं ॥ २८ ॥

श्रीभगवानुवाच–

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥

कृपालुः अकृत द्रोहः तितिक्षुः सर्व देहिनां सत्यसारः अनवद्य आत्मा समः सर्व उपकारकः ॥ २९ ॥

सर्व देहिनां - सब शरीर धारियोंके प्रति
कृपालुः - कृपा करने वाला,
अकृत द्रोहः - शत्रुता न करने वाला,
सत्यसारः - सत्यग्राही,
अनवद्य आत्मा - निर्दोष चित्त,
समः - समदर्शी
सर्व उपकारकः - सर्वोपकारी ॥ २९ ॥

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः ।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥

कामैः अहत धीः दान्तः मृदुः शुचिः अकिञ्चनः अनीहः मितभुक् शान्तः स्थिरः मत् शरणः मुनिः ॥ ३० ॥

कामैः अहत-धीः - कामनाओंसे बिना चोट खायी बुद्धि वाला,
दान्तः - इन्द्रियजयी,
मृदुः शुचिः - कोमल स्वभाव, पवित्र,
अकिञ्चनः - अपरिग्रही,
अनीहः - कामनाहीन,
मितभुक् - थोड़ा खाने वाला,
शान्तः स्थिरः - शान्त-स्थिर स्वभाव,
मत् शरणः - मेरी शरणागत
मुनिः - मननशीला ॥ ३० ॥

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः ।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रःकारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥

अप्रमत्तः गभीर आत्मा धृतिमान् जित षट् गुणः अमानी मानदः कल्पः मैत्रःकारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥

अप्रमत्तः - सदा सावधान,
गभीर आत्मा - गम्भीर चित्त,
धृतिमान् - धैर्यशाली
जितषट् गुणः - ६ (मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय) के गुणोंको जीतने वाला
अमानी - (स्वयं) सम्मान न चाहने वाला,
मानदः - (दूसरोंको) सम्मान देने वाला,
कल्पः - (साधनमें) समर्थ,
मैत्रः - मित्रता पूर्ण,
कारुणिकः - दयालु,
कविः - विद्वान ॥ ३१ ॥

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥

आज्ञाय एवं गुणान् दोषान् मया आदिष्टान् अपि स्वकान् धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत् तमः ॥ ३२ ॥

मया आदिष्टान्	- मेरे द्वारा उपदिष्ट	**यः सर्वान्**	- जो सब
अपि	होनेपर भी	**धर्मान् सन्त्यज्य**	- धर्मोंको छोड़कर
एवं स्वकान्	- इस प्रकारके अपने	**मां भजेत**	- मेरा भजन करता है
गुणान् दोषान्	- गुण और दोषोंको	**स सत् तमः**	- वह सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं
आज्ञाय	- जानकर		॥ ३२ ॥

ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान् यश्चास्मि यादृशः ।
भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥

ज्ञात्वा अज्ञात्वा अथ ये वै मां यावान् यश्च अस्मि यादृशः भजन्ति अनन्य भावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥

यावान् यश्च	- जितना और जो,	**अनन्य भावेन**	- अनन्य भावसे
यादृशः अस्मि	- जैसामें हूँ	**भजन्ति**	- भजन करते हैं,
मां वै ये	- मुझे निश्चय जो	**ते मे मताः**	- वे मेरे मतसे
ज्ञात्वा अज्ञात्वा	- जानकर अथवा बिना जाने ही	**भक्ततमाः**	- भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३३ ॥

मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ।
परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥

मत् लिंग मत् भक्त जन दर्शन स्पर्शन अर्चनं परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुण कर्म अनुकीर्तनम् ॥ ३४ ॥

मत् लिंग - मेरी मूर्ति एवं
मत् भक्तजन - मेरे भक्तोंका
दर्शन स्पर्शन - दर्शन, स्पर्श,
अर्चनं परिचर्या - पूजा-सेवा,
स्तुतिः प्रह्व - स्तुति, प्रणाम,
गुण कर्म - एवं (मेरे) गुणों तथा कर्मोंका
अनुकीर्तनं - बार-बार वर्णन करना ॥ ३४ ॥

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ।
सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ ३५ ॥

मत् कथा श्रवणे श्रद्धा मत् अनुध्यानं उद्धव सर्वलाभ उपहरणं दास्येन आत्म निवेदनम् ॥ ३५ ॥

उद्धव - उद्धव !
मत् कथा श्रवणे - मेरी कथा सुननेमें
श्रद्धा - श्रद्धा,
मत् अनुध्यान - मेरा बार-बार चिन्तन,
सर्वलाभ - जो कुछ मिले वह सब
उपहरणं - मुझे अर्पित करना एवं
दास्येन - दास्य भावसे
आत्म निवेदनं - आत्म समर्पण कर देना ॥ ३५ ॥

मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ।
गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥

मत् जन्म कर्म कथनं मम पर्व अनुमोदनं गीत ताण्डव वादित्र गोष्ठीभिः मत् गृह उत्सवः ॥ ३६ ॥

मत् जन्म कर्म - मेरे प्राकट्य एवं चरितोंका
कथनं - वर्णन करना,
मत् पर्व-अनुमोदनं - मेरे पर्वोंपर आनन्द मनाना,
गीत ताण्डव वादित्र - गायन, नृत्य, वाद्यसे
गोष्ठीभिः - समाजों द्वारा
मद्गृह उत्सवः - मेरे मन्दिरमें उत्सव करे ॥ ३६ ॥

यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ।
वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥

यात्रा बलि विधानं च सर्व वार्षिक पर्वसु वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रत धारणम् ॥ ३७ ॥

सर्व वार्षिक	- सब वार्षिक	**वैदिकी तान्त्रिकी**	- वैदिक या (पांचरात्र) तन्त्रकी
पर्वसु	- त्योहारोंपर	**दीक्षा**	- दीक्षा लेकर
यात्र च	- यात्रा निकाले तथा	**मदीय व्रतधारणं**	- मेरे व्रतोंका पालन करे ॥ ३७ ॥
बलि विधानं	- विधिपूर्वक उपहार (अर्पित करे)		

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ।
उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥ ३८ ॥

मम अर्चा स्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य च उद्यमः उद्यान उपवन आक्रीड पुर मन्दिर कर्मणि ॥ ३८ ॥

मम अर्चा	- मेरी मूर्ति	**आक्रीड**	- खेलने-बैठनेके स्थान,
स्थापने श्रद्धा	- स्थापनामें श्रद्धा रखे	**पुर मन्दिर**	- नगर और मन्दिरके काममें
उद्यान उपवन	- पुष्प वाटिका, फल बगीचा,	**कर्मणि**	
		स्वतः च	- स्वयं तथा दूसरोंको
		संहत्य	जुटाकर
		उद्यमः	- परिश्रम करे ॥ ३८ ॥

सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः ।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद् यदमायया ॥ ३९ ॥

सम्मार्जन उपलेपाभ्यां सेक मण्डल वर्तनैः गृह शुश्रूषणं मह्यं दासवत् यत् अमायया ॥ ३९ ॥

अमायया - निष्कपट भावसे
दासवत् - सेवककी भाँति
मह्यं गृह - मेरे मन्दिरकी
संमार्जनं - स्वच्छन्द करने,
उपलेपाभ्यां - लीपने-पोतने,
सेक मण्डल - सींचने, मण्डलादि बनानेकी
वर्तनैः
यत् शुश्रूषणं - जो सेवा हो (वह करे)
॥ ३९ ॥

अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् ।
अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥ ४० ॥

अमानित्वं अदम्भित्वं कृतस्य अपरिकीर्तनं अपि दीप अवलोकं मे न उपयुञ्ज्यात् निवेदितम् ॥ ४० ॥

अमानित्वं - अभिमान न करे,
अदम्भित्वं - ढोंग न करे
कृतस्य - अपने किये (साधन एवं सत्कर्मका)
अपरिकीर्तनं - वर्णन न करे,
निवेदितं - (मुझको) समर्पित
दीप अवलोकं अपि - दीपकके प्रकाशको भी
उपयुञ्ज्यात् न - अपने उपयोगमें न ले
॥ ४० ॥

यद् यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥

यत् यत् इष्टतमं लोके यत् च अति प्रियं आत्मनः तत् तत् निवेदयेत् मह्यं तदा अनन्त्याय कल्पते ॥ ४१ ॥

लोके यत् यत् - संसारमें जो जो
इष्टतमं - अत्यन्त अभीष्ट हो
च यत् - और जो अपनेको
आत्मनः प्रियं प्रिय हो
तत् तत् मह्यं - वह वह मुझे
निवेदयेत् - निवेदन (अर्पण) करे,
तदा अनन्त्याय - तब वह अनन्त फल देने वाली
कल्पते - हो जाती है ॥ ४१ ॥

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ।
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥ ४२ ॥

सूर्यः अग्निः ब्राह्मणः गावः वैष्णवः खं मरुत् जलं भूः आत्मा सर्वभूतानि भद्र पूजा पदानि मे ॥ ४२ ॥

सूर्यः अग्निः	- सूर्य, अग्नि,	**भूः आत्मा**	- पृथ्वी, अन्तःकरण,
ब्राह्मणः गावः	- ब्राह्मण, गायें,	**सर्वभूतानि**	- सभी प्राणी
वैष्णवः खं	- वैष्णव, आकाश,	**मे भद्र**	- मेरे मंगलमय
मरुत् जलं	- वायु, जल,	**पूजा पदानि**	- पूजन-स्थान हैं ॥४२॥

सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ।
आतिथ्येन तु विप्राग्रे गोष्वंग यवसादिना ॥ ४३ ॥

सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषि अग्नौ यजेत मां आतिथ्येन तु विप्र अग्रे गोषु अंग यवस आदिना ॥ ४३ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**अग्रे विप्र तु**	- श्रेष्ठ ब्राह्मणका तो
सूर्ये तु	- सूर्यमें तो	**आतिथ्येन**	- अतिथि सत्कार करके,
त्रय्या विद्यया	- (ऋक्, यजुः, साम) वेदके मंत्रोंसे,	**गोषु यवस आदिना**	- गायोंको चारा आदि देकर
अग्नौ हविषि	- अग्निमें हविष्य (की आहुति) से	**मां यजेत**	- मेरी आराधना करे ॥ ४३ ॥

वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ।
वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥

वैष्णवे बन्धु सत्कृत्या हृदि खे ध्यान निष्ठया वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैः तोय पुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥

वैष्णवे	- वैष्णवमें	**वायौ**	- वायुमें उसे मुख्य प्राण
बन्धु सत्कृत्या	- भाईके समान सत्कार करके,	**मुख्यधिया**	समझकर
		तोये तोय	- जलमें जल प्रधान
हृदि खे	- हृदयाकाशमें	**पुरस्कृतैः**	
ध्यान निष्ठया	- निष्ठापूर्ण ध्यानके द्वारा	**द्रव्यैः**	- द्रव्योंसे (मेरी पूजा होती है) ॥ ४४ ॥

स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ।
क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥

स्थण्डिले मन्त्र हृदयैः भोगैः आत्मानं आत्मनि क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥

स्थण्डिले	- वेदीमें	सर्वभूतेषु	- सब प्राणियोंमे
मन्त्र हृदयैः	- मुख्य गुप्त (बीज) मन्त्रों द्वारा	क्षेत्रज्ञं	- क्षेत्रज्ञ रूपमें
		समत्वेन	- समानताके व्यवहारसे
आत्मनि	- अन्तःकरणमें	मां यजेत	- मेरी आराधना करे ॥ ४५ ॥
आत्मानं भोगैः	- अपनेको (उपयुक्त) भोग देकर,		

धिष्ण्येष्वेष्विति मद् रूपं शंखचक्रगदाम्बुजैः ।
युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत् समाहितः ॥ ४६ ॥

धिष्ण्येषु एषु इति मत् रूपं शंख चक्र गदा अम्बुजैः युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन् अर्चेत् समाहितः ॥ ४६ ॥

एषु धिष्ण्येषु	- इन सभी स्थानोंमें	**चतुर्भुजं शान्तं**	- चतुर्भुज शान्त
इति शंख चक्र	- इस प्रकार शंख, चक्र,	**रूपं ध्यायन्**	- रूपका ध्यान करते हुए
गदा अम्बुजैः	- गदा, पद्म युक्त	**समाहितः**	- एकाग्र होकर पूजन
युक्तं		**अर्चेत्**	करे ॥ ४६ ॥

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ।
लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥

इष्ट आपूर्तेन मां एवं यः यजेत समाहितः लभते मयि सत् भक्तिं मत् स्मृतिः साधुसेवया ॥ ४७ ॥

यः एवं मां	- जो इस प्रकार मेरी	**मयि सत् भक्तिं**	- (वह) मुझमें उत्तम
इष्ट आपूर्तेन	- इष्ट (यज्ञादि) आपूर्ते (कुंआ, सरोवरादि बनवाकर इनके) द्वारा		भक्ति एवं
		साधुसेवया	- संतोंकी सेवासे
		मत् स्मृतिः	- मेरा स्मरण पाता है
समाहितः यजेत	- एकाग्र चित्तसे आराधना करता है,	**लभते**	॥ ४७ ॥

प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ।
नोपायो विद्यते सम्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ४८ ॥

प्रायेण भक्ति योगेन सत्संगेन विना उद्धव न उपायः विद्यते सम्यङ् प्रायणं हि सतां अहम् ॥ ४८ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**सम्यङ् उपायः**	- समीचीन उपाय
प्रायेण भक्ति	- प्रायः भक्तियोग एवं	**न विद्यते**	- नहीं है,
योगेन		**हि अहं**	- क्योंकि मैं
सत्संगेन विना	- सत्संगको छोड़कर	**प्रायणं सतां**	- प्रायः संतोंका हूँ ॥४८॥

अथैतत् परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन ।
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥

अथ एतत् परमं गुह्यं शृण्वतः यदुनन्दन सुगोप्यं अपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ॥ ४९ ॥

यदुनन्दन	- यदुनन्दन उद्धव !	**वक्ष्यामि**	- बतलाऊंगा (क्योंकि)
अथ एतत्	- अब यह	**त्वं मे भृत्यः**	- तुम मेरे सेवक,
परमं गुह्यं	- श्रेष्ठ रहस्य	**सुहृत् सखा**	- हितैषी, मित्र और
सुगोप्यं अपि	- अत्यन्त छिपाने योग्य होनेपर भी	**शृण्वतः**	- सुननेको उत्सुक हो ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥

न रोधयति मां योगः न सांख्यं धर्म एव च न स्वाध्यायः तपः त्यागः न इष्ट आपूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥

मां न योगः	- मुझे न योग,	**न इष्ट**	- न इष्ट (यज्ञादि)
न सांख्यं	- न ज्ञान,	**आपूर्तं**	- पूर्त (धर्मशाला-कूपादि) करना
च धर्म एव	- तथा धर्म ही,		
न स्वाध्यायः	- न जप (या वेदाध्ययन)	**न दक्षिणा**	- (ब्राह्मणोंको) न दक्षिणा देना ही
तपः त्यागः	- तपस्या या त्याग,	**रोधयति**	- वशमें करती है ॥ १ ॥

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुन्धे सत्संग सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥

व्रतानि यज्ञ छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः यथा अवरुन्धे सत्संगः सर्वसंग अपहः हि माम् ॥ २ ॥

हि सर्व संग	- क्योंकि (मैं) समस्त आसक्तियोंका	**तीर्थानि**	- तीर्थ
		नियमा यमः	- नियम, यम (मुझे वश नहीं करते)
अपहः	- नाशक हूँ,		
व्रतानि यज्ञ	- व्रत, यज्ञ,	**यथा सत्संगः**	- जैसा सत्संगसे
छन्दान्सि	- वेद	**अवरुन्धे**	- वशमें होता हूँ ॥ २ ॥

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः गन्धर्व अप्सरसः नागाः सिद्धाः चारण गुह्यकाः ॥ ३ ॥

हि सत्संगेन - क्योंकि सत्संगसे	गन्धर्व अप्सरसः - गन्धर्व, अप्सरायें,
दैतेया यातुधाना - दैत्य, राक्षस,	नागाः सिद्धाः - नाग, सिद्ध,
मृगाः खगाः - पशु, पक्षी,	चारण गुह्यकाः - चारण, यक्ष ॥ ३ ॥

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।
रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ ॥ ४ ॥

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियः अन्त्यजाः रजः तमः प्रकृतयः तस्मिन् तस्मिन् युगे अनघ ॥ ४ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !	स्त्रियः अन्त्यजाः - शूद्र, अन्त्यज
विद्याधरा - विद्याधर,	रजः तमः - जो राजसी-तामसी
मनुष्येषु - मनुष्योंमें भी	प्रकृतयः स्वभाव थे
वैश्याः शूद्राः - वैश्य, शूद्र,	तस्मिन्- - उन उन युगोंमें
	तस्मिन् युगे ॥ ४ ॥

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥

बहवः मत् पदं प्राप्ताः त्वाष्ट्रकायाधव आदयः वृषपर्वा बलिः बाणः मयः च अथ विभीषणः ॥ ५ ॥

बहवः - बहुतसे	वृषपर्वा - वृषपर्वा १.
मत् पदं प्राप्ताः - मेरे स्थान चले गये (जैसे)	बलिः च बाणः - बलि और बाणासुर,
त्वाष्ट्रकायाधव - वृत्रासुर, कचायाधू-	अथ मयः - और मय, विभीषण
नन्दन प्रह्लाद,	विभीषणः
	आदयः - आदि ॥ ५ ॥

१. इनकी कथायें महाभारतमें है ।

सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ ६ ॥

सुग्रीवः हनुमान् ऋक्षः गजः गृध्रः वणिक् पथः व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यः यज्ञपत्न्यः तथा अपरे ॥ ६ ॥

सुग्रीवः हनुमान् - सुग्रीव, हनुमान,
ऋक्षः गजः - ऋक्षराज जाम्बवन्त, गजेन्द्र,
गृध्रः वणिक्पथः - गीधराज जटायु, तुलाधार वैश्यः १
व्याधः कुब्जा - धर्म व्याध१, कुब्जा,
व्रजे गोप्यः - व्रजमें गोपियां,
यज्ञ पत्न्यः - यज्ञ पत्नियां
तथा अपरे - तथा दूसरे भी ॥ ६ ॥

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥

ते न अधीत श्रुतिगणा न उपासित महत्तमाः अव्रता अतप्त तपसः सत्संगात् मां उपागताः ॥ ७ ॥

ते श्रुतिगणा - उन्होंने वेद मन्त्रोंका
अधीत न - अध्ययन नहीं किया था,
महत्तमाः - महात्माओंकी
उपासित न - उपासना नहींकी थी,
अव्रता - व्रतहीन थे,
तपसः अतप्त - तपस्या नहींकी थी (पर)
सत्संगात् - मुझ सत्में आसक्ति होनेसे
मां उपागताः - मेरे समीप पहुँच गये
॥ ७ ॥

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ ८ ॥

---

१. **क्योंकि 'महात्माओंकी उपासना नहींकी थी' यह कह दिया गया, अतः 'सत्संग'का अर्थ यहाँ सत्पुरुषोंका संग नहीं हो सकता । सत्परमात्मामें संग-आसक्ति ही यहां अर्थ समीचीन हो सकता है ।**

केवलेन हि भावेन गोप्यः गावः नगा मृगाः ये अन्ये मूढधियः नागाः सिद्धाः मां इयुः अञ्जसा ॥ ८ ॥

हि केवलेन	- क्योंकि केवल	ये अन्ये	- जो दूसरे
भावेन	- भावना से ही	मूढधियः	- मूढ़ बुद्धि
गोप्यः गावः	- गोपियां, गायें,	नागाः	- (कालिय आदि) सर्प थे
नगा मृगाः	- पर्वत, हिरणादि पशु,	सिद्धाः	- सिद्ध होकर
		अञ्जसा मां- ईयुः	- सरलतासे मुझे प्राप्त हो गये ॥ ८ ॥

यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ।
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद् यत्नवानपि ॥ ९ ॥

यं न योगेन सांख्येन दानव्रत तपः अध्वरैः व्याख्या स्वाध्याय संन्यासैः प्राप्नुयात् यत्नवान् अपि ॥ ९ ॥

योगेन सांख्येन	- योग, ज्ञान,	सन्यासैः	- सन्यासके द्वारा
दानव्रत तपः	- दान, व्रत, तपस्या,	यत्नवान् अपि	- प्रयत्न (साधन) करने पर भी,
अध्वरैः	- यज्ञ,	यं न प्राप्नुयात्	- जिसे नहीं पा सकता ॥ ९ ॥
व्याख्या-स्वाध्याय	- शास्त्र व्याख्या, जप		

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते
श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः ।
विगाढभावेन न मे वियोग-
तीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मयि अनुरक्त चित्ताः विगाढ़ भावेन न मे वियोग तीव्र आधयः अन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥

श्वाफल्किना - श्वफल्क-नन्दन अक्रूर द्वारा
रामेण सार्धं - बलरामजीके साथ मुझे
मथुरां प्रणीते - मथुरा ले जाये जानेपर
मयि अनुरक्त चित्ताः - मुझमें आसक्त चित्त (गोपियोंने)
विगाढ भावेन - प्रगाढ़ भावके कारण
मे वियोग - मेरे वियोगकी
तीव्र आधयः - तीव्र चिन्तासे
अन्यं सुखाय - दूसरा कुछ सुखदायक
न ददृशुः - नहीं देखा ॥ १० ॥

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता
मयैव वृन्दावनगोचरेण ।
क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां
हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

ताः ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयि एव वृन्दावन गोचरेण क्षण अर्धवत् ताः पुनः अंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
वृन्दावन गोचरेण - वृन्दावन रहते हुए
मयि एव - मुझ ही
प्रेष्ठतमेन - परम प्रियतमके साथ
क्षण अर्धवत् - आधे क्षणके समान
ताः ताः क्षपाः - वे वे रात्रियां
ताः पुनः - उनके लिए फिर
मया हीना - मुझसे रहित होनेपर
कल्पसमा - एक कल्पके समान
बभूवुः - होगयीं ॥ ११ ॥

ता नाविदन् मय्यनुषंगबद्ध-
धियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये
नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥

ता न अविदन् मयि अनुषङ्गबद्ध धियः स्वं आत्मानं अदः तथा इदं यथा समाधौ मुनयः अब्धि तोये नद्यः प्रविष्टा इव नाम रूपे ॥ १२ ॥

यथा समाधौ - जैसे समाधिमें
मुनयः - मुनिगण
अब्धितोये - समुद्रके जलमें
नाम रूपे - नाम-रूपके साथ
प्रविष्टा नद्यः - प्रविष्ट हुई नदियोंके
इव समान
मयि अनुषंग - मेरी आसक्तिसे
बद्ध धियः - बँधे चित्तवाली
ता स्वं- - वे (गोपियाँ) अपने
आत्मानं शरीरको,
अदः तथा इदं - सम्बन्धियोंको तथा इस संसारको
अविदन् न - जानती नहीं थीं ।।१२।।

मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ।
ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ।। १३ ।।

मत्कामा रमणं जारं अस्वरूप विदः अबलाः ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगात् शत सहस्रशः ।। १३ ।।

अस्वरूप विदः - (उनमें बहुत-सी) मेरे स्वरूपको न जानने वाली
अबलाः - स्त्रियां
रमणं जारं - बिहार करने वाला पर पुरुष (मानकर)
मत्कामा - मुझे चाहने वाली
शत सहस्रशः - सैकड़ों-सहस्रों
संगात् मां - आसक्तिसे मुझ
परमं ब्रह्मप्रापुः - परम ब्रह्मको प्राप्त हो गयी ।। १३ ।।

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ।। १४ ।।

तस्मात् त्वं उद्धव उत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनां प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतं एव च ।। १४ ।।

उद्धव - उद्धव !
तस्मात् त्वं - इसलिए तुम
चोदनां प्रति चोदनां - विधि-निषेध,
प्रवृत्तं च - प्रवृत्ति और
निवृत्तं च - निवृत्तिको भी,
श्रोतव्यं - जो सुनने योग्य है
च श्रुतं एव - और जो सुना भी है
उत्सृज्य - (सबको) त्याग दो ।।१४।।

मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥

मां एकं एव शरणं आत्मानं सर्व देहिनां याहि सर्वात्म भावेन मया स्या हि अकुतः भयः ॥ १५ ॥

सर्व देहिनां - समस्त शरीर धारियोंके	**एकं मां एव** - अकेले मेरी ही
आत्मानं - आत्मा	**शरणं याहि** - शरण हो जाओ,
सर्व आत्म - सर्वात्मभावसे	**हि मया** - क्योंकि मेरे द्वारा
भावेन	**अकुतः भयः** - सर्वथा निर्भय हो जाओगे
	स्या ॥ १५ ॥

उद्धव उवाच–

संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर ।
न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥

संशयः शृण्वतः वाचं तव योग ईश्वर ईश्वर न निवर्तत आत्मस्थः येन भ्राम्यति मे मनः ॥ १६ ॥

योग ईश्वर - योगेश्वरोंके भी स्वामी !	**आत्मस्थं संशयः** - मेरी बुद्धिमें स्थित संशय
ईश्वर	**निवर्तत न** - दूर नहीं होता है,
तव वाचं- - आपकी बात सुनते हुए	**येन मे मनः** - जिससे मेरा मन
शृण्वतः	**भ्राम्यति** - भटक रहा है ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच–

स एष जीवो विवरप्रसूतिः
प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं
मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

स एष जीवः विवर प्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः मनः मयं सूक्ष्मं उपेत्य रूपं मात्रा स्वरः वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥

स एष जीवः - वही ये (परमात्मा) ओंकार रूप
विवर प्रसूतिः - परावाणी रूपसे (मूलाधार) छिद्रसे उत्पन्न होकर
प्राणेन घोषेण - प्राण वायुके नादके साथ
गुहां प्रविष्टः - हृदय गुफामें आकर
मनः मयं - मनोमय
सूक्ष्मं रूपं - सूक्ष्म (पश्यन्ती) रूप
उपेत्य - धारण करके
मात्रा - अर्धमात्रा (मध्यमा) होकर फिर
स्वरः वर्ण - स्वर और व्यञ्जन (रूपमें)
इति स्थविष्ठः - इस प्रकार स्थूल (वैखरी वाणी) होते हैं ॥१७॥

यथानलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा
बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः ।
अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते
तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥

यथा अनलः खे अनिल बन्धुः ऊष्मा बलेन दारुणि अधिमध्यमानः अणुः प्रजातः हविषा सम इध्यते तथा एव मे व्यक्तिः इयं हि वाणी ॥ १८ ॥

यथा अनलः - जैसे अग्नि
खे उष्मा - आकाशमें उष्णताके रूपमें रहता है,
अनिल बन्धुः - वायुकी सहायतासे
दारुणि - काष्ठमें
अधिमथ्यमानः - मन्थन करनेपर
अणुः प्रजातः - चिनगारीके रूपमें उत्पन्न होकर
हविषा सम-इध्यते - हविष्यसे पूरा बढ़ जाता है
हि तथा - क्योंकि ऐसे ही
इयं वाणी - यह वाणी
मे व्यक्तिः - मेरा प्राकट्य है ॥१८॥

एवं गदिः कर्म गतिर्विसर्गो
घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च ।
संकल्पविज्ञानमथाभिमानः
सूत्रं रजःसत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥

एवं गदिः कर्म गतिः विसर्गः घ्राणः रसः दृक् स्पर्शः श्रुतिः च संकल्प विज्ञानं अथ अभिमानः सूत्रं रजः सत्त्व तमः विकारः ॥ १९ ॥

एवं गदिः - इसी प्रकार बोलना,
कर्म गतिः - काम करना, चलना,
विसर्गः - मल-मूत्र त्याग
घ्राणः रसः - सूंघना, रसलेना,
दृक् स्पर्शः - देखना, छूना,
च श्रुतिः - तथा सुनना,
संकल्प विज्ञानं - संकल्प करना, बुद्धि,
अथ अभिमानः - और अहंकार,
सूत्रं रजः - महत्तत्त्व, रजोगुण,
सत्त्व तमः - सत्त्वगुण, तमोगुणके
विकारः - (सब) विकार (मेरे ही स्वरूप हैं) ॥ १९ ॥

अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनि-
रव्यक्त एको वयसा स आद्यः ।
विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति
बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥

अयं हि जीवः त्रिवृत् अब्जयोनिः अव्यक्त एकः वयसा स आद्यः विश्लिष्ट शक्तिः बहुधा एव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यत् वत् ॥ २० ॥

हि अयं जीवः - क्योंकि यह जीव
त्रिवृत्-अब्जयोनिः - त्रिगुणमय ब्रह्मा है,
अव्यक्त एकः - अव्यक्त, एक और
वयसा स आद्यः - आयुमें वह सबका कारण है,
योनिं प्रतिपद्य - नाना योनियोंमें जानेपर
बीजानि यत् वत् - बीज जैसे उसी आकारके हो जाते हैं वैसे ही (यह)
विश्लिष्ट शक्तिः - अनेक शक्तियोंसे युक्त होकर
बहुधा एव भाति - नाना प्रकारका ही प्रतीत होता है ॥२०॥

यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं
पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः ।
य एष संसारतरुः पुराणः
कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥

यस्मिन् इदं प्रोतं अशेषं ओतं पटः यथा तन्तु वितान संस्थः य एष संसार तरुः पुराणः कर्म आत्मकः पुष्प फले प्रसूते ॥ २१ ॥

यथा पटः	- जैसे वस्त्र	**य एष संसार तरुः**	- और जो यह संसार वृक्ष
तन्तु वितान संस्थः	- सूतके विस्तारमें स्थित	**कर्म आत्मकः**	- कर्म मय
ओतं प्रोतं	- ओत प्रोत है,	**पुराणः**	- अनादि
यस्मिन् इदं	- जिसमें यह संसार	**पुष्पफले**	- पुष्प (भोग) और फल (मोक्ष)
अशेषं	- सम्पूर्ण रूपसे (स्थित है)	**प्रसूते**	- उत्पन्न करता है ॥२१॥

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः
पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ।
दशैकशाखो द्विसुपर्णनीड-
स्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥

द्वे अस्य बीजे शतमूलः त्रिनालः पञ्च स्कन्धः पञ्चरस प्रसूतिः दश एक शाखः द्वि सुपर्ण नीडः त्रिवलक्लः द्विफलः अर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥

अस्य द्वे-बीजे	- इसके दो (पाप-पुण्य) बीज हैं,	**दश एक शाखः**	- ग्यारह (दस इन्द्रिय और मन) डालें हैं
शत मूलः	- सैकड़ों (वासनायें) जड़ें हैं,	**द्विसुपर्ण नीडः**	- दो (जीव-ईश्वर) पक्षियोंके घोंसले वाला है,
त्रिनालः	- तीन (गुण) तने हैं,	**त्रिवल्कलः**	- तीन (वात, कफ, पित्त) छालों वाला
पञ्च स्कन्धः	- पांच (महाभूत) प्रधान शाखा हैं		

पञ्चरस	- पांच (शब्द स्पर्शादि विषय) रस	**द्विफलः**	- दो (सुख-दुःख) फल वाला
प्रसूतिः	- उत्पन्न करता है,	**अर्क प्रविष्टः**	- सूर्य लोक तक फैला है ॥ २२ ॥

अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ।
ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ।
हंसा य एकं बहुरूपमिज्यै-
र्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥

अदन्ति च एकं फलं अस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकं अरण्य वासाः हंसा य एकं बहुरूपं इज्यैः मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥

एकं गृध्रा	- कोई गीध (लोभी)	**हंसा**	- हंस (विवेकी) हैं,
ग्रामेचरा	- गांवोंमें रहते हुए	**य एकं बहु**	- जो एकसे अनेक रूप
अस्यफलं	- इसका फल (सुख-दुःख)	**रूपं**	(संसार) को
अदन्ति	- खाते (भोगते) हैं,	**इज्यैः**	- आराधनासे मायामय
च एकं-	- और कोई वनवासी	**मायामयं वेद**	को जानते हैं
अरण्य वासाः	(विरक्त)	**स वेदं वेद**	- वे वेदको ठीक जानते हैं ॥ २३ ॥

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या
विद्याकुठारेण शितेन धीरः ।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः
सम्पद्य चात्मानमथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥

एवं गुरु उपासनया एक भक्तया विद्याकुठारेण शितेन धीरः विवृश्च्य जीव आशयं अप्रमत्तः सम्पद्य च आत्मानं अथ त्यज अस्त्रम् ॥ २४ ॥

एवं - इस प्रकार
गुरु उपासनया - गुरुकी उपासनासे एवं
एक भक्तया - अनन्य भक्तिसे
शितेन विद्या- - तीक्ष्ण ज्ञानके
कुठारेण कुल्हाड़ेसे
अप्रमत्तः धीरः - सावधान धैर्यशाली
जीव आशयं - जीव भावको
विवृश्च्य - काटकर
च आत्मनं- - तथा आत्म
सम्पद्य प्राप्ति करके
अथ अस्त्रं - फिर अस्त्र (विद्या)को भी
त्यज - त्याग दो ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ।
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

सत्त्वं रजः तम इति गुणा बुद्धेः न च आत्मनः सत्त्वेन अन्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्वेन च एव हि ॥ ११ ॥

हि सत्त्वं रजः	- क्योंकि सत्त्व, रज,	**अन्यतमौ**	- दूसरों (रजोगुण-तमोगुण) को
तम इति	तम ये	**हन्यात्**	- नष्ट कर दे
गुणाः आत्मनः	- गुण आत्माके	**सत्त्वं-सत्त्वेन**	- सत्त्व गुणको सत्त्वगुणसे
न च बुद्धेः	- नहीं हैं, बुद्धिके हैं	**च एव**	ही (दबावे) ॥ १ ॥
सत्त्वेन	- सत्त्वगुणके द्वारा		

सत्त्वाद् धर्मो भवेद् वृद्धात् पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ।
सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥

सत्त्वात् धर्मः भवेत् वृद्धात् पुंसः मद्भक्ति लक्षणः-सात्त्विक उपासया सत्त्वं ततः धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥

सात्त्विक	- सात्त्विक वस्तुओंके	**ततः धर्मः**	- तब धर्ममें प्रवृत्ति होती
उपासया	सेवनसे	**प्रवर्तते**	है,
पुंसः सत्त्वं	- पुरुषमें सत्त्वगुण	**सत्त्वात् वृद्धात्**	-सत्त्वगुण बढ़ जानेपर
	आता है,	**मद्भक्ति लक्षणः**	-मेरी भक्ति रूपी
		धर्मः भवेत्	- धर्म होता है ॥ २ ॥

धर्मो रजस्तमो हन्यात् सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ।
आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

धर्मः रजः तमः हन्यात् सत्त्ववृद्धिः अनुत्तम आशु नश्यति तत् मूलः हि अधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

सत्त्व वृद्धिः	- सत्त्वगुणको वढ़ाने वाला	**उभये हते**	- उन दोनोंके नष्ट हो जानेपर
धर्मः अनुत्तमः	- धर्म सर्वश्रेष्ठ है,	**तत् मूलः**	- वही जिसकी जड़ हैं वह
हि रजः तमः हन्यात्	- क्योंकि वह रजोगुण-तमोगुणको नष्ट कर देता है	**अधर्म**	अधर्म
		आशु नश्यति	- शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

आगमोऽपः प्रजा देशःकालः कर्म च जन्म च ।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥

आगमः अपः प्रजा देशःकालः कर्म च जन्म च ध्यानं मन्त्रः अथ संस्कारः दश एते गुण हेतवः ॥ ४ ॥

आगमः अपः	- शास्त्र, जल,	**अथ मन्त्रः संस्कारः**	- तथा मन्त्र एवं संस्कार
प्रजा देशःकालः	- प्रजा, देश, काल,	**एते दश गुण हेतवः**	- ये दस गुणकेकारण होते हैं ॥ ४ ॥
कर्म च जन्म च	- कर्म और जन्म भी,		

तत्तत् सात्त्विकमेवैषां यद् यद् वृद्धाः प्रचक्षते ।
निन्दन्ति तामसं तत्तद् राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥

तत् तत् सात्त्विकं एव एषां यत् यत् वृद्धाः प्रचक्षते निन्दन्ति तामसं तत् तत् राजसं तत् उपेक्षितम् ॥ ५ ॥

एतेषां तत् तत्	- इन (दस) में से वे	**तत् तत् तामसं**	- वे वे तामस हैं
सात्त्विकं	- सात्त्विक हैं,	**निन्दन्ति**	- (जिनकी वे) निन्दा करते हैं,
वृद्धाः यत् यत्	- बड़े बूढ़े लोग जिन जिनकी	**तत् उपेक्षितं**	- उनके द्वारा जो उपेक्षित हैं
प्रचक्षते	- प्रशंसा करते हैं,	**राजसं**	- (वे) राजस हैं ॥५॥

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान् सत्त्वविवृद्धये ।
ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत् स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥

सात्विकान् एव सेवेत पुमान् सत्त्व विवृद्धये ततः धर्मः ततः ज्ञानं यावत् स्मृतिः अपोहनम् ॥ ६ ॥

पुमान्	- पुरुष	**ततः धर्मः**	- उससे धर्म (में प्रवृत्ति) होती है,
सत्त्व विवृद्धये	- सत्त्वगुणकी वृद्धिके लिए	**ततः स्मृतिः**	- उससे संस्कारात्मक चित्तको
सात्त्विकान्-एव	- सात्त्विक (शस्त्रादि) का ही	**अपोहनं यावत्**	- नष्ट कर देने तकका
सेवेत	- सेवन करे	**ज्ञानं**	- ज्ञान होता है ॥ ६ ॥

वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ।
एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

वेणु सङ्घर्षजः वह्निः दग्ध्वा शाम्यति तत् वनं एवं गुण व्यत्ययजः देहः शाम्यति तत् क्रियः ॥ ७ ॥

वेणु सङ्घर्षजः	- (जैसे) बांसोंकी रगड़से उत्पन्न	**एवं गुण-व्यत्ययजः**	- इसी प्रकार गुण-वैषम्यसे उत्पन्न
वह्निः तत् वनं	- अग्नि उस वनको	**देहः तत्-क्रियः**	- सूक्ष्म शरीर अपनी क्रिया पूरी करके
दग्ध्वा शाम्यति	- जलाकर बुझ जाता है	**शाम्यति**	- समाप्त हो जाता है ॥ ७ ॥

उद्धव उवाच–

विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान् पदमापदाम् ।
तथापि भुञ्जते कृष्ण तत् कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥

विन्दन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान् पदं आपदां तथा अपि भुञ्जते कृष्ण तत् कथं श्वखर अजवत् ॥ ८ ॥

कृष्ण - श्रीकृष्ण !
प्रायेण मर्त्याः - प्रायः मनुष्य
विषयान् - विषय-भोगोंको
आपदां पदं - विपत्तियोंका स्थान
विन्दन्ति - जानते हैं
तत् कथं - फिर कैसे
श्व खर - कुत्ते, गधे, बकरेके
अजवत् समान
भुञ्जते - (उनको) भोगते हैं ? ॥८॥

श्रीभगवानुवाच–

अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ।
उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥

अहं इति अन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि उत्सर्पति रजः घोरं ततः वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥

यथा प्रमत्तस्य - जैसे असावधान (जीव) के
हृदि अहं इति - हृदयमें (शरीरके प्रति) 'मैं ये हूँ' इस प्रकारकी
अन्यथा बुद्धिः - मिथ्या बुद्धि (होती है) ऐसे ही
घोरं रजः - घोर रजोगुण
उत्सर्पति - (उसमें) आ जाता है,
ततः मनः - उससे मन
वैकारिकं - विकारवान हो जाता है ॥ ९ ॥

रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ।
ततःकामो गुणध्यानाद् दुःसहः स्याद्धिदुर्मतेः ॥ १० ॥

रजः युक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ततःकामः गुणध्यानात् दुःसहः स्यात् हि दुर्मतेः ॥ १० ॥

हि दुर्मतेः - क्योंकि (वह) दुर्बुद्धि (हो गया) है
रजः युक्तस्य - रजोगुण युक्त हुए
मनसः - मनमें
सविकल्पकः - विकल्पोंके साथ
संकल्पः - संकल्प उठते हैं
ततः- - उनसे गुणोंका चिन्तन
गुणध्यानात् करनेके कारण
दुःसहः - दुःसह
कामः स्यात् - कामनायें होती हैं ॥१०॥

करोतिकामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः ।
दुःखोदर्काणि सम्पश्यन् रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥

करोतिकाम वशगः कर्माणि अविजित इन्द्रियः दुःख उदर्काणि सम्पश्यन् रजः वेग विमोहितः ॥ ११ ॥

कामवशगः	- कामनाओंके वशमें होकर	**कर्माणि-सम्पश्यन्**	- कर्मोंको देखते हुए भी
अविजित-इन्द्रियः	- इन्द्रियजयी न होनेसे	**रजः वेग**	- रजोगुणके वेगसे
दुःख-उदर्काणि	- दुःख उत्पन्न करने वाले	**विमोहितः-करोति**	- अत्यन्त वेसुध होकर करता है ॥११॥

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः ।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ १२ ॥

रजः तमोभ्यां यत् अपि विद्वान् विक्षिप्त धीः पुनः अतन्द्रितः मनः युञ्जन् दोषदृष्टिः न सज्जते ॥ १२ ॥

यत् अपि	- यद्यपि	**पुनः अतन्द्रितः**	- पर फिर सावधान होकर
रजः तमोभ्यां	- रजोगुण-तमोगुणसे	**मनः युञ्जन्**	- मनको रोककर
विद्वान्	- विवेकी (पुरुप) की भी	**दोषदृष्टिः**	- (भोगोंमें) दोष देखनेके कारण
धीः विक्षिप्त	- वुद्धि चंचल होती है	**सज्जते न**	- (उनमें) आसक्त नहीं होता ॥ १२ ॥

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ।
अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥

अप्रमत्तः अनु युञ्जीत मनः मयि अर्पयन् शनैः अनिर्विण्णः यथाकालं जितश्वासः जित आसनः ॥ १३ ॥

अनिर्विण्णः - बिना ऊबे हुए
अप्रमत्तः - सावधान होकर
मयि अर्पयन् - मुझे समर्पित करते हुए
यथाकालं - समयानुसार
जितआसनः - आसनजय करके
जितश्वासः - श्वास जय करके
शनैः मनः - धीरे-धीरे मनको
अनुयुञ्जीत - बार-बार एकाग्र करे
॥ १३ ॥

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा ॥ १४ ॥

एतावान् योग आदिष्टः मत् शिष्यैः सनक आदिभिः सर्वतः मनः आकृष्य मयि अद्धा आवेश्यते यथा ॥ १४ ॥

यथा सर्वतः - जैसे सब ओरसे
आकृष्यमनः - खींचकर मनको
अद्धा मयि - साक्षात् मुझमें
आवेश्यते - प्रवेश कराया जाय
मत् शिष्यैः - मेरे शिष्य
सनकादिभिः - सनकादिकोंको
आदिष्टः - उपदेश किया हुआ
एतावान् योग - इतना ही योग है
॥ १४ ॥

उद्धव उवाच–

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ।
योगमादिष्टवानेतद् रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥

यदा त्वं सनक आदिभ्यः येन रूपेण केशव योगं आदिष्टवान् एतत् रूपं इच्छामि वेदितुम् ॥ १५ ॥

केशव - केशव !
त्वं यदा - आपने जब
येन रूपेण - जिस रूपसे
सनक आदिभ्यः - सनकादिसे
एतत् योगं - इस योगका
आदिष्टवान् - उपदेश किया था
रूपं वेदितुं - उस रूपको जानना
इच्छामि - चाहता हूँ ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ।
पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ।। १६ ।।

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनक आदयः पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्य ऐकान्तिकीं गतिम् ।। १६ ।।

हिरण्यगर्भस्य - ब्रह्माजीके	**योगस्य सूक्ष्मां** - योगकी सूक्ष्म
मानसाः पुत्रा - मानस पुत्र	**ऐकान्तिकीं गतिं** - अन्तिम स्थितिको
सनक आदयः - सनक आदिने	**पितरं पप्रच्छुः** - पितासे पूछा ।। १६ ।।

सनकादय ऊचुः–

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ।। १७ ।।

गुणेषु आविशते चेतः गुणाः चेतसि च प्रभो कथं अन्यः अन्य संत्यागः मुमुक्षुः अति तितीर्षोः ।। १७ ।।

प्रभो - प्रभो !	**अतितितीर्षोः** - अतः इनको पार करनेकी इच्छा वाला
चेतः गुणेषु - चित्त गुणोंमें	**मुमुक्षुः** - मोक्ष इच्छुक
आविशते - प्रविष्ट होता है,	**अन्यः अन्यं** - एकसे दूसरेको
च गुणाः चेतसि - तथा गुण चित्तमें,	**कथं संत्यागः** - किस प्रकार छुड़ावे ।। १७ ।।

श्रीभगवानुवाच–

एवं पृष्टो महादेवः स्वयं भूर्भूतभावनः ।
ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ।। १८ ।।

एवं पृष्टः महादेवः स्वयंभूः भूतभावनः ध्यायमानः प्रश्न बीजं न अभ्यपद्यत कर्म धीः ॥ १८ ॥

भूतभावनः	- प्राणियोंके स्रष्टा	**ध्यायमानः**	- सोचते हुए
महादेवः	- देवश्रेष्ठ	**कर्मधीः**	- कर्मोंमें बुद्धि लगी होनेसे
स्वयंभूः	- ब्रह्माजी	**प्रश्न बीजं**	- प्रश्नका मूलकारण
एवंपृष्टः	- ऐसा पूछे जानेपर	**न अभ्यपद्यत**	- नहीं जान सके ॥ १८ ॥

स मामचिन्तयद् देवः प्रश्नपारतितीर्षया ।
तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥

स मां अचिन्तयत् देवः प्रश्न पार तितीर्षया तस्य अहं हंस रूपेण सकाशं अगमं तदा ॥ १९ ॥

स देवः	- उन देवने	**तदा हंस रूपेण**	- उस समय हंस रूपसे
प्रश्न पार	- प्रश्नसे पार	**अहं सकाशं**	- मैं उनके समीप
तितीर्षया	- होजानेकी इच्छासे	**अगमं**	- गया ॥ १९ ॥
मां अचिन्तयत्	- मेरा ध्यान किया		

दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुःको भवानिति ॥ २० ॥

दृष्ट्वाँ मां त उपव्रज्य कृत्वा पाद अभिवन्दनं ब्रह्माणं अग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः कः भवान् इति ॥ २० ॥

मां दृष्ट्वा	- मुझे देखकर	**पाद-**	- चरण-वन्दना
ब्रह्माणं	- ब्रह्माजीको	**अभिवन्दनं-कृत्त्वा**	करके
अग्रतः कृत्वा	- आगे करके	**इति पप्रच्छुः**	- यह पूछा-
त उपव्रज्य	- उन्होंने समीप आकर	**भवान् कः**	- 'आप कौन हैं ?' ॥ ३० ॥

इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ।
यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥

इति अहं मुनिभिः पृष्टः तत्त्व जिज्ञासुभिः तदा यत् अवोचं अहं तेभ्यः तत् उद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**इति पृष्टः**	- ऐसा पूछे जानेपर
तदा तत्त्व-	- उस समय तत्त्व	**अहं तेभ्यः**	- मैंने उनसे
जिज्ञासुभिः	ज्ञानकी इच्छावाले	**यत् अवोचं**	- जो कहा
मुनिभिः अहं	- मुनियों द्वारा मुझसे	**तत् मे निबोध**	- वह मुझसे सुनो ॥ २१ ॥

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ।
कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥

वस्तुनः यत् अनानात्वं आत्मनः प्रश्न ईदृशः कथं घटेत वः विप्रा वक्तुः वा मे कः आश्रयः ॥ २२ ॥

विप्रा	- ब्राह्मणो !	**ईदृशः प्रश्न**	- इस प्रकार पूछना
यत् वस्तुनः	- क्योंकि पदार्थ	**कथं घटेत**	- कैसे बन सकता है,
अनानात्वं	- अनेक रूप नहीं हैं,	**वा मे वक्तुः**	- अथवा मुझ बोलने वालेका ही
वः आत्मनः	- तुम लोगोंका आत्माके विषयमें	**क आश्रयः**	- क्या आधार होगा ? ॥ २२ ॥

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥

पञ्च आत्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः कः भवान् इति वः प्रश्नः वाचा आरम्भः हि अनर्थकः ॥ २३ ॥

पञ्च आत्मकेषु - पञ्चभूत स्वरूप
हि वस्तुतः - क्योंकि वस्तुतः
भूतेषु समानेषु - प्राणी समान ही हैं
कः भवान् - 'आपकौन हैं ?'
इति वः प्रश्नः - इस प्रकारका तुम्हारा प्रश्न
वाचारम्भः - वाणीका उच्चारण मात्र
अनर्थकः - व्यर्थ है ॥ २३ ॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यते अन्यैः अपि इन्द्रियैः अहं एव न मत्तः अन्यत् इति बुध्यध्वं अञ्जसा ॥ २४ ॥

मनसा वचसा - मन, वाणी,
दृष्ट्या अन्यैः अपि - दृष्टि तथा दूसरी भी
इन्द्रियैः - इन्द्रियोंसे
गृह्यते - (जो) ग्रहण होता है,
अहं एव - (वह) मैं ही हूँ
मत्तः अन्यत् न - मुझसे भिन्न कुछ नहीं है
इति अञ्जसा - यह सरलतासे
बुध्यध्वं - समझ लो ॥ २४ ॥

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥

गुणेषु आविशते चेतः गुणाः चेतसि च प्रजाः जीवस्य देह उभयं गुणाः चेतः मत् आत्मनः ॥ २५ ॥

प्रजाः - पुत्रो !
गुणेषु चेतः - गुणोंमें चित्त
आविशते - प्रवेश करता है,
च चेतसि गुणाः - और चित्तमें गुण,
मत् आत्मनः - मेरे स्वरूप
जीवस्य - जीवके
गुणाः चेतः - गुण और चित्त
उभयं देह - दोनों शरीर हैं ॥२५॥

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥

गुणेषु च आविशत् चित्तं अभीक्ष्णं गुणसेवया गुणाः च चित्त प्रभवा मत् रूप उभयं त्यजेत् ॥ २६ ॥

अभीक्ष्णं	- निरन्तर	**च गुणाः**	- और गुण
गुणसेवया	- गुणोंका सेवन करनेसे	**चित्त प्रभवा**	- चित्तसे उत्पन्न होते हैं,
चित्तं गुणेषु च	- चित्त गुणोंमें ही	**मत् रूप**	- अतः मेरा स्वरूप (होकर)
आविशत्	- प्रवेश करता है	**उभयं त्यजेत्**	- दोनोंको त्याग दे
			॥ २६ ॥

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतः बुद्धि वृत्तयः तासां विलक्षणः जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥ २७ ॥

जाग्रत् स्वप्नः	- जाग्रत, स्वप्न,	**तासां जीवः**	- उनसे जीव
च सुषुप्तं	- तथा सुषुप्ति	**विलक्षणः**	- भिन्न प्रकारका
गुणतः बुद्धि	- गुणोंसे होने वाली बुद्धिकी	**साक्षित्वेन**	- (उनका) साक्षी रूपमें
		विनिश्चितः	- निश्चय किया गया है
वृत्तयः	- अवस्थायें हैं		॥ २७ ॥

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ।
मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् त्यागस्तद् गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥

यर्हि संसृति बन्धः अयं आत्मनः गुण वृत्तिदः मयि तुर्ये स्थितः जह्यात् त्यागः तत् गुण चेतसाम् ॥ २८ ॥

यः हि	- निश्चय ही जो	**मयि तुर्ये**	- मुझ तुरीयतत्त्वमें
आत्मनः	जीवका	**स्थितः जह्यात्**	- स्थित होकर (इसे) नष्ट करदे
अयं संसृतिबन्धः	- यह संसार चक्रका बन्धन	**तत् गुण चेतसां**	- यही गुणों और चित्तका
गुण वृत्तिदः	- गुणोंकी वृत्तियोंका दिया है,	**त्यागः**	- त्याग करना है
			॥ २८ ॥

अहंकारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ।
विद्वान् निर्विद्य संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥ २९ ॥

अहंकारकृतं बन्धं आत्मनः अर्थ विपर्ययं विद्वान् निर्विद्य संसार चिन्तां तुर्ये स्थितः त्यजेत् ॥ २९ ॥

आत्मानः अर्थ	- आत्माके स्वरूपसे	**संसार चिन्तां**	- संसारकी चिन्तासे
विपर्ययं	- उलटी अवस्था	**निर्विद्य**	- उदासीन होकर
बन्धं अहंकार	- बन्धन अहंकारसे	**तुर्ये स्थितः**	- तुरीय तत्त्वमें स्थित होकर
कृतं	उत्पन्न है,	**त्यजेत्**	- (इस अहंकारको) त्याग
विद्वान्	- विवेकी पुरुष		दे ॥ २९ ॥

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः ।
जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥

यावत् नाना अर्थ धीः पुंसः न निवर्तेत युक्तिभिः जागर्ति अपि स्वपन् अज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥ ३० ॥

यावत् पुंसः	- जब तक पुरुषकी	**अज्ञः जागर्ति**	- वह अज्ञानी जागता हुआ
नाना अर्थधीः	- पदार्थोंमें अनेकत्व बुद्धि	**अपि**	भी
युक्तिभिः	- युक्तियों द्वारा	**स्वपन्**	- सोया है,
निवर्तेत न	- दूर नहीं हो जाती	**यथा स्वप्ने**	- जैसे स्वप्नमें
		जागरणं	- जागता हो ॥ ३० ॥

असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥

असत् त्वात् आत्मनः अन्येषां भावानां तत् कृता भिदा गतयः हेतवः च अस्य मृषा स्वप्न दृशः यथा ॥ ३१ ॥

यथा स्वप्न-	- जैसे स्वप्नके दृश्य हों	**असत् त्वात्**	-असत् होनेके कारण
दृशः		**तत् कृता भिदा**	-उनके द्वारा उत्पन्न भेद,
आत्मनः अन्येषां	- आत्मासे पृथक दूसरे	**गतयः च हेतवः**	-स्थितियां तथा
भावानां	- पदार्थोंके		उनके कारण,
		अस्य मृषा	-इस संसारके सब मिथ्या हैं ॥ ३१ ॥

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्
भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ।
स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः
स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥ ३२ ॥

यः जागरे बहिः अनुक्षण धर्मिणः अर्थान् भुङ्क्ते समस्त करणैः हृदि तत् सदृक्षान् स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृति अन्वयात् त्रिगुण वृत्ति दृक् इन्द्रिय ईशः ॥ ३२ ॥

यः धर्मिणः	- जो (सब धर्मोंका) आश्रय	**सुषुप्त**	- सुषुप्तिमें
जागरे	- जाग्रत अवस्थामें	**उपसंहरते**	- (उन सब वृत्तियोंको) समेट लेता है
अनुक्षण	- प्रत्येक समय		
समस्त करणैः	- सब इन्द्रियोंसे	**स एकः**	- वह एक ही
बहिः अर्थान्	- बाहरी विषयोंका	**त्रिगुण वृत्ति**	- तीनों गुणोंकी वृत्तियोंसे
भुङ्क्ते	- उपभोग करता है,	**दृक् इन्द्रिय**	- दृष्टि आदि इन्द्रियोंका
स्वप्ने	- स्वप्नमें	**ईशः**	- स्वामी
तत् सदृक्षान्	- उन्हींके समान (विषयोंका)	**स्मृति**	- स्मरण (संस्कार)के अनुसार
हृदि	- हृदयमें (उपभोग करता है)	**अन्वयात्**	- (तीनों अवस्थाओंमें) जाता है ॥ ३२ ॥

एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था
मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ।
संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्ण-
ज्ञानासिना भजत माखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥

एवं विमृश्य गुणतः मनसः त्र्यवस्था मत् मायया मयि कृता इति निश्चित अर्थाः संछिद्य हार्दं अनुमान सत् उक्ति तीक्ष्ण ज्ञान असिना भजत मा अखिल संशय आधिम् ॥ ३३ ॥

एवं गुणतः	- इस प्रकार गुणोंके द्वारा (होने वाली)	अनुमान	- अनुमान तथा
मनसः	- मनकी	सत् उक्ति-	- सत्पुरुषोंके वचनसे
त्र्यवस्था	- तीनों (जाग्रतादि) अवस्थायें	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण हुई
मत् मायया	- मेरी मायासे	ज्ञान असिना	- ज्ञान रूपी तलवारसे
मयिकृता	- मेरे द्वारा निर्मित हैं	हार्दं आधिं	- हृदयकी चिन्ता रूपी
इति विमृश्य	- ऐसा विचार करके	अखिल संशय	- सम्पूर्ण संशयोंको
निश्चित अर्थाः	- परमार्थ तत्त्वका निश्चय करके	संछिद्य	- काटकर
		मा भजत	- मेरा भजन करो ॥ १३ ॥

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं
दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ।
विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया
स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥

ईक्षेत विभ्रमं इदं मनसः विलासं दृष्टं विनष्टं अति लोलं अलात चक्रं विज्ञानं एकं उरुधा एव विभाति माया स्वप्नः त्रिधा गुण विसर्ग कृतः विकल्पः ॥ ३४ ॥

इदं दृष्टं - इस दीखने वाले,
विनष्टं - नाशवान
अलात चक्रं - लुकाठियोंके (घुमानेसे बने) चक्रके समान
अतिलोलं - अत्यन्त चञ्चल
इदं दृष्टं विभ्रमं - इस दीखने वाले विश्व प्रपञ्चको
मनसः विलासं - मनका खेल
ईक्षेत - देखे,
गुण विसर्ग - गुणोंके द्वारा उत्पन्न किया
स्वप्नः त्रिधा - स्वप्नके समान तीन प्रकारका
विकल्पः कृतः - विकल्प करके
एकं विज्ञानं - एक ज्ञानको ही
माया उरुधा-एव - माया अनेक रूपमें ही
विभाति - प्रतीत कराती है
॥ ३४ ॥

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्ण-
स्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या
त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥

दृष्टिं ततः प्रति निवर्त्य निवृत्त तृष्णः तूष्णीं भवेत् निज सुख अनुभवः निरीहः संदृश्यते क्व च यत् इदं अवस्तु बुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिः आनिपातात् ॥ ३५ ॥

ततः दृष्टिं - उस (प्रपञ्च) से दृष्टि
प्रति निवर्त्य - हटाकर
निवृत्त तृष्णः - तृष्णाओंका त्याग करके
निज सुख अनुभवः - आत्मानन्दके अनुभवसे
निरीहः - इच्छाहीन होकर
तूष्णीं भवेत् - चुप (शान्त) होजाय,
यत् इदं - जो यह संसार
क्व च-संदृश्यते - कभी-कभी (आहरादिके समय) दीख जाता है
अवस्तु बुद्ध्या - अतथ्य समझकर
त्यक्तं - छोड़ा हुआ होनेसे
भ्रमाय न भवेत् - भ्रमका कारण नहीं होता
स्मृतिः - (किन्तु इसका) स्मरण
आनिपातात् - मरने तक रहता है
॥ ३५ ॥

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम् ।
दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३६ ॥

देहं च नश्वरं अवस्थितं उत्थितं वा सिद्धः न पश्यति यतः अध्यगमत् स्वरूपं दैवात् अपेतं उत दैववशात् उपेतं वासः यथा परिकृतं मदिरा मद अन्धः ॥ ३६ ॥

यथा मदिरा	- जैसे शराबके नशेसे	**नश्वरं देहं च**	- नश्वर शरीरको भी
मद अन्धः	अन्धा	**अवस्थितं**	- बैठ हुए
परिकृतं वासः	- पहिने वस्त्रको	**वा उत्थितं**	- या खड़े हुए,
	(नहीं जानता)	**दैवात् अपेतं**	- दैववश चले (मर) गये
सिद्धः	- (वैसे ही) सिद्ध पुरुष	**उत दैववशात्**	- अथवा भाग्यवश
यतः स्वरूपं	- क्योंकि स्वरूप उपलब्धि	**उपेतं न**	- संमीप बने नहीं देखता
अध्यगमत्	कर चुका है	**पश्यति**	॥ ३६ ॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥

देहः अपि दैव वशगः खलु कर्म यावत् स्व आरम्भकं प्रति समईक्षत एव स असुः तं सप्रपचं अधिरूढ समाधि योगः स्वाप्नं पुनः न भजते प्रतिबुद्ध वस्तुः ॥ ३७ ॥

दैव वशगः	- प्रारब्धके आधीन रहने वाला	**समाधियोगः**	- एकाग्रता रूपी योगमें
देहः अपि	- शरीर भी	**अधिरूढ़**	- पूर्ण स्थित
खलु यावत्	- अहो जब तक	**सप्रपचं तं**	- संसारके साथ उस (देह)
स्व आरम्भकं	- अपनेको जन्म देने वाला	**स्वाप्नं**	- स्वप्नके समानको
कर्म	- कर्म (प्रारब्ध) है	**प्रतिबुद्ध**	- जागा हुआ (ज्ञानी)
स असुः	- सप्राण रहते	**पुनः वस्तुः**	- फिर सत्यरूपसे
सम ईक्षत एव	- बराबर दीखता ही रहेगा,	**न भजते**	- नहींसेवन करता ॥ ३७ ॥

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत् सांख्ययोगयोः ।
जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥ ३८ ॥

मया एतत् उक्तं वः विप्रा गुह्यं यत् सांख्य योगयोः जानीत मा आगतं यज्ञं युष्मत् धर्म विवक्षया ॥ ३८ ॥

विप्रा	- ब्राह्मणो !	**युष्मत्**	- तुम लोगोंको
मया एतत्	- मैंने यह	**धर्म विवक्षया**	- परम धर्मका उपदेश करनेकी इच्छासे
यत् सांख्य-योगयोः	- जो सांख्य और योगको	**आगतं यज्ञं**	- आया हुआ यज्ञ पुरुष
गुह्यं वः उक्तं	- रहस्य है तुम लोगोंसे कहा	**मा जानीत**	- मुझे समझो ॥ ३८ ॥

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः ।
परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियःकीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्य ऋतस्य तेजसःपरायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियःकीर्तेः दमस्य च ॥ ३९ ॥

द्विज श्रेष्ठाः - विप्रवरो !
योगस्य-सांख्यस्य - योग, सांख्य,
सत्यस्य ऋतस्य - सत्य, ऋत, (मधुरवाणी)
तेजसः श्रियः - तेज, लक्ष्मी,
कीर्तेः च दमस्य - कीर्ति तथा इन्द्रिय दमनका
अहंपरायणं - मैं ही आश्रय हूँ ॥ ३९ ॥

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् ।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासंगादयोऽगुणाः ॥ ४० ॥

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकं सुहृदं प्रियं आत्मानं साम्य असंग आदयः गुणाः ॥ ४० ॥

साम्य असंग - समता, असंगता
आदयः गुणाः - आदि गुण एवं
सर्वे गुणाः - (दूसरे भी) सव गुण
मां निर्गुणं - मुझ निर्गुण,
निरपेक्षकं - निरपेक्ष,
सुहृदं प्रियं - सर्व हितैषी, प्रिय
आत्मानं-भजन्ति - आत्माकासेवन करते हैं ॥ ४० ॥

इति मे छिन्नसन्देहा मुनयः सनकादयः ।
सभाजयित्वा परया भक्त्यागृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥

इति मेत छिन्न सन्देहा मुनयः सनकादयः सभाजयित्वा परया भक्त्या गृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥

इति ते मुनयः - इस प्रकार वे मुनि
सनकादयः - सनकादि
छिन्न सन्देहा - सन्देह नष्ट हो जानेपर
परया भक्त्या - परम भक्तिसे
सभाजयित्वा - सत्कार करके
संस्तवैः - स्तोत्रों द्वारा
गृणत - स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥

तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः ।
प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

तैः अहं पूजितः सम्यक् संस्तुतःपरमर्षिभिः प्रति इयाय स्वकं धाम पश्यतःपरमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

तैःपरमर्षिभिः	- उनपरमर्षियों द्वारा	**संस्तुतः**	- स्तुत होकर
परमेष्ठिनः-	- ब्रह्माजीके देखते हुए	**स्वकं धाम**	- अपने धाम
पश्यतः		**प्रति इयाय**	- को लौट गया
सम्यक् पूजितः	- भली प्रकार पूजित एवं		॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः तेषां विकल्प प्राधान्यं उत अहो एक मुख्यता ॥ १ ॥

कृष्ण - श्रीकृष्ण !
ब्रह्मवादिनः - वेदवादी लोग
बहूनि श्रेयांसि - बहुतसे कल्याण मार्ग
वदन्ति तेषां - बतलाते हैं, उनमें
विकल्प-प्राधान्यं - विकल्पसे (कभी कोई, कभी कोई) प्रधानता होती है
उत अहो - अथवा तो
एक मुख्यता - एककी प्रधानता होती है ॥ १ ॥

भवतोदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षितः ।
निरस्य सर्वतः संग येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥

भवता उदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगः अनपेक्षितः निरस्य सर्वतः संग येन त्वयि आविशेत् मनः ॥ २ ॥

स्वामिन् - स्वामी !
भवता-भक्तियोगः - आपने भक्तियोगको
अनपेक्षितः - (दूसरे साधनोंसे) निरपेक्ष
उदाहृतः - बतलाया,
येन सर्वतः - जिसके द्वारा सब ओरसे
संग निरस्य - आसक्ति त्यागकर
मनः त्वयि - मन आपमें
आविशेत् - प्रवेश करे ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच—

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ।
मयाऽऽदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥

कालेन नष्टा प्रलये वाणी अयं वेद संज्ञिता मया आदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मः यस्यां मत् आत्मकः ॥ ३ ॥

कालेन	- कालके द्वारा	**यस्यां मत्**	- जिसमें मेरा स्वरूप
प्रलये	- प्रलयके समान	**आत्मकः**	
अयं वेद-	- यह वेद नामक	**धर्मः**	- धर्म था
संज्ञिता		**मया आदौ**	- मैंने (सृष्टिके प्रारम्भमें)
वाणी नष्टा	- वाणी नष्ट हो गयी थी		पहिले
		ब्रह्मणे प्रोक्ता	- ब्रह्माको (उसका) उपदेश किया ॥ ३ ॥

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ।
ततो भृग्वादयोऽगृह्णन् सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ततः भृगुआदयः अगृह्णन् सप्तब्रह्म महर्षयः ॥ ४ ॥

तेन च	- उन्होंने ही	**ततः भृगु-**	- उन (मनु) से भृगु आदि
पूर्वजाय	- पहिले उत्पन्न	**आदयः**	
पुत्राय मनवे	- अपने पुत्र स्वायम्भुव	**सप्त-**	- सात ब्रह्माके पुत्र
	मनुको	**ब्रह्ममहर्षयः**	महर्षियोंने
सा प्रोक्ता	- उसका उपदेश किया	**अगृह्णन्**	- ग्रहण किया ॥ ४ ॥

तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः ।
मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥

तेभ्यः पितृभ्यः तत् पुत्रा देव दानव गुह्यकाः मनुष्याः सिद्ध गन्धर्वाः सविद्याधर चारणः ॥ ५ ॥

तेभ्यः पितृभ्यः	- उन पितरोंसे	**मनुष्याः सिद्ध**	- मनुष्य, सिद्ध,
तत् पुत्रा	- उनके पुत्र	**गन्धर्वाः**	- गन्धर्व,
देव दानव	- देवता, दानव,	**स विद्याधर**	- विद्याधरोंके साथ
गुह्यकाः	- यक्ष,	**चारणाः**	- चारणोंने ॥ ५ ॥

किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किम्पुरुषादयः ।
बह्वयस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥

किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किम्पुरुषादयः बह्वयः तेषां प्रकृतयः रजः सत्त्व तमः भुवः ॥ ६ ॥

किंदेवाः किन्नरा	- किं देव[1] किन्नर,	**रजः सत्त्वतमः**	- रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण
नागा रक्षः	- नाग, राक्षस,	**भुवः तेषां**	- स्थानरूपा उनकी प्रकृति
किम्पुरुष आदयः	- किम्पुरुष आदिने (पाया)	**प्रकृतयः**	
		बह्वयः	- अनेक प्रकारकी हैं ॥ ६ ॥

याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा ।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि ॥ ७ ॥

याभिः भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयः तथा यथा प्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि ॥ ७ ॥

---

१. पृथ्वीके अतिरिक्त दिव्य सूक्ष्म लोक शाकादि द्वीपोंके निवास ।

याभिः भूतानि - जिन प्राणियोंके द्वारा
भूतानां मतयः - प्राणियों की बुद्धिमें
भिद्यन्ते - भेद पड़ जाता है ।

हि यथा प्रकृति - क्योंकि जैसा स्वभाव है
तथा चित्रावाचः - वैसी अनेक प्रकारकी वाणी
स्रवन्ति - (उनसे) निकलती है ॥ ७ ॥

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद् भिद्यन्ते मतयो नृणाम् ।
पारम्पर्येण केषाञ्चित् पाखण्डमतयोऽपरे ॥ ८ ॥

एवं प्रकृति वैचित्र्यात् भिद्यन्ते मतयः नृणां पारम्पर्येणकेषान् चित् पाखण्ड मतयः अपरे ॥ ८ ॥

एवं नृणां प्रकृति वैचित्र्यात् - इस प्रकार मनुष्योंकी स्वभाव भेदसे
मतयः भिद्यन्ते - बुद्धिमें भेद हो जाता है,

केषान् चित् किन्हींमें (यह भेद)
पारम्पर्येण - परम्परासे आता है,
अपरे - और दूसरे
पाखण्ड-मतयः - पाखण्डी बुद्धिके होते हैं ॥ ८ ॥

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ।
श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥

मत् माया मोहित धियः पुरुषाः पुरुष ऋषभ श्रेयः वदन्ति अनेक अन्तं यथा कर्म यथा रुचि ॥ ९ ॥

पुरुष ऋषभ - पुरुष श्रेष्ठ !
मत् माया - मेरी मायासे
मोहित धियः - मोहित बुद्धि
पुरुषाः - मनुष्य

यथा कर्म - अपने कर्मके अनुसार और
यथा रुचि - रुचिके अनुसार
अनेक अन्तं - अनेक प्रकारसे समाप्त होने वाले
श्रेयः वदन्ति - कल्याण मार्ग बतलाते हैं ॥ ९ ॥

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ।
अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्य त्यागभोजनम् ॥ १० ॥

धर्म एके यशः च अन्येकामं सत्यं दमं शमं अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्याग भोजनम् ॥ १० ॥

एके धर्मं - कोई धर्म,
च अन्ये यशः - तथा दूसरे यश,
कामं सत्यं दमं - काम, सत्य, दम,
शमं वा ऐश्वर्यं - शम या ऐश्वर्यको,
अन्ये भोजनं त्याग - दूसरे भोजन छोड़ देनेको
वदन्ति - (कल्याण मार्ग) कहते हैं ॥ १० ॥

केचिद् यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान् यमान् ।
आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥ ११ ॥

केचित् यज्ञ तपः दानं व्रतानि नियमान् यमान् आदि अन्तवत् एव एषां लोकाः कर्म विनिर्मिताः दुःख उदर्काः तमः निष्ठाः क्षुद्र आनन्दाः शुचा अर्पिताः ॥ ११ ॥

केचित् - कोई लोग
यज्ञ तपः दानं - यज्ञ, तप, दान,
व्रतानि - व्रत
नियमान् - नियम
यमान् - यमोंको (कल्याण मार्ग कहते हैं)
एवैषां - इन सबसे
कर्म विनिर्मिताः - कर्म फलसे बने
लोकाः - लोक
आदि अन्तवत् - आदि-अन्त वाले,
दुःख उदर्काः - (अन्तमें) दुःख उत्पन्न करने वाले,
तमः निष्ठाः - अज्ञानमयी गति दाता,
क्षुद्र आनन्दाः - तुच्छ आनन्द वाले एवं
शुचा अर्पिताः - शोकसे भरे हैं ॥ ११ ॥

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ।
मयाऽऽत्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद् विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥

मयि अर्पित आत्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः मया आत्मना सुखं यत् तत् कुतः स्यात् विषय आत्मनाम् ॥ १२ ॥

सभ्य	- शिष्ट उद्धव !	**मया आत्मना**	- मुझ आत्म स्वरूपसे
मयि अर्पित आत्मनः	- मुझमें चित्त लगाकर	**यत् सुखं**	- जो सुख प्राप्त होता है,
सर्वतः-	- सब ओरसे अपेक्षा	**तत् विषय आत्मनां**	- वह विषय भोगोंमें चित्त लगाने वालेको
निरपेक्षस्य	रहित हो गये	**कुतः स्यात्**	- कहाँसे होगा ॥ १२ ॥

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः मया सन्तुष्ट मनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १३ ॥

अकिञ्चनस्य	- अपरिग्रही,	**मया सन्तुष्ट मनसः**	- मुझमें ही चित्त लगाकर सन्तुष्टके लिए
दान्तस्य	- इन्द्रियजयी,	**सर्वाः दिशः**	- सब दिशायें
शान्तस्य	- मनोजयी,	**सुखमया**	- सुखमय हैं ॥ १३ ॥
समचेतसः	- समदर्शी,		

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥ १४ ॥

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्र धिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसा आधिपत्यं न योगसिद्धिः अपुनः भवं वा मयि अर्पित आत्मा इच्छति मत् विना अन्यत् ॥ १४ ॥

मयि अर्पित आत्मा	- मुझमें समर्पित चित्त	**सार्वभौमं न रसा**	- पृथ्वीका सम्राट् पद नहीं, - रसातलादिका स्वामित्व
मत् विना	- मेरे अतिरिक्त	**आधिपत्यं न**	नहीं
पारमेष्ठ्यं न	- ब्रह्माका पद नहीं,	**योग सिद्धिः**	- योगकी सिद्धियां
महेन्द्र-धिष्ण्यं न	- इन्द्रका सिंहासन नहीं,	**वा अपुनः भवं न इच्छति**	- अथका मोक्ष भी, - नहीं चाहता ॥ १४ ॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।
न च संकर्षणो न श्रीनैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिः न शंकरः न च संकर्षणः न श्री न एव आत्मा यथा भवान् ॥ १५ ॥

तथा मे-प्रियतम	- वैसे मेरे अत्यन्त प्रिय	**न संकर्षणः**	- न बलरामजी,
न आत्मयोनिः	- न ब्रह्माजी हैं,	**न श्री**	- न लक्ष्मी
न शंकरः	- न शंकर जी,	**च न आत्मा**	- और न अपना
		एव	यह शरीर ही,
		यथा भवान्	- जैसे (प्रिय) तुम हो ॥ १५ ॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनं अनुव्रजामि अहं नित्यं पूयेय इति अङ्घ्रि रेणुभिः ॥ १६ ॥

निरपेक्षं	- जिसेकोई अपेक्षा नहीं उस	**नित्य अहं**	- सदा मैं
मुनिं शान्तं	- मननशील, शान्त,	**अङ्घ्रि रेणुभिः**	- (उसकी) पदधूलिसे
निर्वैरं	- शत्रुता रहित	**पूयेय इति**	- पवित्र होऊँ इस भावसे
समदर्शिनं	- समदर्शीके	**अनुव्रजामि**	- पीछे चलता हूँ ॥ १६ ॥

निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः
शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्
तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

निष्किञ्चना मयि अनुरक्त चेतसः शान्ता महान्तः अखिल जीव वत्सलाःकामैः अन आलब्ध धियः जुषन्ति यत् तत् नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥

निष्किञ्चना	- अपरिग्रही,	**कामैः**	- वासनाओंसे
मयि	- मुझमें	**अनआलब्ध धियः**	- अनाक्रान्त चित्त
अनुरक्त चेतसः	- आसक्त चित्त,	**यत् जुषन्ति**	- जो (सुख) पाते हैं
शान्ता	- शान्त,	**तत् नैरपेक्ष्यं**	- वह निरपेक्षताका
महान्तः	- उदार हृदय,	**सुखं मम**	- सुख मेरा स्वरूप है,
अखिल जीव	- समस्त प्राणियोंपर	**न विदुः**	- (दूसरे उसे) नहीं जानते ॥ १७ ॥
वत्सलाः	- वात्सल्य रखने वाले,		

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥

बाध्यमानः अपि मत् भक्तः विषयैः अजित इन्द्रियः प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैः न अभि भूयते ॥ १८ ॥

अजित इन्द्रियः	- जो अभी जितेन्द्रिय नहीं है	**प्रायः प्रगल्भया**	- प्रायः प्रगल्भ (पुष्ट)
मत् भक्तः	- वह मेरा भक्त	**भक्त्या**	- भक्तिके सहारे
विषयैः	- (रस-स्पर्शादि) विषयों द्वारा	**विषयैः**	- विषयोंसे
बाध्यमानः अपि	- पीड़ित होनेपर भी	**अभिभूयते न**	- पराजित नहीं होता ॥ १८ ॥

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

यथा अग्निः सुसमृद्ध अर्चिः करोति एधांसि भस्मसात् तथा मत् विषया भक्तिः उद्धव एनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**तथा मत् विषया**	- वैसे ही मेरे सम्बन्धकी
यथा सुसमृद्ध	- जैसे अच्छी प्रकार बढ़ी	**भक्तिः**	- भक्ति
अर्चिः अग्निः	- लपटों वाला अग्नि	**कृत्स्नशः एनांसि**	- सम्पूर्ण पापोंको
एधांसि	- ईंधनको,	**भस्मसात् करोति**	- भस्म कर देती है ॥ १९ ॥

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥ २० ॥

न साधयति मां योगः न सांख्यं धर्म उद्धव न स्वाध्यायः तपः त्यागः यथा भक्तिः मम ऊर्जिता ॥ २० ॥

उद्धव	- उद्धव !	**तपः त्यागः**	- तपस्या और त्याग
योगः न	- योग नहीं,	**मां न साधयति**	- मुझे प्राप्त नहीं कराते
सांख्यं धर्म न	- सांख्य धर्म नहीं,	**यथा ऊर्जिता**	- जैसी तेजस्विनी
स्वाध्यायः	- वेदाध्ययन,	**मम भक्तिः**	- मेरी भक्ति ॥ २० ॥

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥ २१ ॥

भक्त्या अहं एकया ग्राह्यः श्रद्धया आत्मा प्रियः सतां भक्तिः पुनाति मत् निष्ठा श्वपाकान् अपि सम्भवात् ॥ २१ ॥

सतां प्रियः	- सत्पुरुषोंका प्रिय	**मत् निष्ठा**	- मुझमें निष्ठा युक्त
आत्मा अहं	- आत्मा मैं	**भक्तिः**	- भक्ति
श्रद्धया एकया	- श्रद्धा पूर्वक अनन्य	**सम्भवात्**	- जन्मसे ही
भक्त्या ग्राह्यः	- भक्ति द्वारा पकड़में आने योग्य हूँ ।	**श्वपाकान् अपि**	- चाण्डालोंको भी
		पुनाति	- पवित्र कर देती है ॥ २१ ॥

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥

धर्मः सत्य दया उपेतः विद्या वा तपसा अन्विता मत् भक्त्या अपेतं आत्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥

हि मत् भक्त्या	- क्योंकि मेरी भक्तिसे	**तपसा अन्विता**	- तपस्या युक्त
अपेतं आत्मानं	- रहित चित्तको	**विद्या सम्यक्**	- विद्या भली प्रकार
सत्य दया	- सत्य एवं दया	**न प्रपुनाति**	- नहीं पवित्र करती ॥ २२ ॥
उपेतः धर्मः	- युक्त धर्म एवं		

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः ॥ २३ ॥

कथं विना रोम हर्षं द्रवता चेतसा विना विना आनन्द अश्रु कलया शुध्येत् भक्त्या विना आशयः ॥ २३ ॥

विना रोमहर्षं	- बिना रोमाञ्च हुए,	**विना आनन्द-अश्रु कलया**	- बिना आनन्द अश्रु आये,
विना चेतसा द्रवता	- बिना चित्तके द्रवित हुए,	**विना भक्त्या**	- बिना भक्तिके
		आशयः	- अन्तःकरण
		कथं शुध्येत्	- कैसे शुद्ध हो सकता है ॥ २३ ॥

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

वाक् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदति अभीक्ष्णं हसति क्वचित् च विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मत् भक्ति युक्तः भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥

यस्य चित्तं	- जिसका चित्त	विलज्ज	- लज्जाहीन होकर
द्रवते	- द्रवित होता है,	उद्गायति	- उच्चस्वरसे गाता है,
वाक् गद्गदा	- वाणी गद्गद होजाती है,	च नृत्यते	- और नाचता है,
		मत् भक्ति-	- (ऐसा) मेरी भक्ति वाला
अभीक्ष्णं रुदति	- बराबर रोता है,	युक्तः	
च क्वचित्	- तथा कभी	भुवनं पुनाति	- पूरे संसारको पवित्र करता है ॥ २४ ॥
हसति	- हँसता है,		

यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥

यथा अग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपं आत्मा च कर्म अनुशयं विधूय मत् भक्तियोगेन भजति अथो माम् ॥ २५ ॥

यथा अग्निना	- जैसे अग्नि द्वारा	आत्मा च	- (ऐसे ही) अन्तःकरण भी
ध्मातं हेम	- तपाये जानेपर सोना		

मलं जहाति	- मैल छोड़ देता है,	**मत्भक्तियोगेन**	- मेरे भक्तियोगसे
च पुनः-	- और फिर अपना	**कर्म अनुशयं**	- कर्मके साथ रहने वाले
स्वं रूपं	स्वरूप		दोषको
भजते	- प्राप्त कर लेता है,	**विधूय**	- नष्ट करके
		अथो मां-	- फिर मुझे प्राप्तकर लेता
		भजति	है ॥ २५ ॥

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ
मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं
चक्षुर्यथैवाञ्जनसम्प्रयुक्तम् ॥ २६ ॥

यथा यथा आत्मा परिमृज्यते असौ मत् पुण्य गाथा श्रवण अभिधानैः तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुः यथा एव अञ्जन सम्प्रयुक्तम् ॥ २६ ॥

यथा यथा असौ	- जैसे-जैसे यह	**तथा तथा**	- वैसे वैसे
आत्मा मत्	- चित्त मेरी	**सूक्ष्मं वस्तु**	- सूक्ष्म तत्त्वको
पुण्यगाथा	- पवित्र कथा	**पश्यति**	- देखने (जानने)
श्रवण अभिधानैः	- सुनने-कहनेसे		लगता है,
परिमृज्यते	- परिमार्जित होता है	**यथा एव अञ्जनं**	- जैसे अञ्जनका
		सम्प्रयुक्तं	- ठीक उपयोग करनेसे
		चक्षुः	- नेत्र ॥ २६ ॥

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते ।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥ २७ ॥

विषयान्ध्यायतः चित्तं विषयेषु विषज्जते मां अनुस्मरतः चित्तं मयि एव प्रविलीयते ॥ २७ ॥

विषयान् - (शब्दादि) विषयोंका
ध्यायतः - चिन्तन करनेसे
चित्तं विषयेषु - चित्त विषयोंमें
विषज्जते - आसक्त होजाता है और
मां अनुस्मरतः - मेरा बार-बार स्मरण करनेसे
चित्तं मयि एव - चित्त मुझमें ही
प्रविलीयते - विलीन हो जाता है ॥ २७ ॥

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् ।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥

तस्मात् असत् अभिध्यानं यथा स्वप्न मनोरथं हित्वा मयि सम आधत्स्व मनः मत्भाव भावितम् ॥ २८ ॥

तस्मात् - इसलिए
यथा स्वप्न मनोरथं - जैसे स्वप्न या मनोराज्य हो वैसे
असत् अभिध्यानं - असत् संसारके चिन्तनको
हित्वा - त्यागकर
मत् भावभावितं - मेरी भावनासे भावित
मनः मयि - मनको मुझमें
सम आधत्स्व - पूर्णतः लगा दो ॥ २८ ॥

स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् ।
क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥ २९ ॥

स्त्रीणां स्त्री संगिनां संग त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् क्षेमे विविक्त आसीनः चिन्तयेत् मां अतिन्द्रितः ॥ २९ ॥

आत्मवान् - धैर्यशाली साधक,
स्त्रीणां - स्त्रियोंकी एवं
स्त्री संगिनां - स्त्रियासक्त लोगोंका
संग दूरतः त्यक्त्वा - साथ दूरसे ही छोड़कर
क्षेमे - निरुपद्रव
विविक्त आसीनः - एकान्त स्थानमें बैठकर
अतन्द्रितः - सावधान होकर
मां चिन्तयेत् - मेरा चिन्तन करे ॥ २९ ॥

न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसंगतः ।
योषित्संगाद् यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥

न तथा अस्य भवेत् क्लेशः बन्धः च अन्य प्रसंगतः योषित् संगात् यथा पुंसः यथा तत् संगि संगतः ॥ ३० ॥

अस्य पुंसः	- इस पुरुषको	**न भवेत्**	- नहीं होता
अन्य प्रसंगतः	- दूसरोंके साथसे	**यथा**	- जैसा
तथा क्लेशः	- उस प्रकार क्लेश और	**योषित् संगात्**	- स्त्रीके साथसे
बन्धः च	- बन्धन भी	**यथा तत् संगि**	- एवं जैसा उसमें आसक्तोंके
		संगतः	- साथसे (होता है)
			॥ ३० ॥

उद्धव उवाच–

यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् ।
ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥

यथा त्वां अरविन्द अक्ष यादृशं वा यत् आत्मकं ध्यायेत् मुमुक्षुः एतत् मे ध्यानं त्वं वक्तु अर्हसि ॥ ३१ ॥

अरविन्द अक्ष	- कमलनयन !	**ध्यायेत्**	- ध्यान करे
मुमुक्षुः	- मुक्ति चाहने वाला	**एतत् ध्यानं**	- यह ध्यान
यथा वा यादृशं	- जैसे या जिस रूपमें	**मे त्वं**	- मुझ आपको
यत् आत्मकं त्वां	- जिस रूपवाले आपका	**वक्तुं अर्हसि**	- बतलाना चाहिए
			॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच–

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥

सम आसन आसीनः समकायः यथा सुखं हस्ताः उत्संग आधाय स्वनासा अग्र कृत ईक्षणः ॥ ३२ ॥

सम आसन	- बराबर आसनपर	**हस्ताः उत्संग**	- दोनों हाथोंको गोदमें
यथा सुखं	- (जिस आसनसे) सुख पूर्वक (बैठ सके)	**आधाय**	- रखकर
		स्वनासा अग्र	- अपनी नाकके अगले भाग (भ्रूमध्यमें)
आसीनः	- बैठकर		
समकायः	- शरीर सीधा रखे,	**कृत ईक्षणः**	- दृष्टि रखे (शाम्भणी मुद्रा रखे) ॥ ३२ ॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥

प्राणस्य शोधयेत् मार्गं पूर कुम्भकरेचकैः विपर्ययेण अपि शनैः अभ्यसेत् निर्जित इन्द्रियः ॥ ३३ ॥

पूर कुम्भकरेचकैः	- पूरक, कुम्भक, रेचक	**प्राणस्य मार्गं**	- प्राणवायुके मार्गको
		शोधयेत्	- शुद्धकर
विपर्ययेण	- इससे उलटे (रोचक, कुम्भक, पूरक) क्रम	**निर्जित इन्द्रियः**	- इन्द्रियोंको जीतकर
		अभ्यसेत्	- यह अभ्यास करे ॥ ३३ ॥
अपि शनैः	- से भी धीरे-धीरे[1]		

हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ३४ ॥

हृदि अविच्छिन्नं ओंकारं घण्टानादं बिस उर्णवत् प्राणेन उदीर्य तत्र अथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥ ३४ ॥

---

१. (पहिले पूरक, अन्तर कुम्भक, रेचकका क्रम और फिर रोचक, बाह्य कुम्भक, पूरकका क्रम है ।)

हृदि	- हृदयमें	**प्राणेन उदीर्य**	- (मुखसे नहीं) प्राण वायुसे उच्चारण करके
घण्टानादं	- घंटे (पर चोट पड़नेके बादके) स्वरके समान	**पुनः स्वरं**	- (एक बार समाप्त होने पर) फिर स्वरको
विस उर्णवत्	- (पर मन्द पड़ता नहीं) कमल तन्तुके समान (एक रस और सूक्ष्म)	**संवेशयेत्**	- प्रविष्ट करे (फिरसे 'ओ'से उच्चारण करे) ॥ ३४ ॥

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग् जितानिलः ॥ ३५ ॥

एवं प्रणव संयुक्तं प्राणं एव सम अभ्यसेत् दशकृत्वः त्रिषवणं मासात् अर्वाक् जित अनिलः ॥ ३५ ॥

एवं	- इस प्रकार	**त्रिषवणं**	- तीनो (प्रातः मध्याह्न, सायं) समय
प्रणव संयुक्तं	- प्रणवके साथ	**दशकृत्वः**	- दस दस बार करे
प्राणं एव	- प्राण (प्राणसे दीर्घ प्रणवोच्चारणका) ही	**मासात्-अर्वाक्**	- (दूसरे) एक महीनेसे पहिले१.
सम अभ्यसेत्	- अच्छी प्रकार अभ्यास करे	**जित अनिलः**	- प्राण वायुजीत लिया जाता है ॥ ३५ ॥

हृत्पुण्डरीकमन्तः स्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् ।
ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

हृत् पुण्डरीकं अन्तः स्थं ऊर्ध्वनालं अधः मुखं ध्यात्वा ऊर्ध्वमुखं उन्निद्रं अष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥

---

१. (इसका तात्पर्य है कि ध्यानके समय श्वांस रुकनेसे होने वाली घबराहट नहीं होती ।)

अन्तःस्थं	- (ध्यान करे कि) भीतर स्थित	**ध्यात्वा**	- (उसे) ध्यान करो कि
हृत् पुण्डरीक	- हृदय कमल	**ऊर्ध्व मुखं**	- ऊपर मुख करके
ऊर्ध्वनालं	- ऊपर गयी नालमें	**उन्निद्रं**	- खिल गया,
अधः मुखं	- नीचे मुख किये (लटका) है	**अष्टपत्रं**	- (उसमें) आठ दल और
		सकर्णिकं	- (बीचमें) कर्णिका भी है ॥ ३६ ॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ।
वह्निमध्ये स्मरेद् रूपं ममैतद् ध्यानमंगलम् ॥ ३७ ॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्य सोम अग्नीन् उत्तर उत्तरं वह्नि मध्ये स्मरेत् रूपं मम एतत् ध्यान मंगलम् ॥ ३७ ॥

उत्तर उत्तरं	- एकके ऊपर एकके क्रमसे	**वह्नि मध्ये**	- फिर अग्निके बीचमें
कर्णिकायां	- कर्णिकापर	**एतत् ध्यान-मंगलं**	- यह ध्यानसे ही मंगलकारी
सूर्य सोम अग्नीन्	- सूर्य, चन्द्रमा, अग्निका	**मम रूपं**	- मेरे स्वरूपका
न्यसेत्	- न्यास (चिन्तन) करे	**स्मरेत्**	- चिन्तन करे ॥ ३७ ॥

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ।
सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घ चारु चतुर्भुजं सुचारु सुन्दर ग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥

समं दीर्घ चारु	- समान, लम्बी, सुन्दर	**सुकपोलं**	- सुन्दर कपोल युक्त
चतुर्भुजं	- चार भुजाओं वाला,	**शुचिस्मितं**	- पवित्र मुस्कान वाला
सुचारु सुन्दर ग्रीवं	- अत्यन्त मनोहर सुन्दर गला,	**प्रशान्तं सुमुखं**	- अत्यन्त शान्त सुन्दर मुख ॥ ३८ ॥

समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥

समान कर्ण विन्यस्त स्फुरन् मकर कुण्डलं हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्स श्रीनिकेतनम् ॥ ३९ ॥

समान कर्ण	- (परस्पर) बराबरके कानोंमें	**हेम अम्बरं**	- स्वर्णके समान वस्त्र हैं,
विन्यस्त	- पहिने हुए	**घनश्यामं**	- मेघके समान श्याम वर्ण,
मकरकुण्डलं	- मकराकृति कुण्डल	**श्रीनिकेतनं**	- लक्ष्मीका निवास
स्फुरन्	- चमक रहे हैं,	**श्रीवत्स**	- श्रीवत्स चिन्ह है ॥ ३९ ॥

शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ।
नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥

शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला विभूषितं नूपुरैः विलसत् पादं कौस्तुभ प्रभया युतम् ॥ ४० ॥

शंख चक्र	- शंख, चक्र,	**पादं नूपुरैः**	- चरण नूपुरोंसे
गदा पद्म	- गदा, पद्म;	**विलसत्**	- सुशोभित हैं,
वनमाला	- वनमालासे	**कौस्तुभ प्रभया**	- कौस्तुभ मणिकीकान्तिसे
विभूषितं	- अलंकृत है,	**युतं**	- मण्डित हैं ॥ ४० ॥

द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्दायुतम् ।
सर्वांगसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ।
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ॥ ४१ ॥

द्युमत् किरीट कटक कटिसूत्र अंगद आयुतं सर्व अंग सुन्दरं हृद्यं प्रसाद सुमुख ईक्षणं सुकुमारं अभिध्यायेत् सर्व अंगेषु मनः दधत् ॥ ४१ ॥

द्युमत् - चमकते हुए
किरीट कटक - मुकुट, कंकण
कटिसूत्र - काञ्ची,
अंगद आयुतं - अंगदोंसे भूषित,
सर्व अंग सुन्दरं - सभी अंग सुन्दर
हृद्यं - हृदयहारी,
प्रसाद सुमुख - कृपा परिपूर्ण
ईक्षणं - दृष्टि हैं,
सुकुमारं - सुकुमार हैं,
सर्व अंगेषु - सभी अंगोंमें
मनः दधत् - मन लगाते हुए (इस)
अभिध्यायेत् - सम्पूर्ण रूपका ध्यान करे ॥ ४१ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियाणि इन्द्रिय अर्थेभ्यः मनसा आकृष्य तत् मनः बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेत् मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥

इन्द्रिय अर्थेभ्यः - इन्द्रियोंके विषयोंसे
इन्द्रियाणि - इन्द्रियोंको
मनसा आकृष्य - मनके द्वारा हटाकर
तत् मनः - उस मनसे
धीरः - धीर पुरुष
बुद्ध्या सारथिना - बुद्धि रूपी सारथी द्वारा
सर्वतः मयि - सब ओरसे मुझमें
प्रणयेत् - लगा दे ॥ ४२ ॥

तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥ ४३ ॥

तत् सर्व व्यापकं चित्तं आकृष्य एकत्र धारयेत् न अन्यानि चिन्तयेत् भूयः सुस्मितं भावयेत् मुखम् ॥ ४३ ॥

तत् सर्व-व्यापकं - उस सब अंगोंमें लगे
चित्तं आकृष्य - चित्तको खींचकर
एकत्र धारयेत् - एक ही (अंग) में लगा दे
भूयः अन्यानि - फिर दूसरे (अंगों)का
चिन्तयेत् न - चिन्तन न करें,
सुस्मितं मुखं - (केवल) सुन्दर मुस्कान युक्त मुखकी
भावयेत् - भावना करे ॥ ४३ ॥

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

तत्र लब्धपदं चित्तं आकृष्यव्योम्नि धारयेत् तत् च त्यक्त्वा मत् आरोहः न किञ्चित् अपि चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

तत्र लब्धपदं	- वहां (मुख) में स्थिरता प्राप्तकर लेनेपर	**तत् च त्यक्त्वा**	-फिर उसे भी छोड़कर
		मत् आरोहः	- मुझमें पहुंचकर
चित्तं आकृष्य	- चित्तको खींचकर	**किञ्चित् अपि**	- कुछ भी
व्योम्नि धारयेत्	- आकाशमें लगा दे,	**न चिन्तयेत्**	- न सोचे ॥ ४४ ॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥

एवं समाहित मतिः मां एव आत्मानं आत्मनि विचष्टे मयि सर्व आत्मन् ज्योतिः ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥

एवं समाहित	- इस प्रकार एकाग्र	**आत्मानं**	- अपने आत्मरूपमें
मतिः मां एव	- बुद्धि मुझको ही	**ज्योतिषि संयुतं**	- ज्योतिमें मिल गयी
आत्मनि	- अपनेमें	**ज्योतिः विचष्टे**	- ज्योति देखता है
सर्वात्मन्	- सर्वात्माको		॥ ४५ ॥

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

ध्यानेन इत्थं सुतीव्रेण युञ्जतः योगिनः मनः संयास्यति आशु निर्वाणं द्रव्य ज्ञान क्रिया भ्रमः ॥ ४६ ॥

इत्थं सुतीव्रेण	- इस प्रकार अत्यन्त तीव्र	**द्रव्य ज्ञान-**	- पदार्थ, ज्ञान एवं
ध्यानेन	- ध्यानके द्वारा	**क्रिया**	क्रिया
मनः युञ्जतः	- मनका संयम करते हुए	**भ्रमः**	- (के पार्थक्य)का भ्रम
योगिनः	- योगीका	**आशु निर्वाणं**	- शीघ्र समाप्त
		संयास्यति	- हो जाता है ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

जित इन्द्रियस्य युक्तस्य जित श्वासस्य योगिनः मयि धारयतः चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥

जित इन्द्रियस्य	- इन्द्रियजयी	**मयिचेत**	- मुझमें चित्त
युक्तस्य	- संयतचित्त,	**धारयतः**	- लगाते समय
जितश्वासस्य	- प्राणजयी	**सिद्धयः**	- सिद्धियां
योगिनः	- योगीके	**उपतिष्ठन्ति**	- समीप आती हैं ॥ १ ॥

उद्धव उवाच–

कया धारणया कास्वित् कथंस्वित् सिद्धिरच्युत ।
कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥

कया धारणया कास्वित् कथंस्वित् सिद्धिः अच्युत कति वा सिद्धयः ब्रूहि योगिनां सिद्धिदः भवान् ॥ २ ॥

अच्युत	- अच्युत !	**वा कति**	- अथवा कितनी
कया धारणया	- किस धारणासे	**सिद्धयः**	सिद्धियां हैं
कास्वित्	- कौन-सी	**ब्रूहि**	- बतलाइये (क्योंकि)
सिद्धिः कथं	- सिद्धि कैसे होती है?	**भवान्**	- आप
स्वित्		**योगिनां-**	- योगियोंको सिद्धि देने
		सिद्धिदः	वाले हैं ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच–

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

सिद्धयः अष्टादश प्रोक्ता धारणायोग पारगैः तासां अष्टौ मत् प्रधाना दश एव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

धारणा योग	- धारणा योगके	**तासां अष्टौ**	- उनमेंसे आठ
पारगैः	- पारगमियोंने	**मत् प्रधाना**	- प्रधान रूपसे मुझमें (रहती हैं)
अष्टादश	- अठारह	**दश एव**	- दस तो
सिद्धयः प्रोक्ता	- सिद्धियां बतलायी हैं,	**गुण हेतवः**	- सत्त्व गुणकेकारणसे होती हैं ॥ ३ ॥

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥

अणिमा महिमा मूर्तेः लघिमा प्राप्तिः इन्द्रियैः प्राकाम्यं श्रुत दृष्टेषु शक्ति प्रेरणं ईशिता ॥ ४ ॥

मूर्तिः अणिमा	- शरीरका छोटा हो जाना,	**श्रुत दृष्टेषु**	- पारलौकिक, लौकिक (पदार्थों)का
महिमा	- बड़ा हो जाना,	**प्राकाम्यं**	- इच्छानुसार मिलना,
लघिमा	- हल्का हो जाना,	**शक्तिः प्रेरणं**	- (अपनी शक्ति अन्यमें) संचारित करना
इन्द्रियैः प्राप्तिः	- इन्द्रियोंका (सिद्ध उनकी शक्तिकी) प्राप्ति,	**ईशिता**	- ईशिता है ॥ ४ ॥

गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥

गुणेषु असंगः वशिता यत्कामः तत् अवस्यति एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टाः औत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥

सौम्य	- सौम्य उद्धव !	**तत् अवस्यति**	- उसकी सीमा तक पहुँच जाना
गुणेषु असंगः	- (सत्त्वादि) गुणोंमें आसक्त न होना	**एता अष्टाः सिद्धयः**	- ये आठ सिद्धियां
वशिता	- वशिता है,	**मे मता**	- मेरे मतसे
यत्कामः	- जोकामना हो	**औत्पत्तिका**	- जन्मजात होती हैं (साधनसे नहीं मिलतीं) ॥ ५ ॥

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवःकामरूपंपरकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥

अन् उर्मिमत्त्वं देहे अस्मिन् दूर श्रवण दर्शनं मनोजवःकामरूपंपरकाय प्रवेशनम् ॥ ६ ॥

अस्मिन् देहे	- इसी (स्थूल) शरीरमें	**मनोजवः**	- मनके साथ देहसे वहां पहुंच जाना,
अन् उर्मिमत्त्वं	- (घटना-बढ़ना, झुर्री पड़ना आदि) लहरें न उठना,	**कामरूपं**	- इच्छानुसार रूप बना लेना,
दूर श्रवण दर्शनं	- दूरकी बात सुन या देख लेना,	**परकाय-प्रवेशनं**	- दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना ॥ ६ ॥

स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहतागतिः ॥ ७ ॥

स्वच्छन्दमृत्युः देवानां सह क्रीडा अनुदर्शनं यथा संकल्प संसिद्धिः आज्ञा अप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥

स्वच्छन्द मृत्युः - इच्छानुसार मरना,
देवानां सह - देवताओंके साथ
क्रीडा अनुदर्शनं - उनका विहार बराबर देखना,
यथा संकल्प - जैसा संकल्प हो
संसिद्धिः - उसका पूरा हो जाना,
अप्रतिहता - जिसे रोका न जा सके ऐसी
आज्ञा गतिः - आज्ञा देनेकी तथा जानेकी शक्ति ॥ ७ ॥

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥

त्रिकालज्ञत्वं अद्वन्द्वं परचित्त आदि अभिज्ञता अग्नि अर्क अम्बु विष आदीनां प्रतिष्टम्भः अपराजयः ॥ ८ ॥

त्रिकालज्ञत्वं - (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालोंकी बात जान लेना,
अद्वन्द्वं - (सुख-दुःख, राग-द्वेषादि) द्वन्द्वोंके वश न होना
परचित्त आदि - दूसरेके चित्त आदिकी बात
अभिज्ञता - जान लेना,
अग्नि अर्क अम्बु - अग्नि, सूर्य, जल,
विष आदीनां - विष आदिको
प्रतिष्टम्भः - रोक देना,
अपराजयः - पराजित न होना ।

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ।
यया धारणया या स्याद् यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥

एताः च उद्देशतः प्रोक्ता योग धारण सिद्धयः यया धारणया या स्यात् यथा वा स्यात् निबोधमे ॥ ९ ॥

उद्देशतः च - उद्देश पूर्वक ही
योग धारण - योग धारणासे (होने वाला)
एताः सिद्धयः - इतनी सिद्धियां
प्रोक्ता - (शास्त्रोंमें) कही गयी हैं,
यया धारणया - जिस धारणासे
वा यथा या स्यात् - अथवा जैसे जो होती हैं
मे निबोध - मुझसे सुनो ॥ ९ ॥

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥

भूत सूक्ष्म आत्मनि मयि तन्मात्रं धारयेत् मनः अणिमानं अवाप्नोति तन्मात्र उपासकः मम ॥ १० ॥

भूत सूक्ष्म	- पञ्चभूतोंके सूक्ष्म रूप	**मम तन्मात्र**	- मेरे तन्मात्रा रूपका
तन्मात्रं	- तन्मात्रा रूप	**उपासकः**	उपासक
मयि आत्मनि	- मेरे शरीरमें	**अणिमानं**	- अणिमा सिद्धि
मनः धारयेत्	- मन लगाकर	**अवाप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ॥ १० ॥

महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

महति आत्मन् मयि परे यथा संस्थं मनः दधत् महिमानं अवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

महति आत्मन्	- महाभूत स्वरूप	**भूतानां च**	- महाभूतोंका तो
मयि परे	- मुझपरमात्मामें	**पृथक् पृथक्**	- अलग अलग
यथा संस्थं	- उनके स्वरूपोंके अनुसार	**महिमानं**	- प्रभाव
मनः दधत्	- मन लगाकर	**अवाप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

परमाणु मये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् कालसूक्ष्म अर्थतां योगी लघिमानं अवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

भूतानां - चार (वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) भूतोंके
परमाणु मये - परमाणु स्वरूप
मयि चित्तं - मुझमें ही चित्तको
रञ्जयन् - तदाकार करके
कालसूक्ष्म- - सूक्ष्म परमाणु काल
अर्थतां स्वरूप तत्त्व
योगीलघिमानं - योगी लघिमा सिद्धी
अवाप्नुयात् - पाता है ॥ १२ ॥

धारयन् मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राग्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥

धारयन् मयि अहं तत्त्वे मनः वैकारिके अखिलम् सर्व इन्द्रियाणां आत्मतत्त्वं प्राप्तिं प्राग्नोति मत् मनाः ॥ १३ ॥

मयि वैकारिके - मुझ वैकारिक (सात्त्विक)
अहंतत्त्वे - अहंकार तत्त्वमें
मत् मनाः - मेरी भावना करके
अखिलं मनः - सम्पूर्ण चित्त
धारयन् - लगाकर
सर्व इन्द्रियाणां - सब इन्द्रियोंकी
आत्मत्वं प्राप्तिं - स्वरूपता प्राप्ति सिद्धि
प्राग्नोति - पाता है ॥ १३ ॥

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥

महति आत्मनि यः सूत्रे धारयेत् मयि मानसं प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दते अव्यक्त जन्मनः ॥ १४ ॥

यः महति आत्मनि - जो महत्तत्त्व स्वरूप
मयि सूत्रे - मुझ सूत्रात्मामें
मानसंधारयेत् - मन लगाता है (वह)
अव्यक्त जन्मनः - अव्यक्त जन्मा
मे पारमेष्ठ्यं - मेरा परम ऐश्वर्यमय
प्राकाम्यं विन्दते - 'प्राकाम्य' सिद्धि पांता है ॥ १४ ॥

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे ।
स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥ १५ ॥

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे स ईशित्वं अवाप्नोति क्षेत्र क्षेत्रज्ञ चोदनाम् ॥ १५ ॥

त्र्यधीश्वरे	- त्रिगुणमयी मायाके स्वामी	क्षेत्र क्षेत्रज्ञ	- प्रकृति-पुरुषको
कालविग्रहे	- कालस्वरूप	चोदनां	- प्रेरित करने वाली
विष्णौ	- विष्णुमें	स ईशित्वं	- वह ईशित्व सिद्धि
चित्तं धारयेत्	- चित्त लगानेसे	अवाप्नोति	- पा जाता है ॥ १५ ॥

नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधत् योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥

नारायणे तुरीय आख्ये भगवत् शब्द शब्दिते मनः मयि अदधत् योगी मत् धर्मा वशितां इयात् ॥ १६ ॥

भगवत् शब्द	- भगवान नामसे	योगी मनः	- योगी मनको
शब्दिते	- कहे जाने वाले	अदधत्	- लगाकर
तुरीय आख्ये	- तुरीयतत्त्व नामक	मत् धर्मा	- मेरी समान धर्मा
नारायणे मयि	- नारायण मुझमें	वशितां इयात्	- वशिता सिद्धि पाता है ॥ १६ ॥

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७ ॥

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनःपरम आनन्दं आप्नोति यत्रकामः अवसीयते ॥ १७ ॥

विशदं मनः - निर्मल चित्त
मयि निर्गुणे - मुझ निर्गुण
ब्रह्मणि धारयन् - ब्रह्ममें लगानेसे
परम आनन्दं - परमानन्द
आप्नोति - पाता है
यत्र - जिसे
कामः अवसीयते - कामावसायिता सिद्धि कहते हैं ॥ १७ ॥

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ।
धारयञ्छ्वेततां याति षड्भिर्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि धारयन् श्वेततां याति षट् ऊर्मि रहितः नरः ॥ १८ ॥

शुद्धे धर्म मये - शुद्ध धर्मस्वरूप
श्वेत द्वीपपतौ - श्वेतद्वीपके स्वामीमें
नरः चित्तं - मनुष्य चित्तको
धारयन् - लगानेसे
षट् ऊमि - ६ ऊर्मियों (भूख-प्यास, शोक-मोह, जरा-मृत्यु)से
रहितः - रहित होकर
श्वेततां याति - शुद्ध स्वरूप पाता है ॥ १८ ॥

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ।
तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥

मयि आकाश आत्मनि प्राणे मनसा घोषं उद्वहन् तत्र उपलब्धा भूतानां हंसः वाचः शृणोति असौ ॥ १९ ॥

मयि - मुझ
आकाश-आत्मनि - आकाश स्वरूपमें
प्राणे मनसा - मनके द्वारा प्राणमें (होनेवाला)
हंसः वाचः - हंसः वाणीका (सोऽहं)
घोषं उद्वहन् - शब्द सुनते हुए
तत्र उपलब्धा - वहां प्राप्त होने वाला
भूतानां असौ - प्राणियोंका (शब्द) यह
शृणोति - सुनता है (यह दूरश्रवण सिद्धि है) ॥ १९ ॥

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥

चक्षुः त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारं अपि चक्षुषि मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति सूक्ष्म दृक् ॥ २० ॥

चक्षुः त्वष्टरि - नेत्रोंको सूर्यसे
संयोज्य - संयुक्त करके१ और
त्वष्टारं अपि - सूर्यको भीनेत्रोंसे,
तत्र मां मनसा - वहां मुझे मनसे
ध्यायन् - चिन्तन करता हुआ
सूक्ष्मदृक् - सूक्ष्मदर्शी होकर
विश्वं पश्यति - सम्पूर्ण विश्वको देखता है
॥ २० ॥

मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ।
मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥

मनः मयि सुसंयोज्य देहं तत् अनु वायुना मत् धारणा अनुभावेन तत्र आत्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥

मनः मयि - मनको मुझमें
तत् अनु - उसके पीछे
देहं वायुना - सूक्ष्म शरीरको प्राण वायुसे
सुसंयोज्य - भली प्रकार मिला देनेसे
मत् धारणा - मेरी धारणा (भावना)के
अनुभावेन - प्रभावसे
वै यत्र मनः - निश्चय जहां मन जायगा
तत्र आत्मा - वहीं सशरीर पहुँच जायेगा
(यह मनोजव सिद्धि है)
॥ २१ ॥

यदा मन उपादाय यद् यद् रूपं बुभूषति ।
तत्तद् भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥

---

१. सूर्यपर खुलेनेत्र लगाने (त्राटक करने)से मनुष्य अन्धा हो जाता है, यह बात ध्यानमें रखना चाहिए । अतः थोड़ी देरको भी ऐसा नहीं करना चाहिए । यहां सूर्यको भी नेत्रसे युक्त करना कहा गया है । यह भावना योगकी विशेष क्रिया है ।

यदा मन उपादाय यत् यत् रूपं बुभूषति तत् तत् भवेत् मनः रूपं मत् योगबलं आश्रयः ॥ २२ ॥

मत् योगबलं	- मेरा और योगशक्तिका	**बुभूषति**	- होना चाहता है
आश्रयः	- सहारा लेकर	**तत् तत्**	- वह वह
यदा मन-	- जब मनको साथ लेकर	**मनः रूपं**	- मनके अनुसार रूपका
उपादाय		**भवेत्**	- हो जाता है (यहकामरूप सिद्धि है) ॥ २२ ॥
यत् यत् रूपं	- जो जो रूप		

परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ।
पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३ ॥

परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणः वायुभूतः षड्ङ्घ्रि वत् ॥ २३ ॥

सिद्ध	- सिद्धि सम्मन पुरुप	**षडङ्घ्रिवत्**	- (एकसे दूसरे फूलपर जाते) भौंरेके समान
परकाय विशन्	- दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेके लिए	**प्राणः पिण्डं हित्वा**	- प्राण यह शरीर छोड़कर
आत्मानं	- अपनेको	**वायुभूतः**	- वायुरूप होकर
तत्र भावयेत्	- वहीं भावना करे (इससे)	**विशेत्**	- (उसमें) प्रवेश कर जाता है ॥ २३ ॥

पाष्ण्र्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरः कण्ठमूर्धसु ।
आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४ ॥

पाष्ण्र्या आपीड्य गुदं प्राणं हृत् उरः कण्ठ मूर्धसु आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वा उत्सृजेत् तनुम् ॥ २४ ॥

गुदं पाष्ण्यार् - गुदाको एड़ीसे दबाकर
आपीड्य
प्राणं हृत् उरः - प्राणको हृदय, छाती,
कण्ठ मूर्धसु - कण्ठ और मस्तकमें
आरोप्य - (क्रमशः) ले जाकर,
ब्रह्मरन्ध्रेण - ब्रह्मरन्ध्रसे
ब्रह्मनीत्वा - ब्रह्मलीन करके
तनुं उत्सृजेत् - शरीर छोड़ दे ॥ २४ ॥

विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ।
विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥

विहरिष्यन् सुर आक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् विमानेन उपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तिः सुरः स्त्रियः ॥ २५ ॥

सुरआक्रीडे - देव विहार स्थलोंमें
विहरिष्यन् - विहार करनेकी इच्छा हो तो
मत्स्थं सत्त्वं - मेरे सत्त्वगुण रूपकी
विभावयेत् - दृढ़ भावना करे (इससे)
सत्त्ववृत्तीः - सत्त्वगुणकी वृत्ति रूपा
सुरस्त्रियः - देवांगनायें
विमानेन - विमानपर बैठकर
उपतिष्ठन्ति - उसके समीप आ जाती हैं ॥ २५ ॥

यथा संकल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ।
मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत् समुपाश्नुते ॥ २६ ॥

यथा संकल्पयेत् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् मयि सत्ये मनः युञ्जन् तथा तत् सम उप अश्नुते ॥ २६ ॥

मत्परः पुमान् - मेरेपरायण पुरुष
मयि सत्ये - मुझ सत्य स्वरूपमें
मनः युञ्जन् - मन लगाकर
बुद्ध्या यथा - बुद्धिसे जैसा
वा यदा - अथवा जब
संकल्पयेत् - संकल्प करता है
तथा तत् - उसी प्रकार उसका
सम उपअश्नुते - पूरा उपभोग करता है ॥ २६ ॥

यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ।
कुताश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥

यः वै मत् भावं आपन्न ईशितुः वशितुः पुमान् कुतः चित् न विहन्येत तस्य च आज्ञा यथा मम ॥ २७ ॥

ईशितुः वशितुः - ईशित्व और वशित्वक
पुमान् - स्वामी
मत भावं - मेरे भावसे
यः वै आपन्न - जो निश्चित् युक्त हो जाता है
तस्य च आज्ञा - उसकी भी आज्ञा
मम यथा - मेरी (आज्ञा) के समान
कुतः चित् - कहीं भी
विहन्येत न - टाली नहीं जाती ॥ २७ ॥

मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥

मत् भक्त्या शुद्ध सत्त्वस्य योगिनः धारणाविदः तस्य त्रैकालिकी बुद्धिः जन्म मृत्यु उपबृंहिता ॥ २८ ॥

मत् भक्त्या - मेरी भक्तिसे
शुद्ध सत्त्वस्य - शुद्ध अन्तःकरण,
धारणाविदः - धारणा-विधि जानने वाले
तस्य योगिनः - उस योगीकी बुद्धि
बुद्धिः
जन्म मृत्यु - जन्म-मृत्यु
उपबृंहिता - सहित
त्रैकालिकी - तीनोंकालोंको जानने वाली (हो जाती है) ॥ २८ ॥

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ।
मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥

अग्नि आदिभिः न हन्येत मुनेः योगमयं वपुः मत् योग श्रान्त चित्तस्य यादसां उदकं यथा ॥ २८ ॥

यथा उदकं - जैसे पानीसे
यादसां - जल जीवोंकी (मृत्यु नहीं होती)
मत् योग - मेरे सम्बन्धका योग
श्रान्त चित्तस्य - (करके) शिथिल चित्त
मुनेः योगमयं वपुः - मुनिका योगमय शरीर
अग्नि आदिभिः - अग्नि आदिसे
हन्येत न - नष्ट नहीं होता ॥२९॥

मद्विभूतीरभिध्यायन् श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ।
ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥

मत् विभूतिः अभिध्यायन् श्रीवत्स अस्त्र विभूषिताः ध्वज आतपत्र व्यजनैः स भवेत् अपराजितः ॥ ३० ॥

श्रीवत्स अस्त्र - श्रीवत्स चिन्ह, अस्त्र चक्र,
ध्वज आतपत्र - ध्वजा, छत्र,
व्यजनैः - पंखोंसे
विभूषिताः - सुशोभित
मत् विभूतिः - मेरे वैभवमय रूपका
अभिध्यायन् - (जो) बराबर ध्यान करता है
स अपराजितः - वह अपराजित
भवेत् - हो जाता है ॥ ३० ॥

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ।
सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥ ३१ ॥

उपासकस्य मां एवं योग धारणया मुनेः सिद्धयः पूर्व कथिता उपतिष्ठन्ति अशेषतः ॥ ३१ ॥

योग धारणया - योगकी धारणा सहित
मां एवं - मेरी इस प्रकार
उपासकस्य उपासना करने वाले
मुनेः - मननशील साधकके पास
पूर्व कथिता -पहिले बतलायी हुई
अशेषतः सिद्धयः - समस्त सिद्धियां
उपतिष्ठन्ति -उपस्थित हो जाती हैं ॥ ३१ ॥

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतःका सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥

जित इन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वास आत्मनः मुनेः मत् धारणां धारयतःका सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥

का सा सिद्धिः - ऐसी कौनसी सिद्धि है जो
जित इन्द्रियस्य - इन्द्रियजयी,
दान्तस्य - इन्द्रिय दमनकर्ता,
आत्मनः - अपनी
जितश्वास - श्वासपर अधिकार किये
मत् धारणां - मेरी भावना
धारयतः मुनेः - करने वाले मननशीलको
सुदुर्लभा - अत्यन्त दुर्लभ हो ॥ ३२ ॥

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्यकालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥

अन्तरायान् वदन्ति एता युञ्जतः योगं उत्तमं मया सम्पद्यमानस्यकालक्षपण हेतवः ॥ ३३ ॥

उत्तमं योगं - श्रेष्ठ योग
युञ्जतः - करने वालेके
मया सम्पद्य मानस्य - मेरी प्राप्ति करनेमें
कालक्षपण - (व्यर्थ) समय नष्ट करनेका
हेतवः - कारण होनेसे
एता - इन (सिद्धियों) को
अन्तरायान् - (शास्त्र) विघ्न
वदन्ति - कहते हैं ॥ ३३ ॥

जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

जन्म औषधितपः मन्त्रैः यावतीः इह सिद्धयः योगेन आप्नोति ताः सर्वा न अन्यैः योग गतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥

इह जन्म - इस संसारमें जन्म,
औषधि तपः - औषधि, तपस्या,
मन्त्रैः यावतीः - मन्त्रसे जितनी
सिद्धयः - सिद्धियां होती हैं
ताः सर्वा - वे सब
योगेन आप्नोति - योगसे पा लिया जाता है
योग गतिं - (किन्तु) योगकीपरम स्थितको
अन्यैः न व्रजेत् - दूसरे साधनोंसे नहीं पहुंच सकता ॥३४॥

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ।
अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥

सर्वासां अपि सिद्धीनां हेतुः पतिः अहं प्रभुः अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥

सर्वासां	- सभी ही	**अहं योगस्य**	- मैं योगका,
सिद्धीनां	- सिद्धियोंका	**सांख्यस्य**	- सांख्यका,
अहं हेतुः पतिः	- मैं कारण और स्वामी हूं,	**ब्रह्मवादिनः**	- वेदवादियोंके
		धर्मस्य प्रभुः	- धर्मका स्वामी हूँ ॥ ३५ ॥

अहमात्माऽऽन्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ।
यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

अहं आत्मा अन्तरः बाह्यः अनावृतः सर्वदेहिनां यथा भूतानि भूतेषु बहिः अन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

यथा भूतेषु	- जैसे प्राणियोंके	**सर्व देहिनां**	- सभी शरीर धारियोंका
बहिः अन्तः	- बाहर भीतर	**आत्मा स्वयं अहं**	- आत्मा स्वयं मैं
भूतानि	- पञ्चमहाभूत हैं,	**अन्तरः बाह्यः**	- (उनके) भीतर-बाहर
तथा	- उसी प्रकार	**अनावृतः**	- आवरण रहित हूं ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे पञ्चशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् ।
सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

त्वं ब्रह्म परमं साक्षात् अनादि अन्तं अपावृतं सर्वेषां अपि भावानां त्राण स्थिति अप्यय उद्भवः ॥ १ ॥

त्वं सर्वेषां	- आप सभी	**अनादि अन्तं**	- अनादि, अनन्त,
भावानां अपि	- प्राणि-पदार्थों के भी	अपावृतं	- निरावरण
त्राण स्थिति	- जीवन बचानेकी स्थिति,	**साक्षात्**	- स ा त्
अप्यय उद्भवः	- प्रलय-उत्पत्तिके कारण	**परमं ब्रह्म**	- परम ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ।
उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

उच्च अवचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयं अकृत आत्मभिः उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥

भगवन्	- भगवन् !	**दुर्ज्ञेयं**	- जानना बहुत कठिन
उच्च अवचेषु	- बड़े-छोटे	**त्वां याथातथ्येन**	- आपकी यथार्थ रूपसे
भूतेषु	- प्राणियोंमें (स्थित आपको)	**ब्राह्मणाः**	- ब्रह्मज्ञानी
		उपासते	- उपासना करते हैं
अकृत आत्मभिः	- अजितेन्द्रियों द्वारा		॥ २ ॥

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ।
उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद् वदस्व मे ॥ ३ ॥

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तत् वदस्व मे ॥ ३ ॥

येषु येषु - जिन जिन
भावेषु च - रूपोंमेंही
परमर्षयः - परमर्षि लोग
भक्त्या उपसीनाः - भक्तिपूर्वक उपासना करके
संसिद्धिं - सम्यक् सफलता
प्रपद्यन्ते - प्राप्त करते हैं
तत् मे वदस्व - वह मुझे बतलाइये ॥ ३ ॥

गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ।
न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४ ॥

गूढः चरसि भूत आत्मा भूतानां भूत भावन न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥ ४ ॥

भूतात्मा - प्राणियोंके आत्मा,
भूत भावन - प्राणियोंके रक्षक (आप)
भूतानां - प्राणियोंमें
गूढः चरसि - छिपकर रहते हैं,
ते मोहितानि - आपके द्वारा सम्मोहित
भूतानि - प्राणि
त्वां पश्यन्तं - आपको देखते हुए भी
न पश्यन्ति - नहीं देख पाते ॥ ४ ॥

याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां
विभूतयो दिक्षु महाविभूते ।
ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते
नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥

याः काः च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयः दिक्षु महाविभूते ता मह्यं आख्याहि अनुभावितः ते नमामि ते तीर्थपद अङ्घ्रि पद्मम् ॥ ५ ॥

महाविभूते - परमैश्वर्य शाली प्रभु !
वै भूमौ - निश्चित रूपसे पृथ्वीपर,
दिवि रसायां - स्वर्ग तथा पातालमें,
दिक्षु - दिशाओंमें,
याः काः च - जो कोई भी
ते अनुभावितः - आपके प्रभावसे युक्त
विभूतयः - विभूतियां हैं
ता मह्यं - उन्हें मुझे
आख्याहि - बतलाइये,
तीर्थपद - तीर्थ (गंगा) के मूल स्थान
ते अङ्घ्रि पद्मं - आपके चरण कमलोंमें
नमामि - (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

एवं एतत् अहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर युयुत्सुना विनशने सपत्नैः अर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

प्रश्नविदांवर	- प्रश्न करना जानने वालोंमें श्रेष्ठ उद्धव	**अर्जुनेन**	- अर्जुन द्वारा
		एवं एतत् वै	- इसी प्रकार यही निश्चित
विनशने	- कुरुक्षेत्रमें	**प्रश्नं अहं**	- प्रश्न मुझसे
सपत्नैः	- शत्रुओंसे	**पृष्टः**	- पूछा गया ॥ ६ ॥
युयुत्सना	- युद्धेच्छुक		

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ।
ततो निवृत्तो हन्ताहं हतोऽयमिति लौकिकः ॥ ७ ॥

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यं अधर्मं राज्य हेतुकं ततः निवृत्तः हन्तां अहं हतः अयं इति लौकिकः ॥ ७ ॥

अहं हन्ता	- "मैं मारने वाला हूँ,	**ज्ञातिवधं**	- जातिके लोगोंको मारना
अयं हतः	- ये मरेंगे'	**गर्ह्यं अधर्मं**	- निन्दनीय अधर्म
इति लौकिकः	- इस (सामान्य) लोक धारणासे	**ज्ञात्वा ततः**	- जानकर उससे
		निवृत्तः	- उदासीन होते (अर्जुन ने पूछा था) ॥ ७ ॥
राज्य हेतुकं	- राज्यके लिए		

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ।
अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥

स तदा पुरुषव्याघ्रः युक्त्या मे प्रतिबोधितः अभ्यभाषत मां एवं यथा त्वं रण मूर्धनि ॥ ८ ॥

स पुरुष व्याघ्रः - वह पुरुष सिंह
तदा रण मूर्धनि - उस समय युद्धारम्भमें
युक्त्या मे - युक्तियों द्वारा मेरे
प्रतिबोधितः - समझाये जानेपर
एवं यथा त्वं - इसी प्रकार जैसे तुम (पूछ रहे हो)
अभ्यभाषत - मुझसे पूछा था ॥ ८ ॥

अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ।
अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ॥ ९ ॥

अहं आत्मा उद्धव अमीषां भूतानां सुहृत् ईश्वरः अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थिति उद्धव अप्ययः ॥ ९ ॥

उद्धव - उद्धव !
अमीषां भूतानां - इन प्राणियोंका
अहं आत्मा - मैं आत्मा,
सुहृत ईश्वरः - हितैषी, स्वामी हूँ ।
अहं सर्वाणि - मैं ही सब प्राणि-
भूतानि पदार्थ हूँ,
तेषां स्थिति - उनकी स्थिति
उद्भव अप्ययः - उत्पत्ति और प्रलय भी हूँ ॥ ९ ॥

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥

अहं गतिः गतिमतां कालः कलयतां अहं गुणानां च अपि अहं साम्यं गुणिनि औत्पत्तिकः गुणः ॥ १० ॥

गतिमतां - गतिशीलोंमें
अहं गतिः - मैं गति हूँ,
कलयतां कालः - वशमें करने वालोंमें काल,
गुणानां च - गुणोंमें भी
अहं साम्यः - मैं (उनकी) साम्यावस्था एवं
गुणिनि - गुणवानोंमें
औत्पत्तिकः - जन्मजात (स्वाभाविक)
गुणः - गुण हूँ ॥ १० ॥

गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ।
सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥ ११ ॥

गुणिनां अपि अहं सूत्रं महतां च महान् अहं सूक्ष्माणां अपि अहं जीवः दुर्जयानां अहं मनः ॥ ११ ॥

गुणिनां अपि	- गुणवानोंमें भी	**सूक्ष्माणां**	- सूक्ष्म (पदार्थों) में
अहं सूत्रं	- मैं सूत्रात्मा हूँ,	**अहं जीवः**	- मैं जीव हूँ,
च महतां	- तथा महानोंमें	**दुर्जयानां**	- जिनको जीतना कठिन है उनमें
अहं महान्	- मैं महत्तत्त्व हूँ,	**अहं मनः**	- मैं मन हूँ ॥ ११ ॥

हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ।
अक्षराणामकारोऽस्मि पदानिच्छन्दसामहम् ॥ १२ ॥

हिरण्यगर्भः वेदानां मन्त्राणां प्रणवः त्रिवृत् अक्षराणां अकारः अस्मि पदानि छन्दसां अहम् ॥ १२ ॥

वेदानां	- वेदोंमें (उन्हें प्रकट करने वाला)	**अक्षराणां**	- अक्षरोंमें
हिरण्यगर्भः	- ब्रह्मा (या सूर्य) हूँ,	**अकारः अस्मि**	- अकार हूँ,
मन्त्राणां	- मन्त्रोंमें	**छन्दसां**	- छन्दोंमें
त्रिवृत् प्रणवः	- तीन मात्राओं वाला प्रणव हूँ,	**अहं पदानि**	- मैं त्रिपदा गायत्री हूँ ॥ १२ ॥

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ।
आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥

इन्द्रः अहं सर्व देवानां वसूनां अस्मि हव्यवाट् आदित्यानां अहं विष्णू रुद्राणां नील लोहितः ॥ १३ ॥

सर्व देवानां	- सब देवताओंमें	**आदित्यानां**	- अदितिके (बारह) पुत्रोंमें
अहं इन्द्रः	- मैं इन्द्र हूँ,	**अहं विष्णुः**	- मैं विष्णु (वामन) हूँ,
वसूनां	- (आठ) वसुओंमें	**रुद्राणां**	- (एकादश) रुद्रोंमें
हव्यवाट् अस्मि	- अग्नि हूँ,	**नीललोहितः**	- नील लोहित (नामक-रुद्र) हूँ ॥ १३ ॥

ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ।
देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

ब्रह्मर्षीणां भृगुः अहं राजर्षीणां अहं मनुः देवर्षीणां नारदः अहं हविर्धानि अस्मि धेनुषु ॥ १४ ॥

ब्रह्मर्षीणां	- ब्रह्मर्षियोंमें	**अहं नारदः**	- मैं नारद तथा
अहं भृगुः	- मैं भृगु हूँ,	**धेनुषु**	- गायोंमें
राजर्षीणां	- देवर्षियोंमें	**हविर्धानि अस्मि**	- कामधेनु हूँ ॥ १४ ॥

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्त्रिणाम् ।
प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥

सिद्ध ईश्वराणां कपिलः सुपर्णः अहं पतत्त्रिणां प्रजा पतीनां दक्षः अहं पितॄणां अहं अर्यमा ॥ १५ ॥

सिद्ध ईश्वराणां	- सिद्धोंके स्वामियोंमें	**प्रजापतीनां**	- प्रजापतियोंमें
कपिलः	- कपिल,	**अहं दक्षः**	- मैं दक्ष,
पतत्त्रिणां	- पक्षियोंमें,	**पितॄणां**	- पितरोंमें
अहं सुपर्णः	- मैं गरुड़	**अहं अर्यमा**	- मैं अर्यमा हूँ ॥ १५ ॥

मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् ।
सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥ १६ ॥

मां विद्धि उद्धव दैत्यानां प्रह्लादं असुर ईश्वरं सोमं नक्षत्र औषधीनां धनेशं यक्ष रक्षसाम् ॥ १६ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**नक्षत्र औषधीनां**	- नक्षत्रों एवं औषधियोंमें
दैत्यानां मां	- दैत्योंमें मुझे	**सोमं**	- चन्द्रमा
असुर ईश्वरं	- असुरराज	**यक्ष रक्षसां**	- यक्ष-राक्षसोंमें
प्रह्लादं विद्धि	- प्रह्लाद जानो,	**धनेशं**	- कुबेर हूँ ॥ १६ ॥

ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ।
तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥

ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुं तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥ १७ ॥

गजेन्द्राणां	- गजराजोंमें	**तपतां द्युमतां**	- तपने वाले कान्तिमानोंमें
ऐरावतं	- ऐरावत,	**सूर्यं**	- सूर्य,
यादसां प्रभुं	- जलचरोंमें उनके स्वामी	**च मनुष्याणां**	- तथा मनुष्योंमें
वरुणं	- वरुण	**भूपतिं**	- राजा हूँ ॥ १७ ॥

उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् ।
यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥

उच्चैः श्रवाः तुरंगाणां धातूनां अस्मि काञ्चनं यमः संयमतां च अहं सर्पाणां अस्मि वासुकिः ॥ १८ ॥

तुरंगानां	- घोड़ोंमें	**संयमतां च**	- शासन करने वालोंमें तो
उच्चैः श्रवा	- उच्चैः श्रवा,	**यमः अस्मि**	- यमराज हूँ,
धातूनां	- धातुओंमें	**च सर्पाणां**	- तथा सर्पोंमें
काञ्चनः अस्मि	- सोना हूँ,	**वासुकिः अस्मि**	- वासुकी हूँ ॥ १८ ॥

नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् ।
आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥ १९ ॥

नाग इन्द्राणां अनन्तः अहं मृगेन्द्रः शृंग दंष्ट्रिणां आश्रमाणां अहं तुर्यः वर्णानां प्रथमः अनघ ॥ १९ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !
नाग इन्द्राणां - नागराजोंमें
अहं अनन्तः - मैं शेष हूँ,
शृंग द्रंष्ट्रि णां - सींग और दाढ़ वालोंमें
मृगेन्द्रः - सिंह,
आश्रमाणां - आश्रमोंमें
अहं तुर्यः - मैं तुरीय सन्यास आश्रम एवं
वर्णानां - वर्णोंमें
प्रथमः - प्रथम ब्राह्मण हूँ ॥ १९ ॥

तीर्थानां स्त्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ।
आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥ २० ॥

तीर्थानां स्त्रोतसां गंगा समुद्रः सरसां अहं आयुधानां धनुः अहं त्रिपुरघ्नः धनुष्मताम् ॥ २० ॥

स्त्रोतसां तीर्थानां - प्रवाहरूप तीर्थोंमें
गंगा - गंगा,
सरसां - सरोवरोंमें
समुद्रः अस्मि - समुद्र हूँ
आयुधानां - हथियारोंमें
अहं धनुः - मैं धनुष एवं
धनुष्मतां - धनुर्धारियोंमें
त्रिपुरघ्नः - त्रिपुरारि हूँ ॥ २० ॥

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ।
वनस्पतीनामश्वत्थ औषधीनामहं यवः ॥ २१ ॥

धिष्ण्यानां अस्मि अहं मेरुः गहनानां हिमालयः वनस्पतीनां अश्वत्थ औषधीनां अहं यवः ॥ २१ ॥

धिष्ण्यानां - निवास स्थानोंमें
अहं मेरु अस्मि - मैं सुमेरु पर्वत हूँ,
गहनानां - कठिन स्थानोंमें
हिमालयः - हिमालय,
वनस्पतीनां - वनस्पतियोंमें
अश्वत्थः - पीपल,
औषधीनां - औषधियोंमें
अहं यवः - मैं जौ हूँ ॥ २१ ॥

पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ।
स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥

पुरोधसां वशिष्ठः अहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः स्कन्दः अहं सर्व सेनान्यां अग्रण्यां भगवान् अजः ॥ २२ ॥

पुरोधसां	- पुरोहितोंमें	सर्व सेनान्यां	- सब सेनापतियोंमें
अहं वशिष्ठः	- मैं वशिष्ठ,	अहं स्कन्दः	- मैं कुमार कार्तिक,
ब्रह्मिष्ठानां	- वेदज्ञोंमें	अग्रण्यां	- सन्मार्ग प्रवर्तकोंमें
बृहस्पतिः	- बृहस्पति,	भगवान् अजः	- भगवान् ब्रह्मा हूँ ॥२२॥

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ।
वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥ २३ ॥

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञः अहं व्रतानां अविहिंसनं वायु अग्नि अर्क अम्बु वाक् आत्मा शुचीनां अपि अहं शुचिः ॥ २३ ॥

यज्ञानां	- (पंच) महायज्ञोंमें	शुचीनां अपि	- पवित्र करने वालोंमें भी
अहं ब्रह्मयज्ञः	- मैं ब्रह्मयज्ञ (वेदोंका स्वाध्याय),	शुचिः वायु	- नित्य शुद्ध वायु,
		अग्नि अर्क	- अग्नि, सूर्य,
व्रतानां	- व्रतोंमें	अम्बु वाक्	- जल, वाणी,
अविहिंसनं	- अहिंसा,	आत्मा	- आत्मा हूँ ॥ २३ ॥

योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् ।
आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥

योगानां आत्म संरोधः मन्त्रः अस्मि विजिगीषतां आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्याति वादिनाम् ॥ २४ ॥

योगानां	- (आठ प्रकारके) योगोंमें	कौशलानां	- कुशलतामें
आत्म संरोधः	- मनोनिरोध,	आन्वीक्षिकी	- विवेक कौशल,
विजिगीषतां	- जीतने की इच्छावालोंमें	ख्याति वादिनां	- ख्याति वादियोंमें१
मन्त्रः	- नीतिबल,	विकल्पः	- विकल्प हूँ ॥ २४ ॥

१. 'इसकी ऐसी प्रसिद्धि है' इस आधार पर तत्त्व निर्णय करने वालोंमें 'यह इस कारण या इस कारण भी सम्भव है-इस प्रकार का विकल्प-एक प्रकारका 'अनेकान्तवाद' ।

स्त्रीणां तु शतरूपाहं पुंसां स्वायम्भुवो मनुः ।
नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥

स्त्रीणां तु शतरूपा अहं पुंसां स्वायम्भुवः मनुः नारायणः मुनीनां च कुमारः ब्रह्मचारिणाम् ॥ २५ ॥

स्त्रीणां तु	- स्त्रियोंमें तो	मुनीनां नारायणः	- मुनियोंमें नारायण,
अहं शतरूपा	- मैं शतरूपा,	च ब्रह्मचारिणां	- तथा ब्रह्मचारियोंमें
पुंसां	- पुरुषोंमें	कुमारः	- सनक आदि कुमार हूँ ॥ २५ ॥
स्वायंभुवः मनुः	- स्वायाम्भू मनु,		

धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ।
गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥ २६ ॥

धर्माणां अस्मि सन्यासः क्षेमाणां अबहिः मतिः गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानां अजः तु अहम् ॥ २६ ॥

धर्माणां	- धर्मोंमें	गुह्यानां	- गोपनीयतामें
सन्यासः अस्मि	- सन्यास हूँ,	सूनृतं मौनं	- मधुर वाणी तथा मौन,
क्षेमाणां	- कल्याण के साधनोंमें	मिथुनानां	- जोड़ेसे रहने वालोंमें
अबहिः मतिः	- बुद्धिका बहिर्मुख न होना,	अजः तु अहं	- (एक ही देह से स्त्री-पुरुष उत्पन्न करने वाले) ब्रह्मा मैं हूँ ॥ २६ ॥

संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित् ॥ २७ ॥

संवत्सरः अस्मि अनिमिषां ऋतूनां मधु माधवौ मासानां मार्गशीर्षः अहं नक्षत्राणां तथा अभिजित् ॥ २७ ॥

अनिमिषां	- पलक न झपकाने वालोंमें	**मासानां अहं**	- महीनोंमें मैं
संवत्सरः अस्मि	- संवत्सर हूँ,	**मार्गशीर्षः**	- मार्गशीर्ष
ऋतूनां	- ऋतुओंमें	**तथा नक्षत्राणां**	- इसी प्रकार नक्षत्रोंमें
मधु माधवौ	- चैत्र-वैशाख रूप वसंत,	**अभिजित्**	- अभिजित हूँ ॥ २७ ॥

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ।
द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलः असितः द्वैपायनः अस्मि व्यासानां कवीनां काव्यः आत्मवान् ॥ २८ ॥

युगानां च	- युगोंमें भी	**व्यासानां**	- वेदोंका विभाजन करने वालोंमें
अहं कृतं	- मैं सतयुग,	**द्वैपायनः**	- श्रीकृष्ण द्वैपायन,
धीराणां	- धैर्यशालियोंमें	**कवीनां**	- कवियोंमें
देवलः असितः	- देवल और असित,	**आत्मवान्**	- मनस्वी शुक्राचार्य हूँ
		काव्यः	॥ २८ ॥

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ।
किंपुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥

वासुदेवः भगवतां त्वं तु भागवतेषु अहं किम्पुरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥ २९ ॥

भगवतां	- भगवानों (दिव्येश्वर्य शालियों) में	**किम्पुरुषाणां**	- किम्पुरुषोंमें
अहं वासुदेवः	- मैं वासुदेव,	**हनुमान्**	- हनुमान,
भागवतेषु	- भगवद्भक्तोंमें	**विद्याध्राणां**	- विद्याधरोंमें
त्वं तु	- तुम्ही,	**सुदर्शनः**	- सुदर्शन हूँ ॥ २९ ॥

रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ।
कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविष्वहम् ॥ ३० ॥

रत्नानां पद्मरागः अस्मि पद्मकोशः सुपेशसां कुशः अस्मि दर्भजातीनां गव्यं आज्यं हविःषु अहम् ॥ ३० ॥

रत्नानां	- रत्नोंमें	दर्भजातीनां	- दर्भ (मूंज कासादि)
पद्मरागः अस्मि	- कमलके रंगका (माणिक) हूँ,		जातियोंमें
		कुशः अस्मि	- कुश हूँ,
सुपेशसां	- सुन्दर आकारवालोंमें	हविःषु अहं	- हविष्योंमें मैं
पद्मकोशः	- कमलकोश,	गव्यं आज्यं	- गोधृत हूँ ॥ ३० ॥

व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ।
तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्वंवतामहम् ॥ ३१ ॥

व्यवसायिनां अहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः तितिक्षा अस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतां अहम् ॥ ३१ ॥

अहं व्यवसायिनां	- मैं व्यापारियोंकी	तितिक्षूणां	- तितीक्षा करने वालोंकी
लक्ष्मीः	- लक्ष्मी,	तितिक्षा	- सहनशीलता एवं
कितवानां	- कपटियोंका	सत्त्ववतां	- सात्त्विक लोगोंका
छलग्रहः	- जुआ खेलना,	सत्त्वं अहं-अस्मि	- सत्त्वगुण मैं हूँ ॥ ३१ ॥

ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् ।
सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥ ३२ ॥

ओजः सहः बलवतां कर्म अहं विद्धि सात्त्वतां सात्त्वतां नवमूर्तीनां आदिमूर्तिः अहं परा ॥ ३२ ॥

बलवतां - बलवानोंमें
ओजः सहः - उत्साह और पराक्रम,
सात्त्वतां - भगवद्भक्तोंमें
अहं कर्म - मैं निष्काम कर्म,
सात्त्वतां - पाञ्चरात्रो पासकोंकी
नवमूर्तीनां - नौ (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, बाराह, नृसिंह और ब्रह्मा) पूज्य मूर्तियोंमें
अहं परा - मैं सर्वश्रेष्ठ
आदिमूर्तिः - पहिली मूर्ति वासुदेव हूँ ॥ ३२ ॥

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ।
भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥

विश्वावसुः पूर्वचित्तिः गन्धर्व अप्सरसां अहं भूधराणां अहं स्थैर्यं गन्धमात्रं अहं भुवः ॥ ३३ ॥

गन्धर्व - गन्धर्वोंमें
विश्वावसुः - विश्वावसु,
अप्सरसां अहं - अप्सराओंमें मैं
पूर्वचित्तिः - पूर्वचित्ती,
भूधराणां - पर्वतोंमें
अहं स्थैर्यं - मैं स्थिरता,
अहं भुवः - मैं पृथ्वीमें
गन्धमात्रं - गन्ध तन्मात्रा हूँ ॥ ३३ ॥

अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ।
प्रभा सूर्येन्दुतारागणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥

अपां रसः च परमः तेजिष्ठानां विभावसुः प्रभा सूर्य इन्दु तारागणां शब्दः अहं नभसः परः ॥ ३४ ॥

अपां रसः - जलमें रस,
च तेजिष्ठानां - तथा तेजस्वियोंमें
परमः विभावसुः - श्रेष्ठ अग्नि,
सूर्य इन्दु-तारागणां - सूर्य, चन्द्र, तारागणोंमें
प्रभा - प्रभा और
नभसः - आकाशमें
अहं परः शब्दः - परा ध्वनि हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ।
भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसङ्क्रमः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यानां बलिः अहं वीराणां अहं अर्जुनः भूतानां स्थितिः उत्पत्तिः अहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यानां - ब्राह्मण भक्तोंमें
अहं बलिः - मैं दैत्यराज बलि,
वीराणां - वीरोंमें
अहं अर्जुनः - मैं अर्जुन हूँ
भूतानां वै - प्राणियोंकी निश्चित रूपसे
अहं स्थितिः - मैं ही स्थिति,
उत्पत्तिः - उत्पत्ति और
प्रतिसङ्क्रमः - प्रलय हूँ ॥ ३५ ॥

गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् ।
आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥

गति उक्ति उत्सर्ग उपादानं आनन्द स्पर्श लक्षणं आस्वाद श्रुति अवघ्राणं अहं सर्व इन्द्रिय इन्द्रियम् ॥ ३६ ॥

गति उक्ति-उत्सर्ग - चलना, बोलना मलत्याग,
उपादानं - पकड़नेकी शक्ति
आनन्द - रति-सुख
स्पर्श आस्वाद - स्पर्श, स्वाद लेना,
श्रुति अवघ्राण - सुनना, सूंघना,
लक्षण - स्वरूप
सर्वइन्द्रिय - सभी इन्द्रियोंका
इन्द्रियं अहं - इन्द्रियत्व (गुण) मैं हूँ ॥ ३६ ॥

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ।
विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥

पृथिवी वायुः आकाश आपः ज्योतिः अहं महान् विकारः पुरुषः अव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ॥ ३७ ॥

पृथिवी वायुः - पृथ्वी, वायु,
आकाश आपः - आकाश, जल,
ज्योतिः अहं - अग्नि, अहंकार,
महान् विकारः - महत्तत्त्व, पञ्च महाभूत
पुरुषः अव्यक्तं - जीव, प्रकृति,
रजः सत्त्वं - रजोगुण, सत्त्वगुण,
तमः परं - तमोगुण और परमात्मा (मैं हूँ) ॥ ३७ ॥

अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ।
मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ।
सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥

अहं एतत् प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः मयि ईश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना सर्व आत्मना अपि सर्वेण न भावः विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥

एतत् प्रसंख्यानं - इन तत्त्वोंकी गणना,
ज्ञानं - (उस गणना से हुआ) ज्ञान,
तत्त्वविनिश्चयः - (उस ज्ञानसे) तत्त्वपूर्ण निश्चय
अहं - मैं ही हूँ ।
मयि ईश्वरेण - मुझ ईश्वर,
जीवेन गुणिना - जीव, गुणवान्,
गुणेन - गुण एवं
सर्व आत्मना - सबके आत्मरूप भी
सर्वेण विना - सर्व स्वरूपको छोड़कर
क्वचित् भावः - कहीं कोई पदार्थ
न विद्यते - नहीं है ॥ ३८ ॥

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ।
न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया न यथा मे विभूतीनां सृजतः अण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥

मया संख्यानं - मेरे द्वारा गणना
क्रियते - करने पर
यथा कालेन - जैसे दीर्घ कालमें
परमाणूनां - परमाणुओंकी (गणना हो जायेगी)
कोटिशः - पर करोड़ों
अण्डानि सृजतः - ब्रह्माण्ड उत्पन्न करती
मे विभूतीनां न - मेरी विभूतियों की (गणना) नहीं हो सकेगी ॥ ३९ ॥

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ।
वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥ ४० ॥

तेजः श्रीः कीर्तिः ऐश्वर्यं ह्रीः त्यागः सौभगं भगः वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र समे अंशकः ॥ ४० ॥

यत्र तत्र	- जहाँ जहाँ	**सौभगं भगः**	- सौन्दर्य, सौभाग्य,
तेजः श्रीः	- तेजस्विता, लक्ष्मी,	**वीर्यं तितीक्षा**	- पराक्रम, तितीक्षा,
कीर्तिः ऐश्वर्यं	- यश, प्रभुत्व,	**विज्ञानं स**	- विज्ञानादि हैं, वह
ह्रीः त्यागः	- लज्जा, त्याग,	**मे अंशकः**	- मेरा अंश है ॥ ४० ॥

एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ।
मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥ ४१ ॥

एताः ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः मनः विकारा एव एते यथा वाचा अभिधीयते ॥ ४१ ॥

एताः सर्वाः	- ये सब	**एते मनः-**	- ये मन की कल्पनायें
विभूतयः	- विभूतियां	**विकारा एव**	ही हैं
ते कीर्तिताः	- (जो) तुमसे बतलायी	**यथा वाचा**	- जैसा कहना चाहें,
		अभिधीयते	- कही जाती हैं ॥ ४१ ॥

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान् यच्छेन्द्रियाणि च ।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥ ४२ ॥

वाचं यच्छ मनः यच्छ प्राणान् यच्छ इन्द्रियाणि च आत्मानं आत्मना यच्छ न भूयः कल्पसे अध्वने ॥ ४२ ॥

वाचं यच्छ	- वाणीको रोको,	**आत्मना**	- अपनी बुद्धिसे
मनः यच्छ	- मनको रोको,	**आत्मानं यच्छ**	- चित्तको नियन्त्रित करो,
प्राणान् च	- प्राण और	**भूयः अध्वने**	- (इससे) फिर संसार-मार्गमें
इन्द्रियाणि यच्छ	- इन्द्रियोंको रोको,	**न कल्पसे**	- नहीं पड़ोगे ॥ ४२ ॥

यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन् धिया यतिः ।
तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥

यः वै वाक् मनसी सम्यक् असंयच्छन् धिया यतिः तस्य व्रतं तपः दानं स्रवति आमघट अम्बुवत् ॥ ४३ ॥

यः यतिः वै	-	जो यत्नशील निश्चय	**तस्यव्रतं**	-	उसके व्रत,
धिया वाक्	-	बुद्धिसे वाणी और	**तपः दानं**	-	तप एवं दान (का फल)
मनसी		मनका	**आमघट**	-	कच्चे घड़ेके
सम्यक्	-	भली प्रकार	**अम्बुवत्**	-	जलके समान
असंयच्छन्	-	नियन्त्रण नहीं करता,	**स्रवति**	-	बह जाते हैं ॥ ४३ ॥

तस्मान्मनोवचः प्राणान् नियच्छेन्मत्परायणः ।
मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

तस्मात् मनः वचः प्राणान् नियच्छेत् मत् परायणः मत् भक्तियुक्तया बुद्धया ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

तस्मात्	-	इसलिए	**बुद्ध्या मनः**	-	वुद्धि से मन,
मत् परायणः	-	मेरा आश्रित होकर	**वचः**		वाणी और
मत् भक्ति-	-	मेरी भक्तियुक्त	**प्राणान्-**	-	प्राणोंका नियन्त्रण करे,
युक्त्या			**नियच्छेत्**		
			ततः	-	तब (सब कर्तव्य) सम्पूर्ण
			परिसमाप्यते		समाप्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

यः त्वया अभिहितः पूर्वं धर्मः त्वत् भक्ति लक्षणः वर्ण आश्रम आचारवतां सर्वेषां द्विपदां अपि ॥ १ ॥

वर्ण आश्रम - वर्ण आश्रमका	**पूर्वं यः त्वया** - पहिले जो आपने
आचारवतां - आचार मानने वाले	**त्वत् भक्ति-** - अपनी भक्ति रूपी
सर्वेषां - सभी	**लक्षणः**
द्विपदां अपि - दो पैर वालों (मनुष्यों) के लिए ही	**धर्मः अभिहितः** - धर्मोपदेश किया है ॥ १ ॥

यथानुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ।
स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत् समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

यथा अनुष्ठीय मानेन त्वयि भक्तिः नृणां भवेत् स्वधर्मेण अरविन्द अक्ष तत् सम आख्यातुं अर्हसि ॥ २ ॥

अरविन्द अक्ष - कमललोचन !	**भक्तिः भवेत्** - भक्ति हो
यथा स्वधर्मेण - जैसे अपने धर्मका	**तत्-** - उसे भली प्रकार बतलाना
अनुष्ठीय मानेन - आचरण करनेसे	**समआख्यातुं**
नृणां त्वयि - मनुष्योंकी आपमें	**अर्हसि** - चाहिए ॥ २ ॥

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ।
यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो यत् तेन हंसरूपेण ब्रह्मणे अभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥

प्रभो महाबाहो	- प्रभो ! महाबाहो !	**तेन हंसरूपेण**	- उस हंसरूपसे
माधव	- माधव !	**परमकं धर्मं**	- उत्तम धर्मका
किल पुरा	- अहो पहिले,	**ब्रह्मणे**	- ब्रह्माको
		अभ्यात्थ	- उपदेश किया था ॥३॥

स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ।
न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥

स इदानीं सुमहता कालेन अमित्रकर्शन न प्रायः भविता मर्त्यलोके प्राक् अनुशासितः ॥ ४ ॥

अमित्र कर्शन	- शत्रुनाशन !	**इदानीं प्रायः**	- इस समय प्रायः
स प्राक्-	- वह पहिले उपदेश	**मर्त्यलोके**	- मनुष्य लोकमें
अनुशासितः	किया (धर्म)	**न भविता**	- नहीं रह गया है
सुमहता कालेन	- अत्यन्त दीर्घकाल (वीतजाने) से		॥ ४ ॥

वक्ता कर्ताविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ।
सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥

वक्ता कर्ता अविता न अन्यः धर्मस्य अच्युत ते भुवि सभायां अपि वैरिञ्चयां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥ ५ ॥

अच्युत	- अच्युत !	**वैरिञ्च्यां**	- ब्रह्माकी
ते धर्मस्य	- आपके धर्मका	**सभायां अपि**	- सभामें भी
वक्ता कर्ता	- वक्ता, आचरणकर्ता एवं	**यत्र मूर्तिधराः**	- जहां मूर्तिमान
अविता	- रक्षक	**कलाः**	- वेद रहते हैं
भुवि	- पृथ्वी पर तथा	**अन्यः न**	- (आपके अतिरिक्त) दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥

कर्त्रावित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन ।
त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥

कर्ता अवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥

देव मधुसूदन - देव ! मधुसूदन !
कर्त्रा अवित्रा - प्रवर्तक, रक्षक,
च प्रवक्त्रा - तथा उपदेष्टा
भवता - आपके
महीतले - पृथ्वीको
त्यक्ते - छोड़ देनेपर
विनष्टं - नष्ट हुए (धर्म) का
कः प्रवक्ष्यति - कौन उपदेश करेगा
॥ ६ ॥

तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।
यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥

तत् त्वं नः सर्व धर्मज्ञ धर्मः त्वत् भक्ति लक्षणः यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥

सर्व धर्मज्ञ - सब धर्मोंके ज्ञाता
प्रभो - प्रभो !
तत् त्वत् भक्ति - अतः अपनी भक्ति
लक्षणः धर्मः - स्वरूप धर्म
यथा यस्य - जैसा जिसके लिये
विधीयेत - विधान किया जाता है
तथा त्वं - उस प्रकार आप
नः वर्णय - मुझसे वर्णन कीजिए
॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच–

इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान् हरिः ।
प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥ ८ ॥

इत्थं स्वभृत्य मुख्येन पृष्टः स भगवान् हरिः प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मान् आह सनातनान् ॥ ८ ॥

इत्थं - इस प्रकार
स्वभृत्य मुख्येन - अपने प्रधान सेवक द्वारा
पृष्टः - पूछे जानेपर
स भगवान् - वे भगवान्
हरिः प्रीतः - श्री हरि प्रसन्न होकर
मर्त्यानां क्षेमाय - मनुष्योंके कल्याणके लिए
सनातनान् - शाश्वत
धर्मान् आह - धर्मोंका उपदेश करने लगे ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच–

धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ।
वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥

धर्म्य एष तव प्रश्नः नैः श्रेयसकरः नृणां वर्ण आश्रम आचारवतां तं उद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥

उद्धव - उद्धव !
एष तव प्रश्नः - यह तुम्हारा प्रश्न
धर्म्य - धर्ममय,
वर्ण आश्रम - वर्ण-आश्रमके वाले
नृणां - मनुष्योंका
नैः श्रेयसकरः - परम कल्याण करने वाला है
आचारवतां - आचारका पालन करने वाले
तं मे निबोध - उसे मुझसे सुनो ॥ ९ ॥

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ।
कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥

आदौ कृतयुगे वर्णः नृणां हंस इति स्मृतः कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥

आदौ कृतयुगे - पहिले सतयुगमें
नृणां वर्णः - मनुष्योंका वर्ण
हंस इति स्मृतः - 'हंस' ऐसा कहा जाता था,
प्रजा जात्या - प्रजा जन्मसे ही
कृतकृत्याः - कृतकृत्य होती थी,
तस्मात् - इसलिए उसे
कृतयुगं विदुः - कृतयुग जाना जाता है ॥ १० ॥

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ।
उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ ११ ॥

वेदः प्रणव एव अग्रे धर्मः अहं वृषरूप धृक् उपासते तपः निष्ठा हंसं मां मुक्त किल्बिषाः ॥ ११ ॥

अग्रे वेदः	- उस पहिले समय वेद	**धर्मः**	- धर्म था
प्रणव एव	- केवल प्रणव था	**तपः निष्ठा**	- तपोनिरत
अहं वृषरूप धृक्	- मैं वृषभरूप धारी	**मुक्त किल्बिषा**	- निष्पाप लोग
		मां हंसं-उपासते	- मुझ हंसरूप की उपासना करते थे ॥ ११ ॥

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ।
विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥

त्रेता मुखे महाभाग प्राणात् मे हृदयात् त्रयी विद्या प्रादुः अभूत् तस्या अहं आसं त्रिवृत् मखः ॥ १२ ॥

महाभाग	- महाभाग उद्धव !	**प्रादुः अभूत्**	- प्रकट हुई
त्रेतामुखे	- त्रेता युगके प्रारम्भमें	**तस्या अहं**	- उसमें मैं
मे हृदयात्	- मेरे हृदयसे	**त्रिवृत् मखः**	- तीन प्रकारका (लौकिक, पारलौकिक एवं मोक्षदाता) यज्ञ
प्राणात्	- श्वांस द्वारा		
त्रयी विद्या	- (कर्म, उपासना, ज्ञान रूपा) त्रयी विद्या	**आसं**	- होगया ॥ १२ ॥

नोट - अनेक टीकाकारों ने त्रयी विद्या का अर्थ- ऋक्, यजुः, सामवेद विद्या र त्रिवृत मखः का अर्थ-होता, उद्गाता,, अर्ध्वयु के कर्म रूप) किया है, किन्तु इस अर्थ में दो दोष हैं १-अथर्ववेद पीछे का सिद्ध हो जाता है, जैसा पाश्चात्य विद्वान मानते हैं । २-यज्ञमें तीन नहीं, चार ब्राह्मण होते हैं और उनमें अध्वर्यु तो अथर्व वेदी होता है । ब्रह्मा बनाये बिना तो यज्ञ होता ही नहीं ।

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥

विप्र क्षत्रिय विट् शूद्रा मुख बाहु उरु पादजाः वैराजात् पुरुषात् जाता य आत्म आचार लक्षणाः ॥ १३ ॥

य आत्म-आचार - जो अपने आचारके
लक्षणाः - लक्षण वाले थे वे
विप्र क्षत्रिय - ब्राह्मण, क्षत्रिय,
विट् शूद्रा - वैश्य, शूद्र
वैराजात् पुरुषात् - विराट् पुरुषके
मुख बाहु - (क्रमशः) मुख, बाहु,
उरु पादजाः - जांघों तथा पैरसे उत्पन्न होने वाले
जाता - उत्पन्न हो गये ॥ १३ ॥

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ।
वक्षःस्थानाद् वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥

गृहाश्रमः जघनतः ब्रह्मचर्यं हृदः मम वक्षः स्थानात् वने वासः न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥

मम जघनतः - मेरी जांघोंपर
गृहाश्रमः - गृहास्थाश्रमकी,
हृदः ब्रह्मचर्यं - हृदयमें ब्रह्मचर्याश्रमकी
वक्षः स्थानात् - वक्ष स्थलके स्थानपर
वने वासः - वान प्रस्थाश्रमकी और
शीर्षणि - मस्तकपर
न्यासः संस्थितः - सन्यास आश्रमकी स्थिति है ॥ १४ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ।
आसन् प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥ १५ ॥

वर्णानां आश्रमाणां च जन्मभूमि अनुसारिणीः आसन् प्रकृतयः नृणां नीचैः नीच उत्तम उत्तमाः ॥ १५ ॥

नृणां - मनुष्योंके
वर्णानां च - वर्णोंकी तथा
आश्रमाणां - आश्रमोंका
प्रकृतयः - स्वभाव
जन्मभूमि - (उनकी) जन्मस्थलीके
अनुसारिणी - अनुसार
नीचैः नीच - नीचेके (अंगोंसे उत्पन्न) की नीच
उत्तम उत्तमाः - ऊपरके (अंगोंसे उत्पन्न) की उत्तम
आसन् - होगयी ॥ १५ ॥

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥

शमः दमः तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिः आर्जवं मत् भक्तिः दया सत्यं ब्रह्म प्रकृतयः तु इमाः ॥ १६ ॥

शमः दमः - मनकी शान्ति, इन्द्रिय दमन,
तपः शौचं - तपस्या, पवित्रता,
सन्तोषः क्षान्तिः - सन्तोष, क्षमा,
आर्जवं - सरलता,
मत् भक्तिः - मेरी भक्ति
दया सत्यं च - दया और सत्य,
इमाः तु - ये तो
ब्रह्म प्रकृतयः - ब्राह्मणके स्वाभाविक गुण हैं ॥ १६ ॥

तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः ।
स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥

तेजः बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षा औदार्यं उद्यमः स्थैर्यं ब्रह्मण्यता ऐश्वर्यं क्षत्र प्रकृतयः तु इमाः ॥ १७ ॥

तेजः बलं - तेजस्विता, बल,
धृतिः शौर्यं - धैर्य, शूरता,
तितिक्षा - कष्ट सहिष्णुता,
औदार्यं उद्यमः - उदारता, उद्योग,
स्थैर्यं - स्थिरता,
ब्रह्मण्यता - ब्राह्मण भक्ति,
ऐश्वर्यं - प्रभुत्व,
इमाः तु - ये तो
क्षत्र प्रकृतयः - क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म हैं ॥ १७ ॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् ।
अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १८ ॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भः ब्रह्मसेवनं अतुष्टिः अर्थ उपचयैः वैश्य प्रकृतयः तु इमाः ॥ १८ ॥

आस्तिक्यं	- आस्तिकता,	**अर्थ उपचयैः**	- धन-संग्रहसे
च दाननिष्ठा	- तथा दान करनेमें निष्ठा,	**अतुष्टिः**	- सन्तुष्ट न होना
अदम्भः	- पाखण्ड न करना,	**इमाः तु**	- ये तो
ब्रह्मसेवनं	- ब्राह्मणोंकी सेवा,	**वैश्य प्रकृतयः**	- वैश्य के स्वाभाविक गुण हैं ॥ १८ ॥

शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ।
तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥

शुश्रूषणं द्विज गवां देवानां च अपि अमायया तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्र प्रकृतयः तु इमाः ॥ १९ ॥

अमायया	- निश्छल भावसे	**तत्र लब्धेन**	- उससे जो प्राप्त हो जाय उससे
द्विज गवां	- द्विजातियों, गायों,	**सन्तोषः**	- सन्तुष्ट रहना,
च देवानां	- तथा देवताओंकी	**इमाः तु**	- ये तो
शुश्रूषणं	- सेवा करना,	**शूद्र प्रकृतयः**	- शूद्रके स्वाभाविक गुण हैं ॥ १९ ॥

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ।
कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ २० ॥

अशौचं अनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः कामः क्रोधः च तर्षः च स्वभावः अन्ते अवसायिनाम् ॥ २० ॥

अशौचं - अपवित्र रहना,
अनृतं स्तेयं - झूठ बोलना, चोरी करना,
नास्तिक्यं - नास्तिकता,
शुष्क विग्रहः - सूखी (बे मतलब) लड़ाई करना,
च कामः क्रोधः - तथा काम, क्रोध,
च तर्षः - एवं तृष्णा
अन्ते अवसायिनां - अन्त्यजोंका
स्वभावः - स्वभाव होता है ॥ २० ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

अहिंसा सत्यं अस्तेयं अकाम क्रोध लोभता भूतप्रिय हित ईहा च धर्मः अयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

अहिंसा सत्यं - अहिंसा, सत्य,
अकाम क्रोध-लोभता - काम, क्रोध, लोभन करना,
च भूत प्रिय -तथा प्राणियोंके प्रिय एवं
हित ईहा -भले की चेष्टा,
अयं सार्ववर्णिकः -यह सब वर्णोंका
धर्मः -धर्म है ॥ २१ ॥

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ।
वसन् गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहुतः ॥ २२ ॥

द्वितीयं प्राप्य आनुपूर्व्यात् जन्म उपनयनं द्विजः वसन् गुरुकुले दान्तः ब्रह्म अधीयीत च आहुतः ॥ २२ ॥

- (गर्भाधान) जातकर्मादिके
आनुपूर्व्यात् - क्रमसे
उपनयनम् - यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा
द्विजः - द्विजाति (का बालक)
द्वितीयं जन्मप्राप्य - दूसरा जन्म पाकर
दान्तः - इन्द्रियों का दमन करके
च आहुतः - तथा अग्निहोत्र करते हुए
गुरुकुले वसन् - गुरु गृहमें रहता हुआ
ब्रह्मअधीयीत - वेदाध्ययन करे ॥ २२ ॥

मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् ।
जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान् दधत् ।। २३ ।।

मेखला अजिन दण्ड अक्षब्रह्मसूत्र कमण्डलून् जटिलः अधौतदत् वासः अरक्तपीठः कुशान् दधत् ।। २३ ।।

मेखला अजिन	- मेखला, मृगचर्म,	**जटिलः**	-जटा रखे,
दण्ड अक्ष	- दण्ड, रुद्राक्ष माला,	**अधौतदत् वासः**	-दांत और वस्त्र न धोये,
ब्रह्मसूत्र	- यज्ञोपवीत,	**अरक्त पीठः**	-रंगीन आसन न रखे,
कमण्डलून्	- कमण्डलु रखे,	**कुशान् दधत्**	-कुश धारण करे ।। २३ ।।

स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ।
न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ।। २४ ।।

स्नान भोजन होमेषु जप उच्चारे च वाक्यतः न छिन्द्यात् नख रोमाणि कक्ष उपस्थ गतान् अपि ।। २४ ।।

स्नान भोजन	- स्नान, भोजन,	**कक्ष उपस्थ-**	- कक्ष तथा उपस्थ पर
होमेषु	- हवन करते समय	**गतान् अपि**	आगे भी
च जप उच्चारे	- तथा जप करते समय	**रोमाणि**	- रोमोंको
वाक् यतः	- वाणीको रोके रखे	**न छिन्द्यात्**	- नहीं काटे ।। २४ ।।
नख	- नखों तथा		

रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ।
अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ।। २५ ।।

रेतः न अवकिरेत् जातु ब्रह्मवतधरः स्वयं अवकीर्णे अवगाह्य अप्सु यत असुः त्रिपदीं जपेत् ।। २५ ।।

ब्रह्मव्रतधरः - ब्रह्मचर्य व्रत लेने वाला
जातु स्वयं - कभी स्वयं (जानकर)
रेतः न-अवकिरेत् - वीर्यपात न करे
अवकीर्णे - (अनजान में वीर्य) पतन होने पर
अप्सु अवगाह्य - जलमें डुबकी लगाकर
यत असुः - प्राण रोककर (कुम्भक करके)
त्रिपदीं जपेत् - गायत्री जप करे ॥ २५ ॥

अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्शुचिः ।
समाहित उपासीत सन्ध्ये च यतवाग् जपन् ॥ २६ ॥

अग्नि अर्क आचार्य गो विप्र गुरुवृद्ध सुरान् शुचिः समाहित उपासीत सन्ध्ये च यत वाक् जपन् ॥ २६ ॥

अग्नि अर्क - अग्नि, सूर्य,
आचार्य - आचार्य,
गो विप्र - गौ, ब्राह्मण,
गुरु वृद्ध - गुरु, वृद्ध एवं
सुरान् शुचिः - देवताओं की पवित्र होकर
समाहित उपासीत - एकाग्र चित्त से सेवा करे
च सन्ध्ये - तथा प्रातः सायं सन्ध्या समय
यत वाक्-जपन् - मौन होकर जप करे ॥ २६ ॥

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत् सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥

आचार्यं मां विजानीयात् न अवमन्येत कर्हिचित् न मर्त्यबुद्ध्या असूयेत् सर्वदेवमयः गुरुः ॥ २७ ॥

आचार्यं - आचार्यको
मां विजानीयात् - मेरा स्वरूप समझे,
कर्हिचित् - कभी भी (उनकी)
अवमन्येत न - उपेक्षा न करे,
मर्त्यबुद्ध्या - (उन्हें) मनुष्य मानकर
असूयेत् न - (उनके) गुणोंमें दोष न निकाले,
गुरुः-सर्वदेवमयः - (क्योंकि) गुरु सर्वदेव स्वरूप हैं ॥ २७ ॥

सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ।
यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥

सायं प्रातः उप आनीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् यत् च अन्यत् अपि अनुज्ञातं उपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥

सायं प्रातः - शाम-सुबह	अनुज्ञातं - (उनकी) आज्ञा मिलने पर
भैक्ष्यं उपआनीय - भिक्षा लाकर	संयतः - संयमपूर्वक
तस्मै निवेदयेत् - उनको निवेदन करदे,	उपयुञ्जीत - उपयोग करे ॥ २८ ॥
च यत् अन्यत् - तथा जो और कुछ हो	

शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत् नीचवत् ।
यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥ २९ ॥

शुश्रूषमाण आचार्यं सदा उप आसीत् नीचवत् यान शय्या आसन स्थानैः न अतिदूरे कृत अञ्जलिः ॥ २९ ॥

आचार्यं - आचार्यकी	न अति दूरे - बहुत दूर न रहे,
शुश्रूषमाण - सेवा करते समय	कृत अञ्जलिः - हाथ जोड़े
यान शय्या - (उनकी) सवारी, शय्या,	नीचवत् - नीचके समान
आसन स्थानैः - आसन आदि स्थानसे	सदा उप आसीत् - सदा समीप रहे ॥ २९ ॥

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद् भोगविवर्जितः ।
विद्या समाप्यते यावद् बिभ्रद् व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥

एवं वृत्तः गुरुकुले वसेत् भोग विवर्जितः विद्या समाप्यते यावत् विभ्रत् व्रतं अखण्डितम् ॥ ३० ॥

यावत्	- जब तक	**भोग विवर्जितः**	- भोग रहित
विद्या समाप्यते	- विद्याध्ययन समाप्त हो	**एवं वृत्तः**	- इस प्रकारके आचरण से
अखण्डितं व्रतं	- अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत	**गुरुकुले वसेत्**	- गुरुगृहमें निवास करे
विभ्रत्	- धारण करके		॥ ३० ॥

यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् ।
गुरवे विन्यसेद् देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥

यदि असौ छन्दसां लोकं आरोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपं गुरवे विन्यसेत् देहं स्वाध्याय अर्थं वृहत् व्रतः ॥ ३१ ॥

यदि छन्दसां	- यदि मूर्तिमान वेदोंके	**स्वाध्याय अर्थं**	- वेदाध्ययन के लिए
लोकं	लोक	**वृहत् व्रतः**	- नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत
ब्रह्म विष्टपं	- ब्रह्मलोक		लेकर
असौ आरोक्ष्यन्	- यह आरूढ़ होना	**गुरवे देहं**	- गुरुको शरीर (पूरा जीवन)
	चाहे तो	**न्यसेत्**	- अर्पित कर दे ॥ ३१ ॥

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ।
अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥

अग्नौ गुराः आत्मनि च सर्वभूतेषु मां परं अपृथक् धीः उपासीत ब्रह्मवर्चस्वि अकल्मषः ॥ ३२ ॥

ब्रह्मवर्चस्वि	- ब्रह्मतेजसे सम्पन्न	**आत्मनि**	- अपने
	ब्रह्मचारी	**च सर्व भूतेषु**	- तथा प्राणियोंमें
अकल्मषः	- निष्पाप होकर	**मां परं**	- मुझ परमात्माकी
अपृथक्धीः	- अभेद बुद्धिसे	**उपासीत**	- उपासना करे ॥ ३२ ॥
अग्नौः गुराः	- अग्नि, गुरु,		

स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ।
प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥ ३३ ॥

स्त्रीणां निरीक्षण स्पर्श संलाप क्ष्वेलन आदिकं प्राणिनः मिथुनी भूतान् अगृहस्थः अग्रतः त्यजेत् ॥ ३३ ॥

अगृहस्थः - जो गृहस्थ नहीं है वह
स्त्रीणां निरीक्षण - स्त्रियोंको देखना,
स्पर्श संलाप - छूना, बातचीत करना
क्ष्वेलन आदिकं - परिहास करना आदि
मिथुनी भूतान् - जोड़ा खाते
प्राणिनः - प्राणियोंको
अग्रतः त्यजेत् - आगे पड़ने पर भी छोड़ दे (त्यागकर हट जाय) तथा ॥ ३३ ॥

शौचमाचमनं स्नानं सन्ध्योपासनमार्जवम् ।
तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३४ ॥

शौचं आचमनं स्नानं सन्ध्या उपासनं आर्जवं तीर्थ सेवा जपः अस्पृश्या अभक्ष्य असंभाष्य वर्जनम् ॥ २४ ॥

शौचं आचमनं - पवित्रता, स्नान,
सन्ध्या उपासनं - सन्ध्योपासन,
आर्जवं तीर्थसेवा - सरलता, तीर्थ सेवन,
जपः - जप (करना चाहिए)
अस्पृश्या - जिन्हें स्पर्श नहीं करना उन्हें छूना,
अभक्ष्य - न खाने योग्य को खाना,
असंभाष्य - जिससे नहीं बोलना चाहिए उससे बोलना
वर्जनं - त्याग देना चाहिए ॥ ३४ ॥

सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३५ ॥

सर्व आश्रम प्रयुक्तः अयं नियमः कुलनन्दन मत् भावः सर्वभूतेषु मनः वाक् काय संयमः ॥ ३५ ॥

कुलनन्दन - कुलनन्दन उद्धव !
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंमें
मत् भावः - मेरी भावना,
मनः वाक् - मन, वाणी एवं
काय संयमः - शरीर को संयममें रखना
अयं नियमः - यह नियम
सर्व आश्रम - सभी आश्रमोंमें
प्रयुक्तः - उपयोग किया जाता है
॥ ३५ ॥

एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ।
मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥ ३६ ॥

एवं वृहत् व्रतधरः ब्राह्मणः अग्निः इव ज्वलन् मत् भक्तः तीव्र तपसा दग्ध कर्म अमलः आशयः ॥ ३६ ॥

एवं वृहत्-व्रतधरः - इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रतधारी
अग्निः इव-ज्वलन् - अग्निके समान तेजस्वी
मत् भक्तः ब्राह्मणः - मेरा भक्त ब्राह्मण
तीव्र तपसा - तीव्र तपस्यासे
आशयः - अन्तःकरणके
कर्मअमलः - कर्म जन्य दोषको
दग्ध - भस्म कर देता है
॥ ३६ ॥

अथानन्तरमावेक्ष्यन् यथा जिज्ञासितागमः ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद् गुर्वनुमोदितः ॥ ३७ ॥

अथ अनन्तरं आवेक्ष्यन् यथा जिज्ञासित आगमः गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायात् गुरु अनुमोदितः ॥ ३७ ॥

अथ अनन्तरं - यदि इसके बादके आश्रममें
आवेक्ष्यन् - प्रवेश करनेकी इच्छा हो तो
यथा आगमः - यथा शक्ति शास्त्रको
जिज्ञासित - जानकर
गुरवे - गुरुको
दक्षिणां दत्त्वा - दक्षिणा देकर
गुरु अनुमोदितः - गुरुकी अनुमति लेकर
स्नायात् - (समार्वतन) स्नान करे
॥ ३७ ॥

गृहं वनं वोपविशेत् प्रव्रजेद् वा द्विजोत्तमः ।
आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥ ३८ ॥

गृहं वनं वा उपविशेत् प्रव्रजेत् वा द्विज उत्तमः आश्रमात् आश्रमं गच्छेत् न अन्यथा मत् परः चरेत् ॥ ३८ ॥

द्विज उत्तमः	- द्विजातियोंमें श्रेष्ठ (ब्राह्मण)	**आश्रमात्**	- (दूसरे वर्णका) एक आश्रमसे
गृह वा वनं	- गृहस्थाश्रम अथवा वानप्रस्थाश्रममें	**आश्रमं गच्छेत्**	- दूसरे आश्रममें जाय
उपविशेत्	- प्रवेश करे	**मत् परः**	- मेरा परायण (भक्त)
वा प्रव्रजेत्	- अथवा सन्यासी होजाय	**अन्यथा न-चरेत्**	- (इसके) विपरीत आचरण न करे ॥ ३८ ॥

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ।
यवीयसीं तु वयसा तां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥

गृह अर्थी सदृशीं भार्यां उद्वहेत् अजुगुप्सितां यवीयसीं तु वयसा तां सवर्णां अनुक्रमात् ॥ ३९ ॥

गृहं अर्थी	- गृहस्थाश्रमका इच्छुक	**यवीयसीं**	- अपने से छोटी,
सदृशीं	- (रूप, गुण, धनादिमें) अपने समान,	**तां सवर्णां**	- उस अपने वर्णवाली या
अजुगुप्सितां	- अनिन्दिता,	**अनुक्रमात्**	- क्रमपूर्वक (अपने से छोटे वर्णकी)
तु वयसा	- तथा आयुमें	**भार्यां उद्वहेत्**	- पत्नीसे विवाह करे ॥ ३९ ॥

इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ।
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥

इज्याअध्ययन दानानि सर्वेषां च द्विजन्मनां प्रतिग्रहः अध्यापनं च ब्राह्मणस्य एव याजनम् ॥ ४० ॥

सर्वेषां	- सभी	**प्रतिग्रहः**	- दान लेना,
द्विजन्मनां च	- द्विजातियोंके लिए	**अध्यापनं**	- पढ़ाना
इज्या अध्ययन	- यज्ञ करना, वेदाध्ययन,	**च याजनं**	- तथा यज्ञ करना,
दानानि	- दान देना (कर्तव्य) हैं,	**ब्राह्मणस्य एव**	- ब्राह्मणके लिए ही (कर्तव्य) हैं ॥ ४० ॥

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ।
अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥ ४१ ॥

प्रतिग्रहं मन्यमानः तपः तेजः यशः नुदं अन्याभ्यां एव जीवेत शिलैः वा दोषदृक् तयोः ॥ ४१ ॥

प्रतिग्रहं	- दान लेनेको	**अन्याभ्यां एव**	- दूसरी (पढ़ाना, यज्ञ करानाा) से ही
तपः तेज	- तपस्या, तेज,	**वा तयोः**	- अथवा उन दोनोंमें भी
यशः नुदं	- यशको नोचने (क्षीण करने) वाला	**दोषदृक्**	- दोष देखकर
मन्यमानः	- मानकर	**शिलैः**	- खेत कटने के वाद गिरे दानोंसे
		जीवेत	- जीविका चलावे ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणस्य हि देहः अयं क्षुद्र कामाय न इष्यते कृच्छ्राय तपसे च इह प्रेत्य अनन्त सुखाय च ॥ ४२ ॥

हि ब्राह्मणस्य	- क्योंकि ब्राह्मणका	**कृच्छ्रय तपसे**	- कष्ट उठाकर तपस्या करनेके लिए
अयं देहः	- यह शरीर	**च प्रेत्य**	- तथा मरणोपरान्त
क्षुद्र कामाय न	- तुच्छ कामना पूर्ति के लिए नहीं है	**अनन्त सुखाय**	- अनन्त सुख (मोक्ष) पानेके लिए
इह	- इस लोकमें	**इष्यते**	- उचित है ॥ ४२ ॥

शिलोच्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो
धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ।
मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठ-
न्नातिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥

शिल उच्छवृत्त्या परितुष्ट चित्तः धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः मयि अर्पित आत्मा गृह एव तिष्ठन् न अति प्रसक्तः सम उपैति शान्तिम् ॥ ४३ ॥

शिल	- खेत कटनेपर गिरे दानों	**मयि अर्पित**	- मुझमें चित्त समर्पित
उच्छ	- अन्न बाजारमें बाजार उठने पर गिरे दानोंकी	**आत्मा**	करके
		गृह एव	- गृहस्थ धर्ममें ही
वृत्त्या	- आजीविकासे	**तिष्ठन्**	- रहते हुए
परितुष्ट-	- सर्वथा सन्तुष्ट चित्त	**अति प्रसक्तः न**	- अत्यन्त आसक्त न होकर
चित्तः	रहकर		
विरजं महान्तं	- निर्मल महान	**शान्तिं सम-**	- पूर्ण शान्ति पा लेता
धर्मं जुषाणः	- धर्मका सेवन करते हुए	**उपैति**	है ॥ ४३ ॥

समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् ।
तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥

सम उद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत् परायणं तान् उद्धरिष्ये न चिरात् आपाद्भ्यः नौः इव अर्णवात् ॥ ४४ ॥

ये मत् परायणं - जो मेरे आश्रित
सीदन्तं विप्रं - कष्ट पाते ब्राह्मणको
सम उद्धरन्ति - (कष्टसे) बचा लेते हैं
तान् नचिरात् - उनको अविलम्ब
आपत्भ्यः - विपत्तिसे
अर्णवात् - समुद्रसे
नौः इव - नौकाके समान
उद्धरिष्ये - मैं बचाऊँगा ॥ ४४ ॥

सर्वाः समुद्धरेद् राजा पितेव व्यसनात् प्रजाः ।
आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥ ४५ ॥

सर्वाः समुद्धरेत् राजा पिता इव व्यसनात् प्रजाः आत्मानं आत्मना धीरः यथा गजपतिः गजान् ॥ ४५ ॥

धीरः राजा - धैर्यशाली राजा
व्यसनात् - विपत्तिसे
पिता इव - पिताके समान
सर्वाः प्रजाः - सम्पूर्ण प्रजाको तथा
आत्मानं - अपनेको
आत्मना - अपने ही द्वारा
समुद्धरेत् - पूर्णतः बचावे
यथा गजान् - जैसे हाथियोंको
गजपतिः - गजराज (बचाता है)
॥ ४५ ॥

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ।
विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥

एवं विधः नरपतिः विमानेन अर्क वर्चसा विधूय इह अशुभं कृत्स्नं इन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥

एवं विधः- नरपतिः - इस प्रकारका राजा
इह कृत्स्नं - इसी जीवनमें सम्पूर्ण
अशुभं विधूय - पापोंका नाश करके
अर्कवर्चसा - सूर्यके समान कान्तिमान
विमानेन - विमानमें (बैठकर)
इन्द्रेण सह - इन्द्रके साथ
मोदते - आनन्द करता है
॥ ४६ ॥

सीदन् विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ।
खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४७ ॥

सीदन् विप्रः वणिक् वृत्त्या पण्यैः एव आपदं तरेत् खड्गेन वा आपदा क्रान्तः न श्व वृत्त्या कथञ्चन ॥ ४७ ॥

सीदन् विप्रः	- कष्ट पाता हुआ ब्राह्मण	**आक्रान्तः**	- दबाये जानेपर
वणिक् वृत्त्या	- वैश्य वृत्तिसे	**खड्गेन**	- तलवारसे (जीविका चलावे)
पण्यैः एव	- व्यापार करके ही	**कथञ्चन**	- कभी भी
आपदं तरेत्	- विपत्ति को पार करे	**श्ववृत्त्या न**	- कुत्ते की वृत्ति (नीच सेवा) न करे ॥ ४७ ॥
वा आपदा	- अथवा आपत्तिसे		

वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि ।
चरेद् वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४८ ॥

वैश्य वृत्त्या तु राजन्यः जीवेत् मृगयया आपदि चरेत् वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४८ ॥

राजन्यः	- क्षत्रिय	**वा विप्ररूपेण**	- अथवा ब्राह्मणके रूपमें
आपदि	- आपत्तिमें	**चरेत्**	- (यज्ञादि कराकर) व्यवहार करे,
वैश्यवृत्त्या तु	- वैश्यकी वृत्तिसे या	**कञ्चन**	- कभी भी
मृगयया	- आखेट से	**श्ववृत्त्या न**	- कुत्ते की वृत्ति न करे ॥ ४८ ॥
जीवेत्	- जीवन-निर्वाह करे		

शूद्रवृत्तिं भजेद् वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम् ।
कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥

शूद्र वृत्तिं भजेत् वैश्यः शूद्रः कारुकट क्रियां कृच्छ्रात् मुक्तः न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥ ४९ ॥

वैश्यः - वैश्य (आपत्तिमें)
शूद्रवृत्तिं - शूद्रकी सेवावृत्ति
भजेत् - अपना ले (और)
शूद्रः - शूद्र
कारुकटक्रियां - चटाई बुनने का काम करले
कृच्छ्रान् मुक्तः - किन्तु संकट से छूट जानेपर
गर्ह्येण कर्मणा - निन्दनीय कामसे
वृत्तिं न-लिप्सेत - जीविका चलानेका लोभ न करे ॥ ४९ ॥

वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ५० ॥

वेद अध्याय स्वधा स्वाहा अन्नादिः यथा उदयं देवर्षि पितृ भूतानि मत् रूपाणि अनु अहं यजेत् ॥ ५० ॥

वेद अध्याय - (आपत्तिकालमें भी) वेदोंका स्वाध्याय
स्वधा स्वाहा - पितृ-देवपूजन
यथा उदयं - सामर्थ्यके अनुसार
अन्नादिः - अन्न-दानादि (करता हुआ)
मत् रूपाणि - मेरे स्वरूप
पितृ भूतानि - पितरों एवं प्राणियोंका
अनु अहं - प्रत्येक दिन
यजेत् - सत्कार करे ॥ ५० ॥

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ।
धनेनापीडयन् भृत्यान् न्यायेनैवाहरेत् क्रतून् ॥ ५१ ॥

यदृच्छया उपपन्नेन शुक्लेन उपार्जितेन वा धनेन अपीडयन् भृत्यान् न्याये न एव आहरेत् क्रतून् ॥ ५१ ॥

यदृच्छया-उपपन्नेन - संयोग वश स्वतः-प्राप्त
वा न्यायेन एव - अथवा न्यायपूर्वक ही
शुक्लेन - धर्मतः कमाये गये
उपार्जितेन (धन) से
भृत्यान् - सेवकोंको
अपीडयन् - बिना कष्ट दिये
क्रतून् आहरेत् - यज्ञ (धार्मिक-आयोजनादि) करे ॥ ५१ ॥

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत् कुटुम्ब्यपि ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत् कुटुम्बि अपि विपश्चित् नश्वरं पश्येत् अदृष्टं अपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥

विपश्चित्	- विवेकवान पुरुष	**दृष्टवत्**	- देखे (लौकिक) पदार्थोंके समान
कुटुम्बेषु	- परिवारमें	**अदृष्टं अपि**	- अनदेखे (स्वर्गादि) को भी
सज्जेत न	- आसक्त न हो,	**नश्वरं पश्येत्**	- विनाशवान देखे ॥ ५२ ॥
कुटुम्बि अपि	- परिवार वाला होकर भी		
प्रमाद्येत् न	- असावधान न हो,		

पुत्रदाराप्तबन्धूनां संगमः पान्थसंगमः ।
अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५३ ॥

पुत्र दारा आप्त बन्धूनां संगमः पान्थ संगमः अनुदेहं वियन्ति एते स्वप्नः निद्रा अनुगः यथा ॥ ५३ ॥

पुत्र दारा	- पुत्र, स्त्री,	**यथा निद्रा**	- जैसे नींदके
आप्त बन्धूनां	- गुरुजन तथा सम्बन्धियोंका	**अनुगः स्वप्नः**	- पीछे चलने वाला स्वप्न हो
संगमः	- मिलना	**अनुदेहं**	- शरीरके पीछे (साथ)
पान्थ संगमः	- यात्रामें सहयात्रियोंके मिलनेके समान है	**एते वियन्ति**	- ये सब विलीन हो जाते हैं ॥ ५३ ॥

इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद् वसन् ।
न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५४ ॥

इत्थं परिमृशन् मुक्तः गृहेषु अतिथिवत् वसन् न गृहैः अनुबध्येत निर्ममः निरहंकृतः ॥ ५४ ॥

इत्थं परिमृशन् - इस प्रकार विचार करके
निर्ममः - ममताहीन
निरहंकृतः - अहंकार रहित होकर
मुक्तः - (आसक्तिसे) छूटकर
अतिथिवत् - अतिथिके समान
गृहेषु वसन् - घरमें रहता हुआ भी
गृहैः - घरके
अनुबध्येत न - बन्धनमें नहीं पड़ता ॥ ५४ ॥

कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ।
तिष्ठेद् वनं वोपविशेत् प्रजावान् वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥

कर्मभिः गृहमेधीयैः इष्ट्वा मां एव भक्तिमान् तिष्ठेत् वनं वा उपविशेत् प्रजावान् वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥

गृहमेधीयैः - गृहस्थ धर्मोचित
कर्मभिः - कर्मोंसे
भक्तिमान् - भक्तिमान पुरुष
मां एव इष्ट्वा - मेरा ही पूजन करता हुआ
तिष्ठेत् - (उसी आश्रममें) रहे,
वा वनं- - अथवा वानप्रस्थ
उपविशेत् हो जाय
वा प्रजावान् - अथवा पुत्र हो गया हो तो
परिव्रजेत् - सन्यास ले ले ॥ ५५ ॥

यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ।
स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ५६ ॥

यः तु आसक्त मतिः गेहे पुत्र वित्त ईषणा आतुरः स्त्रैणः कृपणधीः मूढ़ः मम अहं इति बध्यते ॥ ५६ ॥

यः तु मूढः - जो भी मूर्ख
कृपण धीः - निर्बल चित्त
गेहे आसक्त- - घरमें आसक्त बुद्धि
मतिः
पुत्र वित्त ईषणा - पुत्रेषणा और वित्तेषणा से
आतुरः - व्याकुल होकर
स्त्रैणः - स्त्रीजित् है
मम अहं - 'यह मेरे हैं' 'यह मैं हूँ'
इति बध्यते - इस भाव से बन्धन में पड़ जाता है ॥ ५६ ॥

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजाऽऽत्मजाः ।
अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बाला आत्मजा आत्मजाः अनाथा मां ऋते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः ॥ ५७ ॥

अहो मे	- हाय मेरे	मां ऋते	- मेरे बिना
पितरौ वृद्धौ	- माता-पिता वूढ़े हो गये हैं,	दीनाः अनाथा	- बिचारे अनाथ
		दुःखिताः	- दुःखी हो जायेंगे,
भार्या बाला	- पत्नी अभी कम आयुकी है,	कथं जीवन्ति	- कैसे जीवित रहेंगे ॥ ५७ ॥
आत्मजाः-आत्मजा	- पुत्र छोटे हैं,		

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ।
अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

एवं गृह आशया क्षिप्त हृदयः मूढ धीः अयं अतृप्तः तान् अनुध्यायन् मृतः अन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

एवं गृह-आशया	- इस प्रकार गृहासक्त	तान्-अनुध्यायन्	- उन्हीं (परिवार वालों) का बराबर चिन्तन करना
क्षिप्त हृदयः	- चंचल चित्त	मृतः	- मरकर
अयं मूढ धीः	- यह मूर्ख बुद्धि	अन्धं तमः	- घोर नरकमें
अतृप्तः	- अतृप्त ही रहता	विशते	- प्रवेश करता है ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ।
वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सह एव वा वन एव वसेत् शान्तः तृतीयं भागं आयुषः ॥ १ ॥

वनं विविक्षुः - वानप्रस्थाश्रममें जानेकी इच्छा हो तो
भार्यां - पत्नीको
पुत्रेषु न्यस्य - पुत्रोंको सौंपकर
वा सह एव - अथवा (उसके) साथ ही
आयुषः - आयुके तीसरे भागमें
वन एव शान्तः - वन में ही शान्त होकर
वसेत् - निवास करे ॥ १ ॥

कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ।
वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥

कन्दमूल फलैः वन्यैः मेध्यैः वृत्तिं प्रकल्पयेत् वसीत वल्कलं वासः तृणपर्ण अजिनानि च ॥ २ ॥

वन्यैः कन्द - वनमें उत्पन्न कन्द,
मूल फलैः - मूल तथा फलोंसे
मेध्यैः वृत्तिं - पवित्र आजीविका
प्रकल्पयेत् - करे,
वल्कलं तृण-पर्ण - वल्कल, तिनके (चटाई) पत्ते
च अजिनानि - तथा मृगचर्मादिके
वासः वसीत - वस्त्र पहिने ॥ २ ॥

केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद् दतः ।
न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥

केश रोम नख श्मश्रुमलानि बिभृयात् दतः न धावेत् अप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥ ३ ॥

केश रोमनख - केश, रोयें, नख
श्मश्रु - दाढ़ी-मूंछ
दतः मलानि - दांत का मैल
विभृयात् - धारण किये रहे,
धावेत् न - दातौन न करे,
त्रिकालं - तीनों (सुबह, दोपहर, शाम) समय
अप्सु मज्जेत - जलमें डुवकी लगावे,
स्थण्डिलेशयः - वेदी पर ही सोये ।।३।।

ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन् वर्षास्वासारषाड् जले ।
आकण्ठमग्नः शिशिरे एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ।। ४ ।।

ग्रीष्मे तप्येत पञ्च अग्नीन् वर्षासु आसारषाड् जले आकण्ठ मग्नः शिशिरे एवं वृत्तः तपः चरेत् ।। ४ ।।

ग्रीष्मे - गर्मीकी ऋतुमें
पञ्च- - पंचाग्नि (चारों ओर अग्नि
अग्नीन् और ऊपर सूर्य) से
तप्येत - सन्तप्त होवे,
वर्षासु आसारषाड् - वर्षाकी बौछारमें रहे,
शिशिरे - शिशिर (शीत) ऋतुमें
जले आकण्ठ - (पूरे दिन) गले तक
मग्नः जलमें डूबा रहे,
एवं वृत्तः - ऐसा आचरण करते हुए
तपः चरेत् - तपस्या करे ।। ४ ।।

अग्निपक्वं समश्नीयात् कालपक्वमथापि वा ।
उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ।। ५ ।।

अग्निपक्वं समश्नीयात् कालपक्वं अथ अपि वा ऊलूखल अश्मकुट्टः वा दन्त अलूखल एव वा ।। ५ ।।

अग्निपक्वं - आगसे पकाया (भूना),
अथ वा काल-- अथवा समयसे स्वतः
पक्वं अपि पके को भी,
उलूखल वा - ऊखल अथवा
अश्मकुट्टः - पत्थरसे कूटेको
वा दन्त - दांतोंके ऊखलसे ही
उलूखल एव (चबाकर)
समश्नीयात् - भली प्रकार खा ले
।। ५ ।।

स्वयं संचिनुयात् सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ।
देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाऽऽहृतम् ॥ ६ ॥

स्वयं संचिनुयात् सर्वं आत्मनः वृत्ति कारणं देश काल बल अभिज्ञः न अददीत् अन्यत् आहृतम् ॥ ६ ॥

आत्मनः	- अपनी	**स्वयं संचिनुयात्**	- स्वयं संग्रह करे,
वृत्ति कारणं	- आजीविकाके पदार्थ	**अन्यत् आहृतं**	- दूसरोंके लाये (पदार्थों) को
देश काल	- देश-काल,	**न अददीत्**	- न खावे ॥ ६ ॥
बल अभिज्ञः	- शक्तिको जानने वाला,		

वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत् कालचोदितान् ।
न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

वन्यैः चरु पुरोडाशैः निर्वपेत् कालचोदितान् न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

कालचोदितान्	- समयानुसार	**निर्वपेत्**	- प्रस्तुत करे
वन्यैः	- वनमें उत्पन्न (नीवारादि) से	**वनाश्रमी तु**	- वानप्रस्थाश्रमी तो
चरु पुरोडाशैः	- चरु (हविष्य) पुरोदाश (देव नैवेद्य)	**श्रौतेन पशुना**	- वेद विहित पशु यज्ञोंसे
		मां न यजेत	- मेरी पूजा न करे ॥ ७ ॥

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ।
चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥

अग्निहोत्रं च दर्शः च पूर्णमासः च पूर्ववत् चातुर्मास्यानि च मुनेः आम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥

नैगमैः च - वेदवादियोंने तो
पूर्ववत् च - पहिले (गृहस्थाश्रम) के समान ही
मुनेः च - वानप्रस्थाश्रमीके लिए भी
अग्निहोत्रं - (दैनिक) अग्निहोत्र,
दर्शः - अमावस्याके कर्म
च पूर्णमासः - तथा पूर्णिमाके कर्म
च चातुर्मास्यानि - एवं चातुर्मास्यव्रतका
आम्नातानि - विधान किया है ॥८॥

एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसन्ततः ।
मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥ ९ ॥

एवं चीर्णेन तपसा मुनिः धमनि संततः मां तपः मयं आराध्य ऋषि लोकात् उपैति माम् ॥ ९ ॥

एवं चीर्णेन-तपसा - इस प्रकार तपस्या करके
धमनि संततः - नसोंसे व्याप्त शरीर
मुनिः - वानप्रस्थी
तपः मयं मां - तपस्या रूप मेरी
आराध्य - आराधना करके
ऋषि लोकात् - ऋषियोंके लोक (महर्लोक एवं जनलोक) जाकर
मां उपैति - (वहांसे) मेरे समीप आजाता है ॥ ९ ॥

यस्त्वेतत् कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ।
कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद् बालिशः कोऽपरस्ततः ॥ १० ॥

यः तु एतत् कृच्छ्रतः चीर्णं तपः निःश्रेयसं महत् कामाय अल्पीयसे युञ्ज्यात् बालिशः कः अपरः ततः ॥ १० ॥

यः एतत् - जो इस
कृच्छ्रतः चीर्णं - बड़े कष्टसे किये
महत् निःश्रेयसं - महान् कल्याणमय
तपः अल्पीयसे - तपको छुद्र
कामाय - कामनाओं (कीपूर्ति) में
युञ्ज्यात् - उपयोग करे
ततः अपरः - उससे बड़ा
कः बालिशः - कौन मूर्ख होगा ॥ १० ॥

यदासौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥

यदा असौ नियमे अकल्पः जरया जात वेपथुः आत्मनि अग्नीन् सम आरोप्य मत् चित्तः अग्निं सम आविशेत् ॥ ११ ॥

यदा असौ	- जब यह (वानप्रस्थी)	**आत्मनि**	- अपनेमें (भावनासे)
नियमे	- (अपने) नियम पालनमें	**अग्नीन्**	- यज्ञाग्नियोंका
अकल्पः	- असमर्थ होजाय,	**सम आरोप्य**	- भली प्रकार आरोपण (न्यास करके)
जरया	- और बुढ़ापेसे	**मत् चित्तः**	- मुझमें चित्त लगाकर
जात वेपथुः	- (उसके) अंग काँपने लगें तो	**अग्निं-**	- अग्निमें प्रवेश कर
		समाविशेत्	जाय ॥ ११ ॥

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥

यदा कर्म विपाकेषु लोकेषु निरय आत्मसु विरागः जायते सम्यक् न्यस्त अग्निः प्रव्रजेत् ततः ॥ १२ ॥

यदा कर्म-	- जब कर्म के फलसे	**सम्यक् विरागः**	- भली प्रकार वैराग्य
विपाकेषु	मिलने वाले	**जायते**	- होजाय तो
निरय आत्मसु	- नरक स्वरूप	**न्यस्त अग्निः**	- अग्निका त्याग करके
लोकेषु	- (स्वर्गादि) लोकोंके प्रति	**ततः प्रव्रजेत्**	- उस (वानप्रस्थाश्रम) से सन्यास ले ले ॥ १२ ॥

इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ।
अग्नीन् स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥

इष्ट्वा यथा उपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वं ऋत्विजे अग्नीन् स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ १३ ॥

यथा उपदेशं - वैदिक विधानके अनुसार
मां इष्ट्वा - (सर्वश्राद्ध एवं प्राजापत्य यज्ञसे) मेरा यजन करके
सर्वस्वं - (अपना) सर्वस्व
ऋत्विजे दत्त्वा - ऋत्विक को देकर
अग्नीन् - अग्नियोंको
स्वप्राण - अपने प्राणोंमें
आवेश्य - लीन करके
निरपेक्षः - अपेक्षाहीन होकर
परिव्रजेत् - स्वच्छन्द घूमे ॥ १३ ॥

विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ।
विघ्नान् कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात् परम् ॥ १४ ॥

विप्रस्य वै सन्यसतः देवा दारा आदि रूपिणः विघ्नान् कुर्वन्ति अयं हि अस्मान् आक्रम्य सम ईयात् परम् ॥ १४ ॥

वै विप्रस्य - निश्चित रूपसे ब्राह्मणके
सन्यसतः - सन्यास लेते समय
दारा आदि-रूपिणः - स्त्री आदिके स्वरूपमें
देवा - देवता
विघ्नान् कुर्वन्ति - विघ्न डालते हैं
हि अस्मान् - क्योंकि (सोचते हैं) हम लोगोंका
आक्रम्य अयं - अतिक्रमण करके यह
परं सम ईयात् - परमात्माके पास पहुँच जायगा ॥ १४ ॥

बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत् किञ्चिदनापदि ॥ १५ ॥

बिभृयात् चेत् मुनिः वासः कौपीन आच्छादनं परं त्यक्तं न दण्ड पात्राभ्यां अन्यत् किञ्चित् अनापदि ॥ १५ ॥

चेत् मुनिः - यदि वह सन्यासी
वासः बिभृयात् - वस्त्र धारण करे तो
कौपीन - कौपीन और
आच्छादनं परं - उसे ढकने वाला वस्त्रमात्र रखे,
अनापदि - आपत्तिकाल के बिना
दण्ड पात्राभ्यां - दण्ड और जलपात्रको
त्यक्तं - छोड़कर
अन्यत्-किञ्चित्न - दूसरा कुछ न रखे ॥ १५ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ १६ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेत् जलं सत्यपूतां वदेत् वाचं मनः पूतं समआचरेत् ॥ १६ ॥

दृष्टिपूतं	- दृष्टिसे पवित्र करके (देखकर)	**सत्यपूतां**	- सत्यसे पवित्र
पादं न्यसेत्	- पैर रखे,	**वाचं वदेत्**	- वाणी बोले,
वस्त्रपूतं	- वस्त्रसे पवित्र करके (छानकर)	**मनः पूतं**	- पवित्र मनसे
जलं पिबेत्	- जल पिये,	**सम आचरेत्**	- ठीक आचरण करे ॥ १६ ॥

मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् ।
न ह्येते यस्य सन्त्यग वेणुभिर्न भवेद् यतिः ॥ १७ ॥

मौन अनीह अनिल आयामा दण्डा वाक्देह चेतसां न यस्य हिएते सन्ति अंग वेणुभिः न भवेत् यतिः ॥ १७ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**हि एते दण्डा**	- क्योंकि ये दण्ड हैं
वाक् मौन	- वाणी के लिए मौन,	**यस्य न सन्ति**	- जिसके पास ये नहीं हैं
देह अनीह	- शरीरसे निश्चेष्टता,	**वेणुभिः**	- (वह) बांसके (दण्ड) द्वारा
चेतसां	- चित्तके लिए	**यतिः न-भवेत्**	- सन्यासी नहीं होजाता ॥ १७ ॥
अनिल आयामा	- प्राणायाम रूप		

भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान् वर्जयंश्चरेत् ।
सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥ १८ ॥

भिक्षां चतुःषु वर्णेषु विगर्ह्यान् वर्जयन् चरेत् सप्त आगारान् असंक्लृप्तान् तुष्येत् लब्धेन तावता ॥ १८ ॥

विगर्ह्यान्	- निन्दितोंको	**सप्त आगारान्**	- सात घरोंसे
वर्जयन्	- छोड़कर	**भिक्षां चरेत्**	- भिक्षा मांगे,
चतुःषु वर्णेषु	- चारों ही वर्णोंके	**तावता लब्धेन**	- इतने में ही प्राप्तसे
असंक्लृपतान्	- परस्पर न सटे	**तुष्येत्**	- सन्तोष करले ॥ १८ ॥

बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ।
विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषमाहृतम् ॥ १९ ॥

बहिः जलाशयं गत्वा तत्र उपस्पृश्य वाक् यतः विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीत अशेषं आहृतम् ॥ १९ ॥

बहिः	- (बस्तीके) बाहर	**पावित शेषं**	- पवित्र किये गये शेषको
जलाशयं गत्वा	- जलाशयके पास जाकर	**आहृतम्**	- आदरपूर्वक
तत्र उपस्पृश्य	- वहाँ आचमन करके	**अशेषं**	- बिना कुछ बचाये पूरा
विभज्य	- (दूसरे प्राणियोंको) बांटनेसे	**भुञ्जीत**	- खा ले ॥ १९ ॥

एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेन्द्रियः ।
आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः ॥ २० ॥

एकः चरेत् महीं एतां निः संगः संयत इन्द्रियः आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः ॥ २० ॥

निः संगः	- अनासक्त रहकर	**आत्मवान्**	- धैर्यशाली और
संयत इन्द्रियः	- इन्द्रियोंको वशमें करके	**समदर्शनः**	- समदर्शी रहकर
आत्मक्रीड	- अपनेमें ही मस्त,	**एतां महीं**	- इस पृथ्वीपर
आत्मरतः	- आत्मानन्दमें मग्न	**एकः चरेत्**	- अकेला विचरण करे ॥ २० ॥

विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ।
आत्मानं चिन्तयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥

विविक्त क्षेम शरणः मत् भाव विमल आशयः आत्मानं चिन्तयेत् एकं अभेदेन मया मुनिः ॥ २१ ॥

मुनिः विविक्त	- सन्यासी एकान्त	**आत्मानं मया**	- अपनेको मुझसे
क्षेम शरणः	- निरुपद्रव स्थानमें रहे	**अभेदेन एकं**	- अभिन्नतापूर्वक एक
मत् भाव	- मेरी भावनासे	**चिन्तयेत्**	- चिन्तन करे ॥ २१ ॥
विमल आशयः	- निर्मल अन्तःकरण		

अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ।
बन्ध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥

अनु ईक्षेत् आत्मनः बन्धं मोक्षं च ज्ञान निष्ठया बन्ध इन्द्रिय विक्षेपः मोक्ष एषां च संयमः ॥ २२ ॥

ज्ञान निष्ठया	- ज्ञान निष्ठासे	**इन्द्रिय**	- इन्द्रियोंकी चंचलता
आत्मनः बन्धं	- अपने बन्धन	**विक्षेपः बन्ध**	बन्धन है,
च मोक्षं	- तथा मुक्तिको	**च एषां-**	- तथा इनको नियन्त्रित
अनु ईक्षेत	- बरावर देखे	**संयमः**	रखना
		मोक्ष	- मुक्ति है ॥ २२ ॥

तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः ।
विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वाऽऽत्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

तस्मात् नियम्य षट्वर्गं मत्भावेन चरेत् मुनिः विरक्तः क्षुल्ल कामेभ्यः लब्ध्वा आत्मनि सुखं महत् ॥ २३ ॥

तस्मात्	- इसलिए	**महत् आत्मनि-**	- महान आत्मानन्दको
मत् भावेन	- मेरी भक्तिसे	**सुखं**	
षट्वर्गं नियम्य	- छहो (पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन) का नियन्त्रण करके	**लब्धवा**	- प्राप्त करके
		क्षुल्लकामेभ्यः	- तुच्छ कामनाओंसे
		विरक्तः मुनिः	- विरक्त होकर सन्यासी
		चरेत्	- विचरण करे ॥ २३ ॥

पुरग्रामव्रजान् सार्थान् भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ।
पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥

पुर ग्राम व्रजान् सार्थान् भिक्षा अर्थं प्रविशन् चरेत् पुण्य देश सरित् शैल वन आश्रमवतीं महीम् ॥ २४ ॥

भिक्षा अर्थं - भिक्षाके लिए
पुर ग्राम - नगर, गाँव,
व्रजान् सार्थान् - गोपालकोंके झोंपड़ों, यात्री व्यापारियोंके समूहमें
प्रविशन् - प्रवेश करता हुआ,
पुण्यदेश - तीर्थ-प्रदेशकी
सरित् शैल - नदी, पर्वत,
वन आश्रमवतीं - वन, आश्रम वाली
महीं चरेत् - भूमिमें विचरण करे ॥ २४ ॥

वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ।
संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलान्धसा ॥ २५ ॥

वानप्रस्थ आश्रम पदेषु अभीक्ष्णं भैक्ष्यं आचरेत् संसिध्यति आशु संमोहः शुद्ध सत्त्वः शिल अन्धसः ॥ २५ ॥

वानप्रस्थ - वानप्रस्थ
आश्रम पदेषु - आश्रमियोंके स्थानसे
अभीक्ष्णं भैक्ष्यं - बार बार भिक्षा
आचरेत् - ग्रहण करे
शुद्ध सत्त्वः - (क्योंकि) शुद्धान्तःकरण (लोगों) के
शिल अन्धसा - कण-कण चुनकर लायी भिक्षासे
आशु संमोहः - शीघ्र देहासक्ति
सं सिद्धयति - शुद्ध होकर सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

नैतद् वस्तुतया पश्येद् दृश्यमानं विनश्यति ।
असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥

न एतत् वस्तुतया पश्येत् दृश्यमानं विनश्यति असक्त चित्तः विरमेत् इह अमुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥

एतत् विनश्यति - इस नाशवान्
दृश्यमानं - दीखते जगतको
वस्तुतया - वास्तविक
न पश्येत् - न देखे,
असक्त चित्तः - (इससे) अनासक्त चित्त
इह अमुत्र - इस लोक-परलोकके
चिकीर्षितात् - कर्तव्योंसे
विरमेत् - उपराम हो जाय
॥ २६ ॥

यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ।
सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत् स्मरेत् ॥ २७ ॥

यत् ऐतत् आत्मनि जगत् मनः वाक् प्राण संहतं सर्वं माया इति तर्केण स्वस्थः त्यक्त्वा न तत् स्मरेत् ॥ २७ ॥

यत् एतत् - क्योंकि यह
मनः वाक् - मन, वाणी
प्राण संहतं - प्राण का घनीभाव रूप
जगत् आत्मनि - विश्व आत्मामें ही है,
सर्वं माया -यह सब मायासे
स्वस्थः इति -अपने में ही है, इस प्रकारके
तर्केण त्यक्त्वा -तर्कसे (इसे त्यागकर)
तत् न स्मरेत् -उसका स्मरण न करे
॥ २७ ॥

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥

ज्ञाननिष्ठः विरक्तः वा मद्भक्तः वा अनपेक्षकः सलिङ्गान् आश्रमान् त्यक्त्वा चरेत् अविधि गोचरः ॥ २७ ॥

ज्ञाननिष्ठः विरक्तः - ज्ञाननिष्ठ विरक्त हो
वा अनपेक्षकः - अथवा निरपेक्ष
मद्भक्तः वा - मेरा भक्त ही हो,
सलिङ्गान् - चिन्होंके साथ
आश्रमान् त्यक्त्वा - आश्रमोंका त्याग करके
अविधि गोचरः - किसी विधि से पहिचानमें न आकर
चरेत् - विचरण करे ॥ २८ ॥

बुधो बालकवत् क्रीडेत् कुशलो जडवच्चरेत् ।
वदेदुन्मत्तवद् विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥

बुधः बालकवत् क्रीडेत् कुशलः जडवत् चरेत् वदेत् उन्मत्तवत् विद्वान् गोचर्यां नैगमः चरेत् ॥ २९ ॥

बुधः बालकवत्	- बुद्धिमान होकर भी बालक के समान	**विद्वान्**	- विद्वान होकर भी
		उन्मत्तवत्	- पागलके समान
क्रीडेत्	- खेलता रहे,	**वदेत्**	- बोले,
कुशलः	- निपुण होकर भी	**नैगमः**	- वेदज्ञ होकर भी
जडवत्	- मूर्खके समान	**गोचर्यां चरेत्**	- पशुके समान विचरणकरे करे ॥ २९ ॥
चरेत्	- विचरण करे,		

वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः ।
शुष्कवादविवादे न कञ्चित् पक्षं समाश्रयेत् ॥ ३० ॥

वेदवादरतः न स्यात् न पाखण्डी न हैतुकः शुष्कवाद विवादे न कञ्चित् पक्षं सम आश्रयेत् ॥ ३० ॥

वेदवाद	- वैदिक कर्मकाण्ड (की व्याख्या) में	**शुष्कवाद-विवादे**	- सूखे (व्यर्थ) वाद-विवादमें
रतः न स्यात्	- न लगे	**कञ्चित् पक्षं**	- कोई पक्ष
पाखण्डी न	- पाखण्ड न करे,	**आश्रयेत् न**	- ग्रहण न करे ॥ ३० ॥
न हैतुकः	- न तर्क-वितर्क करे,		

विशेष - यह आश्रमातीत अवधूत का वर्णन है । सन्यासी ही अवधूत नहीं होता । किसी वर्ण, किसी आश्रम का कोई व्यक्ति अवधूत हो सकता है; किन्तु उसे गेरुआ आदि आश्रम के चिन्ह नहीं रखने चाहिए । उसे ज्ञान निष्ठासे जब पूर्ण वैराग्य प्राप्त हो जाय या भगवद्भक्ति के द्वारा वह शरीर संसार तथा परलोक से भी निरपेक्ष हो जाय तो अवधूत हो सकता है । वह कैसे रहे, यह आगे बतलाते हैं ।

नोद्विजेत जनाद् धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु ।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन ।
देहमुद्दिश्य पशुवद् वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥ ३१ ॥

न उद्विजेत् जनात् धीरः जनं च उद्वेजयत् न तु अतिवादान् तितिक्षेत न अवमन्येत कञ्चन देहं उद्दिश्य पशुवत् वैरं कुर्यात् न केनचित् ॥ ३१ ॥

धीरः	- धैर्यशाली होकर	**कञ्चन**	- किसीका
जनात्	- लोगोंसे	**न अवमन्येत**	- अपमान न करे,
उद्विजेत् न	- उद्विग्न न हो	**देहं उद्दिश्य**	- शरीरको लक्ष्य बनाकर
तु जनं च	- तथा लोगोंको भी	**पशुवत्**	- पशुके समान
उद्वेजयत् न	- उद्विन न करे,	**केनचित्**	- किसीसे भी
अतिवादान्	- निन्दा को	**वैरं न कुर्यात्**	- शत्रुता न करे
तितिक्षेत	- सहन करले,		॥ ३१ ॥

एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ।
यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥

एक एव परः हि आत्मा भूतेषु आत्मनि अवस्थितः यथा इन्दुः उद पात्रेषु भूतानि एक आत्मकानि च ॥ ३२ ॥

हि एक-	- क्योंकि एक	**एक एव**	- एक ही
आत्मकानि	(पांच भौतिक) स्वरूप	**परः आत्मा**	- परमात्मा
भूतानि	- सब प्राणी हैं,	**अवस्थितः**	- स्थित है
भूतेषु आत्मनि	- उन प्राणियोंके	**यथा उदपात्रेषु**	- जैसे (अनेक) जलपात्रोंमें
	अन्तःकरणमें	**इन्दुः**	- (एक ही) चन्द्र
			(प्रतिबिम्बित) है ॥३२॥

अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ।
लब्ध्वा न हृष्येद् धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥

अलब्ध्वा न विषीदेत काले काले अशनं क्वचित् लब्ध्वा न हृष्येत् धृतिमान् उभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥

धृतिमान्	- धैर्यशाली होकर	**विषीदेत न**	- दुःखी न हो और
क्वचित्	- कभी	**लब्ध्वा हृष्येत् न**	- पाकर हर्षित न हो
काले काले	- समय समय पर	**उभयं**	- (मिलना, न मिलना) दोनों
अशनं अलब्ध्वा	- आहार न पाकर	**दैवतन्त्रितं**	- प्रारब्धाधीन हैं ॥ ३३ ॥

आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ।
तत्त्वं विमृश्यते तेन तद् विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥

आहार अर्थं सम ईहेत युक्तं तत् प्राण धारणं तत्त्वं विमृश्यते तेन तत् विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥

आहार अर्थं	- भोजन के लिए	**तेन तत्त्वं**	- उस (जीवन) से तत्त्व का
सम ईहेत	- उचित चेष्टा करे,	**विमृश्यते**	- विचार होता है
तत् प्राण धारणं	- उसके द्वारा प्राण रखना	**तत् विज्ञाय**	- उस (तत्त्व) को जानकर
युक्तं	- उचित है	**विमुच्यते**	- मुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥

यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ।
तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥

यदृच्छया उपपन्न अन्नं अद्यात् श्रेष्ठं उत अपरं तथा वासः तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेत् मुनिः ॥ ३५ ॥

मुनिः	- अवधूत	**प्राप्तं प्राप्तं**	- समय समयपर प्राप्त
यदृच्छया	- प्रारब्धवश	**तथा वासः**	- इसी प्रकार वस्त्र,
श्रेष्ठं उत अपरं	- श्रेष्ठ या दूसरे (निकृष्ट) प्रकार	**तथा शय्यां**	- इसी प्रकार पलंका का भी
उपपन्न अन्नं	- प्राप्त आहार	**भजेत्**	- सेवन कर ले ॥ ३५ ॥

शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ।
अन्यांश्च नियमाञ्ज्ञानी यथाहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥

शौचं आचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् अन्यान् च नियमान् ज्ञानी यथा अहं लीलया ईश्वरः ॥ ३६ ॥

चोदनया तु - शास्त्रकी आज्ञा मानकर तो
शौचं आचमनं - शौचाचार, आचमन्,
स्नानं च - स्नान तथा
अन्यान् नियमान् - दूसरे नियमोंका
ज्ञानी न चरेत् - ज्ञानी पालन न करे,
यथा अहं ईश्वरः - जैसे मैं सर्व समर्थ
लीलया - लीलापूर्वक (करता हूँ, वैसे लीला पूर्वक) करे ॥ ३६ ॥

न हि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ।
आदेहान्तात् क्वचित् ख्यातिस्ततः सम्पद्यते मया ॥ ३७ ॥

न हि तस्य विकल्प आख्या या च मत् वीक्षया हता आ देहान्तात् क्वचित् ख्यातिः ततः सम्पद्यते मया ॥ ३७ ॥

हि या - क्योंकि जो
विकल्प आख्या - भेदकी प्रतीति
तस्य मत् - उस (ज्ञानी) की मेरे
वीक्षया साक्षात्कार से
हता च - नष्ट ही हो गई है
क्वचित् - कभी
आ देहान्तात् - शरीरान्त पर्यन्त
ख्यातिः - (भेद) प्रतीति होती है तो
ततः मया - फिर (शरीरान्त पश्यत्) मुझमें
सम्पद्यते - मिल जाता है ॥ ३७ ॥

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ।
अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥

दुःख उदर्केषु कामेषु जात निर्वेद आत्मवान् अजिज्ञासित मत धर्मः गुरुं मुनिं उप आव्रजेत् ॥ ३८ ॥

आत्मवान्	- जितेन्द्रिय पुरुष	**मत् धर्मः**	- मेरी प्राप्ति के साधन
दुःख उदर्केषु	- दुःख उत्पन्न करने वाले	**अजिज्ञासित**	- न जानता हो तो
कामेषु	- भोगोंसे	**मुनिं गुरुं**	- मननशील गुरुके
जात निर्वेद	- वैराग्य हो जानेपर	**उपाव्रजेत्**	- समीप जाय ॥ ३८ ॥

तावत् परिचरेद् भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ।
यावद् ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥

तावत् परिचरेत् भक्तः श्रद्धावान् अनसूयकः यावत् ब्रह्म विजानीयात् मां एव गुरु आदृतः ॥ ३९ ॥

तावत् श्रद्धावान्	- तब तक श्रद्धापूर्वक	**परिचरेत्**	- सेवा करे
भक्तः	- भक्ति सहित	**यावत् मां एव**	- जब तक मुझे ही
अनसूयकः	- गुणोंमें दोष न देखता हुआ	**ब्रह्म गुरु**	- ब्रह्म तथा गुरु
		विजानीयात्	- जान ले ॥ ३९ ॥
आदृतः	- आदरपूर्वक		

यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ।
ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ॥ ४० ॥

यः तु असंयत षट् वर्गः प्रचण्ड इन्द्रिय सारथिः ज्ञान वैराग्य रहितः त्रिदण्डं उपजीवति ॥ ४० ॥

यः तु	- जो भी	**ज्ञान वैराग्य-**	- ज्ञान-वैराग्यसे हीन
षट् वर्गः	- ६ वर्ग (पांच ज्ञानेन्द्रिय एवं मन) को	**रहितः**	
		त्रिदण्डं	- त्रिदण्डी होकर
असंयत	- वशमें किये बिना	**उपजीवति**	- जीविका चलाता है ॥ ४० ॥
प्रचण्ड इन्द्रिय	- प्रबल इन्द्रियों एवं		
सारथिः	- उनके सारथि मन वाला		

सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा ।
अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥

सुरान् आत्मानं आत्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा अविपक्व कषायः अस्मात् अमुष्मात् च विहीयते ॥ ४१ ॥

धर्महा - वह धर्म घातक
सुरान् आत्मानं - देवताओंको, अपने आपको
आत्मस्थं मां च - अपने भीतर स्थित मुझे भी
निह्नुते - ठगता है
अविपक्व - अक्षीण
कषायः - वासना होनेसे
अस्मात् - इस लोक
च अमुष्मात् - तथा परलोकसे भी
विहीयते - भ्रष्ट हो जाता है
॥ ४१ ॥

भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ।
गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥

भिक्षोः धर्मः शमः अहिंसा तप ईक्षा वनौकसः गृहिणः भूतरक्ष इज्या द्विजस्य आचार्य सेवनम् ॥ ४२ ॥

भिक्षोः शमः अहिंसा - सन्यासीका शम और अहिंसा,
वनौकसः - वानप्रस्थका
तप ईक्षा - तप एवं तत्त्व चिन्तन,
गृहिणः - गृहस्थका
भूतरक्ष इज्या - प्राणिरक्षा एवं यज्ञ,
द्विजस्य - द्विजाति मात्रका
आचार्य सेवनं - आचार्यकी सेवा
धर्मः - (प्रधान) धर्म है
॥ ४२ ॥

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषो भूतसौहृदम् ।
गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं सन्तोषः भूत सौहृदं गृहस्थस्य अपि ऋतौ गन्तुः सर्वेषां मत् उपासनम् ॥ ४३ ॥

सर्वेषां - सबके लिए
ब्रह्मचर्यं - ब्रह्मचर्य-पालन,
तपः शौचं - तपस्या, पवित्रता,
सन्तोषः - सन्तोष,
भूत सौहृदं - प्राणियों की हितैषिता एवं
मत् उपासनं - मेरी उपासना (धर्म है)
गृहस्थस्य अपि - गृहस्थके लिए भी
ऋतौ गन्तुः - ऋतु गमन (के अतिरिक्त ये धर्म हैं) ॥ ४३ ॥

इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यमनन्यभाक् ।
सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दते दृढाम् ॥ ४४ ॥

इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यं अनन्य भाक् सर्वभूतेषु मत् भावः मत् भक्तिं विन्दते दृढ़ाम् ॥ ४४ ॥

इति यः - इस प्रकार जो
स्वधर्मेण - अपने धर्मका पालन करता हुआ
अनन्य भाक् - अनन्य भावसे
मां भजन् - मेरा भजन करता है तथा
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंमें
मत् भावो - मेरी भावना करता हुआ
दृढ़ां मत् - मेरी दृढ़ भक्ति
भक्तिं
विन्दते - पाता है ॥ ४४ ॥

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥ ४५ ॥

भक्त्या उद्धव अनपायिन्या सर्वलोक महेश्वरं सर्व उत्पत्ति अप्ययं ब्रह्म कारणं मा उपयाति सः ॥ ४५ ॥

उद्धव - उद्धव !
अनपायिन्या - अखण्ड
भक्त्या सः - भक्ति द्वारा वह
सर्वलोक - समस्त लोकोंके
महेश्वरं - महेश्वर
सर्वलोक - सम्पूर्ण लोकोंकी
उत्पत्ति अप्ययं - सृष्टि-प्रलयके
कारणं मा ब्रह्म - कारण मुझ ब्रह्मके
उपयाति - समीप जाता है ॥ ४५ ॥

इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो नचिरात् समुपैति माम् ॥ ४६ ॥

इति स्वधर्म निर्णिक्त सत्त्वः निर्ज्ञात मत् गतिः ज्ञान विज्ञान सम्पन्नः न चिरात् सम उपैति माम् ॥ ४६ ॥

इति स्वधर्म	- इस प्रकार अपने धर्मके द्वारा	**ज्ञान विज्ञान**	- ज्ञान-विज्ञानसे
निर्णिक्त सत्त्वः	- अन्तःकरण शुद्ध करके	**सम्पन्नः**	- सम्पन्न होकर
मत् गतिः	- मेरा स्वरूप	**न चिरात्**	- अविलम्ब
निर्ज्ञात	- ठीक ठीक जानकर	**मां सम उपैति**	- मेरे समीप पहुंच जाता है ॥ ४६ ॥

वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ।
स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥

वर्ण आश्रम वतां धर्म एष आचार लक्षणः स एव मत् भक्ति युतः निः श्रेयसकरः परः ॥ ४७ ॥

वर्ण आश्रमवतां	- वर्णाश्रम मानने वालोंका	**स एव**	- वही
एष धर्म	- यह धर्म	**मत् भक्तियुतः**	- मेरी भक्ति सहित होनेपर
आचार लक्षणः	- आचरणात्मक है,	**परः निःश्रेयस करः**	- परम कल्याणकारी होता है ॥ ४७ ॥

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान् पृच्छति यच्च माम् ।
यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात् परम् ॥ ४८ ॥

एतत् ते अभिहितं साधो भवान् पृच्छति यत् च मां यथा स्वधर्म संयुक्तः भक्तः मां सम इयात् परम् ॥ ४८ ॥

साधो - साधु उद्धव !
यथा स्वधर्म - जैसे अपने धर्मका
संयुक्तः भक्तः - पालन करता भक्त
मां परं - मुझ परमात्माको
सम इयात् - ठीक ठीक पा लेता है,
एतत् - वह यह
यत् च भवान् - जो कि तुम
मां पृच्छति - मुझसे पूछते हो
ते अभिहितं - तुमसे बतला दिया

॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

यो विद्याश्रुतसम्पन्न आत्मवान् नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥

यः विद्या श्रुत सम्पन्न आत्मवान् न अनुमानिकः माया मात्रं इदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥

यः विद्या - जो शास्त्र ज्ञान एवं
श्रुत सम्पन्न - श्रवण, (मननादि) से सम्पन्न
आत्मवान् - आत्मज्ञान युक्त है,
न अनुमानिकः - (केवल) अनुमान करने वाला (परोक्षज्ञानी) नहीं है,
इदं माया मात्रं - इस दृश्य प्रपञ्चको केवल माया
ज्ञात्वा - जानकर
ज्ञानं च - ज्ञानको भी
मयि संन्यसेत् - मुझमें लीन करदे
॥ १ ॥

ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ।
स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २ ॥

ज्ञानिनः तु अहं एव इष्टः स्वार्थः हेतुः च संमतः स्वर्गः च एव अपवर्गः च न अन्यः अर्थः मत् ऋते प्रियः ॥ २ ॥

ज्ञानिनः तु - ज्ञानियोंका भी
स्वार्थः हेतुः च - स्वार्थ और उसका साधन
संमतः - परमप्रिय
अहं एव इष्टः - मैं ही अभीष्ट हूँ ।
स्वर्गः च अपवर्गः - स्वर्ग या मोक्ष
मत् ऋते - मुझे छोड़कर
अन्यः अर्थः - कोई तत्त्व
प्रियः न - उसे प्रिय नहीं है
॥ २ ॥

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ।
ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

ज्ञान विज्ञान संसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुः मम ज्ञानी प्रियतमः अतः मे ज्ञानेन असौ बिभर्ति माम् ॥ ३ ॥

ज्ञान विज्ञान	- ज्ञान-विज्ञानसे	**अतः मे ज्ञानी**	- अतः मुझे ज्ञानी
संसिद्धाः	- युक्त सिद्ध पुरुष	**प्रियतमः**	- अत्यन्त प्रिय है,
मे श्रेष्ठं पदं	- मेरे वास्तविक स्वरूपको	**असौ ज्ञानेन**	- यह ज्ञानके द्वारा
विदुः	- जानते हैं,	**मां बिभर्ति**	- मुझे धारण करता है ॥ ३ ॥

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥

तपः तीर्थं जपः दानं पवित्राणि इतराणि च न अलं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥

या ज्ञान कलया	- जो ज्ञान के लेश मात्रसे	**जपः दानं**	- जप, दान
सिद्धिं कृता	- अन्तःकरण की शुद्धि होती है	**इतराणि- पवित्राणि**	- तथा दूसरे पवित्रताके साधन
तां तपः तीर्थं	- उसे तपस्या, तीर्थ,	**अलं न- कुर्वन्ति**	- पूरा नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥

तस्मात् ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्व आत्मानं उद्धव ज्ञान विज्ञान सम्पन्नः भज मां भक्ति भावितः ॥ ५ ॥

उद्धव - उद्धव !	ज्ञान विज्ञान - ज्ञान-विज्ञानसे
तस्मात् - इसलिए	सम्पन्नः - सम्पन्न होकर
ज्ञानेन सहितं - ज्ञानके साथ	भक्ति भावितः - भक्तिपूर्वक
स्व आत्मानं - अपने आत्मतत्त्वको	मां भज - मेरा भजन करो ॥ ५ ॥
ज्ञात्वा जानकर	

ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्टवाऽऽत्मानमात्मनि ।
सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥

ज्ञान विज्ञान यज्ञेन मां इष्ट्वा आत्मानं आत्मनि सर्व यज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयः अगमन् ॥ ६ ॥

ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञान रूपी	इष्ट्वा - आराधित करके
यज्ञेन मां - यज्ञ द्वारा मुझ	वै मां संसिद्धिं - निश्चय परम सिद्धि
सर्व यज्ञपतिं - सर्व यज्ञेश्वर	रूप मुझे
आत्मानं- - आत्माको अपने में ही	मुनयः अगमन् - मुनिगण प्राप्त करते हैं
आत्मनि	॥ ६ ॥

त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो
मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ।
जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्यु-
राद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥

त्वयि उद्धव आश्रयति यः त्रिविधः विकारः माया अन्तरा आपतति न अद्य अपवर्गयोः यत् जन्म आदयः अस्य यत् अमी तव तस्य किं स्युः आदि अन्तयोः यत् असतः अस्ति तत् एव मध्ये ॥ ७ ॥

उद्धव	- उद्धव !
यः त्रिविधः	- जो तीन प्रकार के (आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक)
विकारः	- विकार हैं,
त्वयि आश्रयति	- तुम्हारे आश्रयसे हैं,
अन्तरा माया	- बीचमें मायाके कारण
आपतति	- आजाते हैं,
यत् अद्य	- जिससे अभी मोक्ष
अपवर्गयोः न	नहीं (लगता) है,
जन्म आदयः	- जन्म आदि
अस्य	- इस (देह) के
यत् अमी	- कारण ये होते हैं
तस्य तव	- उनसे तुम्हारा
किं स्युः	- क्या सम्बन्ध है,
आदि अन्तयोः	- आदि और अन्तमें
यत् असतः	- जो (देह) असत् है,
तत् एव मध्ये	- वही बीच में भी (असत्) है ॥ ६ ॥

उद्धव उवाच–

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैत-
द्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ।
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते
त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथा एतत् वैराग्य विज्ञान युतं पुराणं आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वत् भक्ति योगं च महत् विमृग्यम् ॥ ७ ॥

विश्वेश्वर	- विश्वेश्वर !
विश्वमूर्ते	- विश्वमूर्ति !
यथा एतत्	- जैसे यह
वैराग्य-विज्ञानयुतं	- वैराग्य, ज्ञान युक्त
पुराणं विशुद्धं-ज्ञानं	- सनातन शुद्ध ज्ञान
विपुलं	-सुदृढ़ हो
च महत्-	-तथा महात्माओं द्वारा
विमृग्यं	भी अन्वेषणीय
त्वत् भक्तियोगं	-आपका भक्तियोग (प्राप्त हो)
आख्याहि	-(वह उपाय) बतलाइये ॥ ८ ॥

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे
संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रि-
द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥

तापत्रयेण अभिहितस्य घोरे संतप्य मानस्य भव अध्वनि ईश पश्यामि न अन्यत् शरणं तव अङ्घ्रि द्वन्द्व आतपत्रात् अमृत अभिवर्षात् ॥ ९ ॥

ईश	- स्वामी !	**तव अङ्घ्रि-**	- आपके युगलचरण
भव अध्वनि	- संसारके मार्गमें	**द्वन्द्व**	रूपी
घोरे तापत्रयेण	- प्रचण्ड त्रिताप	**अमृत अभिवर्षात्**	- सर्वत्र अमृतवर्षी
अभिहितस्य	- कहे जाने वाले (संकट) से	**आतपत्रात्**	- छत्रको
		अन्यत्	- छोड़कर दूसरा
संतप्य मानस्य	- जलते हुए के लिए	**शरणं न पश्यामि**	- आश्रय नहीं देखता हूँ ॥ ९ ॥

दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्
कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ।
समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यै-
र्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥

दष्टं जनं संपतितं बिले अस्मिन् काल अहिना क्षुद्र सुख उरु तर्षं समुद्धर एनं कृपया अपवृग्यैः वचोभिः आसिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥

महानुभाव	- महान् प्रभावशाली प्रभु !	**उरुतर्षं**	- अत्यन्त प्यासे
अस्मिन् बिले	- इस (संसार रूपी) कुएं में	**एनं जनं**	- इस (अपने) सेवकका
		कृपया	- कृपापूर्वक
सम्पतितं	- गिरे हुए,	**समुद्धर**	- उद्धार कीजिए
काल अहिना	- काल रूपी सर्पसे	**अपवर्ग्यैः**	- मोक्षदायी वाणीसे
दष्टं	- डँसे हुए	**वचःभिः**	
छुद्र सुख	- तुच्छ सुखों की (इच्छा रूपी)	**आसिञ्च**	- (इसे) भरपूर स्नान कराइये ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच--

इत्थमेतत् पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् ।
अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥

इत्थं एतत् पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरं अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नः अनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥

इत्थं एतत्	- इसी प्रकार यह	**अजातशत्रुः**	- युधिष्ठिरने
पुरा	- पहिले	**नः सर्वेषां**	- हम सब लोगोंके
धर्म भृतांवरं	- धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ	**अनुशृण्वतां**	- बराबर सुनते हुए
भीष्मं राजा	- भीष्मसे राजा	**पप्रच्छ**	- पूछा था ॥ ११ ॥

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविप्लवः ।
श्रुत्वा धर्मान् बहून् पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ॥ १२ ॥

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृत् निधन विप्लवः श्रुत्वा धर्मान् बहून् पश्चात् मोक्षधर्मान् अपृच्छत ॥ १२ ॥

भारते युद्धे	- महाभारत युद्धके	**बहून् धर्मान्**	- बहुत धर्मोंको
निवृत्ते	- समाप्त हो जानेपर	**श्रुत्वा पश्चात्**	- सुनकर पीछे
सुहृत् निधन	- सम्बन्धियोंके मारे जानेसे	**मोक्ष धर्मान्**	- मोक्षके साधन
विह्वलः	- व्याकुल (युधिष्ठिर) ने	**अपृच्छत**	- पूछे ॥ १२ ॥

तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ।
ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥ १३ ॥

तान् अहं ते अभिधास्यामि देवव्रत मुखात् श्रुतान् ज्ञान वैराग्य विज्ञान श्रद्धा भक्ति उपबृंहितान् ॥ १३ ॥

देवव्रत	- भीष्मके	**भक्ति-**	- भक्ति समन्वित
मुखात् श्रुतान्	- मुखसे सुने	**उपबृंहितान्**	
ज्ञान वैराग्य	- ज्ञान, वैराग्य,	**तान् अहं**	- उन (साधनों) को मैं
विज्ञान श्रद्धा	- विज्ञान, श्रद्धा,	**ते अभिधास्यामि**	- तुमसे कहूंगा ॥१३॥

नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै ।
ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

नव एकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै ईक्षेत अथ एकं अपि एषु तत् ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥

वै भूतेषु	- निश्चित रूपसे प्राणियोंमें	**भावान्**	- तत्त्वोंको
नव	- नौ (प्रकृति, पुरुष, महतत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा)	**अथ एकं अपि**	- फिर एक (आत्मा) को भी
एकादश	- (दस इन्द्रियां और मन) ग्यारह,	**ईक्षेत**	- देखता है
पञ्चत्रीन्	- पंचमहाभूत, तीन गुण (इन अठ्ठाइस)	**तत् निश्चितं**	- वह निश्चित रूपसे
		मम ज्ञानं	- मेरा ज्ञान है ॥ १४ ॥

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् ।
स्थित्युत्पत्त्यप्ययान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥

एतत् एव हि विज्ञानं न तथा एकेन येन यत् स्थिति उत्पति अप्ययान् पश्येत् भावानां त्रिगुण आत्मनां ॥ १५ ॥

हि एतत् एव	- क्योंकि इतना ही	**येन एकेन**	- जिस एक के द्वारा
विज्ञानं	- विज्ञान है कि	**यत् स्थिति**	- जिससे ही स्थिति,
त्रिगुण आत्मनां	- त्रिगुणमय	**उत्पत्ति-**	- सृष्टि, प्रलय होती है
भावानां	- तत्त्वोंको	**अप्ययान्**	
तथा न	- उस प्रकार (पृथक पृथक) नहीं,	**पश्येत्**	- (उसे) देखे ॥ १५ ॥

आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात् सृज्यं यदन्वियात् ।
पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ॥ १६ ॥

आदाः अन्ते च मध्ये च सृज्यात् सृज्यं यत् अन्वियात् पुनः तत् प्रति संक्रामे यत् शिष्येत तत् एव सत् ॥ १६ ॥

सृज्यात्	- सृष्टि हुओंके	**पुनः तत्**	- फिर उनको
आदाः अन्ते च	- आदि-अन्तमें तथा	**प्रति संक्रामे**	- उलटा समेट लेने पर (प्रलय होनेपर)
मध्ये च	- बीचमें भी		
यत् सृज्यं	- जो सृष्टिका उपादान	**यत् शिष्येत**	- जो बच रहता है
अन्वियात्	- व्याप्त रहता है,	**तत् एव सत्**	- वही सत् है ॥ १६ ॥

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते ॥ १७ ॥

श्रुतिः प्रत्यक्षं ऐतिह्यं अनुमानं चतुष्टयं प्रमाणेषु अनवस्थानात् विकल्पात् स विरज्यते ॥ १७ ॥

श्रुतिः प्रत्यक्षं - श्रुति, प्रत्यक्ष,
ऐतिह्यं - इतिहास (महात्माओंके अनुभव)
अनुमानं - तथा अनुमान
चतुष्टयं प्रमाणेषु - इन चारों प्रमाणोंसे
अनवस्थानात् - एक स्थितिमें न रहनेके कारण
विकल्पात् - इस विविध रूप जगतसे
स विरज्यते - वह (विवेकी) विरक्त हो जाता है ॥ १७ ॥

कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमंगलम् ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥

कर्मणां परिणामित्वात् आविरिञ्चात् अमंगलं विपश्चित् नश्वरं पश्येत् अदृष्टं अपि दृष्टवत् ॥ १८ ॥

विपश्चित् - विवेकी पुरुष
कर्मणां - कर्मोंके
परिणामित्वात् - फलसे प्राप्त होनेके कारण
आविरिञ्चात् - ब्रह्मलोक पर्यन्त
अदृष्टं अपि - अनदेखे लोकोंको भी
दृष्टवत् - देखे (संसार) की भांति
अमंगलं - अशुभ एवं
नश्वरं पश्येत् - विनाशवान देखे ॥ १८ ॥

भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥

भक्ति योगः पुरा एव उक्तः प्रीयमाणाय ते अनघ पुनः च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥ १९ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !
भक्तियोगः - भक्ति योग
पुरा एव उक्तः - पहिले ही कह चुका हूँ,
ते प्रीयमाणाय - (किन्तु) तुम्हारी बहुत प्रीति होनेसे
मद्भक्तेः - मेरी भक्तिके
परं कारणं - श्रेष्ठ साधन
पुनः च - फिरसे
कथयिष्यामि - वर्णन करूँगा ॥ १९ ॥

श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥

श्रद्धा अमृत कथायां मे शश्वत् मत् अनुकीर्तनं परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥ २० ॥

मत् अमृत कथायां	- मेरी अमृतमयी कथामें	**च पूजायां**	- तथा पूजामें
श्रद्धा !	- श्रद्धा हो,	**परिनिष्ठा**	- दृढ़ निष्ठा हो
शश्वत् मे	- सदा मेरा	**स्तुतिभिः**	- स्त्रोत्रों द्वारा
अनुकीर्तनं	- बार-बार कीर्तन करे,	**मम स्तवनं**	- मेरी स्तुति करे ॥ २० ॥

आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ २१ ॥

आदरः परिचर्यायां सर्व अंगैः अभिवन्दनं मत् भक्त पूजा अभि अधिका सर्वभूतेषु मत् मतिः ॥ २१ ॥

परिचर्यायां	- (मन्दिरकी) सेवामें	**मत् भक्त**	- मेरे भक्तकी
आदरः	- आदर भाव,	**पूजा अभि-अधिका**	- पूजा और अधिक करना
सर्वांङ्गै	- सब अंगोंसे (दण्डवत)	**सर्व भूतेषु**	- सब प्राणियोंमें
अभिवन्दनं	- प्रणान करना,	**मत् मतिः**	- मेरी भावना करना ॥ २१ ॥

मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥

मत् अर्थेषु अंग चेष्टा च वचसा मत् गुण ईरणं मयि अर्पणं च मनसः सर्व काम विवर्जनम् ॥ २२ ॥

अंग चेष्टा	- शरीरकी चेष्टा	**च मनसः**	- और मनको
मत् अर्थेषु	- मेरे लिए ही करे,	**मयि अर्पणं**	- मुझे अर्पित करदे,
च वचसा	- तथा वाणीसे	**सर्व कर्म**	- सब कामनायें
मत् गुण ईरणं	- मेरे गुणोंका वर्णन करे,	**विवर्जनं**	- त्याग दे ॥ २२ ॥

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥ २३ ॥

मत अर्थे अर्थ परित्यागः भोगस्य च सुखस्य च इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मत् अर्थं यत् व्रतं तपः ॥ २३ ॥

मत् अर्थे	- मेरे लिए	**यत् इष्टं**	- जो यज्ञ,
अर्थ च भोगस्य	- धन तथा भोगका	**दत्तं हुतं**	- दान, हवन,
च सुखस्य	- एवं सुखका	**जप्तं व्रतं तपः**	- जप, व्रत, तप करे
परित्यागः	- परित्याग करे,	**मत् अर्थं**	- मेरे लिए करे ॥२३॥

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि सञ्जायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥ २४ ॥

एवं धर्मैः मनुष्याणां उद्धव आत्म निवेदिनां मयि सञ्जायते भक्तिः कः अन्यः अर्थः अस्य अवशिष्यते ॥ २४ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**मयि भक्तिः**	- मुझमें भक्ति
एवं धर्मैः	- इस प्रकारके धर्म वाले	**सञ्जायते**	- उत्पन्न हो जाती है,
आत्म निवेदिनां	- आत्म समर्पण करने वाले	**कः अन्यः अर्थः**	- फिर कौनसा दूसरा पुरुषार्थ
मनुष्याणां	- मनुष्योंमें	**अवशिष्यते**	- बचा रहता है ? ॥ २४ ॥

यदात्मन्यर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्वोपबृंहितम् ।
धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥ २५ ॥

यदा आत्मनि अर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्व उपबृंहित धर्म ज्ञान स वैराग्यं ऐश्वर्यं च अभिपद्यते ॥ २५ ॥

यदा आत्मनि	- जब आत्मामें	स वैराग्यं	- (तब) वैराग्यके साथ
अर्पितं चित्तं	- लगाया चित्त	धर्म ज्ञानं च	- धर्म, ज्ञान तथा
शान्तं	- शान्त तथा	ऐश्वर्यं	- ऐश्वर्य
सत्त्व उपबृंहितं	- सत्त्वगुण सम्पन्न हो जाता है	अभिपद्यते	- स्वयं आ जाते हैं ॥ २५ ॥

यदर्पितं तद् विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति ।
रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥

यत् अर्पितं तत् विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति रजस्वलं च असत् निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥

विकल्पे	- इस विविध कल्पनाओं से भरे (संसार) में	रजस्वलं- चित्तं च	- रजोगुणी होकर चित्त भी
यत् अर्पितं	- जो लगायी हुई	परिधावति	- उसी ओर दौड़ता है
इन्द्रियैः	- इन्द्रियोंके कारण	तत् असत्- निष्ठं	- उसे असत् में लगा
		विपर्ययं विद्धि	- उलटी वृत्तिका समझो ॥ २६ ॥

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ।
गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥

धर्मः मत् भक्तिकृत् प्रोक्तः ज्ञानं च एक आत्म्यदर्शनं गुणेषु असंगः वैराग्यं ऐश्वर्यं च अणिमा आदयः ॥ २७ ॥

मत् भक्तिकृत् - जो मेरी भक्ति उत्पन्न करे,
धर्मः - (वह) धर्म,
च एक-आत्मदर्शनं - तथा आत्माको एक ही देखना
ज्ञानं - ज्ञान,
गुणेषु असंगः - गुणोंमें अनासक्ति
वैराग्यं - वैराग्य
च अणिमा आदयः - एवं अणिमा आदि सिद्धियां
ऐश्वर्यं प्रोक्तः - ऐश्वर्य कही गयी हैं ॥ २७ ॥

उद्धव उवाच—

यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वारिकर्शन ।
कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥

यमः कतिविधः प्रोक्तः नियमः वा अरिकर्शन कः शमः कः दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥ २८ ॥

प्रभो अरिकर्शन - प्रभो ! शत्रुनाशक
कृष्ण - श्रीकृष्ण !
यमः वा नियमः - यम तथा नियम
कति विधः - कितने प्रकारके
प्रोक्तः - कहे गये हैं ?
कः शमः - शम क्या है ?
कः दमः - दम क्या है ?
तितिक्षा - तितीक्षा एवं
धृतिः का - धृति क्या है ? ॥ २८ ॥

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ।
कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यं ऋतं उच्यते कः त्यागः किं धनं च इष्टं कः यज्ञः का च दक्षिणा ॥ २९ ॥

किं दानं - दान क्या ?
किं तपः - तप क्या है ?
शौर्यं किं - शौर्य क्या है ?
सत्यं ऋतं-उच्यते - (किसे) सत्य और ऋत कहा जाता है ?
कः त्यागः - त्याग क्या है ?
च इष्टं धनं कः - और अभीष्ट धन क्या है ?
कः यज्ञः - यज्ञ क्या है
च का दक्षिणा - एवं दक्षिणा क्या है ? ॥ २९ ॥

पुंसः किंस्विद् बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव ।
का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥

पुंसः किं स्वित् बलं श्रीमन् भगः लाभः च केशव का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखं एव च ॥ ३० ॥

श्रीमन् केशव	- श्रीमान केशव !	**विद्या परा ह्रीः**	- विद्या एवं उत्तम-लज्जा
पुंसः बलं	- पुरुषका बल,	**का**	- क्या है ?
भगः च लाभः	- ऐश्वर्य और लाभ	**का श्रीः**	- लक्ष्मी क्या है ?
किं स्वित्	- क्या हैं ?	**सुखं च दुःखं एव**	- सुख और दुःख भी
		किं	- क्या हैं ? ॥ ३० ॥

कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः ।
कः स्वर्गो नरकः कः स्वित् को बन्धुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥

कः पण्डितः कः च मूर्खः कः पन्था उत्पथः च कः कः स्वर्गः नरकः कः स्वित् कः बन्धुः उत किं गृहम् ॥ ३१ ॥

कः पण्डितः	- पण्डित कौन है ?	**कः स्वर्गः**	- स्वर्ग क्या है ?
च कः मूर्खः	- और कौन मूर्ख है ?	**कः नरकः स्वित्**	- एवं नरक क्या है ?
कः पन्था	- मार्ग क्या है ?	**कः बन्धुः**	- बन्धु कौन है ?
च उत्पथः कः	- तथा कुमार्ग क्या है ?	**उत किं गृहं**	- तथा घर क्या है ? ॥ ३१ ॥

क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः कः ईश्वरः ।
एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥ ३२ ॥

कः आढ्यः कः दरिद्रः वा कृपणः कः कः ईश्वरः एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतान् च सत्पते ॥ ३२ ॥

सत्पते	- भक्तोंके स्वामी !	**मम एतान्**	- मेरे इन प्रश्नोंको
कः आढ्यः	- धनवान कौन है ?	**प्रश्नान्**	
वा कः दरिद्रः	- अथवा दरिद्र कौन है?	**च विपरीतान्**	- तथा इनकी विरोधी
कृपणः कः	- कृपण कौन है ?		बातोंको
कः ईश्वरः	- समर्थ कौन है ?	**ब्रूहि**	- बतलाइये ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच–

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसञ्चयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥ ३३ ॥

अहिंसा सत्यं अस्तेयं असंगः ह्रीः असञ्चयः आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमा अभयम् ॥ ३३ ॥

अहिंसा सत्यं	- अहिंसा, सत्य	**आस्तिक्यं**	- आस्तिकता,
अस्तेयं असंगः	- चोरी न करना,	**ब्रह्मचर्यं**	- ब्रह्मचर्य,
	अनासक्ति,	**मौनं स्थैर्यं**	- मौन, स्थिरता,
ह्रीः असञ्चयः	- लज्जा, अपरिग्रह	**क्षमा च अभयं**	- क्षमा तथा निर्भयता
			॥ ३३ ॥

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥

शौचं जपः तपः होमः श्रद्धा आतिथ्यं मत् अर्चनं तीर्थ अटनं पर अर्थ ईहा तुष्टिः आचार्य सेवनम् ॥ ३४ ॥

शौचं जपः	- पवित्रता, जप,	**तीर्थ अटनं**	- तीर्थ यात्रा,
तपः होमः	- तप, हवन,	**परअर्थ ईहा**	- परोपकार का प्रयत्न,
श्रद्धा	- श्रद्धा, अतिथि सत्कार	**तुष्टिः**	- सन्तोष
आतिथ्यं		**आचार्य**	- गुरु बनाना,१
मत् अर्चनं	- मेरी पूजा,	**सेवनं**	- (गुरु-संतकी) सेवा करना
			॥ ३४ ॥

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥

एते यमाः स नियमाः उभयोः द्वादश स्मृताः पुंसां उपासिताः तात यथा कामं दुहन्ति हि ॥ ३५ ॥

तात	- प्रिय उद्धव !	**हि पुंसां-**	- क्योंकि ये पुरुष द्वारा
एते यमाः	- ये यम	**उपासिताः**	पालन किये जाने पर
स नियमाः	- नियमोंके साथ	**यथा कामं**	- (उसकी) जैसी कामना हो
उभयोः	- दोनों	**दुहन्ति**	- (उसे) पूरा करते हैं
द्वादश स्मृताः	- बारह बारह कहे गये हैं		॥ ३५ ॥

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ ३६ ॥

शमः मत् निष्ठता बुद्धिः दम इन्द्रिय संयमः तितिक्षा दुःख संमर्षः जिह्वा उपस्थ जयः धृतिः ॥ ३६ ॥

---

१ **'आचार्य सेवनं' को एक मानने पर जैसा कि अनेक टीकाकारोंने माना है, नियम ११ ही रह जाते हैं । कुछ टीकाकारों ने "शौच" आन्तरिक शौच को बाह्य अभ्यन्तर दो माना है; किन्तु शेष यम-नियमों से भिन्न तो कुछ है ही नहीं ।**

मत् निष्ठता- - बुद्धि मेरी परायणा हो
बुद्धिः
शमः - शम है,
इन्द्रिय संयमः - इन्द्रियोंका नियन्त्रण करना
दम - दम है,
दुःख संमर्षः - दुःखको सह लेना
तितिक्षा - तितीक्षा है,
जिह्वा- - जीभ और उपस्थको
उपस्थजयः जीत लेना
धृतिः - धृति है ॥ ३६ ॥

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥

दण्डन्यासः परं दानं कामः त्यागः तपः स्मृतं स्वभाव विजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥ ३७ ॥

दण्डन्यासः - (सब को ही) दण्ड देना छोड़ देना
परं दानं - उत्तम दान है,
कामः त्यागः - कामनाओं का त्याग
तपः स्मृतं - तपस्या कहा गया है,
स्वभाव विजयः - अपने स्वभावको जीत लेना
शौर्यं - शूरता है,
च समदर्शनं - तथा (सर्वत्र) समदृष्टि
सत्यं - सत्य है ॥ ३७ ॥

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता कर्मसु असंगमः शौचं त्यागः सन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥

च सूनृता वाणी - तथा सुमधुर वाणी
कविभिः ऋतं - विद्वानों द्वारा ऋत
परिकीर्तिता - सर्वत्र कही गयी है,
कर्मसु असंगमः - कर्मोंमें अनासक्ति
शौचं - शौच है,
सन्यास - सन्यासको
त्यागः उच्यते - त्याग कहा जाता है ॥ ३८ ॥

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञानसन्देशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञः अहं भगवत् तमः दक्षिणा ज्ञान सन्देशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥

नृणां इष्टं धनं	- मनुष्योंका अभीष्ट धन	**ज्ञान सन्देशः**	- ज्ञानोपदेश
धर्म	- धर्म है,	**दक्षिणा**	- दक्षिणा है,
अहं भगवत्	- मैं परमेश्वर	**प्राणायामः**	- प्राणायाम
तमः		**परंबलं**	- श्रेष्ठ बल है ॥ ३९ ॥
यज्ञः	- यज्ञ हूँ,		

भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ।
विद्याऽऽत्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥

भगः म ऐश्वरः भावः लाभः मत् भक्तिः उत्तमः विद्या आत्मनि भिदा बाधः जुगुप्सा ह्रीः अकर्मसु ॥ ४० ॥

म ऐश्वरः भावः	- मेरे ऐश्वर्यकी स्थिति	**बाधः विद्या**	- बाध हो जाना विद्या है,
भगः	- भग है,	**अकर्मसु**	- पाप करनेमें
मत् भक्तिः	- मेरी भक्ति	**जुगुप्सा ह्रीः**	- घृणा होना लज्जा है ॥ ४० ॥
उत्तमः लाभः	- उत्तम लाभ है,		
आत्मनि भिदा	- आत्मामें भेद-प्रतीतिका		

श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः ।
दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥ ४१ ॥

श्रीः गुणा नैरपेक्ष्य आद्याः सुखं दुःख सुख अत्ययः दुःखं काम सुख अपेक्षा पण्डितः बन्ध मोक्षवित् ॥ ४१ ॥

नैरपेक्ष्य आद्याः - निरपेक्षता आदि
गुणा श्रीः - गुण लक्ष्मी हैं,
दुःख सुख - दुःख-सुख से
अत्ययः सुखं - अतीत हो जाना सुख है,
काम सुख- - भोग सुखकी चाह
अपेक्षा
दुःखं - दुःख है,
बन्ध मोक्षवित् - बन्धन और मुक्तिको जानने वाला
पण्डितः - पण्डित है ॥ ४१ ॥

मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः ।
उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥ ४२ ॥

मूर्खः देह आदि अहं बुद्धिः पन्था मत् निगमः स्मृतः उत्पथः चित्त विक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुण उदयः ॥ ४२ ॥

देह आदि - शरीर आदिको
अहं बुद्धिः - 'मैं' मानने वाला
मूर्खः - मूर्ख है
मत् निगमः - मेरा प्रतिपादन करने वाला शास्त्र
पन्था स्मृतः - मार्ग कहा गया है,
चित्त विक्षेपः - चित्तकी चंचलता
उत्पथः - कुमार्ग है,
सत्त्वगुण उदयः - सत्त्वगुणकी अभिवृद्धि
स्वर्गः - स्वर्ग है ॥ ४२ ॥

नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे ।
गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥

नरकः तम उन्नाहः बन्धुः गुरुः अहं सखे गृहं शरीरं मानुष्यं गुण आढ्यः हि आढ्य उच्यते ॥ ४३ ॥

सखे - मित्र उद्धव !
तम उन्नाहः - तमोगुणकी अभिवृद्धि
नरकः - नरक है,
बन्धुः गुरुः - सम्बन्धी गुरु है (और वह)
अहं - मैं हूँ,
मानुष्यं शरीरं - मनुष्य शरीर
गृहं - घर है,
गुण आढ्यः - जो गुणोंसे धनी है, वही
हि आढ्य - क्योंकि धनवान कहा
उच्यते जाता है ॥ ४३ ॥

दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः ।
गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥

दरिद्रः यः तु असन्तुष्टः कृपणः यः अजित इन्द्रियः गुणेषु असक्त धीः ईशः गुणसंगः विपर्ययः ॥ ४४ ॥

यः तु-	- जो भी असन्तुष्ट है	**गुणेषु**	- गुणोंमें
असन्तुष्टः		**असक्तधीः**	- अनासक्त चित्त समर्थ है,
दरिद्रः	- दरिद्र है,	**ईशः**	
यः अजित-	- जो इन्द्रियजयी नहीं है	**गुणसंगः**	- गुणोंमें आसक्ति होनेसे
इन्द्रियः		**विपर्ययः**	- उल्टी स्थिति (पराधीनता)
कृपणः	- कृपण है,		होती है ॥ ४४ ॥

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ।
किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुण दोषयोः गुण दोष दृशेः दोषः गुणः तु उभय वर्जितः ॥ ४५ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**वर्णितेन किं**	- वर्णनसे क्या लाभ
एत ते सर्वे	- यह तुम्हारे सब	**गुण दोष**	- 'यह गुण है, यह दोष है'
प्रश्नाः	प्रश्नोंका	**दृशेः दोषः**	- यह देखना ही दोष है,
साधु निरूपिताः-	भली प्रकार विवेचन कर दिया गया	**गुणः तु**	- (वास्तविक) गुण तो
गुण दोषयोः	- गुण-दोषके	**उभय-**	- (गुण-दोष) दोनों को
बहुना लक्षणं	- बहुतसे लक्षण	**वर्जितः**	त्याग देना है ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ॥
अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

विधिः च प्रतिषेधः च निगमः हि ईश्वरस्य ते अवेक्षते अरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

अरविन्दाक्ष	- कमल लोचन !	**गुण-दोषं**	- गुण-दोषके अनुसार
ते ईश्वरस्य	- आप सर्वसमर्थ	**विधिः च**	- विधान तथा
निगमः च	- वेदस्वरूप द्वारा ही	**प्रतिषेधः च**	- निषेध भी
कर्मणां च	- कर्मोंका भी	**अवेक्षते**	- देखा जाता है ॥ १ ॥

वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ।
द्रव्यदेशवयःकालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥

वर्ण आश्रम विकल्पं च प्रतिलोम अनुलोमजं द्रव्य देश वयः कालान् स्वर्गं नरकं एव च ॥ २ ॥

वर्ण आश्रम	- वर्ण-आश्रम	**द्रव्य देश वयः**	- पदार्थ, स्थान, आयु,
च प्रतिलोम	- बड़े वर्णकी स्त्रीसे छोटे वर्णके पुरुष द्वारा	**कालान्**	- समयके अनुसार
		च स्वर्गं	- तथा स्वर्ग,
अनुलोमजं	- या बड़े वर्णके पुरुष द्वारा छोटे वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न लोगोंकी एवं	**नरकं एव**	- नरककी भी
		विकल्पं	- अनेक प्रकारकी कल्पना ॥ २ ॥

गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण वचस्तव ॥
निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥

गुण दोष भिदा दृष्टिं अन्तरेण वचः तव निःश्रेयसं कथं नृणां निषेध विधि लक्षणम् ॥ ३ ॥

निषेध विधि - निषेध-विधि
लक्षणं - सूचक
गुणदोष भिदा - गुण-दोषका भेद करने वाली
दृष्टिं तव वचः - दृष्टि आपकी वाणीके अनुसार
अन्तरेण - त्याग देनेपर
नृणां निःश्रेयसं - मनुष्योंका परम कल्याण
कथं - कैसे होगा ? ॥ ३ ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ॥
श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥

पितृ देव मनुष्याणां वेदः चक्षुः तव ईश्वर श्रेयः तु अनुपलब्धे अर्थे साध्य साधनयोः अपि ॥ ४ ॥

ईश्वर - स्वामी !
अनुपलब्धे - इन्द्रियोंसे अगोचर
अर्थे - तत्त्व,
श्रेयः तु - श्रेयके तो
साध्य- - साध्य (निर्णय) तथा
साधनयोः अपि - साधनमें भी
पितृ देव - पितर, देवता,
मनुष्याणां - मनुष्योंके लिए
तव वेदः चक्षुः - आपका वेद स्वरूप ही दृष्टि है ॥ ४ ॥

गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः ॥
निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥

गुण दोष भिदा दृष्टिः निगमात् ते न हि स्वतः निगमेन अपवादः च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥

हि ते निगमात् - क्योंकि उस आप वेद स्वरूपसे ही
गुण दोष - गुण-दोषका
भिदा दृष्टिः - भेद करने वाली दृष्टि होती है
स्वतः न - स्वयं नहीं होती,
भिदाया-अपवादः च - भेदका निषेध भी
निगमेन - आपकी वाणीसे ही होरहा है
इति ह भ्रमः - यह निश्चित भ्रमकी बात है ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

योगाः त्रयः मया प्रोक्ता नृणां श्रेयः विधित्सया ज्ञानं कर्म च भक्तिः च न उपायः अन्यः अस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

नृणां श्रेयः - मनुष्योंके कल्याणका
विधित्सया - विधान करनेकी इच्छासे
मया त्रयः योगाः - मेरे द्वारा तीन योग
प्रोक्ता - कहे गये हैं,
ज्ञानं च कर्म - ज्ञान और कर्म
च भक्तिः - एवं भक्ति,
अन्यः उपायः - इनसे भिन्न (कोई) उपाय
कुत्रचित् न अस्ति - कहीं भी नहीं है ॥ ६ ॥

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥ ७ ॥

निर्विण्णानां ज्ञान योगः न्यासिनां इह कर्मसु तेषु अनिर्विण्ण चित्तानां कर्मयोगः तु कामिनाम् ॥ ७ ॥

इह कर्मसु न्यासिनां - इस लोकमें कर्मोंका (स्वरूपतः) त्याग करने वाले
निर्विण्णानां ज्ञानयोगः - विरक्तोंके लिए ज्ञान योग है,
तेषु - उन (कर्मों) से
अनिर्विण्ण-चित्तानां - जिनका चित्त विरक्त नहीं हुआ है
कामिनां तु कर्मयोगः - उन भोगेच्छु लोगों के लिए तो कर्मयोग है ॥ ७ ॥

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥

यदृच्छया मत् कथा आदौ जात श्रद्धः तु यः पुमान् न निर्विण्णः न अति सक्तः भक्ति योगः अस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥

यदृच्छया - संयोगवश	**न निर्विण्णः** - पर (वह) न विरक्त है,
मत् कथा आदौ - मेरी कथा आदिमें	**न अतिसक्तः** - न बहुत आसक्त है,
यः पुमान् - जिस पुरुषकी	**भक्तियोगः** - भक्तियोग
जात श्रद्धः - श्रद्धा उत्पन्न होगयी है,	**अस्य सिद्धिदः** - इसे सफलता देने वाला है ॥ ८ ॥

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता मत् कथा श्रवण आदौ वा श्रद्धा यावत् न जायते ॥ ९ ॥

यावता - जब तक	**यावत् श्रद्धा** - जब तक श्रद्धा
निर्विद्येत न - विरक्त न होजाय	**न जायते** - न उत्पन्न होजाय
वा मत् कथा - अथवा मेरी कथा	**तावत्** - तब तक
श्रवण आदौ - सुनने आदि में	**कर्माणि कुर्वीत** - कर्मोंको करे ॥ ९ ॥

स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव ।
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥

स्वधर्मस्थः यजन् यज्ञैः अनाशीः काम उद्धव न याति स्वर्ग नरकौ यदि अन्यत् न समआचरेत् ॥ १० ॥

उद्धव - उद्धव !	**यदि अन्यत्** - यदि दूसरा (निषिद्ध कर्म)
स्वधर्मस्थः - अपने (वर्णाश्रम) धर्ममें स्थित होकर	**न समाचरेत्** - नहीं करता तो
अनाशीः काम - निष्काम भावसे	**स्वर्ग नरकौ** - स्वर्ग या नरक
यज्ञैः यजन् - यज्ञ करता हुआ	**न याति** - नहीं जाता ॥ १० ॥

अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥

अस्मिन् लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थः अनघः शुचिः ज्ञानं विशुद्धं आप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥ ११ ॥

अस्मिन् लोके	- इसी लोकमें	**यदृच्छया**	- अनायास
वर्तमानः	- रहते हुए ही	**विशुद्धं ज्ञानं**	- शुद्ध ज्ञान
स्वधर्मस्थः	- अपने धर्ममें स्थित	**वा मद्भक्तिं**	- अथवा मेरी भक्ति
अनघः शुचिः	- निष्पाप पवित्र व्यक्ति	**आप्नोति**	- प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा ।
साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥

स्वर्गिणः अपि एतं इच्छन्ति लोकं निरयिणः तथा साधकं ज्ञान भक्तिभ्यां उभयं तत् असाधकम् ॥ १२ ॥

तत् असाधकं	- उस साधनके अयोग्य	**एतं ज्ञान**	- इस ज्ञान एवं
उभयं	- दोनों	**भक्तिभ्यां**	- भक्तिके द्वारा
स्वर्गिणः	- स्वर्गवासी भी	**साधकं लोकं**	- साधनके योग्य लोकको
तथा निरयिणः	- तथा नरवासी	**इच्छन्ति**	- चाहते हैं ॥ १२ ॥

न नरः स्वर्गतिं काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ।
नेमं लोकं च काङ्क्षेत देहावेशात् प्रमाद्यति ॥ १३ ॥

न नरः स्वः गतिं काङ्क्षेत् नारकीं वा विचक्षणः न इमं लोकं च काङ्क्षेत देह आवेशात् प्रमाद्यति ॥ १३ ॥

विचक्षणः नरः - बुद्धिमान पुरुष
स्वःगतिं - स्वर्ग जानेकी
वा न नारकीं - और न नरक जानेकी
काङ्क्षेत् - आकांक्षा करे
इमं लोकं च - यह लोक (मनुष्य देह) भी
न काङ्क्षेत - न चाहे (क्योंकि)
देह आवेशात् - देहाभिमान होजानेसे
प्रमाद्यति - प्रमाद करता है ॥१३॥

एतद् विद्वान् पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ।
अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥ १४ ॥

एतत् विद्वान् पुरा मृत्योः अभवाय घटेत सः अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यं अपि अर्थ सिद्धिदम् ॥ १४ ॥

एतत् विद्वान् - यह जानकर
सः अप्रमत्त - वह सावधान होकर
इदं मर्त्यं अपि - इस देहको विनाशवान होनेपर भी
अर्थ सिद्धिदं - परमार्थ सिद्धि देने वाला
ज्ञात्वा - जानकर
मृत्योः पुरा - मरनेसे पहिले ही
अभवाय घटेत - मोक्षके लिए प्रयत्न करे ॥ १४ ॥

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ।
खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलम्पटः ॥ १५ ॥

छिद्यमानं यमैः एतैः कृतनीडं वनस्पतिम् खगः स्वकेतं उत्सृज्य क्षेमं याति हि अलम्पटः ॥ १५ ॥

कृत नीडः - जिस पर घोंसला बनाया है
एतैः वनस्पतौ - इस (शरीर) वृक्षको
यमैः छिद्यमानं - यमराज द्वारा काटे जानेपर
हि अलम्पटः - क्योंकि आसक्त नहीं है
खगः स्वकेतं - (आत्मा) पक्षी अपनाघर (देह)
उत्सृज्य - त्यागकर
क्षेमं याति - सकुशल चला जाता है ॥ १५ ॥

अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ।
मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥

अहः रात्रैः छिद्यमानं बुद्ध्वा आयुः भयवेपथुः मुक्तसंगः परंबुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥

अहः रात्रैः	- दिन-रात द्वारा	मुक्तः संगः	- आसक्ति त्यागकर
छिद्यमानं	- काटी जाती	परं बुद्ध्वा	- परमात्माको जानकर
आयुः बुद्ध्वा	- आयु जानकर	निरीह	- निरपेक्ष होकर
भयवेपथुः	- भयसे कांपता हुआ,	उपशाम्यति	- शान्त हो जाता है ॥ १६ ॥

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ १७ ॥

नृदेहं आद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं मया अनुकूलेन नभस्वता ईरितं पुमान् भव अब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ १७ ॥

सुकल्पं प्लवं	- सुदृढ़ नौका रूप	मया	- मेरे द्वारा
सुदुर्लभं	- अत्यन्त दुर्लभ	अनुकूलेन	- अनुकूल
नृदेहं आद्यं	- मनुष्य शरीर पहिले ही	नभस्वता	- वायु द्वारा
सुलभं	- सुलभ होगया,	ईरितं	- प्रेरित होनेपर भी
गुरु कर्णधारं	- गुरु इसके कर्णधार हैं	पुमान्	- (जो) पुरुष
		भव अब्धिं	- संसार सागरको
		तरेत् न	- पार न कर जाय
		स आत्महा	- वह आत्मघाती है ॥ १७ ॥

यदाऽऽरम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः ।
अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥ १८ ॥

यदा आरम्भेषु निर्विण्णः विरक्तः संयत इन्द्रियः अभ्यासेन आत्मनः योगी धारयेत् अचलं मनः ॥ १८ ॥

यदा आरम्भेषु - जब कर्मारम्भसे	**योगी आत्मनः** - योगी अपने मनको
निर्विण्णः - खिन्न होकर	**मनः**
विरक्तः - वैराग्यवान होजाय,	**अचलं धारयेत्** - स्थिर करे ॥ १८ ॥
संयत इन्द्रियः - (तब) इन्द्रिय संयम (प्रत्याहार) करके	

धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् ।
अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥

धार्यमाणं मनः यर्हि भ्राम्यत् आशु अनवस्थितं अतन्द्रितः अनुरोधेन मार्गेण आत्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥

यर्हि धार्यमाणं - जब स्थिर करते समय	**आशु अतन्द्रितः** - शीघ्र सावधान होकर
अनवस्थितम् - चञ्चल मन	**अनुरोधेन मार्गेण** - समझानेके उपायसे
मनः	**आत्मवशं** - अपने वशमें
भ्राम्यत् - भटकने लगे तब	**नयेत्** - ले आवे ॥ १९ ॥

मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः ।
सत्त्वसम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥

मनः गतिं न विसृजेत् जितप्राणः जित इन्द्रियः सत्त्व सम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥

जितप्राणः	- प्राण वायुको जीतकर	**सत्त्व सम्पन्नया**	- सत्त्वगुण युक्ता
जित इन्द्रियः	- इन्द्रियोंको जीतकर	**बुद्ध्या मन**	- बुद्धिसे मनको
मनः गतिं	- मनको घूमनेके लिए	**आत्मवशं**	- अपने वशमें
न विसृजेत्	- नहीं छोड़े,	**नयेत्**	- ले आवे ॥ २० ॥

एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ।
हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥

एष वै परमः योगः मनसः संग्रहः स्मृतः हृदयज्ञत्वं अनु इच्छन् दम्यस्य इव अर्वतः मुहुः ॥ २१ ॥

दम्यस्य	- नियन्त्रण किये जाने वाले	**मुहुः मनसः सङ्ग्रहः**	- बार बार मन वशमें लाना
अर्वतः इव	- घोड़ेकी भांति		
हृदयज्ञत्वं	- अपना भाव जानने वाला	**वै एष**	- निश्चय यही
अनुइच्छन्	- बनानेकी इच्छासे	**परमः योगः स्मृतः**	- श्रेष्ठ योग कहा गया है ॥ २१ ॥

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ।
भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत् प्रसीदति ॥ २२ ॥

सांख्येन सर्व भावानां प्रतिलोम अनुलोमतः भव अप्ययाः अनुध्यायेत् मनः यावत् प्रसीदति ॥ २२ ॥

सांख्येन	- सांख्य शास्त्रके अनुसार	**अप्ययाः**	- प्रलयादिका
भव सर्व भावानां	- संसारके सब तत्त्वोंका	**अनुध्यायेत्**	- बार-बार चिन्तन करे
		यावत् मनः	- जब तक मन
प्रतिलोम	- प्रलयक्रम तथा	**प्रसीदति**	- निर्मल हो जाय ॥ २२ ॥
अनुलोमतः	- सृष्टि क्रमसे		

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ।
मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥ २३ ॥

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्य उक्तवेदिनः मनः त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्य अनुचिन्तया ॥ २३ ॥

निर्विण्णस्य - (संसारसे) खिन्न,
विरक्तस्य - वैराग्यवान्,
उक्तवेदिनः - (गुरुके) उपदेशको समझने वाले
चिन्तितस्य - मनन किये (तत्त्व) का
अनुचिन्तया - बार-बार मनन करनेसे
पुरुषस्य मनः - पुरुषका मन
दौरात्म्यं - दुष्टता (चंचलता)
त्यजति - त्याग देता है ॥ २३ ॥

यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ।
ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥

यम आदिभिः योगपथैः आन्वीक्षिक्या च विद्यया मम आचार्य उपासनाभिः वा न अन्यैः योग्यं स्मरेत् मनः ॥ २४ ॥

यम आदिभिः - यम आदि
योगपथैः - योग मार्गसे,
च आन्वीक्षिक्या - तथा (वस्तुका) सूक्ष्म निरीक्षण करने वाली
विद्यया - अध्यात्म विद्यासे
वा मम - अथवा मेरी एवं
आचार्य उपासनाभिः - गुरुकी उपासनासे
योग्यं अन्यैः - उपयुक्त दूसरा
मनः न स्मरेत् - मनके लिए (उपाय) नहीं सोचा जाता ॥ २४ ॥

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ।
योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥ २५ ॥

यदि कुर्यात् प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितं योगेन एव दहेत् अंहः न अन्यत् तत्र कदाचन ॥ २५ ॥

यदि योगी - यदि योगी
प्रमादेन - असावधानीके कारण
विगर्हितं - निन्दित
कर्म कुर्यात् - कर ले तो
योगेन एव - योगके द्वारा ही
अंहः दहेत् - (उस) पापको भस्म करदे,
तत्र कदाचन - उसके लिए कभी भी
अन्यत् न - दूसरा (प्रायश्चित) नहीं है ॥ २५ ॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ।
गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥ २६ ॥

स्वे स्वे अधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः कर्मणां जाति अशुद्धानां अनेन नियमः कृतः गुण दोष विधानेन संगानां त्याजन इच्छया ॥ २६ ॥

स्वे स्वे- - अपने अपने
अधिकारे अधिकारमें
या निष्ठा - जो निष्ठा है,
स गुणः - वही गुण
परिकीर्तितः - कही गयी है,
जाति अशुद्धानां - स्वभावतः अशुद्ध
कर्मणां - कर्मोंके सम्बन्धमें
अनेन - इसीसे
त्याजन इच्छया - उनको छुड़ानेकी इच्छासे
गुण दोष विधानेन - गुण-दोषका विधान करके
नियमः कृतः - (शास्त्रने उनपर) नियन्त्रण किया है ॥ २६ ॥

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥

जातश्रद्धः मत् कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु वेद दुःख आत्मकान् कामान् परित्यागे अपि अनीश्वरः ॥ २७ ॥

मत् कथासु - मेरी कथामें
जात श्रद्धः - श्रद्धा उत्पन्न होगयी है,
सर्व कर्मसु - सब कर्मोंसे
निर्विण्णः - खिन्न होगया है,
कामान् - भोगोंको
दुःख आत्मकान् वेद - दुःख स्वरूप जानता है,
परित्यागे अपि - किन्तु (उनको) छोड़नेमें भी
अनीश्वरः - असमर्थ है ॥ २७ ॥

ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥

ततः भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुः दृढ़ निश्चयः जुषमाणः च तान् कामान् दुःख उदर्कान् च गर्हयन् ॥ २८ ॥

ततः श्रद्धालुः - तब श्रद्धा करके
दृढ़ निश्चयः - दृढ़ निश्चयपूर्वक
प्रीतः मां भजेत - प्रसन्नतापूर्वक मेरा भजन करे
च तान् - तथा उन
दुःख उदर्कान् - दुःखदायक
कामान् - भोगोंको
जुषमाणः च - भोगता हुआ भी
गर्हयन् - (उनकी) निन्दा करता रहे ॥ २८ ॥

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो मासकृन्मुनेः ।
कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतः मा असकृत् मुनेः कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥ २९ ॥

मुनेः - मननशील साधकके
प्रोक्तेन - बतलाये हुए
भक्तियोगेन - भक्तियोग द्वारा
असकृत् - निरन्तर
माभजतः - मेरा भजन करनेसे
मयि हृदिस्थिते - मेरे हृदयमें विराजनेसे
हृदय्या - हृदयमें स्थित
सर्वे कामा - सब कामनायें
नश्यन्ति - नष्ट हो जाती हैं ॥ २९ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि ॥ ३० ॥

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते च अस्य कर्माणि मयि दृष्टे अखिल आत्मनि ॥ ३० ॥

मयि अखिल आत्मनि - मुझ सर्वात्माका	**भिद्यते** - टूट जाती है,
दृष्टे - साक्षात्कार होनेपर	**सर्व संशयाः** - सब सन्देह
अस्य हृदय ग्रन्थिः - इसकी हृदय ग्रन्थि	**छिद्यन्ते** - कट जाते हैं,
	कर्माणि च - कर्म भी
	क्षीयन्ते - नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥

तस्मात् मत् भक्ति युक्तस्य योगिनः वै मत् आत्मनः न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयः भवेत् इह ॥ ३१ ॥

तस्मात् - इसलिए	**न ज्ञानं** - न ज्ञानकी,
मत्-भक्तियुक्तस्य - मेरी भक्ति करने वाले	**च न वैराग्यं** - तथा न वैराग्य की (आवश्यकता है)
मत् वै आत्मनः - मुझमें निश्चित चित्त लगानेके लिए	**इह प्रायः** - इसी जीवनमें प्रायः
	श्रेयः भवेत् - (उसका) कल्याण हो जाता है ॥ ३१ ॥

यत् कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ ३२ ॥

यत् कर्मभिः यत् तपसा ज्ञान वैराग्यतः च यत् योगेन दान धर्मेण श्रेयः भिः इतरैः अपि ॥ ३२ ॥

यत् कर्मभिः - जो सत्कर्मोंसे,
यत् तपसा - जो तपस्यासे,
च यत् - तथा जो
ज्ञान वैराग्यतः - ज्ञान, वैराग्यसे,
दान धर्मेण - दान या धर्मसे
इतरैः अपि - दूसरे भी
श्रेयः भिः - कल्याणके साधनोंसे
॥ ३२ ॥

सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽरञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥

सर्वं मत् भक्ति योगेन मत् भक्त लभते अञ्जसा सर्वं स्वर्ग अपवर्गं मत् धाम कथंचित् यदि वाञ्छति ॥ ३३ ॥

मत् भक्त - मेरा भक्त
यदि कथञ्चित् - यदि किसी प्रकार
वाञ्छति - चाहता है तो
मत् भक्ति योगेन - मेरी भक्तिके द्वारा ही
अञ्जसा सर्वं - परलतासे सब
स्वर्ग अपवर्गं - स्वर्ग, मोक्ष या
मत् धाम लभते - मेरा धाम प्राप्त कर लेता है ॥ ३३ ॥

न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥

न किञ्चित् साधवः धीरा भक्ता हि एकान्तिनः मम वाञ्छन्ति अपि मया दत्तं कैवल्यं अपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥

साधवः धीरा - साधु धैर्यशाली
हि मम-एकान्तिनः - क्योंकि मेरे अनन्य
भक्ता - भक्त
मया दत्तं अपि - मेरे देनेपर भी
कैवल्यं अपुनर्भवं - कैवल्य मोक्ष आदि
किञ्चित् न - कुछ भी नहीं
वाञ्छन्ति - चाहते ॥ ३४ ॥

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुः निःश्रेयसं अनल्पकं तस्मात् निराशिषः भक्तिः निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥

अनल्पकं	- महान्	**तस्मात्**	- इसलिए
परं निःश्रेयसं	- परम कल्याण	**निरपेक्षस्य**	- निरपेक्षको
नैरपेक्ष्यं प्राहुः	- निरपेक्षताको ही कहते हैं,	**मे निराशिषः**	- मेरी निष्काम
		भक्तिः भवेत्	- भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥

न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ।
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥

न मयि एकान्त भक्तानां गुण दोष उद्भवा गुणाः साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परं उपेयुषाम् ॥ ३६ ॥

मयि एकान्त-भक्तानां	- मेरे अनन्य भक्त,	**साधूनां**	- महात्माओंको
समचित्तानां	- समदर्शी	**गुण-दोष उद्भवा**	- गुण-दोषसे उत्पन्न
बुद्धेः परं	- बुद्धिसे अतीत	**गुणाः न**	- गुण (पाप-पुण्य) नहीं होते ॥ ३६ ॥
उपेयुषां	- अवस्थाको प्राप्त		

एवमेतान् मयाऽऽदिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

एवं एतान् मया आदिष्टान् अनुतिष्ठन्ति मे पथः क्षेमं विन्दन्ति मत् स्थानं यत् ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

एवं मया-	- इस प्रकार मेरे द्वारा	**यत् ब्रह्म-**	- जिसे परमब्रह्म जाना
आदिष्टान्	उपदिष्ट	**परमं विदुः**	गया है
एतान् मे पथः	- इस मेरे मार्ग पर	**मत् क्षेमं स्थानं**	- उस मेरे कल्याणमय
अनुतिष्ठन्ति	- जो बराबर चलते हैं वे		पदको
		विन्दन्ति	- प्राप्त करते हैं

॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

य एतान् मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ।
क्षुद्रान् कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥

य एतान् मत् पथः हित्वा भक्ति ज्ञान क्रिया आत्मकान् क्षुद्रान् कामान् चलैः प्राणैः जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥

य एतान्	- जो इन	**हित्वा क्षुद्रान्-**	- त्यागकर तुच्छ भोग
मत् पथः	- मेरी प्राप्तिके मार्ग,	**कामान्**	
भक्ति ज्ञान	- भक्ति योग, ज्ञान योग,	**चलैः प्राणैः**	- चंचल इन्द्रियों द्वारा
क्रिया आत्मकान्	- कर्म योग स्वरूपको	**जुषन्तः**	- भोगते रहते हैं
		ते संसरन्ति	- वे जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़े रहते हैं ॥ १ ॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥

स्वे स्वे अधिकारे या निष्ठा सगुणः परिकीर्तितः विपर्ययः तु दोषः स्यात् उभयोः एष निश्चयः ॥ २ ॥

स्वे स्वे	- अपने अपने	**विपर्ययः तु**	- इसके विपरीत (अनधिकार) चेष्टा तो
अधिकारे	- अधिकारके अनुसार (धर्ममें)	**दोषः स्यात्**	- दोष है,
या निष्ठा	- जो दृढ़ आस्था है	**उभयोः**	- दोनोंके सम्बन्धमें
स गुणः	- वही गुण	**एष निश्चयः**	- निर्णयका यही आधार है ॥ २ ॥
परिकीर्तितः	- कही गयी है,		

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥ ३ ॥

शुद्धि अशुद्धि विधीयेते समानेषु अपि वस्तुषु द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुण दोषौ शुभ अशुभौ ॥ ३ ॥

द्रव्यस्य - पदार्थका
विचिकित्सार्थं - सूक्ष्म-निरीक्षण करनेकी इच्छासे
वस्तुषु - पदार्थोंके
समानेषु अपि - एक समान होनेपर भी
शुद्धि अशुद्धि - (उनमें) शुद्ध-अशुद्ध,
गुण दोषौ - गुण-दोष तथा
शुभ अशुभौ - शुभ-अशुभका
विधीयेते - विधान होता है ॥३॥

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ ।
दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

धर्म अर्थं व्यवहार अर्थं यात्रा अर्थं इति च अनघ दर्शितः अयं मया आचारः धर्मं उद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥

अनघ - निष्पाप उद्धव !
धर्मधुरं - धर्मका भार
उद्वहतां - ढोने वाले (कर्म जड़ों) के
धर्म अर्थं - धर्माचरणके लिए,
व्यवहार अर्थं - व्यवहारको (ठीक) चलानेके लिए
यात्रा अर्थं च - (लोगोंके) जीवन-निर्वाहके लिए भी
इति अयं - इस प्रकारका यह
आचारः - आचरण-व्यवस्था
मया दर्शितः - मेरे (मनुआदि रूप) द्वारा दिखलायी गयी है ॥ ४ ॥

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः ।
आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥

भूमि अम्बु अग्नि अनिल आकाशा भूतानां पञ्च धातवः आब्रह्म स्थावरादीनां शारीरा आत्म संयुताः ॥ ५ ॥

आब्रह्म - ब्रह्मासे लेकर
स्थावरादीनां - स्थावर वृक्षादि तक
भूतानां - प्राणियोंके
शारीरा - शरीरोंमें
भूमि अम्बु - पृथ्वी, जल,
अग्नि अनिल - अग्नि, वायु,
आकाशा - आकाश
पञ्च धातवः - ये पञ्च तत्त्व ही हैं,
आत्म संयुताः - आत्मा (सबका) एक ही है ॥ ५ ॥

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ।
धातुषूद्धव कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

वेदेन नाम रूपाणि विषमाणि समेषु अपि धातुषु उद्धव कल्प्यन्ते एतेषां स्वार्थ सिद्धये ॥ ६ ॥

उद्धव - उद्धव !
धातुषु - तत्त्वोंके
समेषु अपि - समान होनेपर भी
एतेषां - इनके
स्वार्थ सिद्धये - पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिए
वेदेन - वेदके द्वारा
विषमाणि - विषमता युक्त
नाम रूपाणि - नाम- रूप
कल्प्यन्ते - कल्पित किये जाते हैं ॥ ६ ॥

देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥

देश काल आदि भावानां वस्तूनां मम सत्तम गुण-दोषौ विधीयेते नियम अर्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥

सत्तम - साधु श्रेष्ठ उद्धव !
हि कर्मणां - क्योंकि कर्मोंके
नियम अर्थं - नियन्त्रण के लिए
मम - मेरा किया ही
देशकाल - स्थान, समय
आदि भावानां - आदि तत्त्वों एवं
वस्तूनां - पदार्थों सम्बन्धी
गुण दोषौ - गुण-दोषका
विधीयेते - विधान किया गया है ॥ ७ ॥

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ।
कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥

अकृष्णसारः देशानां अब्रह्मण्यः अशुचिः भवेत् कृष्णसारः अपि सौ वीर कीकट असंस्कृत ईरिणम् ॥ ८ ॥

देशानां	- देशोंमें	**सौ वीर कीकट**	- सौ वीर, कीकट एवं
अकृष्णसारः	- जहां कालेमृग न हों या	**असंस्कृत**	- संस्कारहीन
अब्रह्मण्यः	- ब्राह्मण भक्त न हों तथा	**ईरिणं**	- ऊसर आदि
कृष्ण सारः अपि	- काले मृग होनेपर भी	**अशुचिः भवेत्**	- अपवित्र होते हैं ॥ ८ ॥

कर्मण्यो गुणवान् कालो द्रव्यतः स्वत एव वा ।
यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥

कर्मण्यः गुणवान् कालः द्रव्यतः स्वतः एव वा यतः निवर्तते कर्म स दोषः अकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥

कर्मण्यः-	- जिसमें कर्म हो सके	**यतः कर्म**	- जिसमें कर्म
कालः	वह समय	**निवर्तते**	- बन्द हो जाता है
गुणवान्	- गुण वाला (श्रेष्ठ) है	**स अकर्मकः**	- वह कर्मके अयोग्य (समय)
द्रव्यतः वा	- सामग्रीके कारण अथवा	**दोषः स्मृतः**	- दूषित कहा गया है ॥ ९ ॥
स्वतः एव	- स्वयं (समयके कारण) ही		

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च ।
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा ॥ १० ॥

द्रव्यस्य शुद्धि अशुद्धि च द्रव्येण वचनेन च संस्कारेण अथ कालेन महति अल्पतया अथवा ॥ १० ॥

द्रव्यस्य	- पदार्थोंकी	संस्कारेण	- संस्कार करनेसे,
शुद्धि अशुद्धीच	- शुद्धी और अशुद्धि भी	अथ कालेन	- तथा समय पाकर
द्रव्येण	- पदार्थोंका,	अथवा	- अथवा
च वचनेन	- तथा शास्त्र-निर्देशसे,	महति- अल्पतया	- महान और छोटे होनेसे होती है ॥ १० ॥

विशेष - जैसे मिट्टी जलादि से पदार्थ शुद्ध होते हैं । शास्त्र का वचन होने से गोबर-गोमूत्र शुद्ध तथा प्याज-लशुन अपवित्र हैं । धोने-मांजनेके संस्कार से शुद्धि होती है । समय पाकर अशुद्ध स्थान स्वतः शुद्ध हो जाते हैं । थोड़े जल में जूठा गिरे तो अशुद्ध हो गया; किन्तु नदी-सरोवर उससे अशुद्ध नहीं होते ।

शक्त्याशक्त्याथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने ।
अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥

शक्त्या अशक्त्या अथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यत् आत्मने अघं कुर्वन्ति हि यथा देश अवस्था अनुसारतः ॥ ११ ॥

आत्मने	- अपनी	हि यथा देश	- क्योंकि जैसे देश
शक्त्या- अशक्त्या	- शक्ति या दुर्बलताके कारण	अवस्था	- परिस्थितिके
अथवा बुद्ध्या	- अथवा समझ एंवं	अनुसारतः	- अनुसार
समृद्ध्या च	- सम्पत्तिके भी	अघं कुर्वन्ति	- दोष माना जाता है ॥ ११ ॥

धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् ।
कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥ १२ ॥

धान्य दारु अस्थि तन्तूनां रस तैजस चर्मणां देश अवस्था अनुसारतः कालवायु अग्नि मृत् तोयैः पार्थिवानां युत अयुतैः ॥ १२ ॥

धान्य दारु	- अन्न, काष्ठ,	**पार्थिवानां**	- मिट्टी से बने बर्तन आदि
अस्थि तन्तूनां	- हाथी दांतादि तथा सूतसे बने (वस्त्रादि)	**देश अवस्था**	- देश तथा परिस्थितिके
रस	- नमकादिरस	**अनुसारतः**	- अनुसार
तैजस	- धी पारादि तैजस	**कालवायु**	- समय, वायु,
चर्मणां	- चमड़े से बने या	**अग्नि मृत्**	- अग्नि, मिट्टी,
		तोयैः	- जलसे
		युत अयुतैः	- (इनको) एकाधिक मिलाकर या बिना मिलाये (एक एक से ही शुद्धि होती है) ॥ १२ ॥

अमेध्यलिप्तं यद् येन गन्धं लेपं व्यपोहति ।
भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥

अमेध्य लिप्तं यत् येन गन्धं लेपं व्यपोहति भजते प्रकृतिं तस्य तत् शौचं तावत् इष्यते ॥ १३ ॥

यत् अमेध्य लिप्तं	- जो अपवित्रतासे लगा पदार्थ	**प्रकृतिं भजते**	- (अपनी) स्वाभाविक दशामें आजाय,
येन लेपं	- जिसे लगानेसे	**तावत् तस्य**	- उस समय उसके लिये
गन्धं व्यपोहति	- वह गन्ध त्याग दे और	**तत् शौचं-इष्यते**	- वह पवित्रता करणीय है ॥ १३ ॥

स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः ।
मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् द्विजः ॥ १४ ॥

स्नान दान तपः अवस्था वीर्य संस्कार कर्मभिः मत् स्मृत्या च आत्मनः शौचं शुद्धः कर्म आचरेत् द्विजः ॥ १४ ॥

स्नान दान - स्नान, दान,
तपः अवस्था - तपस्या, आयु,
वीर्य संस्कार - सामर्थ्य, संस्कार एवं
कर्मभिः - कर्मोंसे,
च मत् स्मृत्या - तथा मेरे स्मरणसे
आत्मनः शौचं - चित्तकी शुद्धि करके
द्विजः शुद्धः कर्म - द्वि जाति शुद्ध कर्म ही
आचरेत् - करे ॥ १४ ॥

मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् ।
धर्मः सम्पद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥ १५ ॥

मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्म शुद्धिः मत् अर्पणं धर्मः सम्पद्यते षड्भिः अधर्मः तु विपर्ययः ॥ १५ ॥

मन्त्रस्य च - मन्त्रकी (शुद्धि) भी
परिज्ञानं - उसके ठीक ज्ञानसे एवं
कर्मशुद्धिः - कर्मकी शुद्धि
मत् अर्पणं - (उसे) मुझे अर्पित कर देनेसे होती है
षड्भिः - छ (देश, काल, पदार्थ, कर्ता, मन्त्र और कर्म) से
धर्मः सम्पद्यते - धर्म सम्पन्न होता है,
विपर्ययः तु - उससे उलटा तो
अधर्मः - अधर्म है ॥ १५ ॥

क्वचिद् गुणोऽपि दोषः स्याद् दोषोऽपि विधिना गुणः ।
गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥

क्वचित् गुणः अपि दोषः स्यात् दोषः अपि विधिना गुणः गुण दोष अर्थ नियमः तत् भिदां एव बाधते ॥ १६ ॥

विधिना - शास्त्र विधि होनेसे[1]
क्वचित्-गुणः अपि - कहीं गुण भी
दोषः - दोष और
दोषः अपि - दोष भी
गुणः स्यात् - गुण हो जाता है,
गुण दोष अर्थ - गुण-दोष सम्बन्धी
नियमः - नियम
तत् भिदां एव - उन्हें जानने वालोंके लिए ही हैं,
बाधते - (एक रूप न होने से) कल्पित हैं ॥ १६ ॥

---

१ गायत्री जप गुण होने पर भी शूद्र एवं सन्यासी के लिए दोष है । सन्ध्या वन्दनका त्याग द्विजातिके लिए दोष है पर सन्यासीके लिये विहित है ।

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् ।
औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥

समान कर्म आचरणं पतितानां न पातकं औत्पत्तिकः गुणः संगः न शयानः पतति अधः ॥ १७ ॥

पतितानां	- पतित लोगोंके लिए	**संगः**	- आसक्ति (उनका)
समान कर्म	- (पतितके) समान कर्म	**औत्पत्तिकः गुणः**	- जन्म जात गुण है,
आचरणं	- करना	**अधः शयानः**	- (जैसे जो) नीचे सो रहा है वह
पातकं न	- पाप नहीं है,	**पतति न**	- गिरता नहीं है ॥१७॥

यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः ।
एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः ॥ १८ ॥

यतः यतः निवर्तेत विमुच्येत ततः ततः एष धर्मः नृणां क्षेमः शोक मोह भय अपहः ॥ १८ ॥

यतः यतः	- जिन जिन (व्यक्ति, वस्तु, क्रिया) से	**नृणां एष**	- मनुष्योंके लिए यह
		धर्मः	- (वैराग्य रूप) धर्म
निवर्तेत	- उपरत हो जाता है	**शोक मोह**	- शोक, मोह एवं
ततः ततः	- उन उन (के बन्धन) से	**भय अपहः**	- भयको दूर करने वाला है ॥ १८ ॥
विमुच्येत	- छूट जाता है,		

विषयेषु गुणाध्यासात् पुंसः संगस्ततो भवेत् ।
संगात्तत्र भवेत् कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥

विषयेषु गुण अध्यासात् पुंसः संगः ततः भवेत् संगात् तत्र भवेत् कामः कामात् एव कलिः नृणाम् ॥ १९ ॥

विषयेषु - विषयोंमें
गुण अध्यासात् - गुण समझ लेनेपर
पुंसः ततः - पुरुष की उनसे
संगः भवेत् - आसक्ति हो जाती है,
तत्र संगात् - उनमें आसक्ति होनेसे
कामः भवेत् - (उनको पानेकी) कामना होती है,
कामात् एव - कामनासे ही
नृणां कलिः - मनुष्योंमें झगड़ा होता है ॥ १९ ॥

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥

कलेः दुर्विषहः क्रोधः तमः तं अनुवर्तते तमसा ग्रस्यते पुंसः चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥

कलेः - झगड़ेसे
दुर्विषहः क्रोधः - असह्य क्रोध आता है
तं अनु तमः - उससे पीछे ही तमोगुण
वर्तते - रहता है,
तमसा पुंसः - उस तमोगुण द्वारा पुरुषकी
व्यापिनी चेतना - व्यापक चेतना
द्रुतं ग्रस्यते - शीघ्र ग्रस्त कर ली जाती है ॥ २० ॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ततः अस्य स्वार्थ विभ्रंशः मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥

साधो - साधु उद्धव !
तया विरहितः - उस (चेतना) से रहित
जन्तुः शून्याय - जीव शून्यके समान
कल्पते - हो जाता है
ततः अस्य - तब इस
मूर्छितस्य - मूर्छितके समान,
च मृतस्य - तथा मरेके समानका
स्वार्थ विभ्रंशः - पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ।
वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

विषय अभिनिवेशेन न आत्मानं वेद न अपरं वृक्ष जीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रा इव यः श्वसन् ॥ २२ ॥

विषय - विषयोंमें
अभिनिवेशेन - (चित्तके) प्रगाढ़ लग जानेसे
न आत्मानं वेद - न अपनेको जानता,
न अपरं - न दूसरेको,
यः श्वसन् - जो श्वास लेता है (वहतो)
भस्त्रा इव - (लुहारकी) धौंकनीके समान
व्यर्थं - व्यर्थ है
वृक्ष जीविकया - (वह) वृक्षके समान जड़तासे
जीवन् - जीरहा है ॥ २२ ॥

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ।
श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥

फल श्रुतिः इयं नृणां न श्रेयः रोचनं परं श्रेयः विविक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्य रोचनम् ॥ २३ ॥

इयं फल-श्रुतिः - यह (स्वर्गादि) फल बतलाने वाली
नृणां श्रेयः न - मनुष्योंका कल्याण नहीं बतलाती
परं रोचनं - केवल रुचि उत्पादक है,
श्रेयः विवक्षया - (उन्हें) कल्याणकारी प्रवृत्ति बतलानेकी इच्छासे
प्रोक्तं - कही गयी है,
यथा भैषज्य रोचनं - जैसे औषधिको रुचिकर (कहा जाता है) ॥ २३ ॥

उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ।
आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥ २४ ॥

उत्पत्त्या एव हि **कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च आसक्त मनसः मर्त्या आत्मनः अनर्थ हेतुषु ॥ २४ ॥**

हि आत्मनः	- क्योंकि अपने लिए	**मर्त्याः**	- मनुष्य
अनर्थ हेतुषु	- अनर्थके कारण	**उत्पत्या एव**	- जन्मसे ही
कामेषु प्राणेषु	- भोगों, इन्द्रियों	**आसक्त मनसः**	- आसक्त चित्त हैं
च स्वजनेषु	- तथा स्वजनोंमें		॥ २४ ॥

न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ।
कथं युञ्ज्यात् पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥

न तान् अविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतः वृजिन अध्वनि कथं युञ्ज्यात् पुनः तेषु तान् तमः विशतः बुधः ॥ २५ ॥

स्वार्थं अविदुषः	- अपने स्वार्थको न जानने वाले	**तमः विशतः**	- नरकमें गिरते हुए
वृजिन अध्वनि	- क्लेशोंके मार्गमें	**तान् पुनः तेषु**	- उन्हें फिर उन्हीं (विषयों) में
भ्राम्यतः	- भटकते हुए	**बुधः कथं**	- (कोई) बुद्धिमान कैसे
तान्	- उन्हें (वहीं) न लगावे,	**युञ्ज्यात्**	- लगावेगा ॥ २५ ॥

एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ।
फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥

एवं व्यवसितं केचित् अविज्ञाय कुबुद्धयः फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥

हि केचित् कुबुद्धयः	- क्योंकि कुछ दुर्बुद्धि लोग	**एवं व्यवसितं अविज्ञाय**	- इस प्रकारके प्रयत्न वाली - नहीं जानते; किन्तु
कुसुमितां	- पुष्पिता (देखनेमें सुन्दर)	**वेदज्ञा**	- वेदका तत्त्व जानने वाले
फलश्रुतिं	- (स्वर्गादि) फल बतलाने वाली श्रुतिको	**न वदन्ति**	- उन्हें नहीं कहते ॥ २६ ॥

कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ।
अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥

कामिनः कृपणाः लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः अग्नि मुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥

ते कामिनः	- वे कामनाग्रस्त,	**अग्नि मुग्धा**	- अग्नि (यज्ञ) से ही प्राप्य फलोंपर मुग्ध
कृपणा लुब्धाः	- दीन, लोभी,	**धूमतान्ताः**	- अन्तमें धूम्र (पितृयान) मार्गसे ही जाने वाले
पुष्पेषु	- (स्वर्गादि) पुष्पोंको ही	**स्वं लोकं**	- अपने निजधामको
फलबुद्धयः	- (परम) फल समझने वाले	**न विदन्ति**	- नहीं जानते ॥ २७ ॥

न ते मामंग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः ।
उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥

न ते मां अंग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः उक्थ शस्त्रा हि असुतृपः यथा नीहार चक्षुषः ॥ २८ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव	**उक्थ शस्त्रा**	- कर्मकाण्ड की ही साधना वाले
यथा	- जैसे	**य इदं यतः**	- यह संसार जो और जिससे है
नीहार चक्षुषः	- धुंधले नेत्र वाले हों	**हृदिस्थं मां**	- उस हृदयमें स्थित मुझे
हि ते	- क्योंकि वे	**न जानन्ति**	- नहीं जानते ॥ २८ ॥
असुतृपः	- प्राणोंको ही तृप्त करने वाले		

ते मे ममविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ।
हिंसायां यदि रागः स्याद् यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

ते मे मतं अविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः हिंसायां यदि रागः स्यात् यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥

यदि हिंसायां - यदि हिंसामें (उसके फल मांस भक्षणमें)
रागः स्यात् - आसक्ति ही हो तो
यज्ञ एव - यज्ञमें ही करे,
चोदना - (यह परिसंख्या विधि हिंसा सीमित करनेके लिए है हिंसा की) प्रेरणा नहीं है,
ते विषयात्मकाः - वे भोगासक्त चित्त
परोक्षं मेमतं - (इस) छिपे हुए मेरे मतको
अविज्ञाय - नहीं जानते ॥ २९ ॥

हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥

हिंसा विहारा हि आलब्धैः पशुभिः स्व सुख इच्छया यजन्ते देवता यज्ञैः पितृ भूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥

हि हिंसा-विहारा - क्योंकि वे हिंसाका खेल खेलने वाले हैं
खलाः - दुष्ट हैं,
स्व सुख इच्छया - अपने सुखकी इच्छासे
पशुभिः आलब्धैः - पशु-बलिके द्वारा
यज्ञैः - यज्ञ करके
पितृ भूतपतीन् - पितृ, भूतेश्वरादि
देवता यजन्ते - देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ ३० ॥

स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् ।
आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजन्त्यर्थान् यथा वणिक् ॥ ३१ ॥

स्वप्न उपमं अमुं लोकं असन्तं श्रवण प्रियं आशिषः हृदि संकल्प्य त्यजन्ति अर्थान् यथा वणिक् ॥ ३१ ॥

स्वप्न उपमं - स्वप्नके समान
असन्तं - असत्
श्रवण प्रियं - सुननेमें ही प्रिय
अमुंलोकं - इन (स्वर्गादि) लोकोंकी
हृदि आशिषः - हृदयमें अभिलाषा
संकल्प्य - करके
यथा वणिक् - व्यापारीके समान (लाभकी आशासे)
अर्थान्-त्यजन्ति - धनका त्याग करते हैं ॥ ३१ ॥

रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः ।
उपासत इन्द्रमुख्यान् देवादीन् न तथैव माम् ॥ ३२ ॥

रजः सत्त्व तमः निष्ठा रजः सत्त्व तमः जुषः उपासत इन्द्र मुख्यान् देव आदीन् न तथा एव माम् ॥ ३२ ॥

रजः सत्त्व - रजोगुणी, सत्त्वगुणी,
तमः निष्ठा - तमोगुणी निष्ठा वाले
रजः सत्त्व - रजोगुण, सत्त्वगुण,
तमः जुषः - तमोगुण युक्त
इन्द्र मुख्यान् - इन्द्र जिनमें मुख्य हैं उन
देव आदीन् - देवतादिकी (उपासना करते हैं)
तथा इव माम् न-वैसी भी मेरी नहीं
उपासत - उपासना करते ॥३२॥

इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ।
तस्यान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥

इष्ट्वा इह देवता यज्ञैः गत्वा रंस्या महे दिवि तस्य अन्त भूय अस्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥

इह यज्ञैः - (वे सोचते हैं) इस संसारमें यज्ञों द्वारा
देवता इष्ट्वा - देवताओंका यजन करके
दिविगत्वा - स्वर्ग जाकर
रंस्या महे - हम आनन्द करेंगे और
तस्य अन्त - उसके अन्तमें
भूय महाशाला - फिर विशाल भवन एवं
महाकुलाः - विशाल परिवार वाले
अस्म - होंगे ॥ ३३ ॥

एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ।
मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ॥ ३४ ॥

एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्त मनसां नृणां मानिनां च अति स्तब्धानां मत् वार्ता अपि न रोचते ॥ ३४ ॥

एवं पुष्पितया	- इस प्रकारकी पुष्पिता (लुभावनी)	**अति स्तब्धानां**	- अत्यन्त जड़
		नृणां	- मनुष्योंको
वाचा व्याक्षिप्त	- वाणीमें अत्यन्त लगे	**मत् वार्ता अपि**	- मेरी चर्चा भी
मनसां मानिनां	- मन वाले अभिमानी	**न रोचते**	- नहीं सुहाती ॥३४॥

वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे ।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥

वेदा ब्रह्म आत्म विषयाः त्रिकाण्ड विषया इमे परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥

इमे त्रिकाण्ड	- ये त्रिकाण्ड (कर्म, ज्ञान, उपासना)	**ऋषयः**	- ऋषिगण
		परोक्षवादा	- परोक्ष भाषी होते हैं
विषया वेदा	- विषयक वेद	**च मम**	- तथा मुझे भी
ब्रह्मआत्म	- ब्रह्म एवं आत्मा	**परोक्षं प्रियं**	- परोक्ष (बोलना) प्रिय है ॥ ३५ ॥
विषयाः	- विषयक हैं,		

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् ।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥

शब्द ब्रह्म सुदुर्बोधं प्राण इन्द्रिय मनः मयं अनन्त पारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥

शब्दब्रह्म	- वेद	**समुद्रवत्**	- समुद्रके समान
सुदुर्बोधं	- समझनेमें बहुत कठिन,	**अनन्तपारं**	- अनन्तपार
प्राण इन्द्रिय	- प्राण (मध्यमा) इन्द्रिय (वैखरी)	**दुर्विगाह्यं**	- अथाह हैं ॥ ३६ ॥
मनः मयं	- मनः (परा-पश्यन्ती) स्वरूप		

मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना ।
भूतेषु घोष रूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥

मया उपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणा अनन्त शक्तिना भूतेषु घोष रूपेण बिसेषु ऊर्णा इव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥

मया अनन्त शक्तिना	- मुझ अनन्त शक्ति	**भूतेषु**	- प्राणियोंमें
भूम्ना ब्रह्मणा	- सर्व व्यापक ब्रह्म द्वारा	**घोष रूपेण**	- अनाहत नादके रूपमें
उपबृंहितं	- (वेद) अभिवृद्ध हैं,	**बिसेषु ऊर्णा इव**	- कमल नालमें तन्तुके समान
		लक्ष्यते	- सूक्ष्म रूपमें) लक्षित होते हैं ॥ ३७ ॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ।
आकाशाद् घोषवान् प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥

यथा ऊर्णनाभिः हृदयात् ऊर्णां उद्वमते मुखात् आकाशात् घोषवान् प्राणः मनसा स्पर्श रूपिणा ॥ ३८ ॥

यथा उर्णनाभिः	- जैसे मकड़ी	**घोषवान् प्राणः**	- (ऐसे ही) अनाहत नाद युक्त प्राण
हृदयात्	- अपने पेटसे	**आकाशात्**	- आकाशसे
मुखात्	- मुख द्वारा	**स्पर्श रूपिणा**	- अक्षरात्मक रूप लेता है ॥ ३८ ॥
ऊर्णा उद्वमते	- जाला बाहर निकालती है,		

छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ।
ओंकाराद् व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तः स्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥

छन्दः मयः अमृतमयः सहस्र पदवीं प्रभुः ओंकारात् व्यञ्जित स्पर्श स्वर ऊष्मा अन्तःस्थ भूषिताम् ॥ ३९ ॥

छन्दः मयः - वेदमय,
अमृतमयः - अमृतमय,
सहस्र पदवीं - सहस्रशीर्षा कहे जाने वाले
प्रभुः - वे समर्थ
ओंकारात् - ओंकारसे
व्यञ्जित - प्रकट हुए
स्पर्श - स्पर्श ('क' से 'म' तक २५ अक्षर)
स्वर - स्वर ('अ' से 'औ' तक)
ऊष्मा - ऊष्मा (श, ष. स, ह)
अन्तःस्थ - अन्तस्थ (य, र, ल, व) से
भूषितां - भूषित हैं ॥ ३९ ॥

विचित्रभाषावितताम् छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः ।
अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥

विचित्र भाषा वितताम् छन्दोभिः चतुः उत्तरैः अनन्त पारां बृहतीं सृजति आक्षिपते स्वयम् ॥ ४० ॥

चतुः उत्तरैः - उत्तरोत्तर चार चार (अक्षर बढ़ने वाले)
छन्दोभिः - छन्दोंसे
विचित्र भाषा - विचित्र भाषामें
वितताम् - विस्तृत हुआ
अनन्त पारां - अनन्त अपार (वेद राशिको)
स्वयं सृजति - स्वयं प्रकट करते
आक्षिपते - तथा (लोकोंमें) प्रचारित करते हैं ॥ ४० ॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ।
त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद् विराट् ॥ ४१ ॥

गायत्रि उष्णिक् अनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिः एव च त्रिष्टुप् जगति अतिच्छन्दः हि अत्यष्टि अति जगत् विराट् ॥ ४१ ॥

हि	- क्योंकि (वेद राशिके वे छन्द) हैं	**च त्रिष्टुप्**	- त्रिष्टुप्,
गायत्रि	- गायत्री,	**जगति**	- जगती,
उष्णिक्	- उष्णिक्,	**अतिच्छन्दः**	- अतिच्छन्द,
अनुष्टुप् च	- अनुष्टुप तथा	**अत्यष्टि**	- अत्यष्टि,
बृहती पङ्क्तिः	- वृहती, पङ्क्ति भी,	**अतिजगत्**	- अति जगती और
एव		**विराट्**	- विराट् ॥ ४१ ॥

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद् वेद कश्चन ॥ ४२ ॥

किं विधत्ते किं आचष्टे किं अनूद्य विकल्पयेत् इति अस्य हृदयं लोके न अन्यः मत् वेद कश्चन ॥ ४२ ॥

किं विधत्ते	- (यह वेदवाणी) क्या विधान करती है,	**इति अस्या हृदयं**	- इस प्रकार इसका मर्म
किं आचष्टे	- किनका वर्णन करती है,	**लोके मत्**	- संसारमें मुझे
किं अनूद्य	- किन (प्रतीतियोंका) अनुवाद करके	**अन्यः**	छोड़कर दूसरा
विकल्पयेत्	- (अनेकों) विकल्प करती है	**कश्चन न वेद**	- कोई नहीं जानता ॥ ४२ ॥

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ।
एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ।
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥

मां विधत्ते अभिधत्ते मां विकल्प्य अपोह्यते तु अहं एतावान् सर्ववेद अर्थः शब्द आस्थाय मां भिदां माया मात्रं अनूद्य अन्ते प्रतिषिद्ध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥

मां विधत्ते - (श्रुति) मेरा ही विधान करती है,
मां अभिधत्ते - मेरा ही वर्णन करती है,
तु अहं - मुझमें ही तो
विकल्प्य - अनेक विकल्प करके
अपोह्यते - उनका निषेध कर देती है
सर्व वेद अर्थः - सब वेदोंका तात्पर्य
एतावान् - इतना ही है कि
शब्द आस्थाय - शब्दका आश्रय लेकर
मायामात्रं - समस्त मायिक
भिदां अनूद्य - भेदोंका अनुवाद करके
अन्ते प्रतिषिद्ध्य - अन्तमें उनका निषेध करके
मां प्रसीदति - मुझे (प्रतिपादित करके) प्रसन्न होती हैं

॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ।
नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातानि ऋषिभिः प्रभो नव एकादश पञ्च त्रीणि आत्थ त्वं इह शुश्रुम ॥ १ ॥

विश्वेश प्रभो	- जगदीश्वर ! प्रभो !	**इह त्वं**	- यहां आपने (उन्नीसवें अध्यायमें)
ऋषिभिः	- ऋषियों द्वारा	**नव एकादश**	- नौ, ग्यारह,
कति तत्त्वानि	- कितने तत्त्वोंकी	**पञ्च त्रीणि**	- पांच और तीन
संख्यातानि	- गणना की गयी है ?	**आत्थ शुश्रुम**	- (कुल अट्ठाइस) बतलाये, वह (मैंने) सुना ॥ १ ॥

केचित् षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ।
सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥

केचित् षट्विंशतिं प्राहुः अपरे पञ्चविंशतिं सप्त एके नव षट् केचित् चत्वारि एकादश अपरे ॥ २ ॥

केचित्	- कोई	**एके सप्तनव**	- कोई सात, नौ या
षट् विंशतिं	- छब्बीस,	**षट्**	छः,
अपरे पंचविंशतिं	- दूसरे पच्चीस,	**केचित् चत्वारि**	- कोई चार,
		अपरे एकादश	- दूसरे ग्यारह बतलाते
		प्राहुः	हैं ॥ ३ ॥

केचित् सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ।
एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ।
गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

केचित् सप्तदश प्राहुः षोडश एके त्रयोदश एतावत्त्वं हि संख्यानं ऋषयः यत् विवक्षया गायन्ति पृथक् आयुष्मन् इदं नः वक्तुं अर्हसि ॥ ३ ॥

आयुष्मन्	- आयुष्मन् !	**पृथक्**	- अलग-अलग
केचित् सप्तदश	- कोई सत्रह,	**एतावत्त्वं**	- इतनी ही
एके षोडश	- कोई सोलह या	**संख्यानं गायन्ति**	- संख्या है यह कहते हैं,
त्रयोदश प्राहुः	- तेरह बतलाते हैं,	**इदं नः**	- (अतः) यह मुझसे (आपको)
हि यत्-विवक्षया	- क्योंकि जो वर्णन करनेकी इच्छा वाले	**वक्तुं अर्हसि**	- बतलाना चाहिए ॥ ३ ॥
ऋषयः	- ऋषि हैं,		

श्रीभगवानुवाच–

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा ।
मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा मायां मदीयां उद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥

यथा ब्राह्मणा	- जैसा ब्राह्मणगण	**मदीयां मायां**	- मेरी मायाको
भाषन्ते	- कहते हैं	**उद्गृह्य**	- स्वीकार करके
सर्वत्र	- सब कहीं	**वदतां**	- बोलने वालोंके लिए
युक्तं च सन्ति	- (वह) उपयुक्त ही है,	**नु किं दुर्घटं**	- भला क्या असम्भव है ॥ ४ ॥

नैतदेवं यथाऽऽत्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ।
एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥

न एतत् एवं यथा आत्थ त्वं यत् अहं वच्मि तत् तथा एवं विवदतां हेतुं शक्तयः मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥

यथा त्वं आत्थ - जैसा तुमने कहा	**एवं विवदतां** - इस प्रकार विवाद करनेका
एतत् एवं न - यह ऐसा नहीं है,	**हेतुं** - कारण
यत् अहं वच्मि - जैसा मैं कहता हूँ	**मे दुरत्ययाः** - मेरी दुष्पार
तत् तथा - वह वैसा है,	**शक्तयः** - शक्तियां हैं ॥ ५ ॥

यासां व्यतिकरादासीद् विकल्पो वदतां पदम् ।
प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥

यासां व्यतिकरात् आसीत् विकल्पः वदतां पदं प्राप्ते शमदमे अपि एति वादः तं अनु शाम्यति ॥ ६ ॥

यासां - जिन (शक्तियों) के	**शमदमे प्राप्ते** - शम-दम प्राप्त होजानेपर
व्यतिकरात् विकारसे	**एति** - (यह संसार) लौट सा
वदतां पदं - बोलने वालोंका आश्रय	जाता है
विकल्पः आसीत् - यह अनेक रूप	**तं अनु** - उसके पीछे (होने वाला)
(संसार) है	**वादः शाम्यति** - विवाद शान्त हो जाता
	है ॥ ६ ॥

परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुषर्षभ ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानां यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥

परस्पर अनुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुष ऋषभ पौर्व अपर्य प्रसंख्यानां यथा वक्तुः विवक्षितम् ॥ ७ ॥

पुरुष ऋषभ - पुरुष श्रेष्ठ !	**पौर्व अपर्य** - इनमें (कौन) पहिले
तत्त्वानां - तत्त्वोंके	(कारण) और (कौन)
परस्पर - परस्पर	पीछेका (कार्य) है
अनुप्रवेशात् - एक दूसरेमें प्रविष्ट	**वक्तुः विवक्षितं** - वक्ताकी बोलनेकी इच्छाके
रहनेका कारण	**यथा** - अनुसार (होता) है ॥७॥

एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च ।
पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥

एकस्मिन् अपि दृश्यन्ते प्रविष्टान् इतराणि च पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥

पूर्वस्मिन् वा	- (अपनेसे) पहिलेमें या	**तत्त्वानि**	- तत्त्व
परस्मिन्	- पिछले ही	**एकस्मिन् अपि**	- एकमें भी
तत्त्वे वा	- तत्त्वमें ही	**प्रविष्टानि**	- प्रवेश किये
सर्वशः इतराणि	- सभी दूसरे	**दृश्यन्ते**	- दीख पड़ते हैं ॥ ८ ॥

पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ।
यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसम्भवात् ॥ ९ ॥

पौर्व अपर्यं अतः अमीषां प्रसंख्यानं अभीप्सतां यथा विविक्तं यत् वक्त्रं गृह्णीमः युक्ति सम्भवात् ॥ ९ ॥

अतः अमीषां	- अतः इनका	**यत् वक्त्रं**	- जिसके मुखसे (हुआ) है
पौर्व अपर्यं	- कारण-कार्य भाव	**युक्ति सम्भवात्**	- युक्तिसे सम्भव होनेके कारण
यथा विविक्तं	- जैसा विभाजन करके	**गृह्णीमः**	- (हम) स्वीकार करते हैं ॥ ९ ॥

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ।
स्वतो न सम्भवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥

अनादि अविद्या युक्तस्य पुरुषस्य आत्मवेदनं स्वतः न सम्भवात् अन्यः तत्त्वज्ञः ज्ञानदः भवेत् ॥ १० ॥

अनादि अविद्या - अनादि अविद्यासे
युक्तस्य पुरुषस्य - युक्त पुरुषको
आत्मवेदनं - आत्मज्ञान
स्वतः न- - स्वतः होना सम्भव न
सम्भवात् होनेसे
अन्यः ज्ञानदः - दूसरा ज्ञानदाता
तत्त्वज्ञः भवेत् - तत्त्वेज्ञ होता है (इस प्रकार २४ तत्त्व, पुरुष तथा ज्ञानदाता ईश्वर २६ तत्त्व हैं, यह एक मत है) ॥ १० ॥

पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ।
तदन्यकल्पनापार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥

पुरुष ईश्वरयोः अत्र न वैलक्षण्यं अणु अपि तत् अन्य कल्पना अपार्था ज्ञानं च प्रकृतेः गुणः ॥ ११ ॥

अत्र - इस (छब्बीस तत्त्व मानने वाले) मतमें
पुरुष ईश्वरयोः - पुरुष और ईश्वरमें
अणु अपि - तनिक भी
वैलक्षण्यं न - विलक्षणता (अन्तर) नहीं है
ज्ञानं च - और ज्ञान भी
प्रकृतेः गुणः - (सत्त्वात्मिका) प्रकृतिका गुण है
तत् अन्यत् - अतः (पुरुष-ईश्वरमें) भेदकी
कल्पना- - कल्पना अवास्तविक है
अपार्था (इस प्रकार २५ तत्त्व रहते हैं) ॥ ११ ॥

प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ १२ ॥

प्रकृतिः गुण साम्यं वै प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः सत्त्वं रजः तम इति स्थिति उत्पत्ति अन्त हेतवः ॥ १२ ॥

गुण साम्यं - (तीनों) गुणोंकी-साम्यावस्था
वै प्रकृतिः - निश्चय ही प्रकृति है,
प्रकृतेः गुणाः - प्रकृतिके गुण हैं,
आत्मनः न - आत्माके नहीं हैं
सत्त्वं रजः - सत्त्वगुण, रजोगुण,
तम इति - तमोगुण ये (तीनों गुण)
स्थिति उत्पत्ति - (सृष्टिकी) स्थिति, उत्पत्ति,
अन्त हेतवः - प्रलयके कारण हैं ॥ १२ ॥

सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ।
गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥ १३ ॥

सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमः अज्ञानं इह उच्यते गुण व्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रं एव च ॥ १३ ॥

इह - इस प्रसंगमें
सत्त्वं ज्ञानं - सत्त्वगुण ही ज्ञान,
रजः कर्म - रजोगुण ही कर्म
तमः अज्ञानं - तमोगुण ही अज्ञान,
गुण व्यतिकरः - गुणोंमें वैषम्य उत्पन्न करने वाला (ईश्वर) ही
कालः - काल
सूत्रं एव च - महत्तत्त्व ही
स्वभावः उच्यते - स्वभाव कहा जाता है ॥ १३ ॥

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ।
ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥

पुरुषः प्रकृतिः व्यक्तं अहंकारः नभः अनिलः ज्योतिः आपः क्षितिः इति तत्त्वानि युक्तानि मे नव ॥ १४ ॥

पुरुषः प्रकृतिः - पुरुष, प्रकृति,
व्यक्तं - महत्तत्त्व,
अहंकारः - अहंकार,
नभः अनिलः - आकाश, वायु,
ज्योतिः आपः - अग्नि, जल,
क्षितिः इति - पृथ्वी, ये
नव तत्त्वानि - नौ तत्त्व
मे युक्तानि - मैंने (पहिले) गिना दिये हैं ॥ १४ ॥

श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ।
वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रिकर्माण्यङ्गोभयं मनः ॥ १५ ॥

श्रोत्रं त्वक् दर्शनं घ्राणः जिह्वा इति ज्ञान शक्तयः वाक् पाणि उपस्थ अङ्घ्रि पायु कर्माणि अंग उभयं मनः ॥ १५ ॥

अंग	- प्रिय उद्धवः	**वाक् पाणि**	- वाणी, हाथ,
श्रोत्रं त्वक्	- कान, त्वचा,	**पायु उपस्थ**	- गुदा, उपस्थ,
जिह्वा इति	- रसना ये	**अङ्घ्रि कर्माणि**	- पैर कर्मेन्द्रिय हैं,
ज्ञान शक्तयः	- ज्ञान शक्ति (ज्ञानेन्द्रियां) हैं	**मनः उभयं**	- मन उभयात्मक है ॥ १५ ॥

शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः ।
गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥ १६ ॥

शब्दः स्पर्शः रसः गन्धः रूपं च इति अर्थ जातयः गति उक्ति उत्सर्ग शिल्पानि कर्म आयतन सिद्धयः ॥ १६ ॥

शब्दः स्पर्शः	- शब्द, स्पर्श,	**गति उत्सर्ग**	- गति, मलत्याग एवं
रसः गन्धः	- रस, गन्ध	**शिल्पानि**	कर्म
च रूपं इति	- तथा रूप ये	**कर्म आयतन**	- कर्मेन्द्रियोंकी
जातयः अर्थ	- (पंच) ज्ञानेन्द्रियों के (पाँच) विषय,	**सिद्धयः**	- सिद्धियां (क्रियायें) हैं ॥ १६ ॥

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ।
सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥

सर्ग आदौ प्रकृतिः हि अस्य कार्य कारणरूपिणी सत्त्व आदिभिः गुणैः धत्ते पुरुषः अव्यक्त ईक्षते ॥ १७ ॥

हि सर्ग आदौ - क्योंकि सृष्टिके प्रारम्भमें
कार्यकारण - कार्य और कारण
रूपिणी - (दोनोंका) स्वरूप
अस्य प्रकृतिः - इस (परमात्मा) की प्रकृति
सत्त्व आदिभिः - सत्त्व आदि
गुणैः - गुणोंके द्वारा
धत्ते - (स्थिति, उत्पत्ति, प्रलय) धारण करती है
अव्यक्त पुरुषः - अव्यक्त पुरुष
ईक्षते - (प्रकृति तथा उसकी क्रियाका) साक्षी रहता है ॥ १७ ॥

व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ।
लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥ १८ ॥

व्यक्त आदयः विकुर्वाणा धातवः पुरुष ईक्षया लब्ध वीर्याः सृजन्ति अण्डं संहताः प्रकृतेः बलात् ॥ १८ ॥

पुरुष ईक्षया - पुरुषकी दृष्टिसे
लब्धवीर्याः - शक्ति प्राप्त करके
व्यक्त आदयः - महत्तत्त्वादि
धातवः - धातुयें (मूल तत्त्व)
संहताः - परस्पर मिलकर
प्रकृतेः बलात् - प्रकृतिकी शक्तिसे
विकुर्वाणा - परिवर्तित होते हुए
अण्डं सृजन्ति - ब्रह्माण्ड उत्पन्न करते हैं ॥ १८ ॥

सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः ।
ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥ १९ ॥

सप्त एव धातव इति तत्र अर्थाः पञ्च ख आदयः ज्ञानं आत्मा उभय आधारः ततः देह इन्द्रिय आसवः ॥ १९ ॥

धातव	- तत्त्व	**आत्मा**	- जीव तथा
सप्त एव इति	- सात ही हैं ऐसा (जो लोग मानते हैं)	**उभय आधारः**	- (जीव तथा पंचमहाभूत) दोनों का आधार
तत्र	- उनके मतमें	**ज्ञानं**	- ज्ञान (स्वरूप परमात्मा) है,
ख आदय	- आकाशादि	**ततः देह-इन्द्रिय असवः**	- फिर इन्हींसे शरीर, इन्द्रियां - प्राण (उत्पन्न होते) हैं ॥ १९ ॥
पञ्च	- पांच (महाभूत)		

षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् ।
तैर्युक्त आत्मसम्भूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥ २० ॥

षट् इति अत्र अपि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् तैः युक्त आत्म सम्भूतैः सृष्ट्वा इदं सम उपाविशत् ॥ २० ॥

षट् इति	- (तत्त्व) छः हैं ऐसा (जो मानते हैं)	**आत्म सम्भूतैः**	- अपने से ही उत्पन्न
अत्र अपि	- इस (मत) में भी	**तैः युक्त**	- उन (पंच भूतों) से युक्त होकर
पञ्च भूतानि	- पंच महाभूत और	**इदं सृष्ट्वा**	- इस जगतकी सृष्टि करके
षष्ठः परः-पुमान्	- छठवाँ परम पुरुष है,	**सम उपाविशत्**	- (वह परमात्मा) एक साथ सबमें प्रविष्ट होगया ॥ २० ॥

चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ।
जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥ २१ ॥

चत्वारि एव इति तत्र अपि तेजः आपः अन्नं आत्मनः जातानि तैः इदं जातं जन्म अवयविनः खलु ॥ २१ ॥

चत्वारि एव - (मूल तत्त्व) चार ही हैं
तत्र अपि - ऐसे (मत) में भी
तेजः आपः - अग्नि, जल,
अन्नं आत्मनः - पृथ्वी आत्मासे (उत्पन्न) हैं
तैः अवयविनः - उन्हीं मूल शरीरों (तत्त्वों) से
जातानि खलु - उत्पन्न हुओं से ही
इदं जातं - यह (सृष्टि) उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥

संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च ।
पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥

संख्याने सप्तदशके भूत मात्र इन्द्रियाणि च पञ्च पञ्च एक मनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥

सप्तदशके - सत्रह (तत्त्व मानकर)
संख्याने - गणना करनेपर
पञ्च पञ्च - पांच पांच
भूत मात्र - महाभूत, तन्मात्रायें,
च इन्द्रियाणि - तथा ज्ञानेन्द्रियां,
एक मनसा - एक मन और
सप्तदशः - सत्रहवां
आत्मा स्मृतः - आत्मा कहा गया है ॥ २२ ॥

तद्वत् षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ।
भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

तत् वत् षोडश संख्याने आत्मा एव मन उच्यते भूत इन्द्रियाणि पञ्च एव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥

तत् वत् - इसी प्रकार
षोडश संख्याने - (तत्त्वोंकी) गणना सोलह करनेपर
आत्मा एव - आत्माको ही
मन उच्यते - मन कहा जाता है,
त्रयोदश - (तत्त्वोंकी संख्या) तेरह (मानने वाले)
भूत इन्द्रियाणि - महाभूत, ज्ञानेन्द्रियां,
पञ्च एव - पांच पांच ही (मानते) हैं
मन आत्मा - मन, आत्मा (जीव और परमात्मा) मानते हैं ॥ २३ ॥

एकादशत्व आत्मासौ महाभूतेन्द्रियाणि च ।
अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥ २४ ॥

एकादशत्व आत्मा असौ महाभूत इन्द्रियाणि च अष्टौ प्रकृतयः च एव पुरुषः च नव इति अथ ॥ २४ ॥

एकादशत्व	- (तत्त्वोंकी संख्या) ग्यारह (मानने वाले)	**अथ नव इति**	- और नौ (तत्त्व) ऐसा (मानने वाले)
महाभूत	- (पांच) महाभूत	**अष्टौ प्रकृतयः**	- आठ (पंच महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार) प्रकृतियां
च इन्द्रियाणि	- तथा (पांच) ज्ञानेन्द्रियां एवं		
असौ आत्मा	- (एक) यह आत्मा (मानते हैं)	**च पुरुषः एव च**	- तथा (एक) पुरुषको भी (मानते हैं) ॥२४॥

इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद् विदुषां किमशोभनम् ॥ २५ ॥

इति नाना प्रसंख्यानं तत्त्वानां ऋषिभिः कृतं सर्वं न्याय्यं युक्तिमत् त्वात् विदुषां किं अशोभनम् ॥ २५ ॥

इति ऋषिभिः	- इस प्रकार ऋषियों द्वारा	**युक्तिमत् त्वात्**	- युक्ति युक्त होनेके कारण
नाना प्रसंख्यानं	- अनेक प्रकारकी तत्त्व गणना	**सर्वं न्याय्यं**	- सब उचित है,
कृतं	- की गयी है,	**विदुषां**	- विद्वानोंके लिए
		किं अशोभनं	- क्या अनुचित है ॥ २५ ॥

उद्धव उवाच–

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ।
अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥

प्रकृतिः पुरुषः च उभौ यद्यपि आत्म विलक्षणौ अन्य अन्य अपाश्रयात् कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः ॥ २६ ॥

कृष्ण	- श्रीकृष्ण !	**अन्य अन्य**	- (किन्तु) एक दूसरेका
प्रकृतिः च	- प्रकृति तथा	**अपाश्रयात्**	- आश्रय लेनेके कारण
पुरुषः उभौ	- पुरुष दोनों	**तयोः भिदा**	- उनमें भेद
यद्यपि	- यद्यपि	**न दृश्यते**	- नहीं दीखता ॥ २६ ॥
आत्म विलक्षणौ	- स्वरूपसे सर्वथा भिन्न हैं		

प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथाऽऽत्मनि ।
एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि ।
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥

प्रकृतौ लक्ष्यते हि आत्मा प्रकृतिः च तथा आत्मनि एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि छेत्तुं अर्हसि सर्वज्ञ वचोभिः नय नैपुणैः ॥ २७ ॥

पुण्डरीकाक्ष	- कमलनयन !	**महान्तं संशयं**	- महान् संशय है
हि प्रकृतौ	- क्योंकि प्रकृतिमें भी	**सर्वज्ञ**	- सर्वज्ञ !
आत्मा लक्ष्यते	- आत्मा जान पड़ता है	**नय नैपुणैः**	- नीति-निपुण
च तथा	- और ऐसे ही	**वचोभिः**	- वाणीसे
आत्मनि प्रकृतिः	- आत्मामें प्रकृति (जान पड़ती है)	**छेत्तुं अर्हसि**	- (आपको इसे) काट देना चाहिए ॥ २७ ॥
एवं मे हृदि	- इस प्रकारका मेरे हृदयमें		

त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ।
त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥

त्वत्तः ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषः ते अत्र शक्तितः त्वं एव हि आत्म मायाया गतिं वेत्थ न च अपरः ॥ २८ ॥

हि त्वत्तः - क्योंकि आपसे ही
जीवानां ज्ञानं - जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है और
अत्र ते- - यहां संसारमें तुम्हारी
शक्तितः ही शक्ति (माया) द्वारा
प्रमोषः - हरण कर लिया जाता है,
हि आत्म- - क्योंकि अपनी मायाकी
मायाया
गतिं त्वं एव - गति आपही
वेत्थ - जानते हैं
अपरः न च - दूसरा कोई नहीं (जानता) २८ ॥

श्रीभगवानुवाच–

प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ।
एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥

प्रकृतिः पुरुषः च इति विकल्पः पुरुष ऋषभ एष वैकारिकः सर्गः गुण व्यतिकर आत्मकः ॥ २९ ॥

पुरुष ऋषभ - पुरुष श्रेष्ठ !
प्रकृतिः च - प्रकृति और
पुरुषः पुरुष
इति विकल्पः - यह भेद कल्पनासे है,
एष सर्गः - यह सृष्टि
गुण व्यतिकर - गुणोंके विकार
आत्मकः - स्वरूप (उत्पन्न होनेसे)
वैकारिकः - विकारमयी (परिवर्तनशीला) है ॥ २९ ॥

ममांग माया गुणमय्यनेकधा
विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ।
वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेक-
मथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥ ३० ॥

मम अंग माया गुणमयि अनेकधा विकल्प बुद्धीः च गुणैः विधत्ते वैकारिकः त्रिविधः अध्यात्मं एकं अथ अधिदैवं अधिभूतं अन्यत् ॥ ३० ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**वैकारिकः**	- यह विकारवान् सृष्टि
मम गुणमयि	- मेरी गुणमयी	**त्रिविधः**	- तीन प्रकारकी है
माया अनेकधा	- माया अनेक प्रकारकी	**एकं-**	- एक (प्रथम) आध्यात्मिक,
विकल्प-	- कल्पना युक्त बुद्धि भी	**अध्यात्मं**	
बुद्धीः च		**अथ अधिदैवं**	- फिर आधिदैविक
गुणैः विधत्ते	- गुणोंके आश्रयसे धारण करती है	**अन्यत्-**	- तीसरी आधिभौतिक
		अधिभूतं	॥ ३० ॥

विशेष - सृष्टि-निर्माण प्रक्रिया आपके निर्माणके समान ही है । कुछ निर्माण करना हो तो पहिले उसका रूप मनमें आता है । यह अध्यात्म हुआ । फिर आपकी इन्द्रियां सक्रिय होती हैं । यह अधिदैव हुआ । अन्तमें वह मानसिक रूप बाहर बनता है । यह आधिभौतिक रूप है ।

दृग् रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे
परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ।
आत्मा यदेषामपरो य आद्यः
स्वयानुभूत्याखिलसिद्धसिद्धिः ।
एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षु-
र्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥

दृक् रूपं अर्कं वपुः अत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे आत्मा यत् ऐषां अपरः य आद्यः स्वया अनुभूत्या अखिल सिद्ध सिद्धिः एवं त्वक् आदि श्रवण आदि चक्षुः जिह्वा आदि नासा आदि च चित्त युक्तम् ॥ ३१ ॥

अत्र वपुः रन्ध्रे - (जैसे) यहां शरीरके नेत्र छिद्राकाश (गोलक) में
दृक् - नेत्रेन्द्रिय (अध्यात्म) है
रूपं - रूप (अधिभूत है)
अर्कं - (नेत्र स्थित) सूर्य (का अंश अधिदेव है)
परस्परं सिध्यति - परस्पर सिद्ध सफल होते हैं
यत् येषां अपरः - क्योंकि जो इनसे पृथक
आद्यः आत्मा - सर्वकारण कारण आत्मा है
अखिल सिद्धिः - सबको सिद्ध (प्रमाणित) करने वाला
स्वया अनुभूत्या - अपने अनुभवसे ही
सिद्ध - सिद्ध है,
एवं त्वक्-आदि - इसी प्रकार त्वचा (वायु) आदि,
श्रवण - कान (आकाश) आदि,
चक्षुः - नेत्र
च नासादि - तथा नासिका (पृथ्वी) आदिकी
चित्त युक्तं - चित्त सहित (स्थिति) है ॥ ३१ ॥

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः
प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः ।
अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतु-
र्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥ ३२ ॥

यः असौ गुण क्षोभ कृतः विकारः प्रधान मूलात् महतः प्रसूतः अहं त्रिवृत् मोह विकल्प हेतुः वैकारिकः तामस ऐन्द्रियः च ॥ ३२ ॥

प्रधान मूलात् - प्रकृति रूपी जड़से
महतः प्रसूतः - महत्तत्त्व से उत्पन्न
यः असौ - जो यह
गुण क्षोभ कृतः - गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न
विकारः अहं - विकार रूप अहंकार है
त्रिवृत् - त्रिविध है,
वैकारिकः - वैकारिक,
तामस च - तामस तथा
ऐन्द्रियः - (ऐन्द्रियक) राजस (यही)
मोह विकल्प हेतुः - अज्ञान और विविधताका कारण है ॥ ३२ ॥

आत्मा परिज्ञानमयो विवादो
ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः ।
व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां
मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥

आत्मा परिज्ञानमयः विवादः हि अस्ति इति न अस्ति इति भिदा अर्थ निष्ठः व्यर्थः अपि न एव उपरमेत पुंसां मत्तः पर आवृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥

आत्मा	- आत्मा	**व्यर्थः अपि**	- (यह विवाद) व्यर्थ होनेपर भी
परिज्ञानमयः	- शुद्ध ज्ञान स्वरूप है	**मत्तः स्वलोकात्**	- मुझ निजधाम स्वरूपसे
हि अस्ति इति	- क्योंकि 'है' इस प्रकार और	**पर आवृत्त धियां**	- पराङ्मुख चित्त
न अस्ति इति	- 'नहीं है' इस प्रकारका	**पुंसां न एव**	- पुरुषोंका नहीं ही
विवादः	- विवाद	**उपरमेत**	- छूट पाता है ॥३३॥
भिदा अर्थ निष्ठः	- भेद दृष्टि मूलक है,		

उद्धव उवाच–

त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो ।
उच्चावचान् यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥

त्वत्तः पर आवृत्त धियः स्व कृतैः कर्मभिः प्रभो उच्च अवचान् यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च ॥ ३४ ॥

प्रभो	- प्रभा !	**उच्च अवचान**	- श्रेष्ठ-कनिष्ठ
तत्त्वः पर आवृत्त	- आपसे विमुख	**देहान् यथा**	- शरीरोंको जैसे ग्रहण करते
धियः	- चित्त (जीव)	**गृह्णन्ति**	
स्वकृतैः कर्मभिः	- अपने किये कर्मोंसे	**च विसृजन्ति**	- तथा छोड़ते हैं ॥ ३४ ॥

तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः ।
न ह्येतत् प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥

तत् मम आख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यं अनात्मभिः न हि एतत् प्रायशः लोके विद्वान् सः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥

गोविन्द - गोविन्द !
अनात्मभिः - आत्मज्ञान रहित लोगोंके लिए
दुर्विभाव्यं - अचिन्त्य
तत् मम - यह विषय मुझे
आख्याहि - बतलाइये
हि लोके - क्योंकि संसारमें
विद्वान् सः - विद्वान भी
प्रायशः - प्रायः (इससे)
वञ्चिताः सन्ति - वञ्चित हैं ॥ ३५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ।
लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥

मनः कर्ममयं नृणां इन्द्रियैः पञ्चभिः युतं लोकात् लोकं प्रयाति अन्य आत्मा तत् अनुवर्तते ॥ ३६ ॥

नृणां मनः - मनुष्योंका मन
कर्ममयं - कर्म (संस्कार) स्वरूप है,
पञ्चभिः - (यही) पांच
इन्द्रियैः युतं - (ज्ञान) इन्द्रियों सहित
लोकात् लोकं - एक लोकसे दूसरे लोक
प्रयाति - जाता है,
आत्मा अन्य - आत्मा (इससे) भिन्न है पर
तत् अनुवर्तते - उस (मन) के अनुसार व्यवहार करता है ॥ ३६ ॥

ध्यायन्मनोऽनुविषयान् दृष्टान् वानुश्रुतानथ ।
उद्यत् सीदत् कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥ ३७ ॥

ध्यायन् मनः अनु विषयान् दृष्टान् वा अनुश्रुतान् अथ उद्यत् सीदत् कर्मतन्त्रं स्मृतिः तत् अनु शाम्यति ॥ ३७ ॥

दृष्टान् वा	- देखे हुए अथवा	सीदत्	- दुःखी होता है,
अनुश्रुतान् अथ	- बार-बार सुने हुए ही	कर्मतन्त्रं	- मन कर्म पराधीन है
विषयान्	- विषयोंका	तत् अनु	- पर उसके (नये उत्साह
अनुध्यायन्	- बार-बार चिन्तन करता हुआ		या दुःखके) पीछे
		स्मृतिः	- (पिछली) स्मृति
मनः उद्यत्	- मन (उनके आनेको) प्रस्तुत होता था	शाम्यति	- भूल जाती है ॥३७॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत् स्मरेत् पुनः ।
जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥ ३८ ॥

विषय अभिनिवेशेन न आत्मानं यत् स्मरेत् पुनः जन्तोः वै कस्यचित् हेतोः मृत्युः अत्यन्त विस्मृतिः ॥ ३८ ॥

विषय	- शरीरको	पुनः आत्मानं	- फिर अपने (पिछले) शरीरको
अभिनिवेशेन	- मैं माननेके कारण	न स्मरेत्	- नहीं स्मरण कर पाता
वै कस्यचित्	- निश्चय किसी भी	अत्यन्त-	- यह (शरीरकी) अत्यन्त
हेतोः	कारणसे	विस्मृतिः	विस्मृति
यत् जन्तोः	- क्योंकि जीव	मृत्युः	- मृत्यु है ॥ ३८ ॥

जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ।
विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥ ३९ ॥

जन्म तु आत्मतया पुंसः सर्व भावेन भूरिद विषय स्वीकृतिं प्राहुः यथा स्वप्न मनोरथः ॥ ३९ ॥

भूरिद	- महादानी उद्धव !	**जन्म प्राहुः**	- (उसका) जन्म कहा गया है
पुंसः आत्मतया	- पुरुषका अपने रूपमें	**यथा स्वप्न**	- जैसे स्वप्न या
सर्व भावेन	- सम्पूर्ण रूपसे	**मनोरथः**	- मनोराज्य में (होता है) ॥ ३९ ॥
विषय-स्वीकृतिं तु	- शरीरको स्वीकार कर लेना तो		

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ ।
तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥ ४० ॥

स्वप्नं मनोरथं च इत्थं प्राक्तनं न स्मरति असौ तत्र पूर्वं इव आत्मानं अपूर्वं च अनुपश्यति ॥ ४० ॥

प्राक्तनं	- पहिलेके	**तत्र पूर्व-आत्मानं**	- उनमें भी पहिले (से विद्यमान) अपनेको
स्वप्नं च	- स्वप्न तथा	**अपूर्वं च**	- नया ही
मनोरथं	- मनोराज्यको भी	**अनुपश्यति**	- बार-बार देखता है ॥ ४० ॥
असौ न स्मरति	- यह स्मरण नहीं करता		

इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ।
बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद् यथा ॥ ४१ ॥

इन्द्रिय अयन सृष्टि इदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि बहिः अन्तः भिदा हेतुः जनः असज्जन कृत् यथा ॥ ४१ ॥

इदं इन्द्रिय अयन	- यह इन्द्रियोंकी आश्रय रूपा	**त्रैविध्यं**	- तीन प्रकार (उत्तम, मध्यम) की
वस्तुनि	- वस्तु तथ्य (आत्मा) में	**भाति**	- प्रतीत हो रही है,
बहिः अन्तः भिदा	- बाह्य-आन्तरिक भेदके	**यथा-असज्जनकृत्**	- जैसे दुष्टका पिता
हेतुः	- कारणसे	**जनः**	- लोगों द्वारा (भेद दर्शी माना जाता है) ॥४१॥

नित्यदा ह्यंग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ।
कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥ ४२ ॥

नित्यदा हि अंग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च कालेन अलक्ष्य वेगेन सूक्ष्मत्वात् तत् न दृश्यते ॥ ४२ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**च न भवन्ति**	- तथा मरते रहते हैं
भूतानि	- प्राणी	**हि सूक्ष्म त्वात्**	- क्योंकि अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे
अलक्ष्य वेगेन	- अलक्ष्यगति	**तत् न दृश्यते**	- वह (जन्म-मरण) दीखता नहीं है ॥ ४२ ॥
कालेन	- कालके द्वारा		
नित्यदा भवन्ति	- सदा ही उत्पन्न होते		

यथार्चिषां स्त्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ।
तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥ ४३ ॥

यथा अर्चिषां स्त्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः तथा एव सर्व भूतानां वयः अवस्था आदयः कृताः ॥ ४३ ॥

यथा अर्चिषां	- जैसे (दीप) ज्योति,	**तथा एव**	- ऐसी ही
च स्त्रोतसां	- तथा नदी-प्रवाहका	**सर्वभूतानां**	- सब प्राणियोंकी
वा वनस्पतेः	- अथवा वृक्षोंके	**वयः अवस्था**	- आयु, अवस्था
फलानां	- फलोंकी	**आदयः कृताः**	- आदि बनी हैं ॥ ४३ ॥

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्त्रोतसां तदिदं जलम् ।
सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥

सः अयं दीपः अर्चिषां यत् वत् स्त्रोतसां तत् इदं जलं सः अयं पुमान् इति नृणां मृषा गीः धीः मृषा आयुषाम् ॥ ४४ ॥

यत्	- जैसे कि	**वत् सः अयं**	- इसी प्रकार वह यही
अर्चिषां	- ज्योतिके सम्बन्धमें	**पुमान्**	- पुरुष है
सः अयं दीपः	- 'वह यही दीपक हैं'	**मृषा आयुषां**	- मिथ्या आयु (विताने) वालोंकी
स्त्रोतसां	- (नदीके) स्त्रोतका	**मृषागीः धीः**	- झूठी बात एवं सोचना है ॥ ४४ ॥
तत् इदं जलं	- 'वह यही जल है'		

मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ।
म्रियते वामरो भ्रान्त्या यथाग्निर्दारुसंयुतः ॥ ४५ ॥

मा स्वस्य कर्म बीजेन जायते सः अपि अयं पुमान् म्रियते वा अमरः भ्रान्त्या यथा अग्निः दारु संयुतः ॥ ४५ ॥

यथा दारु संयुतः	- जैसे काष्ठमें लगी	**स्वस्य कर्म-बीजेन**	- अपने कर्मरूपी बीजसे
अग्निः	- अग्नि (के समान)	**सः मा जायते**	- वह न उत्पन्न होता,
अयं पुमान् अपि	- यह पुरुष भी	**वा म्रियते**	- अथवा मरता
भ्रान्त्या	- (अपने) भ्रमके कारण	**अमरः**	- (यह तो) अमर है ॥ ४५ ॥

निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ।
वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥ ४६ ॥

निषेकः गर्भ जन्मानि बाल्य कौमार यौवनं वयः मध्यं जरा मृत्युः इति अवस्थाः तनोः नव ॥ ४६ ॥

निषेक गर्भ	- गर्भाधान, गर्भ,	**वयः मध्यं**	- तारुण्य,
जन्मानि बाल्य	- जन्म, शैशव,	**जरा मृत्युः**	- बुढ़ापा और मृत्यु
कौमार यौवनं	- कुमार, युवा,	**इति तनोः**	- इस प्रकार शरीरकी
		नव अवस्थाः	- नौ अवस्थायें होती हैं ॥ ४६ ॥

एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ।
गुणसंगादुपादत्ते क्वचित् कश्चिज्जहाति च ॥ ४७ ॥

एता मनोरथमयी हि अन्यस्य उच्च अवचाः तनूः गुण संगात् उपादत्ते क्वचित् कश्चित् जहाति च ॥ ४७ ॥

हि एता - क्योंकि ये (अवस्थायें)
मनोरथमयी - मनोराज्य रूपा
उच्च अवचाः - श्रेष्ठ-कनिष्ठ
अन्यस्य तनूः - अपनेसे पृथक शरीरकी हैं
गुण-संगात् - गुणोंमें आसक्ति होनेसे
उपादत्ते - (इन्हें) ग्रहण कर लेता है,
क्वचित्- - कभी कोई
कश्चित् (ज्ञान होनेपर)
जहाति च - छोड़ भी देता है ॥४७॥

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ।
न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥

आत्मनः पितृ पुत्राभ्यां अनुमेयौ भव अप्ययौ न भव अप्यय वस्तूनां अभिज्ञः द्वय लक्षणः ॥ ४८ ॥

पितृ पुत्राभ्यां - पिता और पुत्रके द्वारा
आत्मनः - अपने
अप्ययौ भव - मृत्यु और जन्मका
अनुमेयौ - अनुमान कर लेना चाहिए,
भव अप्यय - उत्पत्ति और मृत्यु
वस्तूनां न - तत्त्वोंका नहीं होता
द्वय लक्षणः - (वह तत्त्व-आत्मा) दोनोंके स्वरूपका
अभिज्ञः - जानने वाला है ॥४८॥

तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ ।
तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

तरोः बीज विपाकाभ्यां यः विद्वान् जन्म संयमौ तरोः विलक्षणः द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

तरोः बीज - (गेंहू आदि) वृक्षके उगने तथा
विपाकाभ्यां - पकनेसे
जन्म संयमौ - (उनका) जन्म-मृत्यु
यः विद्वान् - जो जानता है
द्रष्टा तरोः - वह देखने वाला वृक्षसे
विलक्षणः - पृथक है
एवं तनोः- - ऐसे ही शरीरको
द्रष्टा देखने वाला
पृथक् - (शरीरसे) पृथक है
॥ ४९ ॥

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ।
तत्त्वेन स्पर्शसम्मूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥

प्रकृतेः एवं आत्मानं अविविच्य अबुधः पुमान् तत्त्वेन स्पर्श सम्मूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥ ५० ॥

एवं प्रकृतेः - इस प्रकार प्रकृतिसे
आत्मानं - आत्माका
अविविच्य - विवेक न करके
अबुधः पुमान् - अज्ञानी पुरुष
स्पर्श सम्मूढः - विषयोंमें लगकर अत्यन्त मूढ़ होकर
संसारं - जन्म-मृत्यु चक्रमें
प्रतिपद्यते - पड़ जाते हैं ॥ ५० ॥

सत्त्वसंगादृषीन् देवान् रजसासुरमानुषान् ।
तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥

सत्त्व संगात् ऋषीन् देवान् रजसा असुर मानुषान् तमसा भूत तिर्यक्त्वं भ्रामितः याति कर्मभिः ॥ ५१ ॥

कर्मभिः भ्रामितः - अपने कर्मोंके द्वारा भ्रमित किया जाता,
सत्त्व संगात् - सात्विक आसक्ति होनेसे
ऋषीन् देवान् - ऋषि या देवता,
रजसा असुर - राजसिक से असुर या
मानुषान् - मनुष्य
तमसा भूत - तामसिक से भूत-प्रेत या
तिर्यक्त्वं - पशु-पक्षी योनियोंमें
याति - जाता है ॥ ५१ ॥

नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ।
एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥ ५२ ॥

नृत्यतः गायतः पश्यन् यथा एव अनुकरोति तान् एवं बुद्धि गुणान् पश्यन् न अनीहः अपि अनुकार्यते ॥ ५२ ॥

नृत्यतः गायतः	- नाचते-गाते (लोगों) को	**एवं बुद्धि**	- इसी प्रकार बुद्धिके
पश्यन् यथा	- देखकर (मनुष्य) वैसा ही	**गुणान्**	गुणोंको
तान् अनुकरोति	- उनका अनुकरण करने लगता है,	**पश्यन्**	- देखता हुआ
		अनीहः अपि	- (स्वयं) निष्क्रिय होनेपर भी
		अनुकार्यते	- अनुकरण करनेको बाध्य हो जाता है ॥ ५२ ॥

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव ।
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥ ५३ ॥

यथा अम्भसा प्रचलता तरवः अपि चला इव चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमति इव भूः ॥ ५३ ॥

यथा अम्भसा	- जैसे जलके	**चक्षुषा-भ्राम्यमाणेन**	- नेत्रोंको घुमानेसे
प्रचलता	- हिलनेपर	**भूः भ्रमति इव**	- पृथ्वी घूमती सी
तरवः अपि	- (उसमें प्रतिबिम्बित) वृक्ष भी	**दृश्यते**	- दीखती है ॥ ५३ ॥
चला इव	- हिलते से लगते हैं,		

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा ।
स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥

यथा मनोरथ धियः विषय अनुभवः मृषा स्वप्न दृष्टाः च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥

दाशार्ह	- यादव श्रेष्ठ !	**च स्वप्न दृष्टाः**	- और स्वप्नमें देखे (पदार्थ)
यथा मनोरथ	- जैसे मनोराज्यमें	**मृषा**	- झूठे होते हैं
धियः अनुभवः	- बुद्धिसे अनुभव किये	**तथा आत्मनः**	- वैसे ही आत्मामें
विषयः	- विषय (पदार्थ)	**संसार**	- संसार (असत्) है ॥ ५४ ॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ५५ ॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥ ५५ ॥

यथा स्वने	- जैसे स्वप्नमें	**अर्थे हि**	- पदार्थोंके तो
अनर्थ आगमः	- कष्ट आते हैं,	**अविद्यमाने अपि**	- उपस्थित न रहनेपर भी
अस्य विषयान्	- इस (पुरुष) के विषयोंका	**संसृतिः**	- जन्म-मरण
ध्यायतः	- चिन्तन करनेसे	**न निवर्तते**	- नहीं छूटता ॥ ५५ ॥

तस्मादुद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः ।
आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥

तस्मात् उद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयान् असत् इन्द्रियैः आत्मा अग्रहण निर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**वैकल्पिकं**	- अनेक रूपवाले
असत् इन्द्रियैः	- दुष्ट इन्द्रियों द्वारा	**भ्रमं**	- भ्रम (संसार) को
तस्मात्	- इसलिए	**आत्मा अग्रहण**	- आत्माके अज्ञानसे
विषयान् मा-भुङ्क्ष्व	- विषयोंका भोग मतकरो,	**निर्भातं पश्य**	- प्रतीत होता देखो ॥ ५६ ॥

क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा ।
ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥

क्षिप्तः अवमानितः असद्भिः प्रलब्धः असूयितः अथवा ताडितः सन्निबद्धः वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ५७ ॥

असद्भिः	- दुष्टों द्वारा	**ताडितः**	- पीटे जाने,
क्षिप्तः-	- आक्षेप करने,	**वा सन्निबद्धः**	- अथवा जकड़कर
अवमानितः	अपमानित होने,		बांधे जाने
प्रलब्धः	- ठगे जाने,	**वा वृत्त्या**	- या आजीविकासे
अथवा असूयितः	- अथवा गुणमें दोष	**परिहापितः**	- वञ्चित किये जानेपर
	निकाले जाने,		॥ ५७ ॥

निष्ठितो मूत्रितो वाज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः ।
श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनाऽऽत्मानमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

निष्ठितः मूत्रितः वा अज्ञैः बहुधा एवं प्रकम्पितः श्रेयः कामः कृच्छ्रगत आत्मना आत्मानं उद्धरेत् ॥ ५८ ॥

अज्ञैः	- अज्ञानी लोगों द्वारा	**श्रेयः कामः**	- अपना कल्याण
निष्ठितः	- थूके जाने		चाहने वाला
वा मूत्रितः	- या मूत्र कर दिये जानेपर	**कृच्छ्रगत**	- संकटमें पड़नेपर
एवं बहुधा	- इस प्रकार अनेक रूपोंसे	**आत्मना**	- अपनी बुद्धिके द्वारा
प्रकम्पितः	- चञ्चल करनेका प्रयत्न	**आत्मानं-**	- अपना उद्धार करे
	करनेपर	**उद्धरेत्**	॥ ५८ ॥

उद्धव उवाच—

यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर ।
सुदुःसहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥

यथा एवं अनुबुधि अयं वद नः वदतां वर सुदुःसहं इमं मन्ये आत्मनि असत् अतिक्रमम् ॥ ५९ ॥

वदतां वर	- उपदेशकोंमें सर्वश्रेष्ठ !	**असत् आत्मनि**	- दुष्टों द्वारा अपना
यथा एवं	- जिससे इस प्रकार	**इमं अतिक्रमं**	- यह अपमान
इयं अनुबुधि	- इस बात को ठ समझ सकूं	**सुदुःसहं**	- सहनेमें अत्यन्त कठिन
		मन्ये	- मानता हूँ ॥ ५९ ॥
नः वद	- मुझे बतलाइये,		

विदुषामपि विश्वात्मन् प्रकृतिर्हि बलीयसी ।
ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शान्तांस्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥

विदुषां अपि विश्वात्मन् प्रकृतिः हिबलीयसी ऋते त्वत् धर्म निरतान् शान्तान् ते चरण आलयान् ॥ ६० ॥

विश्वात्मन्	- विश्वस्वरूप प्रभो !	**शान्तान् ऋते**	- शान्त पुरुषोंको छोड़कर
त्वत् धर्म-	- आपके धर्म (भक्ति)	**विदुषां अपि**	- विद्वानोंके लिए भी (दुःसह मानता हूं)
निरतान्	में लगे		
ते चरण	- आपके चरणोंमें	**हि प्रकृतिः**	- क्योंकि स्वभाव
आलयान्	- घर बनाये (निवास करने वाले)	**बलीयसी**	- बलवान होता है ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्री शुक उवाच–१

स एवमाशंसित उद्धवेन
भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ।
सभाजयन् भृत्यवचो मुकुन्द-
स्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥

स एवं आशंसित उद्धवेन भागवत मुख्येन दाशार्ह मुख्यः सभाजयन् भृत्यवचः मुकुन्दः तं आबभाषे श्रवणीय वीर्यः ॥ १ ॥

एवं भागवत	- इस प्रकार प्रधान	**श्रवणीय वीर्यः**	- जिनका पराक्रम ही
मुख्येन	भगवद्भक्त		सुनने योग्य है
उद्धवेन	- उद्धव द्वारा	**मुकन्दः**	- मुकुन्दने
आशंसित	- पूछे जाने पर	**भृत्यवचः**	- अपने सेवककी वाणीकी
स दाशार्ह-	- वे यादव शिरोमणि	**सभाजयन्**	- प्रशंसा करते हुए
मुख्यः		**तं आबभाषे**	- उनसे कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच–

बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ।
दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

बार्हस्पत्य स वै न अत्र साधुः वै दुर्जन इरितैः दुरुक्तैः भिन्नं आत्मानं यः समाधातुं ईश्वरः ॥ २ ॥

---

१. गीताप्रेसकी प्रतिमें यहाँ 'बादरायणिरुवाच' है ।

वार्हस्पत्य - देवगुरु वृहस्पतिके शिष्य उद्धव !
वै अत्र - निश्चय इस संसारमें
स साधुः वै न - वे सत्पुरुष निश्चय नहीं मिल
यः दुर्जन - जो दुष्टोंकी ही
इरितैः - कटूक्तियोंसे
भिन्नं आत्मानं - बिंधे चित्तको
समाधातुं - सम्हालनेमें
ईश्वरः - समर्थ हों ॥ २ ॥

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः ।
यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाण. ु मर्मगैः यथा ुदन्ति मर्मस्था हि असतां परुष ईषवः ॥ ३ ॥

हि पुमान् - क्योंकि पुरुष
सुमर्मगैः - अत्यन्त मर्म स्थानोंपर पहुँचने वाले
बाणैः विद्धः - वाणोंसे बींधे जाने पर
तथा न तप्यते - वैसा सन्तप्त नहीं होता
यथा मर्मस्था - जैसी हृदयमें स्थित
असतां - दुष्टोंकी
परुष ईषवः - तीक्ष्ण बाण रूपी वाणी
तुदन्ति - काटती रहती है ॥ ३ ॥

कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ।
तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

कथयन्ति महत् पुण्यं इतिहासं इह उद्धव तं अहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

उद्धव - उद्धव !
इह महत् पुण्यं - इस विषयमें महान् पवित्र
इतिहासं - इतिहास
कथयन्ति - कहा जाता है
अहं तं - मैं उसका
वर्णयिष्यामि - वर्णन करूँगा
सुसमाहितः - अत्यन्त एकाग्र होकर
निबोध - सुनो ॥ ४ ॥

केनचिद् भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ।
स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥

केनचित् भिक्षुणा गीतं परि भूतेन दुर्जनैः स्मरता धृति युक्तेन विपाकं निज कर्मणाम् ॥ ५ ॥

दुर्जनैः	- दुर्जनों द्वारा	**विपाकं स्मरता**	- फल स्मरण करते हुए
परिभूतेन	- सब ओर से सताये जानेपर	**धृति युक्तेन**	- धैर्य सहित
		केनचित्	- किसी
निज कर्मणां	- अपने कर्मोंका	**भिक्षुणा गीतं**	- भिक्षुक द्वारा (यह) गाया गया है ॥ ५ ॥

अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ।
वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥

अवन्तिषु द्विजः कश्चित् आसीत् आढ्यतमः श्रिया वार्तावृत्तिः कदर्यः तु कामी लुब्धः अतिकोपनः ॥ ६ ॥

अवन्तिषु	- उज्जैन में	**तु कदर्यः**	- किन्तु कृपण,
वार्तावृत्तिः	- व्यापारसे जीविका चलाने वाला	**कामी लुब्धः**	- कामुक, लोभी,
		अतिकोपनः	- अत्यन्त क्रोधी
श्रिया-आढ्यतमः	- धनसे अत्यन्त धनवान,	**कश्चित् द्विजः**	- कोई ब्राह्मण
		आसीत्	- रहता था ॥ ६ ॥

ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ।
शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥

ज्ञातयः अतिथयः तस्य वाङ्मात्रेण अपि न अर्चिताः शून्य आवसथ आत्मा अपि काले कामैः अनर्चितः ॥ ७ ॥

तस्य ज्ञातयः - उसके जाति भाई,
अतिथयः - एवं अतिथि
वाङ्मात्रेण अपि - वाणी मात्रसे भी
अनर्चितः - सत्कृत नहीं हुए
शून्य आवसथ - (अतः) सुनसान घरमें रहते हुए
काले आत्मा-अपि - समयपर शरीर भी
कामैः अनर्चितः - भोगों द्वारा सत्कृत नहीं हुआ ॥ ६ ॥

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्विषन्ते पुत्रबान्धवाः ।
दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्विषन्ते पुत्र बान्धवाः दारा दुहितरः भृत्या विषण्णा न आचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥

दुःशीलस्य - बुरे स्वभाव तथा
कदर्यस्य - कृपण होनेसे
पुत्र बान्धवाः - पुत्र, सम्बन्धी,
दारा दुहितरः - पत्नी, पुत्रियां.
भृत्या विषण्णा - सेवक खिन्न रहते थे,
द्विषन्ते - द्वेष करते थे,
प्रियं न आचरन् - (उसका) प्रिय नहीं करते थे ॥ ८ ॥

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ।
धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ ९ ॥

तस्य एवं यक्ष वित्तस्य च्युतस्य उभय लोकतः धर्म काम विहीनस्य चुक्रुधुः पञ्च भागिनः ॥ ९ ॥

एवं तस्य - इस प्रकार उस
यक्ष वित्तस्य - यक्षके समान धनकी रखवाली करने वाले,
उभयलोकतः - दोनों लोकोंसे
च्युतस्य - गिरे हुए
धर्म काम - धर्म तथा भोग
विहीनस्य - रहितके
पञ्च भागिनः - पांचों भागीदार (पञ्च महायज्ञके देवता)
चुक्रुधुः - कुपित होगये ॥ ९ ॥

तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद ।
अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥

तत् अवध्यान विस्रस्त पुण्य स्कन्धस्य भूरिद अर्थः अपि अगच्छत् निधनं बहु आयास परिश्रमः ॥ १० ॥

भूरिद	- उदारदानी उद्धव !	**बहु आयास**	- बहुत प्रयत्न और
तत् अवध्यान	- उन (देवताओं) के तिरस्कारसे	**परिश्रमः**	- परिश्रमका
विस्रस्त	- नष्ट हुए	**अर्थः अपि**	- धन भी
पुण्य स्कन्धस्य	- पुण्यरूपी आधारके कारण	**निधनं अगच्छत्**	- नष्ट होगया ॥ १० ॥

ज्ञातयो जगृहुः किञ्चिद् किञ्चिद् दस्यव उद्धव ।
दैवतः कालतः किञ्चिद् ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥

ज्ञातयः जगृहुः किञ्चित् किञ्चित् दस्यव उद्धव दैवतः कालतः किञ्चित् ब्रह्मबन्धोः नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**किञ्चित्**	- कुछ
ब्रह्मबन्धोः	- उस अधम ब्राह्मणका	**दैवतः कालतः**	- भाग्यवश समयके फेरसे (नष्ट हो गया)
ज्ञातयः	- जातिवालोंने	**नृपार्थिवात्**	- जागीरदार तथा राजाने (दण्ड आदिमें ले लिया ।) ॥ ११ ॥
किञ्चित् जगृहुः	- कुछ (धन) छीन लिया,		
किञ्चित् दस्यव	- कुछ चोर-डाकुओंने,		

स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ।
उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥

स एवं द्रविणे नष्टे धर्म काम विवर्जितः उपेक्षितः च स्वजनैः चिन्तां आप दुरत्ययाम् ॥ १२ ॥

स धर्म काम	- वह धर्म और भोगसे	**एवं द्रविणे**	- इस प्रकार धनके भी
विवर्जितः	- रहित,	**नष्टे**	नष्ट हो जानेपर
च स्वजनैः	- तथा स्वजनों द्वारा	**दुरत्ययां**	- दुष्पार
उपेक्षितः	- उपेक्षित (तो था ही)	**चिन्तां आप**	- चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥

तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ।
खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

तस्य एवं ध्यायतः दीर्घं नष्टरायः तपस्विनः खिद्यतः वाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहान् अभूत् ॥ १३ ॥

नष्टरायः	- धन नाश होनेसे	**खिद्यतः**	- दुःखी होकर
तपस्विनः	- तपस्वी होगये	**वाष्प कण्ठस्य**	- आंसू भरे गले वालेको
तस्य एवं	- उसके इस प्रकार	**सुमहान्**	- अत्यन्त तीव्र
दीर्घं ध्यायतः	- लम्बे समय तक चिन्ता करते हुए	**निर्वेदः अभूत**	- वैराग्य होगया ॥ १३ ॥

स चाहेदमहो कष्टं वृथाऽऽत्मा मेऽनुतापितः ।
न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥

स च आह इदं अहो कष्टं वृथाआत्मा मे अनुतापितः न धर्माय न कामाय यस्य अर्थ आयास ईदृशः ॥ १४ ॥

स इदं आह च	- वह यह बोला भी	**न धर्माय**	- न धर्मके लिए
अहो कष्टं	- बड़े खेद की बात है	**न कामाय**	- न भोगके लिए
मे आत्मा	- मैंने शरीरको	**यस्य अर्थ**	- जिसका धनके लिए
वृथा अनुतापितः	- व्यर्थ संतप्त किया	**ईदृशः आयास**	- ऐसा उद्योग था ॥१४॥

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥

प्रायेण अर्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन इह च आत्म उपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥

प्रायेण	- प्रायः	**इह च**	- इस लोकमें तो
कदर्याणां	- कृपण पुरुषोंका	**आत्म-**	- अपनेको संतप्त करनेका
अर्थाः कदाचन	- धन कभी भी	**उपतापाय**	
सुखाय न	- सुखका कारण नहीं होता	**च मृतस्य**	- तथा मरनेपर
		नरकाय	- नरक जानेका कारण होता है ॥ १५ ॥

यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥ १६ ॥

यशः यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः लोभः स्वल्पः अपि तान् हन्ति श्वित्रः रूपं इव ईप्सितम् ॥ १६ ॥

ईप्सितं रूपं	- अभीष्ट सौन्दर्यको भी	**शुद्धं यशः**	- शुद्ध यशको तथा
श्वित्रः इव	- कुष्ठ रोगके समान	**गुणिनां ये गुणाः**	- गुणवानोंमें जो गुण
स्वल्पः अपि-	- थोड़ा सा भी लोभ	**श्लाघ्या तान्**	- प्रशंसनीय हैं उनको
लोभः		**हन्ति**	- नष्ट कर देता है ॥ १६ ॥
यशस्विनां	- यशस्वियोंके		

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥ १७ ॥

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये नाश उपभोग आयासः त्रासः चिन्ता भ्रमः नृणाम् ॥ १७ ॥

नृणां अर्थस्य - पुरुषोंको धनके
साधने सिद्धे - कमानेमें, मिलनेपर
उत्कर्षे रक्षणे - बढ़ाने और रक्षा करनेमें,
व्यये नाश - खर्च होने या नष्ट हो जानेमें
उपभोग - तथा उपभोग करनेमें
आयासः त्रासः - परिश्रम, भय,
चिन्ता भ्रमः - चिन्ता तथा भ्रम होता है ॥ १७ ॥

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयोमदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥

स्तेयं हिंसा अनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयः मदः भेदः वैरं अविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥

स्तेयं हिंसा - चोरी, हिंसा,
अनृतं दम्भः - झूठ, पाखण्ड,
कामः क्रोधः - काम, क्रोध,
स्मयः मदः - गर्व, अहंकार,
भेदः वैरं - भेद बुद्धि, वैर,
अविश्वासः - अविश्वास,
संस्पर्धा - स्पर्धा
च व्यसनानि - तथा लम्पटता, जुआ, शराब ॥ १८ ॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥

एते पञ्चदश अनर्था हि अर्थ मूला मता नृणां तस्मात् अनर्थं अर्थ आख्यं श्रेयः अर्थी दूरतः त्यजेत् ॥ १९ ॥

हि नृणां - क्योंकि मनुष्योंमें
एते पञ्चदश - ये पन्द्रह
अनर्था - अनर्थ
अर्थ मूला - धनकी जड़से पनपते हैं
तस्मात् - इसलिए
श्रेयः अर्थी - अपना कल्याण चाहने वाला
अर्थ आख्यं - अर्थ कहे जाने वाले
अनर्थं - इस अनर्थको
दूरतः त्यजेत् - दूर से ही त्याग दे ॥ १९ ॥

भिद्यन्ते भ्रातरो दारा पितरः सुहृदस्तथा ।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥

भिद्यन्ते भ्रातरः दारा पितरः सुहृदः तथा एका स्निग्धा काकिणिना सद्यः सर्वे अरयः कृताः ॥ २० ॥

भ्रातरः दाराः	- भाई, पत्नियां,	स्निग्धा	- जो (परस्पर) प्रेम करते थे
पितरः	- माता-पिता,	एकाकाकिणिना	- एक कौड़ीके कारण
तथा सुहृदः	- तथा हितैषी	सर्वे भिद्यन्ते	- सब में भेद उत्पन्न हो जाते हैं और
		सद्यः अरयः	- तुरन्त शत्रु बना दिये
		कृताः	- जाते हैं ॥ २० ॥

अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

अर्थेन अल्पीयसा हि एते संरब्धाः दीप्त मन्यवः त्यजन्ति आशु स्पृधः घ्नन्ति सहसा उत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥

हि अल्पीयसा	- क्योंकि थोड़े से	दीप्त मन्यवः	- क्रोध में भरकर
अर्थेन एते	- धनके लिए ये	स्पृधः	- स्पर्धा करते हुए
सहसा सौहृदं	- अचानक हितैषिता	आशु त्यजन्ति	- झट (सम्बन्ध) त्याग देते हैं
उत्सृज्य	- त्यागकर	घ्नन्ति	- और मार डालते हैं ॥ २१ ॥
संरब्धा	- क्षुब्ध होकर		

लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद् द्विजाग्र्यताम् ।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥

लब्ध्वा जन्म अमर प्रार्थ्यं मानुष्यं तत् द्विज अग्रयतां तत् अनआदृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्ति अशुभां गतिम् ॥ २२ ॥

अमर प्रार्थ्यं - देवता भी जिसे पाना चाहते हैं
मानुष्यं जन्म - वह मनुष्य जन्म
तत् द्विज-अग्र्यतां - उसमें भी द्विजातियोंमें श्रेष्ठतम (ब्राह्मणत्व)
लब्ध्वा - पाकर
तत् अनादृत्य - उसका अनादर करके
ये स्वार्थं घ्नन्ति - जो अपने वास्तविक स्वार्थका नाश करते हैं
अशुभां गतिं यान्ति - अशुभ (पापमयी) गति जाते हैं ॥ २२ ॥

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥

स्वर्ग अपवर्गयोः द्वारं प्राप्य लोकं इमं पुमान् द्रविणे कः अनु षज्जेत मर्त्यः अनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥

स्वर्ग अपवर्गयोः - स्वर्ग तथा मोक्षका
द्वारं इमं लोकं - द्वार यह (मनुष्य) लोक
प्राप्य कः मर्त्यः - पाकर कौन मरण धर्मा
पुमान् - पुरुष
अनर्थस्य - अनर्थोंके
धामनि द्रविणे - धाम धनमें
अनुषज्जेत - आसक्त होगा ॥ २३ ॥

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिनः ।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥

देव ऋषि पितृ भूतानि ज्ञातीन् बन्धूंः च भागिनः असंविभज्य च आत्मानं यक्षवित्तः पतति अधः ॥ २४ ॥

देव ऋषि - देवता, ऋषि,
पितृ भूतानि - पितर, प्राणिवर्ग,
ज्ञातीन् बन्धूंः - जातिके बन्धु-बान्धव,
च भागिनः - तथा दूसरे भाग पाने वाले,
च आत्मानं - एवं अपने शरीरको भी
असंविभज्य - बिना बांटे
यक्ष वित्तः - यक्षकी भांति धनकी रक्षा करने वाला
अधः पतति - अधोगति पाता है ॥ २४ ॥

व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ।
कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥

व्यर्थ या अर्थ ईहया वित्तं प्रमत्तस्य वयः बलं कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥

वित्तं प्रमत्तस्य	- धनके लिए प्रमादी बनकर	**कुशला**	- विचारवान लोग
		येन सिध्यन्ति	- जिन साधनोंसे सफल होते हैं
वयः बलं	- आयु और बल		
अर्थ ईहया	- धन पाने की चेष्टामें	**जरठः नु किं**	- (मैं) बूढ़ा भला कौन-सा
व्यर्थ या	- (मैंने) व्यर्थकर दिया,	**साधये**	- साधन करूँगा ॥२५॥

कस्मात् संक्लिश्यते विद्वान् व्यर्थयार्थेहयासकृत् ।
कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥

कस्मात् संक्लिश्यते विद्वान् व्यर्थ या अर्थ ईहया असकृत् कस्यचित् मायया नूनं लोकः अयं सुविमोहितः ॥ २६ ॥

व्यर्थया	- व्यर्थकी	**नूनं कस्यचित्**	- निश्चय किसीकी
अर्थ ईहया	- धन (कमाने) की चेष्टामें	**मायया**	- मायासे
		अयं लोकः	- यह संसार
विद्वान् कस्मात्	- विद्वान किसलिए	**सुविमोहितः**	- अत्यन्त मोहित है ॥ २६ ॥
संक्लिश्यते	- क्लेश उठाते हैं ?		

किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ।
मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥ २७ ॥

किं धनैः धनदैः वा किं कामैः वा कामदैः उत मृत्यना ग्रस्यमानस्य कर्मभिः वा उत जन्मदैः ॥ २७ ॥

धनैः वा - धन अथवा
धनदैः किं - धन देने वालोंसे (इसे) क्या लाभ,
कामैः वा - भोग अथवा
भोग दैः किं - भोग देने वाले (देवताओं) से क्या लाभ ?
उत वा - अथवा
मृत्युना-ग्रस्य मानस्य - मृत्यु द्वारा निगले जाने वाले
जन्मदैः - जन्म देने वाले
कर्मभिः - कर्मोंसे ही (क्या लाभ ?) ॥२७॥

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

नूनं मे भगवान् तुष्टः सर्व देवमयः हरिः येन नीतः दशां एतां निर्वेदं आत्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

नूनं सर्वदेवमयः - निश्चय सर्व देव स्वरूप
हरिः मे - श्री हरि मुझपर
तुष्टः - सन्तुष्ट हैं
येन एतां-दशां - जिन्होंने (मुझे) इस दशामें
नीतः - पहुँचाया (क्योंकि)
निर्वेदः - वैराग्य
आत्मनः प्लवः - अपने लिए नौका है ॥ २९ ॥

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः ।
अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात् सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥

सः अहं काल अवशेषेण शोषयिष्ये अंगं आत्मनः अप्रमत्तः अखिल स्वार्थे यदि स्यात् सिद्ध आत्मनि ॥ २९ ॥

सः अहं - वह मैं
काल अवशेषेण - बचे हुए समयमें
अंगं आत्मनः - अपने प्रिय शरीरको
अखिल स्वार्थे - सम्पूर्ण वास्तविक स्वार्थकी ओरसे
अप्रमत्तः - सावधान रहकर
शोषयिष्ये - सुखा डालूँगा
यदि आत्मनि - कदाचित अन्तःकरण
सिद्ध स्यात् - शुद्ध ही हो जाय ॥ २९ ॥

तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वरः ।
मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥

तत्र मां अनुमोदेरन् देवाः त्रिभुवन ईश्वराः मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥ ३० ॥

त्रिभुवन ईश्वरः - त्रिभुवनके स्वामी
देवाः तत्र मां - देवता इस विषयमें मेरा
अनुमोदेरन् - अनुमोदन करें
खट्वांगः - राजा खट्वांगने
मुहूर्तेन - एक मुहूर्त (दोघड़ी) में ही
ब्रह्मलोकं - भगवद्धाम्
सम साधयत् - भली प्रकार प्राप्त कर लिया था ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच–

इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः ।
उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥

इति अभिप्रेत्य मनसा हि आवन्त्यः द्विजसत्तमः उन्मुच्य हृदय ग्रन्थीन् शान्तः भिक्षुः अभूत् मुनिः ॥ ३१ ॥

आवन्त्यः - वह उज्जैनके
द्विज सत्तमः - श्रेष्ठ ब्राह्मणने
हि मनसा - क्योंकि मनमें
इति अभिप्रेत्य - ऐसा निश्चय कर लिया
हृदयग्रन्थीन् - हृदयकी (काम, क्रोध, लोभकी
उन्मुच्य - तोड़कर
शान्तः मुनिः - शान्त, मननशील
भिक्षुः अभूत् - सन्यासी होगया ॥३१॥

स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः ।
भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥

स चचार महीं एतां संयत आत्मा इन्द्रिय अनिलः भिक्षा अर्थं नगर ग्रामान् असंगः अलक्षितः अविशत् ॥ ३२ ॥

स एतां महीं	- वह इस पृथ्वी पर	**असंगः**	- आसक्तिहीन
आत्मा	- चित्त,	**अलक्षितः**	- बिना पहिचानके
इन्द्रिय अनिलः	- इन्द्रिय तथा प्राणोंको	**नगर ग्रामान्**	- नगर या गांवोंमें
संयत	- नियन्त्रित करके	**भिक्षा अर्थं**	- भिक्षाके लिए
चचार	- विचरण करने लगा,	**अविशत्**	- प्रवेश करता था ॥३२॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ।
दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुं अवधूतं असज्जनाः दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥

भद्र	- कल्याणमय उद्धव !	**बह्वीभिः**	- बहुतसी
वै तं प्रवयसं	- निश्चय उस बहुत बूढ़े	**परिभूतिभिः**	- अपमानित करनेकी क्रियाओंसे
अवधूतं भिक्षुं	- अवधूत भिक्षुकको	**पर्यभवन्**	- सब ओरसे तंग करते थे ॥ ३३ ॥
दृष्ट्वा-असज्जनाः	- देखकर दुष्ट लोग		

केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् ।
पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥

केचित् त्रिवेणुं जगृहुः एके पात्रं कमण्डलुं पीठं च एके अक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ॥ ३४ ॥

केचित् त्रिवेणुं - कोई त्रिदण्ड,
एके कमण्डलुं-पात्रं - कोई कमण्डलु भिक्षापात्र,
एके पीठं च - कोई आसन तथा
अक्षसूत्रं - रुद्राक्षकी माला,
केचन कन्थां चचीराणि - कोई गुदड़ी एवं लंगोटी
जगृहुः - छीन लेते थे ॥ ३४ ॥

प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ।
अन्नं च भैक्ष्यसम्पन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥

प्रदाय च पुनः तानि दर्शितानि आददुः मुनेः अन्नं च भैक्ष्य सम्पन्नं भुञ्जानस्य सरित् तटे ॥ ३५ ॥

प्रदाय च - (कोई वस्तु) देकर तथा
दर्शितानि - (कोई) दिखलाकर
तानि पुनः - उनको फिर
आददुः - छीन लेते थे,
भैक्ष्य सम्पन्नं - भिक्षामें प्राप्त हुए
अन्नं च - भोजनको भी
मुनेः सरित् तटे - मुनिके नदी किनारे
भुञ्जानस्य - भोजन करते समय ॥ ३५ ॥

मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि ।
यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

मुत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्ति अस्य च मूर्धनि यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥

पापिष्ठाः - वे पापी
अस्य मूर्धनि च - इस (भिक्षु) के सिरपर भी
मूत्रयन्ति - मूत्रय त्याग करते थे एवं
च ष्ठीवन्ति - थूकते थे,
यतवाचं - (भोजन के समय) मौन होजाने पर
वाचयन्ति - बोलवाते थे
चेत् न वक्ति - यदि नहीं बोलता था तो
ताडयन्ति - पीटते थे ॥ ३६ ॥

तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ।
बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद् बध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥

तर्जयन्ति अपरे वाग्भिः स्तेनः अयं इति वादिनः बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचित् बध्यतां बध्यतां इति ॥ ३७ ॥

अपरे	- दूसरे	**केचित् तं**	- कोई उसे
अयं स्तेनः	- 'यह चोर है'	**बध्यतां बध्यतां**	- 'बांधो, बांधलो'
इति वादिनः	- ऐसा कहने वाले	**इति रज्ज्वा**	- ऐसा कहकर रस्सीसे
वाग्भिः	- वाणीसे	**बध्नन्ति**	- बाँधते थे ॥ ३७ ॥
तर्जयन्ति	- डांटते थे,		

क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः ।
क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत् स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥

क्षिपन्ति एके अवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः क्षीणवित्त इमां वृत्तिं अग्रहीत् स्वजन उज्झितः ॥ ३८ ॥

एके अवजानन्त	- कोई तिरस्कार करके	**क्षीणवित्त**	- धन नष्ट होनेपर
क्षिपन्ति	- आक्षेप करते	**स्वजन उज्झितः**	- सम्बन्धियोंके त्याग देनेपर
एष शठः	- 'यह दुष्ट	**इमां वृत्तिं**	- यह वृत्ति (इसने)
धर्मध्वजः	- पाखण्डी है,	**अग्रहीत्**	- ग्रहण करली है ॥३८॥

अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव ।
मौनेन साधयत्यर्थं बकवद् दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥

अहो एष महासारः धृतिमान् गिरिराट् इव मौनेन साधयति अर्थं बकवत् दृढ़ निश्चयः ॥ ३९ ॥

अहो एष - 'अहो ! यह
महासारः - बड़े साहस वाला
गिरिराट् इव - पर्वतराज के समान
धृतिमान् - धैर्यशाली है,
बकवत् - बगुलेके समान
दृढ़ निश्चयः - दृढ़ निश्चय करके
मौनेन - मौनके द्वारा
अर्थं साधयति - अपन्त स्वार्थ सिद्ध करता है ॥ ३९ ॥

इत्येके विहसन्त्येनमेके दुर्वातयन्ति च ।
तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥

इति एके विहसन्ति एनं एके दुर्वात यन्ति च तं बबन्धुः निरुरुधुः यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥ ४० ॥

इति एके - ऐसा कहकर कोई
एनं विहसन्ति - इसकी हंसी उड़ाते थे,
च एके - तथा कोई
दुर्वातयन्ति - (इसपर) अपानवायु छोड़ते थे,
तं द्विजं - ब्राह्मणको
यथा क्रीडनकं - जैसे वह खिलौना हो
बबन्धुः - बांध लेते थे एवं
निरुरुधुः - (घरों में) बन्द कर देते थे ॥ ४० ॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् ।
भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥ ४१ ॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् भोक्तव्यं आत्मनः दिष्टं प्राप्तं प्राप्तं अबुध्यत ॥ ४१ ॥

एवं भौतिकं - इस प्रकार आधिभौतिक,
दैविकं - आधिदैविक
च दैहिकं - तथा शारीरिक (आध्यात्मिक)
दुःखं प्राप्तं प्राप्तं - दुःखोंके बार-बार आनेपर
स आत्मनः दिष्टं - वह अपने प्रारब्धका
भोक्तव्यं - (अनिवार्य) भोग
अबुध्यत - समझता था ॥ ४१ ॥

परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ।
पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥

परिभूत इमां गाथां अगायत नर अधमैः पातयद्भिः स्वधर्मस्थः धृतिं आस्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२ ॥

नर अधमैः - अधम मनुष्यों द्वारा
परिभूत - सताये जाकर
पातयद्भिः - (अपने धर्मसे) गिराये जानेका प्रयत्न करनेपर भी
स्वधर्मस्थः - अपने धर्मपर स्थित रहकर
सात्त्विकी 'धृतिं' -सात्विक धृतिका
आस्थाय - आश्रय लेकर
इमां गाथां - (उसने) यह गाथा
अगायत - गायी ॥ ४२ ॥

द्विज उवाच–

नायं जनो मे सुखदुःखहेतु-
र्न देवताऽऽत्मा ग्रहकर्मकालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति
संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत् ॥ ४३ ॥

न अयं जनः मे सुख दुःख हेतुः न देवता आत्मा ग्रह कर्म कालाः मनः परं कारणं आमनन्ति संसार चक्रं परिवर्तयेत् यत् ॥ ४३ ॥

मे सुख दुःख- - मेरे सुख-दुःखका
हेतुः कारण
न अयं जनः - न ये लोग हैं,
न देवता आत्मा - न देवता, शरीर,
ग्रह कर्म कालाः - ग्रह, कर्म या समय,
मनः परं- - मनको ही अन्तिम
कारणं कारण
आमनन्ति - शास्त्र कहते हैं
यत् संसारचक्रं - जिससे जन्म-मरण रूपी चक्र
परिवर्तयेत् - घूम रहा है ॥ ४२ ॥

मनो गुणान् वै सृजते बलीय-
स्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ।
शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि
तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥

मनः गुणान् वै सृजते बलीयः ततः च कर्माणि विलक्षणानि शुक्लानि कृष्णानि अथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयः भवन्ति ॥ ४४ ॥

वैबलीयः	- निश्चय बलवान्	**शुल्कानि**	- सात्विक,
मनः गुणान्	- मन गुणोंको	**कृष्णानि**	- तामसिक
सृजते	- उत्पन्न करता है,	**अथ लोहितानि**	- एवं राजसिक
ततः च	- उनसे फिर	**कर्माणि**	- कर्म होते हैं
विलक्षणानि	- अनेक प्रकारके	**तेभ्यः सवर्णाः**	- उनके द्वारा उनके ही समान
		सृतयः भवन्ति	- (जीवकी) गतियां होती हैं ॥ ४४ ॥

अनीह आत्मा मनसा समीहता
हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ।
मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान्
जुषन् निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥ ४५ ॥

अनीह आत्मा मनसा सम ईहता हिरण्मयः मत् सख उद्विचष्टे मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन् निबद्धः गुण संगतः असौ ॥ ४५ ॥

मत् सख	- मुझ जीवका सखा	**मनः स्वलिंगं**	- मनके द्वारा अपने चिन्ह (चेतन आदि)
आत्मा अनीह	- आत्मा निष्क्रिय	**परिगृह्य**	- ग्रहण करके
हिरण्मयः	- प्रकाश स्वरूप	**कामान् जुषन्**	- भोगोंको भोगता हुआ
उद्विचष्टे	- तटस्थ द्रष्टा है	**असौ गुण-संगतः**	- यह गुणोंमें आसक्त होकर
समईहता मनसा	- समस्त चेष्टायें मनकी हैं,	**निबद्धः**	- बन्धनमें पड़ा है ॥४५॥

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥

दानं स्वधर्मः नियमः यमः च श्रुतं च कर्माणि च सत् व्रतानि सर्वे मनः निग्रह लक्षण अन्ताः परः हि योगः मनसः समाधिः ॥ ४६ ॥

दानं स्वधर्मः	- दान, अपने धर्मका पालन,	**सर्वे**	- सभी
नियमः च यमः	- नियम और यम,	**मनः निग्रह**	- मनको एकाग्र करनेके
श्रुतं च	- वेदाध्ययन तथा	**लक्षण अन्ताः**	- अन्तिम परिणाम वाले हैं
कर्माणि	- सत्कर्म	**हि परः योगः**	- क्योंकि परम योग
च सत् व्रतानि	- एवं उत्तम व्रतादि	**मनसः समाधिः**	- मनका निरुद्ध होजाना ही है ॥ ४६ ॥

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं
दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ।
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्
दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४७ ॥

समाहितं यस्य मनः प्रशान्त दान आदिभिः किं वद तस्य कृत्यं असंयतं यस्य मनः विनश्यत् दान आदिभिः चेत् अपरं किं एभिः ॥ ४७ ॥

यस्य मनः - जिसका मन	**यस्य असंयतं** - जिसका चंचल या
समाहितं - एकाग्र एवं	**मनः विनश्यत्** - मन (आलस्यसे) लय
प्रशान्तं - पूर्ण शान्त है,	हो रहा है
दान आदिभिः - दान आदिसे	**अपरं दान** - दूसरे दान आदि
तस्य कृत्यं - उसको करना	**आदिभिः**
किं वद - क्या है, बतलाओ,	**चेत् एभिः किं** - हैं तो इनसे (उसे) क्या (लाभ) हुआ ॥ ४७ ॥

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा
मनश्च नान्यस्य वशं समेति ।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्
युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेवः ॥ ४८ ॥

मनः वशे अन्ये हि अभवन् स्म देवा मनः च न अन्यस्म वशं सम एति भीष्मः हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्यात् वशे तं स हि देव देवः ॥ ४८ ॥

हि अन्ये देवा - क्योंकि दूसरी इन्द्रियां	**हि देवः भीष्मः** - क्योंकि यह (मन)
मनः वशे - मनके वशमें	देवता भयंकर
अभवन् स्म - होती हैं,	**सहसः सहीयान्** - बलवानों से भी
च मनः - और मन	बलवान है
अन्यस्य वशं - दूसरी (इन्द्रियों) के	**हितं वशे** - क्योंकि उसे जो वशमें
वशमें	**युञ्ज्यात्** - करले
सम न एति - पूर्णतः कभी नहीं आता	**स देव देवः** - वह इन्द्रियोंका स्वामी है ॥ ४८ ॥

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेग-
मरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ।
कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यै-
र्मित्राण्युदासीनरिपून् विमूढाः ॥ ४९ ॥

तं दुर्जयं शत्रुं असह्य वेगं अरुन्तुदं तत् न विजित्य केचित् कुर्वन्ति असत् विग्रहं अत्र मर्त्यैः मित्राणि उदासीन रिपून् विमूढाः ॥ ४९ ॥

तं दुर्जयं - उस (मनरूपी) जीतनेमें कठिन,
असह्य वेगं - असह्य गति वाले,
अरुन्तुदं - बेधते रहने वाले
तत् शत्रुं - उस शत्रुको
न विजित्य - बिना जीते
केचित् विमूढाः - कुछ अत्यन्त मूर्ख लोग
अत्र मर्त्यैः - यहां मनुष्योंसे
असत् विग्रहं - झूठ-मूठका झगड़ा करके
मित्राणि - मित्र,
उदासीन - उदासीन
रिपून् कुर्वन्ति - शत्रु बनाते हैं ॥४९॥

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा
ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः ।
एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण
दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥

देहं मनः मात्रं इमं गृहीत्वा मम अहं इति अन्ध धियः मनुष्याः एषः अहं अन्यः अयं इति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥ ५० ॥

मनः मात्रं - मनः कल्पित
इमं देहं - इस शरीरको
गृहीत्वा - पकड़कर
मम अहं इति - ममता अहंताके कारण
अन्धधियः - अन्धी बुद्धि वाले
मनुष्याः - मनुष्य
एषः अहं - 'यह (देह) मैं हूँ,
अयं अन्यः - यह (देह) दूसरा है'
इति भ्रमेण - इस प्रकारके भ्रमके कारण
दुरन्त पारे - जिसका पार पाना कठिन है उस
तमसि भ्रमन्ति - अज्ञानमें भटक रहे हैं ॥ ५० ॥

जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनश्चात्र ह भौमयोस्तत् ।
जिह्वां क्विचत् संदशति स्वदद्भि-
स्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥

जनस्तु हेतुः सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः च अत्र ह भौमयोः तत् जिह्वां क्वचित् संदशति स्व दद्भिः तत् वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥ ५१ ॥

चेत् जनस्तु	- यदि लोग ही	क्वचित् स्व	- कभी अपने दांतोंसे
सुख दुःखयोः	हेतुः-सुख-दुःखके कारण हों	दद्भिः	
अत्रह	- इसमें तो	जिह्वां-	- जीभ कट जाती है तो
आत्मनः किं	- आत्माकी क्या हानि है ?	संदशति	
		तत् वेदनायां	- उसकी पीड़ाके लिए
तत्	- वे (पीड़ा) देने और पाने वाला दोनों	कुप्येत्-	- क्रोध किसपर करे
		कतमाय	॥ ५१ ॥
भौमयोः	- पार्थिव हैं,		

दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु
किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ।
यदंगमंगेन निहन्यते क्वचित्
क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥

दुःखस्य हेतुः यदि देवता अस्तु किं आत्मनः तत्र विकारयोः तत् यत् अंग अंगेन निहन्यते क्वचित् क्रध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥

दुःखस्य हेतुः - दुःखके कारण
यदि देवता- - यदि देवता हों तो
अस्तु
तत्र आत्मनः- - उसमें आत्माकी क्या
किं हानि है
तत् विकारयोः - (शरीरकी इन्द्रियां भी) उन्हीं (देवताओं) की अंश हैं,
यदि क्वचित् - यदि कभी
अंगेन अंग - एक अंगसे दूसरे अंगको
निहन्यते - चोट लग जाय तो
पुरुषः स्वदेहे - पुरुष अपने शरीरमें
कस्मै क्रुध्येत - किस पर क्रोध करे
॥ ५२ ॥

आत्मा यदि स्यात् सुखदुःखहेतुः
किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ।
न ह्यात्मनोऽन्यत् यदि तन्मृषा स्यात्
क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥

आत्मा यदि स्यात् सुख दुःख हेतुः किं अन्यतः तत्र निजस्वभावः न हि आत्मनः अन्यत् यदि तत् मृषा स्यात् क्रुध्येत कस्मात् न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥

यदि सुख- - यदि सुख-दुःखका
दुःख हेतुः कारण
आत्मा स्यात् - आत्मा हो तो
अन्यतः किं - दूसरेसे क्या प्रयोजन,
तत्र निज- - वहां तो अपना ही
स्वभावः स्वभाव है,
हि आत्मनः - क्योंकि आत्मासे
अन्यत् न - भिन्न कुछ नहीं है,
यदि तत् - यदि हो तो वह मिथ्या
मृषा स्यात् होगा
क्रुध्येत कस्मात् -अतः कुपित क्यों हो
न सुखं न - न सुख है, न दुःख
दुःखम् ॥ ५३ ॥

ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ।
ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां
क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥

ग्रहा निमित्तं सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः अजस्य जनस्य ते वै ग्रहैः ग्रहस्य एव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषः ततः अन्यः ॥ ५४ ॥

चेत् सुख-	- यदि सुख-दुःखके	ते ग्रहैः वै	- उन ग्रहों द्वारा निश्चित
दुःखयोः		जनस्य ग्रहस्य	- उत्पन्न ग्रहों को ही
निमित्तं ग्रहा	- कारण ग्रह हों तो	पीड़ा वदन्ति	- पीड़ा होती बतलाते हैं
अजस्य-	- अजन्मा आत्माकी	ततः अन्यः	- उनसे भिन्न पुरुष
आत्मनः किं	क्या हानि	पुरुषः	
		कस्मै क्रुध्येत	- किस पर क्रोध करे
			॥ ५४ ॥

कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ।
देहस्त्वचित् पुरुषोऽयं सुपर्णः
क्रुध्येत कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥

कर्माः तु हेतुः सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः तत् हि जडा जडत्वे देहः तु अचित् पुरुषः अयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥

चेत् सुख	- यदि सुख-दुःखके कारण	**देहः तु-**	- शरीर भी चेतना रहित
दुःखयोः हेतुः		**अचित्**	है
कर्माः तु	- कर्म ही हों तो	**जडत्वे**	- जड़ता को ही (पीड़ा)
आत्मनः किं	- आत्माकी क्या हानि		होती है
हि तत् जडा	- क्योंकि (वे) कर्म	**अयं पुरुषः**	- यह पुरुष तो
	जड़ है,	**सुपर्णः**	- (उसमें) पक्षी रूपसे
			रहता है,
		न हि-	- क्योंकि यह कर्म मूलक
		कर्ममूलं	नहीं है
		कस्मै क्रुध्येत	- किसपर क्रोध करे
			॥ ५५ ॥

कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्
किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ।
नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत् स्यात्
क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥

कालस्तु हेतुः सुख दुःखयोः चेत् किं आत्मनः तत्र तत् आत्मकः असौ न अग्नेः हि तापं न हिमस्य तत् स्यात् क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥ ५६ ॥

चेत् सुख-	- यदि सुख-दुःखका	**हि अग्नेः-**	- क्योंकि अग्निको गर्मी
दुःखयोः हेतुः	कारण	**तापं न**	नहीं लगती
कालः स्तु	- काल हों तो	**न हिमस्य**	- न बरफको
तत्र आत्मनः	- तो उसमें आत्माकी	**तत् स्यात्**	- वह (सर्दी) होती,
किं	क्या हानि	**कस्मै क्रुध्येत**	- किसपर क्रोध करे
असौ तत्-	- यह (आत्मा) उस	**द्वन्द्वं-**	- द्वन्द्व (सुख-दुःखादि)
आत्मकः	(काल) का स्वरूप है	**परस्य न**	दूसरेके दिये नहीं हैं
			॥ ५६ ॥

न केनचित् क्वापि कथञ्चनास्य
द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य ।
यथाहमः संसृति रूपिणः स्या-
देवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

न केनचित् क्वापि कथञ्चन अस्य द्वन्द्व उपरागः परतः परस्य यथा अहमः संसृति रूपिणः स्यात् एवं प्रबुद्धः न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥

परतः परस्य	- प्रकृति से भी परे	**यथा अहमः**	- जैसे अहंकार
अस्य	- इस (आत्मा) की	**संसृति रूपिणः**	- आवागमन स्वरूप है,
केनचित्	- किसीके भी द्वारा	**स्यात्**	-
क्वापि	- कभी भी	**एवं प्रबुद्धः**	- इस प्रकार ज्ञान सम्पन्न होकर
कथञ्चन	- किसी भी प्रकार	**भूतैः न बिभेति**	- प्राणियोंसे नहीं डरता ॥ ५७ ॥
द्वन्द्व उपरागः	- द्वन्द्वोंका लेप नहीं होसकता		

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठा-
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥

एतां स आस्थाय पर आत्मनिष्ठां अध्यासितां पूर्वतमैः महर्षिभिः अहं तरिष्यामि दुरन्त पारं तमः मुकुन्द अङ्घ्रि निषेवया एव ॥ ५८ ॥

पूर्वतमैः	- सबसे पहिले हुए	**मुकुन्द अङ्घ्रि**	- मुकुन्दके चरणोंकी
महर्षिभिः	- महर्षियों द्वारा	**निषेवया एव**	- प्रगाढ़ सेवा से ही
अध्यासितां	- आश्रय ली गयी	**अहं दुरन्तपारं**	- मैं दुष्पार
स एतां	- उस इस प्रकारकी	**तमः तरिष्यामि**	- अज्ञान पार कर जाऊँगा ॥ ५८ ॥
पर आत्म निष्ठां	- श्रेष्ठ आत्मनिष्ठा पर		
आस्थाय	- स्थित होकर		

श्रीभगवानुवाच–

निर्विद्य नष्टद्रविणो गतकल्मः
प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ।
निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मा-
दकम्पितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥ ५९ ॥

निर्विद्य नष्ट द्रविणः गतकल्मः प्रवज्य गां पर्यटमान इत्थं निराकृतः असद्भिः अपि स्वधर्मात् अकम्पितः अमूं मुनिः आह गाथाम् ॥ ५९ ॥

नष्ट द्रविणः	- धन नष्ट हो जानेपर	**निराकृतः अपि**	- सताये जानेपर भी
निर्विद्य	- विरक्त होकर	**स्वधर्मात्**	- अपने धर्मसे
गतकल्मः	- क्लेशोंसे छूटकर	**अकम्पितः**	- विचलित हुए बिना (उस)
प्रवज्य	- सन्यास लेकर	**मुनिः इत्थं**	- मुनिने इस प्रकार
गां पर्यटमान	- पृथ्वीपर घूमता हुआ	**अमूं गाथां**	- यह गाथा
असद्भिः	- दुष्टों द्वारा	**आह**	- कही ॥ ५९ ॥

सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः ।
मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥

सुख दुःखप्रदः न अन्यः पुरुषस्य आत्म विभ्रमः मित्र उदासीन रिपवः संसारः तमसः कृतः ॥ ६० ॥

पुरुषस्य	- पुरुषको	**मित्र उदासीन**	- मित्र, उदासीन,
सुख दुःखप्रदः	- सुख-दुःख देने वाला	**रिपवः**	- शत्रु रूपी
अन्यः न	- (कोई) दूसरा नहीं है,	**संसारः**	- यह संसार
आत्म विभ्रमः	- (यह) उसका अपना भ्रम है,	**तमसः कृतः**	- अज्ञान जनित है ॥ ६० ॥

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ।
मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥ ६१ ॥

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनः धिया मयि आवेशितया युक्त एतावान् योग संग्रहः ॥ ६१ ॥

तात	- प्रिय उद्धव !	धिया युक्त	- बुद्धिसे युक्त होकर
तस्मात्	- इसलिए	मनः निगृहाण	- मनका निरोध करो,
सर्वात्मना	- सम्पूर्ण चित्तसे	एतावान्	- इतना ही
मयि आवेशितया	- मुझमें लगी	योग संग्रहः	- योगका सार है ॥ ६१ ॥

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ।
धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥

यः एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः धारयन् श्रावयन शृण्वन् द्वन्द्वैः न एव अभिभूयते ॥ ६२ ॥

यः एतां	- जो इस	श्रावयन्	- सुनाता है,
भिक्षुणा गीतां	- भिक्षु को गायी	शृण्वन्	- सुनता है (वह)
ब्रह्मनिष्ठां	- ब्रह्मनिष्ठाको	द्वन्द्वैः	- (सुख-दुःखादि) द्वन्द्वोंसे
समाहितः	- एकाग्र होकर	न एव	- नहीं ही
धारयन्	- धारण करता है,	अभिभूयते	- दबाया जाता ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चतम् ।
यद् विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद् वैकल्पिकं भ्रमम् ।। १ ।।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैः विनिश्चितं यत् विज्ञाय पुमान् सद्यः जह्यात् वैकल्पिकं भ्रमम् ।। १ ।।

अथ पूर्वैः - अब पहिलेके (महर्षियों द्वारा)
विनिश्चितं - निश्चित किया हुआ
सांख्यं ते - सांख्य योग तुमको
संप्रवक्ष्यामि - सुनाता हूँ,
पुमान् यत् विज्ञाय - पुरुष जिसे जानकर
वैकल्पिकं - विविध कल्पना रूप
भ्रमं सद्यः - भ्रम तत्काल
जह्यात् - त्याग देता है ।। १ ।।

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम् ।
यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ।। २ ।।

आसीत् ज्ञानं अथो हि अर्थ एकं एव विकल्पितं यदा विवेक निपुणा आदौ कृतयुगे अयुगे ।। २ ।।

आदौ कृत-युगे अयुगे - प्रथम कल्पके प्रथम सतयुगमें
यदा विवेक निपुणा - जब बहुत विवेक प्रवीण लोग थे
हि ज्ञानं - क्योंकि ज्ञान
अथो अर्थ - और उसका अर्थ (तात्पर्य)
एकं एव - एक (अभिन्न ब्रह्म)
विकल्पितं - सम्पूर्ण कल्पित (दृश्य) रूपमें
आसीत् - था ।। २ ।।

तन्मायाफल रूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ।
वाङ्मनोऽगोचरं सत्यं द्विधा समभवद् बृहत् ।। ३ ।।

तत् माया फल रूपेण केवलं निर्विकल्पितं वाङ्मनः अगोचरं सत्यं द्विधा समभवत् बृहत् ॥ ३ ॥

निर्विकल्पितं	- निर्विकल्प,	सत्यं	- सत्य है,
वाङ्मनः-	- वाणी-मनसे अगोचर,	तत् माया	- उसकी मायासे
अगोचरं		बृहत् द्विधा	- वह ब्रह्म ही दो रूप
फल रूपेण	- अन्तिम परिणाम रूप		(द्रष्टा-दृश्य)
केवलं	- वह (ब्रह्म) अद्वितीय,	समभवत्	- होगया ॥ ३ ॥

तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ।
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥

तयोः एकतरः हि अर्थः प्रकृतिः स उभय आत्मिका ज्ञानं तु अन्यतमः भावः पुरुषः सः अभिधीयते ॥ ४ ॥

हि तयोः	- क्योंकि उन दोनों में से	अन्यतमः-	- दूसरा पदार्थ तो
एकतरः अर्थः	- एक पदार्थ	भावः तु	
प्रकृतिः	- प्रकृति है	ज्ञानं	- ज्ञान (स्वरूप) है,
स उभय	- वह दो (कार्य-कारण)	सः पुरुषः	- वह पुरुष
आत्मिका	- स्वरूपा है,	अभिधीयते	- कहा जाता है ॥ ४ ॥

तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन् गुणाः ।
मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥

तमः रजः सत्त्वं इति प्रकृतेः अभवन् गुणाः मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुष अनुमतेन च ॥ ५ ॥

पुरुष-	- जीवोंकी (कर्मराशि) के	प्रकृतेः	- प्रकृतिके
अनुमतेन च	अनुसार ही	तमः रजः-	- तमोगुण, रजोगुण, सत्त्व
मया	- मेरे द्वारा	सत्त्वं	गुण
प्रक्षोभ्यमाणायाः	- क्षुब्ध किये जानेपर	इति गुणाः	- इस प्रकार तीन गुण
		अभवन्	- होगये ॥ ५ ॥

तेभ्यः समभवत् सूत्रं महान् सूत्रेण संयुतः ।
ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥

तेभ्यः समभवत् सूत्रं महान् सूत्रेण संयुतः ततः विकुर्वतः जातः अहंकारः यः विमोहनः ॥ ६ ॥

तेभ्यः - उन (गुणों) से
सूत्रं - (क्रिया शक्ति प्रधान) सूत्र और
सूत्रेण संयुतः - सूत्रके साथ मिला
महान् - (ज्ञान शक्ति प्रधान) महत्तत्त्व
ततः विकुर्वतः - उसके विकारी होनेपर
समभवत् - उत्पन्न हुआ,
अहंकारः जातः - अहंकार उत्पन्न हुआ
यः विमोहनः - जो बहुत मोहमें डालने वाला है ॥ ६ ॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ।
तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥

वैकारिकः तैजसः च तामसः च इति अहं त्रिवृत् तन्मात्र इन्द्रिय मनसां कारणं चित् अचित् मयः ॥ ७ ॥

अहं वैकारिकः - अहंकार वैकारिक (सात्त्विक)
च तैजसः - तथा तैजस (राजस)
च तामसः - एवं तामस
इति त्रिवृत् - इस प्रकार त्रिविध है,
तन्मात्र इन्द्रिय - वह तन्मात्राओं, इन्द्रियों,
मनसांः कारणं - मनका कारण
चित् अचित्- - चेतन-जड़
मयः उभयात्मक है ॥ ७ ॥

अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च ।
तैजसाद् देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥

अर्थः तन्मात्रिकात् जज्ञे तामसात् इन्द्रियाणि च तैजसात् देवता आसन् एकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥

तामसात्	- तामस अहंकारसे (उत्पन्न)	**इन्द्रियाणि**	- इन्द्रियां उत्पन्न हुई,
तन्मात्रिकात्	- (स्पर्शादि) तन्मात्राओंसे	**च वैकृतात्**	- एवं सात्विक अहंकारसे
अर्थः	- पदार्थ (पंच महाभूत)	**एकादश**	- ग्यारह (दस इन्द्रियों एवं मनके)
च तैजसात्	- तथा राजस अहंकारसे	**देवता आसन्**	- देवता हुए ॥ ९ ॥

मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ।
अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्य कारिणः अण्डं उत्पादयामासुः मम आयतनं उत्तमम् ॥ ९ ॥

मया	- मेरे द्वारा	**मम उत्तमं**	- मेरा श्रेष्ठ
सञ्चोदिता	- प्रेरित होकर	**आयतनं**	- निवास
सर्वे भावाः	- सब तत्त्वोंने	**अण्डं-**	- ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया
संहत्य कारिणः	- एक साथ मिलकर क्रियाशील होकर	**उत्पादयामासु**	॥ ९ ॥

तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ ।
मम नाभ्यामभूत् पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥

तस्मिन् अहं समभवं अण्डे सलिल संस्थितौ मम नाभ्यां अभूत् पद्मं विश्व आख्यं तत्र च आत्म भूः ॥ १० ॥

तस्मिन् अण्डे	- उस ब्रह्माण्ड के	**मम नाभ्यां**	- मेरी नाभिसे
सलिल संस्थितौ	- जलमें स्थिर हो जानेपर	**विश्व आख्यं**	- विश्व नामक
अहं समभवं	- मैं (उसमें) प्रकट हुआ,	**पद्मं अभूत्**	- कमल उत्पन्न हुआ,
		तत्र च	- उसी से तो
		आत्मभूः	- स्वयं भू ब्रह्मा हुए ॥ १० ॥

सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ।
लोकान् सपालान् विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥

सः असृजत् तपसा युक्तः रजसा मत् अनुग्रहात् लोकान् सपालान् विश्वात्मा भूः भुवः स्वः इति त्रिधा ॥ ११ ॥

सः विश्वात्मा	- उन विश्वस्वरूपने	**इति त्रिधा**	- इस प्रकार तीनों
मत् अनुग्रहात्	- मेरे अनुग्रहसे	**लोकान्**	लोकोंको
स पालान्	- लोकपालोंके साथ	**तपसा युक्तः**	- तपस्या करके
भूः भुवः स्वः	- भूः, भुवः, स्वः	**रजसा**	- रजोगुणसे
		असृजत्	- बनाया ॥ ११ ॥

देवानामोक आसीत् स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ।
मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात् परम् ॥ १२ ॥

देवानां ओक आसीत् स्वः भूतानां च भुवः पदं मर्त्य आदीनां भूः लोकः सिद्धानां त्रितयात् परं ॥ १२ ॥

देवानां ओक	- देवताओंका निवास	**मर्त्य आदीनां**	- मनुष्यादिका
स्वः आसीत्	- स्वः लोक (स्वर्ग) है,	**भूः लोकः**	- यह पृथ्वी लोक और
च भूतानां	- तथा भूत-प्रेतोंका	**सिद्धानां**	- सिद्धोंका (स्थान)
पदं भुवः	- स्थान भुवर्लोक है,	**त्रितयात्**	- इस तीनों लोकोंसे
		परं	- ऊपर (तपः, महः, जनः आदि) हैं ॥ १२ ॥

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत् प्रभुः ।
त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥

अधः असुराणां नागानां भूमेः ओकः असृजत् प्रभुः त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुण आत्मनाम् ॥ १३ ॥

भूमेः अधः - पृथ्वीके नीचे,
असुराणां नागानां - असुरों और नागोंका
ओकः प्रभुः - निवास उन समर्थने
असृजत् - बनाया
त्रिलोक्यां - इन तीनों लोकोंमें
त्रिगुण आत्मनाम् - त्रिगुणमय
कर्मणां गतयः - कर्म करन वालोंकी गतियां होती हैं ॥१३॥

योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ।
महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥

योगस्य तपसः च एव न्यासस्य गतयः अमलाः महः जनः तपः सत्यं भक्ति योगस्य मत् गतिः ॥ १४ ॥

योगस्य - योगकी,
तपसः च एव - तपस्या की भी,
न्यासस्य - सन्यासकी
अमलाः गतयः - निर्मल गतियां
महः जनः - महर्लोक, जनलोक,
तपः सत्यं - तपो लोक, सत्य (ब्रह्म) लोकमें होती हैं
भक्ति योगस्य - भक्ति योगकी
मत् गतिः - गति मेरे पास होती है ॥ १४ ॥

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ।
गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥

मया काल आत्मना धात्रा कर्मयुक्तं इदं जगत् गुण प्रवाह एतस्मिन् उन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥

इदं जगत् - यह संसार
कर्मयुक्तं - कर्ममय है,
मया काल आत्मना - मुझ काल स्वरूप द्वारा
धात्रा - निर्मित-पोषित है,
एतस्मिन् - इस
गुण प्रवाह - गुणोंके प्रवाहमें
उन्मज्जति - उतराता
निमज्जति - डूबता है ॥ १५ ॥

अणुर्बृहत् कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ।
सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥

अणुः बृहत् कृशः स्थूलः यः यः भावः प्रसिध्यति सर्वो अपि उभय संयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥

अणुः बृहत्	- छोटे बड़े	**सर्वो अपि**	- सभी
कृशः स्थूलः	- पतले-मोटे	**प्रकृत्या च पुरुषेण**	- प्रकृति एवं पुरुष
यः यः भावः	- जो जो पदार्थ	**उभय संयुक्तः**	- दोनोंसे युक्त ही हैं ॥ १६ ॥
प्रसिध्यति	- प्रकट होते हैं		

यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ।
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥

यः तु यस्य आदिः अन्तः च स वै मध्यं च तस्य सन् विकारः व्यवहार अर्थः यथा तैजस पार्थिवाः ॥ १७ ॥

यथा तैजस	- जैसे सोनेके (आभूषणादि)	**व्यवहार अर्थः**	- व्यवहारके लिए है
पार्थिवाः	- मिट्टीके (घड़े, सकोरे आदि) का	**यः तु यस्य**	- जो भी जिसका
विकारः	- परिवर्तित रूप (आभूषण, घटादि)	**आदिः च अन्तः**	- प्रारम्भ और अन्त है
		वैतस्य	- निश्चय उसका
		मध्यं च	- मध्यका (स्व रूप) भी
		तस्य सन्	- वही है ॥ १७ ॥

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ।
आदिरन्तो यदा यस्य तत् सत्यमभिधीयते ॥ १८ ॥

यत् उपादाय पूर्वः तु भावः विकुरुते अपरं आदिः अन्तः यदा यस्य तत् सत्यं अभिधीयते ॥ १८ ॥

पूर्वः तु - पूर्ववर्ती (कारण) भी
यत् भावं - जिस तत्त्व को ग्रहण
उपादाय करके
अपरं - दूसरे (कार्य) रूपमें
विकुरुते - परिवर्तित होते हैं,
यदा यस्य - जब जिसका
आदिः अन्तः - जो आरम्भ एवं अन्तिम (तत्त्व) है
तत् सत्यं - वही सत्य
अभिधीयते - कहा जाता है ॥१८॥

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥ १९ ॥

प्रकृतिः हि अस्य उपादानं आधारः पुरुषः परः सतः अभिव्यञ्जकः कालः ब्रह्मः तत् त्रितयं तु अहम् ॥ १९ ॥

हि अस्य - क्योंकि इस संसारकी
उपादानं - उपादान (मूल सामग्री)
प्रकृतिः - प्रकृति है,
परः पुरुषः - परमात्मा
आधारः - अधिष्ठान है,
सतः- - इसको प्रकट करने वाला
अभिव्यञ्जकः
कालः - काल है
तत् त्रितयं - यह तीनों
ब्रह्म तु अहं - ब्रह्म है जो मैं हूँ ॥१९॥

सर्गः प्रवर्तते तावत् पौर्वापर्येण नित्यशः ।
महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥

सर्गः प्रवर्तते तावत् पौर्व अपर्येण नित्यशः महान् गुण विसर्ग अर्थः स्थिति अन्तः यावत् ईक्षणम् ॥ २० ॥

यावत् ईक्षणं - जब तक (परमात्माकी) ईक्षण शक्ति है,
स्थिति अन्तः - स्थिति कालके अन्त तक
तावत् - तव तक
पौर्व अपर्येण - पहिले (कारण) पिछले (कार्य) की परम्परासे
नित्यशः - सदा ही
महान् - महत्तत्त्व से
गुण-विसर्ग- - गुणोंके विस्तारके लिये
अर्थः
सर्गः प्रवर्तते - सृष्टि बनी रहती है ॥ २० ॥

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ।
पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥

विराट्मया आसाद्य मानः लोक कल्प विकल्पकः पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥

लोक विकल्पकः - लोकोंकी विविध कल्पनाओंका
कल्प विराट् - आधार विराट्
मया - मेरे द्वारा (अपनेमें)
आसाद्यमानः मिला लेनेका संकल्प करनेपर
भुवनैः सह - सब लोकोंके साथ
विशेषाय - विभाजनके योग्य
पञ्चत्वाय - विनाशको
कल्पते - प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ।
धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥

अन्नं प्रलीयते मर्त्यं अन्नं धानासु लीयते धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिः गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥

मर्त्यं - मरणधर्मा सब प्राणी
अन्नं प्रलीयते - अन्नमें लीन हो जाते हैं१
अन्नं धानासु - अन्न धान्यमें
प्रलीयते - लीन हो जाते हैं२
धाना भूमौ - धान्य भूमिमें
प्रलीयन्ते - विलीन हो जाते हैं३
भूमिः गन्धे - पृथ्वी गन्ध तन्मात्रामें
प्रलीयते - लीन हो जाती है४
॥ २२ ॥

---

१. आहार न मिलने से मर जाते हैं ।
२. अन्न केवल बोया बीज में बच रहता है ।
३. बोये बीज भूमि में ही नष्ट हो जाते हैं, उगते नहीं ।
४. पृथ्वी का स्थूल रूप नष्ट होकर केवल गन्ध रह जाती है ।

अप्सु प्रलीयते गनेध आपश्च स्वगुणे रसे ।
लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥

अप्सु प्रलीयते गन्ध आपः च स्वगुणे रसे लीयते ज्योतिषि रसः ज्योतीः रूपे प्रलीयते ॥ २३ ॥

गन्धः अप्सु - गन्ध जलमें
प्रलीयते - लीन होती है,
आपः च - जल भी
स्वगुणे रसे - अपनी तन्मात्रा रसमें
लीयते - लीन होता है,
रसः ज्योतिषि - रस अग्निमें
ज्योती रूपे - अग्नि रूप तन्मात्रामें
प्रलीयते - विलीन हो जाता है
॥ २३ ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे ।
अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सः अपि च अम्बरे अम्बरं शब्द तन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥

रूपं वायौ - रूप वायुमें,
स च स्पर्शे - वह भी स्पर्श तन्मात्रामें,
सः अपि च - वह (स्पर्श) भी
अम्बरे - आकाशमें,
अम्बरं - आकाश
शब्द तन्मात्र - शब्द तन्मात्रामें एवं
इन्द्रियाणि - इन्द्रियां
स्वयोनिषु - अपने कारण (राजस अहंकारमें)
लीयते - लीन होजाती हैं ॥२४॥

योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ।
शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥ २५ ॥

योनिः वैकारिके सौम्य लीयते मनसि ईश्वरे शब्दः भूतादिं अपि एति भूतादिः महति प्रभुः ॥ २५ ॥

सौम्य - साधु उद्धव !
योनिः - राजस अहंकार
ईश्वरे - अपने नियन्ता
वैकारिके मनसि - सात्त्विक अहंकार रूप मनमें,
शब्दः अपि - शब्द तन्मात्रा भी
भूतादिं एति - पंच भूतोंके कारण तामस अहंकार में मिलता है,
भूतादिः - तामस अहंकार
प्रभुः महति - अपने कारण महत्तत्त्वमें
लीयते - लीन हो जाता है ।।२५।।

स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ।
तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत् काले लीयतेऽव्यये ।। २६ ।।

स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ते अव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते तत् काले लीयते अव्यये ।। २६ ।।

स गुणवत्तमः - वह श्रेष्ठ गुणों वाला
महान् - महत्तत्त्व
स्वेषु गुणेषु - अपने (सत्त्वादि) गुणोंमें
लीयते - लीन होता है,
ते अव्यक्ते - वे (गुण) प्रकृतिमें
सम्प्रलीयन्ते - विलीन हो जाते हैं,
तत् अव्यये - वह (प्रकृति) अविनाशी
काले लीयते - कालमें लीन होती है ।। २६ ।।

कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ।। २७ ।।

कालः मायामये जीवे जीव आत्मनि मयि अजे आत्मा केवल आत्मस्थः विकल्प अपाय लक्षणः ।। २७ ।।

कालः - काल
मायामये जीवे - मायामय जीवमें,
जीव मयि अजे - जीव मुझ अजन्मा
आत्मनि - आत्मामें (लीन होता है)
विकल्प अपाय - विविधताके अभावका
लक्षणः आत्मा - स्वरूप आत्मा
केवल आत्मस्थः - अकेला अपनेमें स्थित रहता है ।। २७ ।।

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ।
मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २८ ॥

एवं अन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः मनसः हृदि तिष्ठेत व्योम्नि इव अर्क उदये तमः ॥ २८ ॥

व्योम्निइव - आकाशमें जैसे
अर्क उदये - सूर्योदय होजाने पर
तमः - अन्धकार (नहीं रह सकता)
एवं मनसः - इस प्रकार बुद्धि द्वारा
अन्वीक्षमाणस्य - बराबर देखने वालेके
हृदि कथं - चित्तमें कैसे
वैकल्पिको भ्रमः - विविधताका भ्रम
तिष्ठेत - ठहर सकता है ॥ २८ ॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशय ग्रन्थि भेदनः प्रतिलोम अनुलोमाभ्यां पर अवर दृशा मया ॥ २९ ॥

पर अवर - कारण-कार्यके
दृशा मया - जानने वाले मेरे द्वारा
संशय ग्रन्थि - संशय रूपी ग्रन्थिको
भेदनः - काट देने वाली
एष सांख्य विधिः - यह सांख्यकी प्रक्रिया
प्रतिलोम - सृष्टिसे प्रलयक्रम तथा
अनुलोमाभ्यां - प्रलयसे सृष्टिक्रम द्वारा
प्रोक्तः - कही गयी ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

गुणानामसमिश्राणां पुमान् येन यथा भवेत् ।
तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥

गुणानां असमिश्राणां पुमान् येन यथा भवेत् तत् मे पुरुष वर्य इदं उपधारय शंसतः ॥ १ ॥

पुरुषवर्य	- पुरुष श्रेष्ठ !	**भवेत्**	- होता है,
येन असमिश्राणां	- जिस बिना मिले	**तत् मे शंसतः**	- उसे मेरे बतलानेसे
गुणानां	- (अपने विशेष) गुणसे	**उपधारय**	- श्रवण करो ॥ १ ॥
पुमान् यथा	- पुरुष जैसा		

शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ।
तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥

शमः दमः तितिक्षा ईक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः तुष्टिः त्यागः अस्पृहा श्रद्धा ह्रीः दया आदिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥

शमः दमः	- मनकी शान्ति, इन्द्रिय दमन,	**त्यागः अस्पृहा**	- त्याग, भोगोंसे अनिच्छा
तितिक्षा ईक्षा	- तितीक्षा, विवेक,	**श्रद्धा ह्रीः**	- श्रद्धा, लज्जा,
तपः सत्यं दया	- तप, सत्य, दया,	**दया आदिः**	- दान आदि,
स्मृतिः तुष्टिः	- स्मृति, सन्तोष,	**स्वनिर्वृतिः**	- आत्मरति ॥ २ ॥

काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् ।
मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥

काम ईहा मदः तृष्णा स्तम्भ आशीः भिदा सुखं मद उत्साहः यशः प्रीतिः हास्यं वीर्यं बल उद्यमः ॥ ३ ॥

काम ईहा	- कामना, प्रयत्न,	**मद उत्साहः**	- गर्व, (लौकिक कर्ममें) उत्साह,
मदः तृष्णा	- घमंड, तृष्णा,	**यशः प्रीतिः**	- अपने यशसे प्रेम,
स्तम्भ आशीः	- अकड़, (धनादिका) आशीर्वाद चाहना,	**हास्यं वीर्यं**	- हास्य, पराक्रम,
भिदा सुखं	- भेद बुद्धि, विषय सुख भोगना,	**बल उद्यमः**	- हठपूर्वक उद्योग करना ॥ ३ ॥

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः कल्मः कलिः ।
शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥

क्रोधः लोभः अनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः कल्मः कलिः शोक मोहौ विषाद आर्ती निद्रा आशा भीः अनुद्यमः ॥ ४ ॥

क्रोधः लोभः	- क्रोध, लोभ,	**शोक मोहौ**	- शोक, मोह,
अनृतं हिंसा	- झूठ, हिंसा,	**विषादआर्ती**	- विषाद, दीनता,
याच्ञा दम्भः	- मांगनेकी वृत्ति, पाखण्ड,	**निद्रा आशा**	- निद्रा, आशा
कल्मः कलिः	- श्रम, कलह,	**भीः अनुद्यमः**	- भय, उत्साहहीनता ॥ ४ ॥

सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः ।
वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥

सत्त्वस्य रजसः च एताः तमसः च अनुपूर्वशः वृत्तयः वर्णित प्रायाः सन्निपातं अथो शृणु ॥ ५ ॥

अनुपूर्वशः - पहिलेके क्रमानुसार
सत्त्वस्य - (श्लोकमें) सत्त्वगुणकी
च रजसः - तथा (श्लोक ३में) रजोगुणकी
च तमसः - एवं (श्लोक ४में) तमोगुणकी
एताः वृत्तयः - ये वृत्तियां
प्रायः वर्णित - प्रायः वर्णन करदी गयीं
अथो सन्निपातं - अब (इनके) मेलसे होने वाली
शृणु - (वृत्तियोंको) सुनो ॥ ५ ॥

सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ।
व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥ ६ ॥

सन्निपातः तु अहं इति मम इति उद्धव या मतिः व्यवहारः सन्निपातः मनः मात्र इन्द्रिय असुभिः ॥ ६ ॥

उद्धव - उद्धव !
अहं इति - (यह मैं हूँ) इस प्रकारकी और
मम इति - (यह मेरा है) इस प्रकारकी
या मतिः - जो बुद्धि है
सन्निपातः तु - गुणोंका मिश्रण ही है,
मनः मात्र - मन, तन्मात्राओं,
इन्द्रिय असुभिः - इन्द्रियों तथा प्राणोंसे
व्यवहारः - (होने वाला) व्यवहार
सन्निपातः - गुणोंका मिश्रण है ॥ ६ ॥

धर्मे चार्थे च कामे च यदासौ परिनिष्ठितः ।
गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥

धर्मे अर्थे च कामे च यदा, असौ परिनिष्ठितः गुणानां सन्निकर्षः अयं श्रद्धा रति धन आवहः ॥ ७ ॥

यदा असौ - जब यह पुरुष
धर्मे च - धर्म तथा
अर्थे च - धनमें तथा
कामे - भोगमें
परिनिष्ठितः - पूर्णतः लगता है
श्रद्धा - (सत्त्वगुणसे) श्रद्धा
रति - (रजोगुणसे) रति
धन आवहः - (तमोगुणसे) धनदायिनी
अयं गुणानां - ये (वृत्तियां) गुणोंकी
सन्निकर्षः - मिश्रण हैं ॥ ७ ॥

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृहाश्रमे ।
स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥

प्रवृत्ति लक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृह आश्रमे स्वधर्मे च अनुतिष्ठेत गुणानां समितिः हि सा ॥ ८ ॥

यर्हि पुमान्	- जब पुरुष	**निष्ठा**	- स्थिरतापूर्वक
गृह आश्रमे	- गृह आश्रममें	**अनुतिष्ठेत**	- लगा रहता है
प्रवृत्ति लक्षणे	- प्रवृत्ति मूलक	**हि सा**	- क्योंकि वह भी
स्वधर्मे च	- अपने धर्ममें ही	**गुणानां समितिः**	- गुणोंका मिश्रण है ॥८॥

पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ।
कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥ ९ ॥

पुरुषं सत्त्व संयुक्तं अनुमीयात् शम आदिभिः काम आदिभीः रजः युक्तं क्रोध आद्यैः तमसा युतम् ॥ ९ ॥

शम आदिभिः	- शम आदि (गुणोंसे	**रजः युक्तः**	- रजोगुण युक्त तथा
पुरुषं सत्त्व-	- पुरुषको सत्त्व गुण	**क्रोध आद्यैः**	- क्रोधादिसे
संयुक्तं	युक्त,	**तमसा युतं**	- तमोगुण युक्त
काम आदिभिः	- कामादिसे	**अनुमीयात्**	- अनुमान करले ॥ ९ ॥

यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः ।
तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात् पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥ १० ॥

यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्व कर्मभिः तं सत्त्व प्रकृतिं विद्यात् पुरुषं स्त्रियं एव वा ॥ १० ॥

पुरुषं वा-	- पुरुष हो अथवा स्त्री	**भक्त्या**	- भक्तिपूर्वक
स्त्रियं एव	ही हो	**मां भजति**	- मेरा भजन करता है तो
यदा स्वकर्मभिः	- जब अपने कर्मों द्वारा	**तं सत्त्व प्रकृतिं**	- उसे सात्त्विक प्रकृतिका
निरपेक्षः	- बिना किसी अपेक्षाके	**विद्यात्**	- समझे ॥ १० ॥

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ।
तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः तं रजः प्रकृतिं विद्यात् हिंसां आशास्य तामसम् ॥ ११ ॥

यदा स्वकर्मभिः - जब अपने कर्मों द्वारा
आशिष - अभिलाषा
आशास्य (पूर्ण करनेकी) इच्छा लेकर
मां भजेत - मेरा भजन करता है
तं रजः- - उसे रजो गुणी स्वभाव
प्रकृतिं और
हिंसां- - (किसीको) कष्ट देनेकी
आशास्य इच्छा करके (भजन करने वालेको)
तामसं - तमोगुणी
विद्यात् - समझे ॥ ११ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ।
चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥ १२ ॥

सत्त्वं रजः तम इति गुणा जीवस्य न एव मे चित्तजा यैः तु भूतानां सज्जमानः निबध्यते ॥ १२ ॥

सत्त्वं रजः - सत्व, रज
तम इति गुणा - तम ये गुण
जीवस्य चित्तजाः - जीवके चित्तसे उत्पन्न होते हैं,
मे न एव - मेरे नहीं ही हैं,
यैः तु भूतानां - जिनके द्वारा प्राणि-पदार्थोंसे
सज्जमानः - आसक्त होकर
निबध्यते - बन्धनमें पड़ जाता है ॥ १२ ॥

यदेतरौ जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ।
तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥

यदा इतरौ जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवं तदा सुखेन युज्येत धर्म ज्ञान आदिभिः पुमान् ॥ १३ ॥

यदा भास्वरं - जब प्रकाशमय
विशदं शिवं - निर्मल, शान्त
सत्त्वं - सत्त्वगुण
इतरौ जयेत् - दूसरे (रजः तमस) को जीत लेता है
तदा पुमान् - उस समय पुरुष,
सुखेन - सुख तथा
धर्मज्ञान - धर्म, ज्ञान
आदिभिः- - आदिसे युक्त हो जाता
युज्येत है ॥ १३ ॥

यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा चलम् ।
तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥

यदा जयेत् तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा चलं तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥

यदा संगं - जब आसक्ति एवं
भिदा चलं - भेद बुद्धि वाला चंचल
रजः - रजोगुण
तमः सत्त्वं - तमोगुण और सत्त्वगुणको
जयेत् - जीत लेता है
तदा दुःखेन - तब दुःख,
कर्मणा यशसा - कर्म, यश और
श्रिया युज्येत - धनसे (पुरुष) युक्त होता है ॥ १४ ॥

यदा जयेद् रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ।
युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया ॥ १५ ॥

यदा जयेद् रजः सत्त्वं तमः मूढं लयं जडं युज्येत शोक मोहाभ्यां निद्रया हिंसया आशया ॥ १५ ॥

यदा मूढं - जब अज्ञानरूप,
लयं जडं - लय तथा जड़ता स्वरूप
तमः रजः सत्त्वं - तमोगुण रजोगुण एवं सत्त्वगुणको
जयेद् - जीत लेता है (तब)
शोक मोहाभ्यां - (पुरुष) शोक, मोह,
निद्रया हिंसया - निद्रा, हिंसा,
आशया युज्येत - कोरी आशासे युक्त हो जाता है ॥ १५ ॥

तदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ।
देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥

तदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः देहे अभयं मनः असंगं तत् सत्त्वं विद्धि मत् पदम् ॥ १६ ॥

तदा चित्तं	- जब चित्त	**देहे अभयं**	- शरीर निर्भय (स्वस्थ)
प्रसीदेत	- प्रसन्न हो,		हो,
च इन्द्रियाणां	- तथा इन्द्रियोंमें	**मनः असंगं**	- मन अनासक्त हो
निर्वृतिः	- शान्तिहो,	**तत् मत् पदं**	- उसे मेरा (निवास) स्थान
		सत्त्वं विद्धि	- सत्त्वगुण समझो ॥१६॥

विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ।
गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥

विकुर्वन् क्रियया च अधीः अनिर्वृत्तिः च चेतसां गात्र अस्वास्थ्यं मनः भ्रान्तं रज एतैः निशामय ॥ १७ ॥

क्रियया विकुर्वन्	- काम करते करते	**गात्र-**	- शरीर अस्वस्थ हो,
अधीः	- बुद्धि काम न दे,	**अस्वास्थ्यं**	
	- तथा इन्द्रियोंमें	**मनः भ्रान्तं**	- मन भटकता हो
च चेतसां	- एवं चित्तमें	**एतैः रंज**	- इन (लक्षणों) से रजोगुण
अनिर्वृतिः	- अशान्ति हो,	**निशामय**	- देखो ॥ १७ ॥

सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षगम् ।
मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥

सीदत् चित्तं विलीयेत चेतसः ग्रहणे अक्षमं मनः नष्टं तमः ग्लानिः तमः तत् उपधारय ॥ १८ ॥

चेतसः - (शब्दादि) चेतनाको
ग्रहणे अक्षमं - ठीक-ठीक ग्रहण करनेमें असमर्थ
सीदत् चित्तं - खिन्न होकर चित्त
विलीयेत - लय होने लगे,
मनः नष्टं - मन सूना प्राय होजाय,
तमः ग्लानिः - अज्ञान और विषाद हो तो
तत् तमः - उसे तमोगुण
उपधारय - समझ लो ॥ १८ ॥

एधमा॰. गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते ।
असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलं एधते असुराणां च रजसि तमसि उद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥

उद्धव - उद्धव (समष्टिमें)
सत्त्वे गुणे - सत्त्वगुणके
एधमाने - बढ़नेपर
देवानां बलं - देवताओंका बल
एधते - बढ़ता है,
रजसि - रजोगुणके (बढ़नेपर)
असुराणां - असुरोंका
च तमसि - तथा तमोगुणके (बढ़नेपर)
रक्षसाम् - राक्षसों का (बल बढ़ता है) ॥ १९ ॥

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद् रजसा स्वप्नमादिशेत् ।
प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥

सत्त्वात् जागरणं विद्यात् रजसा स्वप्नं आदिशेत् प्रस्वापं तमसा जन्तोः तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥

सत्त्वात् जन्तोः - सत्त्वगुणसे (व्यष्टि) प्राणीमें
जागरणं विद्यात् - जागृतावस्था समझे,
रजसा स्वप्नं - रजोगुणसे स्वप्नावस्थाका
आदिशेत् - निर्देश करे,
तमसा प्रस्वापं - तमोगुणसे सुषुप्ति और
तुरीयं त्रिषु - तुरीय स्थिति तीनों अवस्थाओंमें
सन्ततं - व्याप्त रहती है ॥ २० ॥

उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ।
तमसाधोऽध आमुख्याद् रजसान्तरचारिणः ॥ २१ ॥

उपरि उपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः तमसा अधः अध आमुख्यात् रजसा अन्तर चारिणः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणा जनाः	- वेदज्ञ लोग	**तमसा-**	- तमोगुणसे वृक्ष-
सत्त्वेन	- सत्त्वगुण द्वारा	**आमुख्यात्**	पाषाणादि पर्यन्त
उपरि उपरि	- उत्तरोत्तर ऊपरके लोकोंमें	**अधः अध**	- क्रमशः नीचे और
		रजसा	- रजोगुणसे
गच्छन्ति	- जाते हैं,	**अन्तर चारिणः**	- बीचमें रहने वाले (होते हैं) ॥ २१ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः ।
तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वः यान्ति नरलोकं रजः लयाः तमः लयाः तु निरयं यान्ति मां एव निर्गुणाः ॥ २२ ॥

सत्त्वे प्रलीनाः	- सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय मरने वाले	**तमः लयाः-**	- तमोगुणकी वृद्धिके समय मरने वाले तो
		तु	
स्वः यान्ति	- स्वर्ग जाते हैं	**निरयं**	- नरक और
रजः लयाः	- रजोगुणकी वृद्धिके समय मरने वाले	**निर्गुणाः**	- गुणातीत पुरुष
		मां एव यान्ति	- मुझे ही पाते हैं ॥ ३२ ॥
नरलोकं	- मनुष्यलोकमें,		

मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ।
राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥ २३ ॥

मत् अर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् राजसं फल संकल्पं हिंसाप्राय आदि तामसम् ॥ २३ ॥

मत् अर्पणं	- मुझे अर्पित हो	**फल संकल्पं**	- फल पानेका संकल्प करके किया गया
वा निष्फलं	- अथवा निष्कामहो		
तत् निजकर्म	- वह अपना कर्तव्य कर्म	**राजसं**	- राजस है,
सात्त्विकं	- सात्विक है,	**हिंसा प्राय आदि**	- हिंसा प्रधानादि
		तामसं	- तामस (कर्म) हैं ॥ २३ ॥

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ।
प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजः वैकल्पिकं च यत् प्राकृतं तामसं ज्ञानं मत् निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥

कैवल्यं ज्ञानं	- केवल (शुद्ध) आत्मज्ञान	**प्राकृतं ज्ञानं**	- शरीरको आत्मा माननेका ज्ञान
सात्त्विकं	- सात्त्विक है,		
च यत्-	- और जो भेदों का	**तामसं**	- तामसिक है,
वैकल्पिकं	ज्ञान है	**मत् निष्ठं**	- मेरे स्वरूपका (ज्ञान)
रजः	- राजसिक है,	**निर्गुणं स्मृतं**	- निर्गुण कहा गया है ॥ २४ ॥

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ।
तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥

वनं तु सात्त्विकः वासः ग्रामो राजस उच्यते तामसं द्यूत सदनं मत् निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥

वनं वासः तु	- वनमें रहना तो	**द्यूत सदनं**	- जुआघरमें (रहना)
सात्त्विकः	- सात्त्विक है,	**तामसं**	- तामस है
ग्रामो राजस-	- गाँव (बस्ती) में राजस	**मत् निकेतं तु**	- मेरे मन्दिरमें रहना तो
उच्यते	कहा जाता है	**निर्गुणं**	- निर्गुण है ॥ २५ ॥

सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागान्धो राजसः स्मृतः ।
तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥

सात्त्विकः कारकः असंगी राग अन्धः राजसः स्मृतः तामसः स्मृति विभ्रष्टः निर्गुणः मत् अपाश्रयः ॥ २६ ॥

असंगी-कारकः	- अनासक्त भावसे कर्तव्य पालन करने वाला,	**स्मृति विभ्रष्टः**	- स्मृति-भ्रष्ट (विवेकहीन)
सात्त्विकः	- सात्त्विक है,	**तामसः**	- तमोगुणी है
राग अन्धः	- आसक्ति से अन्धा (होकर कर्म करने वाला)	**मत् अपाश्रयः**	- मेरा आश्रय लेकर (कर्म करने वाला)
राजसः स्मृतः	- राजस कहा गया है,	**निर्गुणः**	- निर्गुण (कर्ता) है ॥ २६ ॥

सात्त्विक्याधात्मिकी श्रद्धा कर्म श्रद्धा तु राजसी ।
तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥

सात्त्विकि आध्यात्मिकी श्रद्धा कर्म श्रद्धा तु राजसी तामसि अधर्मे या श्रद्धा मत् सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥

आध्यात्मिकी श्रद्धा सात्त्विकि	- अध्यात्मज्ञान पर श्रद्धा सात्त्विकी है,	**या श्रद्धा-अधर्मे**	- जो श्रद्धा अधर्म में है
कर्म श्रद्धा तु	- (अपने) कर्मपर श्रद्धा तो	**तामसि**	- वह तामसिक है,
राजसी	- राजसिक है,	**मत् सेवायां तु**	- मेरी सेवामें (श्रद्धा) तो
		निर्गुणा	- निर्गुण है ॥ २७ ॥

पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ।
राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तासमं चार्तिदाशुचि ॥ २८ ॥

पथ्यं पूतं अनायः तं आहार्यं सात्त्विकं स्मृतं राजसं च इन्द्रिय प्रेष्ठं तामसं च आर्तिदा अशुचि ॥ २८ ॥

पथ्यं पूतं - आरोग्यदायक, पवित्र,
अनायासः - बिना परिश्रम प्राप्त
आहार्यं - भोजन
सात्त्विकं स्मृतं - सात्त्विक कहा गया है,
इन्द्रिय- - इन्द्रिय (जीभ) को
प्रेष्ठं च प्रिय लगने वाला
राजसं - राजस है,
आर्तिदा- - दुखदायक और अपवित्र
अशुचि (भोजन)
तामसं - तामसिक है ॥ २८ ॥

सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ।
तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदापाश्रयम् ॥ २९ ॥

सात्त्विकं सुखं आत्म उत्थं विषय उत्थं तु राजसं तामसं मोह दैन्य उत्थं निर्गुणं मत् अपाश्रयम् ॥ २९ ॥

आत्म उत्थं - अपने भीतरसे उत्पन्न
सुखं सात्त्विकं - सुख सात्त्विक है,
विषय उत्थं तु - विषयोंके द्वारा
उत्पन्न तो
राजसं - राजसिक है,
मोह दैन्य उत्थं - अज्ञान या दीनतासे
उत्पन्न (सुख)
तामसं - तामसिक है,
मत् अपाश्रयं - मेरे आश्रयसे
(होने वाला सुख)
निर्गुणं - निर्गुण है ॥ २९ ॥

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ।
श्रद्धावस्थाऽऽकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

द्रव्यं देशः फलं कालः ज्ञानं कर्म च कारकः श्रद्धा अवस्था आकृतिः निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥

हि द्रव्यः देशः - क्योंकि पदार्थ, स्थान,
फलं कालः - परिणाम, समय,
ज्ञानं कर्म - ज्ञान, कर्म,
कारकः श्रद्धा - कर्ता, श्रद्धा,
अवस्था आकृतिः - स्थिति, रूप,
च निष्ठा - तथा निष्ठा
सर्व एव त्रैगुण्यः - सभी त्रिगुणात्मक हैं
॥ ३० ॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ।
दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुष अव्यक्त अधिष्ठिताः दृष्टं श्रुतं अनुध्यातं बुद्धया वा पुरुष ऋषभ ॥ ३१ ॥

पुरुष ऋषभ	- पुरुष श्रेष्ठ !	**सर्वे भावा**	- सब तत्त्व
दृष्टं श्रुतं	- देखे, सुने	**पुरुष अव्यक्त**	- पुरुष-प्रकृतिके
वा बुद्धया	- अथवा बुद्धिसे	**अधिष्ठिताः**	- आश्रित
अनुध्यातं	- सोचे गये	**गुणमया**	- त्रिगुणमय हैं ॥ ३१ ॥

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः ।
येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ।
भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥

एताः संसृतयः पुंसः गुण कर्म निबन्धनाः येन इमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः भक्तियोगेन मत् निष्ठः मत् भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥

सौम्य	- साधु उद्धव !	**भक्तियोगेन**	- भक्ति योग द्वारा
पुंसः एताः	- पुरुष की यह सब	**येन इमे-**	- जिसने ये चित्तसे
संसृतयः	- गतियां	**चित्तजाः**	उत्पन्न होने वाले
गुण कर्म	- त्रिगुणमय कर्मोंके साथ	**गुणा निर्जिताः**	- गुणोंको जीत लिया
निबन्धनाः	- बँधी हैं (कर्मानुसार होती हैं)	**मत् भावाय**	- वह मेरे स्वरूपको
		प्रपद्यते	- प्राप्त कर लेता है ॥ ३२ ॥
मत् निष्ठः	- मुझमें निष्ठापूर्वक		

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् ।
गुणसंग विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥

तस्मात् देहं इमं लब्ध्वा ज्ञान विज्ञान सम्भवं गुण संग विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥

तस्मात् - इसलिए
ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञान
सम्भवं - उत्पन्न करने वाले
इमं देहं - इस (मनुष्य) शरीरको
लब्ध्वा - प्राप्त करके
गुण संग - गुणों (विषयों) की आसक्ति
विनिर्धूय - सर्वथा मिटाकर
विचक्षणाः - विवेक युक्त होकर
मां भजन्तु - मेरा भजन करो
॥ ३३ ॥

निःसंगो मां भजेद् विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ।
रजस्तमश्चाभिजयेत् सत्त्वसंसेवया मुनिः ॥ ३४ ॥

निः संगः मां भजेत् विद्वान् अप्रमत्तः जित इन्द्रियः रजः तमः च अभिजयेत् सत्त्व सं सेवया मुनिः ॥ ३४ ॥

मुनिः - मननशील साधक
सत्त्व संसेवया - सत्त्वगुणको पूर्ण अपनाकर
रजः च तमः - रजोगुण और तमोगुणको
अभिजयेत् - सर्वथा जीतले,
निः संगः - अनासक्त होकर
जित इन्द्रियः - इन्द्रियोंको जीतकर
अप्रमत्तः - सावधानी पूर्वक
विद्वान् - मेरा ज्ञान प्राप्त करके
मां भजेत् - मेरा भजन करे ॥ ३४ ॥

सत्त्वं चाभिजयेद् युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ।
सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ ३५ ॥

सत्त्वं च अभिजयेत् युक्तः नैरपेक्ष्येण शान्तधीः सम्पद्यते गुणैः मुक्तः जीवः जीवं विहाय माम् ॥ ३५ ॥

युक्तः - (योगादि) साधन करके
शान्तधीः - शान्त चित्त होकर
नैरपेक्ष्येण - निरपेक्षता द्वारा
सत्त्वं च - सत्त्वगुणको भी
अभिजयेत् - सम्पूर्ण जीत ले,
गुणैः मुक्तः - (तब) गुणोंसे मुक्त
जीवः जीवं - जीव लिंग शरीरको
विहाय - त्यागकर
मां सम्पद्यते - मुझे पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लेता है ॥ ३५ ॥

जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसम्भवैः ।
मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥

जीवः जीव विनिर्मुक्तः गुणैः च आशय सम्भवैः मयि एव ब्रह्मणा पूर्णः न बहिः न अन्तरः चरेत् ॥ ३६ ॥

जीव विनिर्मुक्तः	- लिंग शरीरसे छूटा	**मयि ब्रह्मणा एव**	- मुझ ब्रह्मसे ही
च आशय-	- तथा अन्तःकरणसे	**पूर्णः**	- पूर्ण (एक) हुआ
सम्भवैः	उत्पन्न होने वाले	**न बहिः**	- न बाहर
गुणैः	- गुणोंसे (छूटा)	**न अन्तरः**	- न भीतर
जीवः	- जीव	**चरेत्**	- जाता (उसका कहीं आवागमन नहीं होता) ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।
आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥

मत् लक्षणं इमं कायं लब्ध्वा मत् धर्म आस्थितः आनन्दं परम आत्मानं आत्मस्थं सम उपैति माम् ॥ १ ॥

मत् लक्षणं	- मुझे प्राप्त कराने वाले	**आत्मस्थं**	- अपनेमें ही स्थित
इमं कायं	- इस (मनुष्य) शरीरको	**आनन्दं**	- आनन्द स्वरूप
लब्ध्वा	- पाकर	**परमात्मानं**	- परमात्मा
मत् धर्म	- मेरे धर्म (भक्ति) पर	**मां समुपैति**	- मुझे सम्पूर्ण प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥
आस्थितः	- स्थित होकर		

गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ।
गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ।
वर्तमानोऽपि न पुमान् युज्यतेऽवस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥

गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तः ज्ञान निष्ठया गुणेषु माया मात्रेषु दृश्य मानेषु अवस्तुतः वर्तमानः अपि न पुमान् युज्यते अवस्तुभिः गुणैः ॥ २ ॥

गुण मय्या	- त्रिगुणमय	**दृश्यमानेषु**	- दीखने वाले (जगत) में
जीवयोन्या	- लिंग शरीरसे	**वर्तमानः अपि**	- व्यवहार करता हुआ भी
ज्ञान निष्ठया	- ज्ञान निष्ठा द्वारा	**पुमान्**	- पुरुष
विमुक्तः	- मुक्त होकर	**अवस्तुभिः**	- अवास्तविक (प्रतीतिमात्र)
अवस्तुतः	- वास्तविक न होनेपर भी	**गुणैः न-**	- गुणोंसे युक्त नहीं होता
माया मात्रेषु	- माया मात्र	**युज्यते**	॥ २ ॥

संग न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ।
तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥ ३ ॥

संग न कुर्यात् असतां शिश्न उदरतृपां क्वचित् तस्य अनुगतः तमसि अन्धे पतति अन्ध अनुगत अन्धवत् ॥ ३ ॥

शिश्न उदरतृपां	- (फिर भी) उपस्थं एवं पेटको तृप्त करने वाले	**तस्य अनुगतः**	- उनके पीछे चलनेपर
		अन्ध अनुगत	- अन्धेके पीछे चलने वाले
असतां	- दुष्टोंका	**अन्धवत्**	- अन्धेके समान
क्वचित् संग	- कभी संग	**अन्धे तमसि**	- घोर नरकमें
न कुर्यात्	- न करे	**पतति**	- गिरता है ॥ ३ ॥

ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ।
उर्वशीविरहान्मुह्यन् निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥

ऐलः सम्राट् इमां गाथां अगायत बृहत् श्रवाः उर्वशी विरहात् मुह्यन् निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥

बृहत् श्रवाः	- अपार यशस्वी	**मुह्यन्**	- बेसुध होकर (फिर)
सम्राट् ऐलः	- सम्राट् इला नन्दन पुरुरवाने	**शोकसंयमे**	- शोक मिटने पर
		निर्विण्णः	- वैराग्यवान होकर
उर्वशी विरहात्	- उर्वशीके वियोगमें	**अगायत**	- गाया ॥ ४ ॥

त्यक्त्वाऽऽत्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ।
विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥

त्यक्त्वा आत्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवत् नृपः विलपन् अन्वगात् जाये घोरे तिष्ठ इति विक्लवः ॥ ५ ॥

आत्मानं त्यक्त्वा	- अपना त्याग करके	**विक्लवः**	- व्याकुल होकर
तां व्रजन्तीं	- उस जाती हुई (उर्वशी) के पीछे	**घोरे जाये-तिष्ठ**	- 'निष्ठुर प्रिये ठरह !'
नृपः नग्न	- वह राजा नंगा	**इति विलपन्**	- इस प्रकार विलाप करते
उन्मत्तवत्	- पागलके समान	**अन्वगात्**	- पीछे दौड़ा ॥ ५ ॥

कामानतृप्तोऽनुजुषन् क्षुल्लकान् वर्षयामिनीः ।
न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

कामान् अतृप्तः अनुजुषन् क्षुल्लकान् वर्षयामिनीः न वेद यान्तीः न आयान्तीः उर्वश्या आकृष्ट चेतनः ॥ ६ ॥

उर्वश्या आकृष्ट	- उर्वशी द्वारा आकर्षित	**अतृप्तः**	- तृप्त हुए बिना ही
चेतनः	- चेतना वह	**वर्षयामिनीः**	- वर्षोंकी रात्रियोंको
क्षुल्लकान्	- क्षुद्र	**आयान्तीः**	- आते और
कामान्-अनुजुषन्	- भोगोंको बराबर भोगते हुए	**यान्तीः**	- बीत जाते
		वेद न	- जान नहीं सका ॥ ६ ॥

ऐल उवाच–

अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ।
देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुः खण्डा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥

अहो मे मोह विस्तारः काम कश्मल चेतसः देव्या गृहीत कण्ठस्य न आयुः खण्डा इमे स्मृताः ॥ ७ ॥

अहो मे	- हाय ! मेरे	**देव्यागृहीत**	- देवी (उर्वशी) द्वारा पकड़े गये
मोह विस्तारः	- अज्ञानका विस्तार (प्राबल्य)	**कण्ठस्य**	- कण्ठ होनेसे
काम कश्मल	- कामसे कलुषित	**इमे आयुः खण्डा**	- ये आयुके भाग
चेतसः	- चित्त होनेसे	**स्मृताः न**	- स्मरण ही नहीं आये ॥ ७ ॥

नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाभ्युदितोऽमुया ।
मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥

न अहं वेद अभि निर्मुक्तः सूर्यः वा अभ्युदितः अमुया मुषितः वर्षपूगानां बत अहानि गतानि उत ॥ ८ ॥

अमुया मुषितः	- इस (उर्वशी) द्वारा (चित्त) चुरा लेनेसे	**न वेद**	- नहीं जान सका
अहं सूर्यः	- मैं सूर्यको	**वर्ष पूगानां**	- अनेकों वर्षोंके
अभि निर्मुक्तः वा	- अस्तहो ते अथवा	**अहानि बत**	- दिन अरे
अभ्युदितः	- उदय होते	**उत गतानि**	- व्यर्थ बीत गये ॥ ८ ॥

अहो मे आत्मसम्मोहो येनात्मा योषितां कृतः ।
क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥

अहो मे आत्म सम्मोहः येन आत्मा योषितां कृतः क्रीडामृगः चक्रवर्ती नरदेव शिखामणिः ॥ ९ ॥

अहो मे	- हाय, मेरे	**आत्मा**	- अपनेको
आत्म सम्मोहः	- अपने चित्तकी मूढ़ता	**योषितां**	- स्त्रीके
येन चक्रवर्ती	- जिसके कारण चक्रवर्ती	**क्रीडामृगः-**	- खेलनेका (पालतू) मृग
नरदेव-	- राजन्य शिरोमणि	**कृतः**	बना दिया ॥ ९ ॥
शिखामणिः			

सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ।
यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद् रुदन् ॥ १० ॥

सपरिच्छदं आत्मानं हित्वा तृणं इव ईश्वरं यान्तीं स्त्रियं च अनु अगमं नग्न उन्मत्तवत् रुदन् ॥ १० ॥

सपरिच्छदं - समस्त सामग्रीके साथ
ईश्वरं आत्मानं - सम्राट् अपनेको
तृणं इव हित्वा - तिनकेकी भांति त्यागकर
यान्तीं स्त्रियं च - जाती हुई स्त्रीके भी
नग्न उन्मत्तवत् - नंगा, पागलकी भांति
रुदन् - रोते हुए
अनुअगमं - (मैं) पीछे दौड़ता गया ॥ १० ॥

कुतस्तस्यानुभावः स्यात् तेज ईशत्वमेव वा ।
योऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्तीं खरवत् पादताडितः ॥ ११ ॥

कुतः तस्य अनुभावः स्यात् तेज ईशत्वं एव वा यः अनु अगच्छम् स्त्रियं यान्तीं खरवत् पादताडितः ॥ ११ ॥

तस्य अनुभावः - उसका प्रभाव,
तेज वा - तेज अथवा
ईशत्वं एव - शासन क्षमता ही
कुतः स्यात् - कहांसे रहेगी
यः यान्तीं-स्त्रियं - जो जाती हुई स्त्रीसे
खरवत् - गधेके समान
पाद ताडितः - लात मारे जानेपर भी
अनु अगच्छत् - पीछे दौड़ता गया ॥ ११ ॥

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिः यस्य मनः हृतम् ॥ १२ ॥

यस्यमनः - जिसका मन
स्त्रीभिः हृतं - स्त्री द्वारा चुरा लिया गया
किं विद्यया - (उसकी) विद्यासे क्या लाभ,
तपसा किं - तपस्यासे क्या लाभ,
त्यागेन वा - त्यागसे अथवा
श्रुतेन किं - वेदाध्ययनसे क्या लाभ,
विविक्तेन - एकान्तमें रहने या
मौनेन किं - मौन रहनेसे क्या लाभ ॥ १२ ॥

स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पण्डितमानिनम् ।
योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥

स्वार्थस्य अकोविदं धिक् मां मूर्खं पण्डित मानिनं यः अहं ईश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिः गोखरवत् जितः ॥ १३ ॥

स्वार्थस्य	- (अपने वास्तविक) स्वार्थको	**यः अहं**	- जो मैं
अकोविदं	- न जानने वाले	**ईश्वरतां प्राप्य**	- शासक होकर
पण्डित मानिनं	- अपनेको विद्वान मानने वाले	**गोखरवत्**	- बैल या गधेके समान
मां मूर्खं धिक्	- मुझ मूर्खको धिक्कार	**स्त्रीभिः जितः**	- स्त्री द्वारा जीत लिया गया ॥ १३ ॥

सेवतो वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधरासवम् ।
न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥

सेवतः वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधर आसवं न तृप्यति आत्मभूः कामः वह्निः आहुतिभिः यथा ॥ १४ ॥

वर्षपूगान्	- अनेक वर्षों तक	**मे आत्मभूः**	- मेरे चित्तसे उत्पन्न
उर्वश्या	- उर्वशीके	**कामः न-तृप्यति**	- काम नहीं तृप्त होता
अधर आसवं	- अधर-आसवका	**यथा आहुतिभिः**	- जैसे आहुतियोंसे
सेवतः	- सेवन करनेपर भी	**वह्निः**	- अग्नि (नहीं तृप्त होता) ॥ १४ ॥

पुंश्चल्यापहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ।
आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥

पुंश्चल्याः अपहृतं चित्तं कः नु अन्यः मोचितुं प्रभुः आत्माराम ईश्वरं ऋते भगवन्तं अधोक्षजम् ॥ १५ ॥

पुंश्चल्याः	- कुलटा द्वारा	**अधोक्षजं**	- हृषीकेश
अपहृतं चित्तं	- चुराये चित्तको	**ऋते नु कः**	- छोड़कर भला कौन
आत्माराम ईश्वरं	- आत्मारामोंके स्वामी	**अन्यः मोचितुं**	- दूसरा छुड़ानेमें
भगवन्तं	- भगवान	**प्रभुः**	- समर्थ है ॥ १५ ॥

बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ।
मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥

बोधितस्य अपि देव्या मे सूक्त वाक्येन दुर्मतेः मनः गतः महामोहः न अपयाति अजित आत्मनः ॥ १६ ॥

देव्या	- देवी उर्वशीके	**मे दुर्मतेः**	- मुझ दुर्बुद्धिके
सूक्तवाक्येन	- वैदिक सूक्तके वाक्यों द्वारा	**मनः गतः**	- मनमें समाया
		महामोहः	- महान अज्ञान
बोधितस्य अपि	- समझानेपर भी	**अपयाति न**	- दूर नहीं होता है ॥ १६ ॥
अजित आत्मनः	- इन्द्रियां वशमें न होनेसे		

किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः ।
रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥

किं एतया नः अपकृतं रज्ज्वा वा सर्प चेतसः रज्जु स्वरूप अविदुषः यः अहं यत् अजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥

यत् यः अहं	- क्योंकि जो मैं	**सर्प चेतसः**	- सर्प मानने वाले
अजित इन्द्रियः	- इन्द्रियोंके वशमें हूँ	**नः**	- हमारा
रज्जुस्वरूप	- रस्सीके स्वरूपको	**एतया वा रज्ज्वा**	- इस भला रस्सीने
अविदुषः	- न जानने वाले	**किं अपकृतं**	- क्या बुराई की है ॥ १७ ॥

क्वायं मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः ।
क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः ॥ १८ ॥

क्व अयं मलीमसः कायः दौर्गन्ध्य आदि आत्मकः अशुचिः क्व गुणाः सौमनस्य आद्या हि अध्यासः अविद्यया कृतः ॥ १८ ॥

क्व अयं - कहां तो यह
मलीमसः - मैला-कुचैला
दौर्गन्ध्य आदि - दुर्गन्धि आदिका
आत्मकः - स्वरूप
अशुचिः कायः - अपवित्र शरीर और
क्व सौमनस्य - कहां सुकुमारता
आद्या गुणाः - आदि गुण,
हि अध्यासः - क्योंकि यह असुन्दरमें सुन्दरका आरोप
अविद्यया कृतः - अविद्या से किया गया है ॥ १८ ॥

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः ।
किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥ १९ ॥

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनः अग्नेः श्वगृध्रयोः किं आत्मनः किं सुहृदां इति यः न अवसीयते ॥ १९ ॥

किं पित्रोः - (यह शरीर) माता-पिताका
स्वं नु - स्वत्व है अथवा
भार्यायाः - पत्नीका है,
स्वामिनः - स्वामीका है,
अग्नेः श्व - अग्नि, कुत्ते या
गृध्रयोः - गीधोंका है,
किं आत्मनः - क्या अपना है,
किं सुहृदां - क्या सम्बन्धियों का है
इति यः - इस प्रकार जिसके विषयमें
अवसीयते न - निश्चय नहीं हो पाता ॥ १९ ॥

तस्मिन् कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ।
अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥ २० ॥

तस्मिन् कलेवरे अमेध्ये तुच्छ निष्ठे विषज्जते अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥ २० ॥

तस्मिन् अमेध्ये - क्षुद्र परिणाम वाले
तुच्छ निष्ठे - क्षुद्र परिणाम वाले
कलेवरे - शरीरमें
विषज्जते - आसक्त होकर (लोग कहते हैं)
अहो स्त्रियः मुखं - 'अहो, इस स्त्रीका मुख
सुभद्रं सुनसं - अत्यन्त सुन्दर, अच्छी नाक वाला
च सुस्मितं - तथा सुन्दर मुस्कान वाला है ॥ २० ॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥ २१ ॥

त्वक् मांस रुधिर स्नायु मेदोमज्जा अस्थि संहतौ विट् मूत्र पूये रमतां कृमीणां कियत् अन्तरम् ॥ २१ ॥

त्वक् मांस - चमड़ा, मांस,
रुधिर स्नायु - रक्त, नसें
मेदो मज्जा - चर्बी, मज्जा,
अस्थि संहतौ - हड्डियोंके गट्ठर
विट् मूत्र - विष्टा, मूत्र,
पूये रमतां - पीब से विहार करने वालोंमें
कृमीणां - कीड़ोंसे
कियत् अन्तरं - कितना अन्तर है ॥ २१ ॥

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ।
विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥ २२ ॥

अथ अपि न उप सज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु च अर्थवित् विषय इन्द्रिय संयोगात् मनः क्षुभ्यति न अन्यथा ॥ २२ ॥

अथ अर्थवित् - अतः अपनी भलाई समझने वालेका
स्त्रीषु च - स्त्रियोंसे तथा
स्त्रैणेषु अपि - स्त्रीजितोंसे भी
उप सज्जेत न - आसक्त नहीं होना चाहिए
मनः विषय इन्द्रिय संयोगात् - मन विषयोंका इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर
क्षुभ्यति - विकृत होता है
अन्यथा न च - अन्यथा नहीं ही होता ॥ २२ ॥

अदृष्टादश्रुताद् भावान्न भाव उपजायते ।
असम्प्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ।। २३ ।।

अदृष्टात् अश्रुतात् भावात् न भाव उपजायते असम्प्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ।। २३ ।।

अदृष्टात्	- अनदेखी	**प्राणान्**	- इन्द्रियोंका
अश्रुतात्	- अनसुनी	**असम्प्रयुञ्जतः**	- उपयोग न करनेपर
भावात् भाव	- वस्तुसे कोई भावना	**स्तिमितं मनः**	- निश्चल होकर मन
न उपजायते	- नहीं उत्पन्न होती,	**शाम्यति**	- शान्त होजाता है ।।२३।।

तस्मात् संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः ।
विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ।। २४ ।।

तस्मात् संगः न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु च इन्द्रियैः विदुषां च अपि अविश्रब्धः षट्वर्गः किं नु मादृशाम् ।। २४ ।।

तस्मात्	- इसलिए	**षट्वर्गः**	- षट्वर्ग (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर)
स्त्रीषु	- स्त्रियोंसे और		
स्त्रैणेषु	- स्त्री लम्पटोंसे	**विदुषां च अपि**	- विद्वानोंके लिए भी
इन्द्रियैः	- इन्द्रियों द्वारा	**अविश्रब्धः**	- अविश्वसनीय हैं
संगः न कर्तव्यः	- साथ नहीं करना चाहिए	**उत मादृशां**	- फिर मेरे जैसोंकी
		किं	- क्या चर्चा ।। २४ ।।

श्रीभगवानुवाच–

एवं प्रगायन् नृपदेवदेवः
स उर्वशीलोकमथो विहाय ।
आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै
उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः।। २५ ।।

एवं प्रगायन् नृपदेवः देवः स उर्वशी लोकं अथो विहाय आत्मानं आत्मनि अवगम्य मां वै उप अरमत् ज्ञान विधूत मोहः ॥ २५ ॥

स नृपदेवः देवः - वे राजराजेश्वर
एवं प्रगायन् - इस प्रकार गाते हुए
अथो उर्वशी- - फिर उर्वशी (गन्धर्व)
लोकं लोकको
विहाय - त्यागकर
ज्ञान विधूत- - ज्ञान द्वारा अज्ञानका
मोहः नाश करके
वै मां - निश्चय मुझमें
उप अरमत् - मिल गये ॥ २५ ॥

ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।
सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥ २६ ॥

ततः दुःसंगं उत्सृज्य सत् सु सज्जेत बुद्धिमान् सन्तः एतस्य छिन्दन्ति मनः व्यासंगं उक्तिभिः ॥ २६ ॥

तत्ः बुद्धिमान् - इसलिए बुद्धिमान पुरुष
दुःसंगं उत्सृज्य - कुसंग त्यागकर
सत्सु सज्जेत - सत् पुरुषों से आसक्ति करे
सन्तः एतस्य - सन्त इसके
मनः व्यासंगं - मनकी आसक्ति
उक्तिभिः - अपने वचनोंसे
छिन्दन्ति - काट देंगे ॥ २६ ॥

सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ।
निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

सन्तः अनपेक्षा मत् चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥

अनपेक्षा - (जो) अपेक्षा रहित,
मत् चित्ताः - मुझमें चित्त लगाये,
प्रशान्ताः - अत्यन्त शान्त,
समदर्शिनः - समदर्शी,
निर्ममा - ममता रहित,
निरहंकारा - अहंकारहीन,
निर्द्वन्द्वा - (सुख-दुखादि) द्वन्द्वोंसे रहित
निष्परिग्रहाः - संग्रह रहित हैं
सन्तः - (वे) सन्त हैं ॥ २७ ॥

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ।
सम्भवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत् कथाः सम्भवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्ति अधम् ॥ २८ ॥

महाभाग	- महाभाग उद्धव !	**नित्यं-**	- सदा होती रहती है
तेषु महाभागेषु	- उन महाभागोंमें	**सम्भवन्ति**	
नृणां हिता	- मनुष्योंकी कल्याणकारिणी	**जुषतां अद्यम्**	- वह सेवन करने वालोंको पापसे
मत्कथाः	- मेरी कथा	**प्रपुनन्ति**	- पवित्र कर देती है ॥ २८ ॥

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः ।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति हि अनुमोदन्ति च आदृताः मत् पराः श्रद्दधानाः च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥

ता ये-	- उस (कथा) को जो	**हि मत्परा**	- क्योंकि वे मेरे परायण हैं
शृण्वन्ति	सुनते हैं,	**च श्रद्दधानः**	- तथा श्रद्धालु हैं,
गायन्ति	- गाते हैं,	**ते मयि**	- वे मेरी
च आदृताः	- और आदरपूर्वक	**भक्तिं विन्दन्ति**	- भक्ति प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥
अनुमोदन्ति	- उसका अनुमोदन करते हैं		

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥

भक्तिं लब्धवतः साधोः किं अन्यत् अवशिष्यते मयि अनन्त गुणे ब्रह्मणि आनन्द अनुभव आत्मनि ॥ ३० ॥

साधोः - साधु उद्धव !
मयि अनन्त-गुणे - मुझ अनन्त गुण
आनन्द अनुभव - आनन्दानुभव
ब्रह्मणि आत्मनि - ब्रह्म स्वरूपमें
भक्तिं लब्धवतः - भक्ति प्राप्त कर लेनेपर
अन्यत् किं - दूसरा क्या
अवशिष्यते - बच रहता है ॥३०॥

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥

यथा उपश्रय माणस्य भगवन्तं विभावसुं शीतं भयं तमः अप्येति साधून् संसेवतः तथा ॥ ३१ ॥

यथा भगवन्तं - जैसे भगवान
विभावसुं - अग्निके
उपश्रय माणस्य - समीप बैठने वालोंकी
शीतं भयं तमः - सर्दी, भय, अन्धकार
अप्येति - दूर होजाता है,
तथा साधून् - ऐसे ही संतोंकी
संसेवतः - सेवा करने वालोंका भी
॥ ३१ ॥

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥

निमज्ज्य उन्मज्जतां घोरे भव अब्धौ परम अयनं सन्तः ब्रह्मविदः शान्ता नौः दृढ़ एव अप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥

घोरे भव अब्धौ - घोर संसार-सागरमें
निमज्ज्य उन्मज्जतां - डूबते-उतराते (लोगोंके लिए)
ब्रह्मविदः - ब्रह्मज्ञानी
शान्ता सन्तः - शान्त सन्त
अप्सुमज्जतां - जलमें डूबतोंके लिए
दृढ़ नौः इव - दृढ़नौका के समान
परम अयनं - श्रेष्ठ आश्राय हैं
॥ ३२ ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥ ३३ ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं तु अहं धर्मः वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तः अर्वाक् बिभ्यतः अरणम् ॥ ३३ ॥

हि प्राणिनां	- क्योंकि (जैसे) प्राणियोंका	**प्रेत्य नृणां**	- मरनेपर मनुष्यका
प्राण अन्नं	- जीवन आहार है,	**वित्तं धर्मः**	- धन धर्म है (ऐसे ही)
अहं तु	- मैं तो	**अर्वाक् बिभ्यतः**	- पतनसे डरने वालोंके
आर्तानां शरणं	- व्याकुलोंका आश्रय हूँ,	**सन्तः अरणं**	- सन्त रक्षक हैं ॥३३॥

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥ ३४ ॥

सन्तः दिशन्ति चक्षूंषि बहिः अर्कः समुत्थितः देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्मा अहं एव च ॥ ३४ ॥

बहिः अर्कः	- बाहर सूर्यके	**देवता बान्धवाः**	- देवता, सम्बन्धी
समुत्थितः	- उदय होनेके समान	**सन्तः**	- (सचमुच) सन्त हैं,
सन्तः चक्षूंषि	- सन्त (अन्तः) नेत्र	**च सन्त**	- और सन्त
दिशन्ति	- प्रदान करते हैं	**अहं आत्मा-**	- मेरे स्वरूप ही हैं
		एव	॥ ३४ ॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिःस्पृहः ।
मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

वैतसेनः ततः अपि एवं उर्वश्या लोक निस्पृहः मुक्त संगः महीं एतां आत्मारामः चचार ह ॥ ३५ ॥

ततः उर्वश्या-	- उस उर्वशीके लोकसे	**मुक्तसंगः**	- आसक्ति त्यागकर
लोक		**आत्मारामः**	- आत्ममें ही रमण करते हुए
अपि एवं	- भी इस प्रकार	**एतां महीं**	- इस पृथ्वीपर
निस्पृहः	- निस्पृह होकर	**चचार ह**	- विचरण करने लगे
वैतसेनः	- इला-नन्दन पुरुरवा		॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ।
यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥

क्रियायोगं सम आचक्ष्व भवत् आराधनं प्रभो यस्मात् त्वां ये यथा अर्चन्ति सात्वताः सात्वत ऋषभ ॥ १ ॥

सात्वत ऋषभ	- यदुवंश शिरोमणि !	**अर्चन्ति**	- पूजा करते हैं
प्रभो	- प्रभो !	**क्रिया योगं**	- उस क्रिया योग (पूजा पद्धतिको)
यस्मात्	- जिससे		
ये सात्वताः	- जो भक्त	**सम आचक्ष्व**	- भली भांति बतलाइये ॥ १ ॥
त्वां यथा	- आपकी जैसे		

एतद् वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ॥
नारदो भगवान् व्यास आचार्योऽअंगिरसः सुतः ॥ २ ॥

एतत् वदन्ति मुनयः मुहुः निःश्रेयसं नृणां नारदः भगवान् व्यास आचार्यः अंगिरसः सुतः ॥ २ ॥

नारदः	- देवर्षि नारद,	**मुनयः**	- आदिमुनि
भगवान् व्यास	- भगवान व्यास	**एतत् मुहुः**	- इस (क्रिया योग) को बार-बार
आचार्यः	- मेरे गुरु		
अंगिरसः सुतः	- वृहस्पतिजी	**नृणां निःश्रेयसं**	- मनुष्योंके लिए परम कल्याणकारी
		वदन्ति	- कहते हैं ॥ २ ॥

निःसृतं ते मूखाम्भोजाद् यदाह भगवानजः ।
पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥

निःसृतं ते मुखाम्भोजात् यत् आह भगवान् अजः पुत्रेभ्यः भृगुमुख्येभ्यः देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥

ते मुखाम्भोजात् - आपके मुख कमलसे	**भृगुमुख्येभ्यः** - जिनमें भृगुजी मुख्य हैं
निः सृतं यत् - निकलने पर जिसे	**च भगवान्-** - भगवान शिवने
भगवान् अजः - भगवान ब्रह्माने	**भवः**
पुत्रेभ्यः - (अपने) पुत्रोंको	**देव्यै आह** - देवी उमाको सुनाया ॥ ३ ॥

एतद् वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम् ।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

एतत् वै सर्व वर्णानां आश्रमाणां च सम्मतं श्रेयसां उत्तमं मन्ये स्त्री शूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

मानद - आप तो दूसरोंको सम्मान देने वाले हैं	**च स्त्री शूद्राणां** - एवं स्त्री-शूद्रोंके लिए भी
वै एतत् - निश्चय ही इस (क्रियायोग) को	**सम्मतं** - अधिकार वाला
सर्व वर्णानां - सभी वर्णों	**श्रेयसां उत्तमं** - कल्याणकारी साधनोंमें श्रेष्ठ
च आश्रमाणां - तथा आश्रमों	**मन्ये** - (मैं) मानता हूँ ॥ ४ ॥

एतत् कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् ।
भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥

एतत् कमल पत्राक्ष कर्म बन्ध विमोचनं भक्ताय च अनुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वर ईश्वर ॥ ५ ॥

विश्वेश्वर ईश्वर - लोकपालोंके भी स्वामी !
कमल पत्राक्ष - पद्म पत्र लोचन !
एतत् कर्मबन्ध - यह कर्मबन्धनसे
विमोचनं - सर्वथा मुक्त कर देने वाला (साधन)
अनुरक्ताय - अपने प्रेमी (मुक्त)
भक्ताय च - भक्तको भी
ब्रूहि - बतलाइये ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच–

न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव ।
संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥

न हि अन्तः अनन्त पारस्य कर्मकाण्डस्य च उद्धव संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावत् अनुपूर्वशः ॥ ६ ॥

उद्धव - उद्धव !
हि अनन्तपारस्य - क्योंकि अनन्तपार
कर्मकाण्डस्य - कर्मकाण्डका
अन्तः न - अन्त नहीं है (अतः)
संक्षिप्तं - संक्षेपमें
अनुपूर्वशः - पूर्वापर के क्रमानुसार
वर्णयिष्यामि - वर्णन करूँगा ॥ ६ ॥

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥

वैदिकः तान्त्रिकः मिश्र इति मे त्रिविधः मखः त्रयाणां ईप्सितेन एव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥

वैदिकः-तान्त्रिकः - वैदिक, तान्त्रिक और
मिश्र इति - मिला जुला इस प्रकार
मे मखः - मेरा यज्ञ (पूजा)
त्रिविधः - तीन प्रकारका है,
त्रयाणां - तीनोंमें से
ईप्सितेन - (अपनी) अभीष्ट
विधिना एव - विधिसे ही
मां समर्चयेत् - मेरी पूजा करे ॥ ७ ॥

यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ।
यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥

यदा स्व निगमेन उक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तत् निबोध मे ॥ ८ ॥

यदा स्व-	- जब अपनी वैदिक	**यथा मां**	- जैसे मेरी
निगमेन	शाखा	**श्रद्धया भक्त्या**	- श्रद्धा भक्तिपूर्वक
उक्तं	- विधिसे	**यजेत तत्**	- पूजा करे उसे
पूरुषः द्विजत्वं	- पुरुषको यज्ञोपवीत संस्कार	**मे निबोध**	- मुझसे सुनो ॥ ८ ॥
प्राप्य	- प्राप्त हो जाय (तब)		

अचार्यां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे ।
द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥

अर्चायां स्थण्डिले अग्नौ वा सूर्ये वा अप्सु हृदि द्विजे द्रव्येण भक्तियुक्तः अर्चेत् स्वगुरुं मां अमायया ॥ ९ ॥

भक्तियुक्तः	- भक्तिपूर्वक	**अग्नौ वा सूर्ये**	- अग्निमें या सूर्यमें,
अमायया	- निष्कपट भावसे	**अप्सु हृदि**	- जलमें, हृदयमें,
स्वगुरुं मां	- अपने गुरु स्वरूप मेरी	**वा द्विजे**	- अथवा ब्राह्मणमें
अर्चायां	- मूर्तिमें,	**द्रव्येण अर्चेत्**	- सामग्रियोंसे पूजा करे ॥ ९ ॥
स्थण्डिले वा	- वेदीपर या		

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ।
उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ १० ॥

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौत दन्तः अंग शुद्धये उभयैः अपि च स्नानं मन्त्रैः मृत् ग्रहण आदिना ॥ १० ॥

धौत दन्तः - दन्त धावन (दातौन) करके
अंग शुद्धये - शरीरकी शुद्धिके लिए
पूर्वं स्नानं - पहिले स्नान
प्रकुर्वीत - करले (फिर)
मृत् गहण आदिना च - मिट्टी आदि लगाकर भी
उभयैः अपि - (वैदिक तान्त्रिक) दोनों प्रकारके ही
मन्त्रैः - मन्त्रों द्वारा
स्नानं - स्नान करले ॥ १० ॥

सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे ।
पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥ ११ ॥

सन्ध्या उपास्त्य आदि कर्माणि वेदेन चोदितानि मे पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक् संकल्पः कर्म पावनीम् ॥ ११ ॥

वेदेन चोदितानि - वैदिक आदेशके अनुसार
सन्ध्या उपास्त्य आदि - सन्ध्योपासना आदि
कर्माणि - कर्म करके
कर्मपावनीं -कर्मोंसे पवित्र करने वाली
मे पूजां -मेरी पूजा
सम्यक् संकल्पः -दृढ़ संकल्पपूर्वक
तैः कल्पयेत् -उन (विधियों) से करे ॥ ११ ॥

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती मनोमयी मणिमयी प्रतिमा अष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥

प्रतिमा - मूर्ति
अष्टविधा स्मृता - आठ प्रकारकी कही गयी है
शैली दारुमयी - पत्थरकी, काष्ठकी,
लौही लेप्या - लोहे आदि (धातु) की,
लेख्या च सैकती - चित्र बालुकामयी,
मनोमयी च मणिमयी - मनोमयी तथा मणिमयी ॥ १२ ॥

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ।
उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥

चला अचला इति द्विविधा प्रतिष्ठा जीव मन्दिरम् उद्वासा आवाहने न स्तः स्थिरायां उद्धव अर्चने ॥ १३ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**स्थिरायां**	- अचल प्रतिष्ठा वाली (मूर्ति) के
चला च अचला	- चल और अचल	**अर्चने**	- पूजनमें
द्विविधा	- दो प्रकारकी	**आवाहने**	- आवाहन
जीव प्रतिष्ठा	- प्राण-प्रतिष्ठा	**उद्वासाः**	- उद्वासन (विसर्जन)
मन्दिरं	- मन्दिरमें (की जानी चाहिए)	**स्तः न**	- उसका नहीं होता ॥ १३ ॥

अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिलेतु भवेद् द्वयम् ।
स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥

अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेत् द्वयं स्नपनं तु अविलेप्यायां अन्यत्र परिमार्जनम् ॥ १४ ॥

अस्थिरायां	- चल प्रतिमाके सम्बन्धमें	**स्नपनं तु**	- स्नान तो
विकल्पः स्यात्	- विकल्प है (प्राण-प्रतिष्ठा हुई हो तो आवाहन-विसर्जन न करे, न हुई हो तो करे)	**अविलेप्यायां**	- जो चित्रांक न रूपा नहीं है उसका होगा
		अन्यत्र	- जहां स्नान नहीं होगा
		परिमार्जनं	- केवल पोंछकर स्वच्छ करना चाहिए ॥ १४ ॥
स्थण्डिले तु	- वेदी पर तो		
द्वयं भवेत्	- दोनों (आवाहन-विसर्जन) होंगे,		

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ।
भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥

द्रव्यैः प्रसिद्धैः मत् यागः प्रतिमादिषु अमायिनः भक्तस्य च यथा लब्धैः हृदि भावेन च एव हि ॥ १५ ॥

प्रतिमादिषु	- मूर्ति आदिमें	**च हृदि**	- एवं हृदयमें
अमायिनः	- निष्कपट भावसे	**भावेन एव**	- भावनासे ही
प्रसिद्धैः द्रव्यैः	- प्रसिद्ध पदार्थोंसे	**मत् यागः**	- मेरी पूजा होती है ॥ १५ ॥
च भक्तस्य हि	- तथा भक्त को तो		
यथा लब्धैः	- जो उपलब्ध (पदार्थ) हों (उन्हींसे)		

स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ।
स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥

स्नान अलंकरणं प्रेष्ठं अर्चायां एव तु उद्धव स्थण्डिले तत्त्व विन्यासः वह्नाः आज्यप्लुतं हविः ॥ १६ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**स्थण्डिले**	- वेदीपर
एव तु	- ऐसे तो	**तत्त्व विन्यासः**	- तत्त्वोंका ठीक-ठीक न्यास,
अर्चायां	- मूर्तिको	**वह्नाः**	- अग्निमें
स्नान	- स्नान,	**आज्यप्लुतं-**	- घी मिश्रित हवन सामग्री
प्रेष्ठं अलंकरणं	- प्रिय आभूषणादिसे सजाना,	**हविः**	(से पूजा करे) ॥१६॥

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥

सूर्ये च अभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिल आदिभिः श्रद्धया उप आहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वारि अपि ॥ १७ ॥

सूर्ये च	- सूर्यमें (उपासना के लिए) तो	**श्रद्धया-भक्तेन**	- श्रद्धापूर्वक भक्त द्वारा
अभ्यर्हणं	- अर्घ्य एवं उपस्थान	**उप आहृतं**	- अर्पित किया गया
सलिले	- जलमें	**वारि अपि**	- जल भी
प्रेष्ठं सलिल	- प्रिय जल (दूध) आदिसे (पूजा होती है)	**मम प्रेष्ठं**	- मुझे परमप्रिय है ।।१७।।

भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।
गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ।। १८ ।।

भूरि अपि अभक्त उपहृतं न मे तोषाय कल्पते गन्धः धूपः सुमनसः दीपः अन्न आद्यं च किं पुनः ।। १८ ।।

गन्धः धूपः	- चन्दन, धूप,	**अभक्त उपहृतं**	- (किन्तु) भक्ति हीन द्वारा अर्पित
सुमनसः	- पुष्प,	**भूरि अपि**	- बहुत सामग्री भी
दीपः अन्न-आद्यं	- दीप, नैवेद्य आदि	**मे तोषाय**	- मुझे सन्तुष्ट
किं पुनः	- (अर्पण) से फिर क्या कहना	**न कल्पते**	- नहीं कर पाती ।।१८।।

शुचिः सम्भृतसम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ।
आसीनः प्रागुदग् वार्चेदर्चायामथ सम्मुखः ।। १९ ।।

शुचिः सम्भृत सम्भारः प्राक्दर्भैः कल्पित आसनः आसीनः प्राक् उदक् वा अर्चेत् अर्चायां अथ सम्मुखः ।। १९ ।।

शुचिः	- पवित्र होकर	**प्राक् वा उदक्**	-पूर्व या उत्तरमुख होकर
सम्भृत सम्भारः	- सब सामग्री जुटाकर	**अथ अर्चायां**	- यदि (अ़चल) मूर्तिकी पूजा करनी हो तो
प्राक्दर्भैः	- पूर्वकी ओर नोक करके बिछाये कुशोंसे	**सम्मुखः-आसीनः**	- उसके सामने बैठे ।। १९ ।।
कल्पित आसनः	- आसन बनाकर		

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ।
कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥

कृतन्यासः कृतन्यासां मत् अर्चां पाणिना मृजेत् कलशं च प्रोक्षणीयं च यथावत् उप साधयेत् ॥ २० ॥

कृतन्यासः - (अपना) अंगन्यास, करन्यास करके
कृतन्यासां - (प्रतिमामें) मन्त्र न्यास करे
मत् अर्चां - मेरी मूर्तिको
पाणिना मृजेत् - हाथसे पोंछ दे,
च कलशं च - तथा कलश और
प्रोक्षणीयं - प्रोक्षणीपात्रको
यथावत् - विधिपूर्वक
उप साध्रयेत् - स्थापित करे ॥ २० ॥

तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ।
प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥

तत् अद्भिः देवयजनं द्रव्याणि आत्मानं एव च प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीणि अद्भिः तैः तैः द्रव्यैः च साधयेत् ॥ २१ ॥

तत् अद्भिः - तब जलसे
देव यजनं - देव-पूजन स्थानका,
द्रव्याणि - सामग्रीका,
च आत्मानं एव - तथा अपना भी
प्रोक्ष्य - प्रोक्षण करके
त्रीणि पात्राणि - तीन पात्रोंको
अद्भिः - जलसे और
तैः तैः - उन उन (अर्घ्य, पाद्य, आचमन) के
द्रव्यैः च - पदार्थ भी डालकर
साधयेत् - (मन्त्रोंसे) अभिमन्त्रित करले ॥ २१ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः ।
हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥

पाद्य अर्घ्य आचमनीय अर्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः हृदा शीर्ष्णाथ अथ शिखया गायत्र्या च अभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥

१.पाद्य अर्घ्य - पाद्य, अर्घ्य,
आचमनीय अर्थं - आचमनके लिए
त्रीणि पात्राणि - (जो) तीन पात्र (रखे हैं)
दैशिकः - उनको करने वाला (क्रमशः)
हृदा शीर्ष्णाथ - (अंगन्यासके) हृदय, सिर
अथ शिखया - और शिखाके (मन्त्रोंसे)
च गायत्र्या - तथा (तीनोंको फिर) गायत्री मन्त्रसे
अभिमन्त्रयेत् - अभिमन्त्रित करे ॥ २२ ॥

पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ।
अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभावितामृ ॥ २३ ॥

पिण्डे वायु अग्नि संशुद्धे हृत् पद्मस्थां परां मम अण्वीं जीवकलां ध्यायेन् नाद अन्ते सिद्ध भावितामृ ॥ २३ ॥

पिण्डे वायु - शरीरको प्राणायाम एवं
अग्नि - अग्नि धारणासे (पापमोचन द्वारा)
संशुद्धे - शुद्ध करके
सिद्ध - सिद्धों द्वारा
नाद अन्ते - (प्रणवके तीनों अक्षरोंके बाद) नादके अन्तमें
भावितां - भावनाकी जाने वाली
मम परां - मेरी परा
अण्वीं - अत्यन्त सूक्ष्म जीव
जीवकलां - कलाका
ध्यायेन् - ध्यान करे ॥ २३ ॥

तयाऽऽत्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः ।
आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

---

१. **पाद्यमें** - सावें के दाने, दूब, कमल, विष्णु कान्ता, चन्दन, तुलसी
अर्घ्यमें - चन्दन, पुष्प, अक्षत, जौ, कुश, तिल, सरसो, दूर्वा
आचमनमें - जायफल, लौंग, इलायची डालना चाहिए ।

तया आत्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तत् मयः आवाह्य अर्चा आदिषु स्थाप्य न्यस्त अंगं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

तया-आत्मभूतया	- उसके अपना स्वरूप होकर	**अर्चा आदिषु**	- (यदि आवाहन करना हो तो) मूर्ति आदिमें
पिण्डे व्याप्ते	- पूरे शरीरमें व्याप्त हो जानेपर	**मां आवाह्य**	- मेरा आवाहन करके
तत् मयः	- उससे एकाकार होकर	**न्यस्त अंगं**	- (वहां) अंगन्यास करके
सम्पूज्य	- (भावनासे उसका) पूजन करके	**प्रपूजयेत्**	- विधिवत् पूजा करे ॥ २४ ॥

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान् प्रकल्पयेत् ।
धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥ २५ ॥

पाद्य उपस्पर्श अर्हण आदीन् उपचारान् प्रकल्पयेत् धर्म आदिभिः च नवभिः कल्पयित्वा आसनं मम ॥ २५ ॥

धर्म आदिभिः	- धर्म आदि	**मम आसनं**	- मेरे आसनकी
नवभिः	- नौ के द्वारा१	**कल्पयित्वा**	- भावना करके ॥ २५ ॥

पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।
उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥

पद्मं अष्टदलं तत्र कर्णिका केसर उज्ज्वलं उभाभ्यां वेद तन्त्राभ्यां मह्यं तु उभय सिद्धये ॥ २६ ॥

---

१. धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य ये चार सिंहासन के पाये हैं, अधर्म, अज्ञान, राग, अनैश्वर्य ये चारों ओरके डंडे हैं ।

सत्त्व, रज, तम ये गुण पीछे की पटरी हैं । विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, प्रह्वि, सत्या, ईशाना, अनुग्रहा ये उसे सम्हाले हैं ।

तत्र कर्णिका - उसपर कर्णिका एवं
केसर उज्ज्वलं - केसर सहित चमकते
अष्टदलं पद्मं - अष्टदल कमलपर
उभय सिद्धये - दोनों (भोग और मोक्ष) की प्राप्तिके लिए
उभाभ्यां - दोनों विधियों
वेद तन्त्राभ्यां - वैदिक और तान्त्रिकसे
मह्यं - मेरी पूजा करे ।। २६ ।।

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ।
मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ।। २७ ।।

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदा असि इषु धनुः हलान् मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं च अनुपूजयेत् ।। २७ ।।

सुदर्शनं - सुदर्शन चक्र,
पाञ्चजन्यं - पाञ्चजन्य शंख,
गदा - कौमोदकी गदा,
असि, इषु - खड्ग, बाण,
धनुः हलान् - धनुष, हल
मुसलं - मूसल (इन आठ आयुधोंकी)
च कौस्तुभं - तथा कौस्तुभ मणि,
मालां श्रीवत्सं - वनमाला एवं श्रीवत्स चिह्नकी
अनुपूजयेत् - पीछे पूजा करे ।।२७।।

नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च ।
महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ।। २८ ।।

नन्दं, सुनन्दं, गरुड़ं, प्रचण्डं, चण्डं एव च महाबलं, बलं च एव कुमुदं, कुमुदेक्षणम् ।। २८ ।।[1]

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः ।। २९ ।।

---

१. **'एव च' 'च एव' का अर्थ ये भी है । भगवानके ८ पार्षदों के नाम हैं जो आठो दिशाओं में रहते हैं तथा गरुड़ सामने रहते हैं ।**

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् स्वे स्वे स्थाने तु अभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षण आदिभिः ॥ २९ ॥

दुर्गां विनायकं	- दुर्गा जी, गणेश,	**स्वे स्वे-**	- जो अपने अपने
व्यासं	- व्यास जी,	**स्थाने तु**	स्थानमें ही
विष्वक्सेनं	- विष्वकसेन की (चारों कोणोंमें)	**अभिमुखान्**	- (भगवानकी ओर मुख किये (स्थापना करके)
गुरून्	- (बायीं ओर) गुरुकी	**प्रोक्षण-**	- प्रोक्षण आदि (सभी
सुरान्	- (आठों दिशाओंमें उनके इन्द्रादि) दिक्पालों की	**आदिभिः**	उपचारों) द्वारा
		पूजयेत्	- पूजा करे ॥ २९ ॥

चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ।
सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥

चन्दन उशीर कर्पूर कुंकुम अगुरुवासितैः सलिलैः स्नापयेत् मन्त्रैः नित्यदा विभवे सति ॥ ३० ॥

विभवे सति	- यदि वैभव हो तो	**अगुरुवासितैः**	- अगरुसे सुगन्धित किये
नित्यदा	- सदा ही	**सलिलैः मन्त्रैः**	- जलसे मन्त्रों द्वारा
चन्दन उशीर	- चन्दन, खस,	**स्नापयेत्**	- स्नान करावे ॥ ३० ॥
कर्पूर कुंकुम	- कपूर, केशर,		

स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ।
पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥ ३१ ॥

स्वर्ण धर्म अनुवाकेन महापुरुष विद्यया पौरुषेण अपि सूक्तेन सामभी राजन आदिभिः ॥ ३१ ॥

स्वर्ण धर्म	- 'सुवर्ण धर्म' आदि	**पौरुषेण सूक्तेन**	- पुरुष सूक्त से भी,
अनुवाकेन	- स्वर्ण धर्मानुवाक् से	**अपि**	
महापुरुष-	- महापुरुष विद्या	**राजन आदिभिः**	- राजन आदि
विद्यया	(रुद्री) से,	**सामभी**	- सामगायन द्वारा (स्नान करावे) ॥ ३१ ॥

वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः ।
अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥ ३२ ॥

वस्त्र उपवीत आभरण पत्र स्रक् गन्ध लेपनैः अलङ्कुर्वीत सप्रेम मत् भक्तः मां यथा उचितम् ॥ ३२ ॥

मत् भक्तः	- मेरा भक्त	**वस्त्र उपवीत**	- वस्त्र, यज्ञोपवीत,
सप्रेम	- प्रेम सहित	**आभरण**	- आभूषण,
यथा उचितं	- (देश, काल, मूर्तिके अनुसार) जैसा उचित हो	**पत्र स्रक्**	- तुलसीदल, माला,
		गन्ध लेपनैः	- चन्दन लगाने द्वारा
		मां अलङ्-कुर्वीत	- मेरा शृंगार करे ॥ ३२ ॥

पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् ।
धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ ३३ ॥

पाद्यं आचमनीयं च गन्धं सुमनसः अक्षतान् धूप दीप उपहार्याणि विदद्यात् मे श्रद्धया अर्चकः ॥ ३३ ॥

अर्चकः श्रद्धया	- पूजा करने वाला श्रद्धापूर्वक	**सुमनसः**	- पुष्प
		धूप दीप	- धूप, दीपक,
मे पाद्यं	- मुझे पाद्य,	**च उपहार्याणि**	- तथा नैवेद्यादि.
आचमनीयं	- आचमन,	**दद्यात्**	- अर्पित करे ॥ ३३ ॥
गन्धं अक्षतान्	- चन्दन, अक्षत्,		

गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ।
संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥

गुड पायस सर्पींषि शुष्कुल्या अपूप मोदकान् संयाव दधि सूपान् च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ३४ ॥

सति - सम्भव हो तो
गुड सर्पीषि-पायस - गुड़-घी मिली खीर,
शुष्कुल्या - पूड़ी,
अपूप मोदकान् - मालपुआ, लड्डू,
संयाव दधि - हलुआ, दही,
च सूपान् - तथा (कई प्रकारकी) दालें,
नैवेद्यं - नैवद्यके लिए
कल्पयेत् - बनावे ॥ ३४ ॥

अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ।
अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ ३५ ॥

अभ्यंग उन्मर्दन आदर्श दन्तधाव अभिषेचनं अन्न आदि गीत नृत्य आदि पर्वणि स्युः उत अनु अहम् ॥ ३५ ॥

दन्तधाव - दातौन कराना,
अभ्यंग - उबटन लगाना,
उन्मर्दन - शरीर दबाना,
अभिषेचनं - (पंचामृत आदिसे) स्नान कराना
आदर्श - दर्पण दिखलाना,
अन्न आदि - (विशेष) पकवान आदि अर्पण
गीत नृत्य-आदि - गायन, नृत्य आदि
पर्वणि स्युः - पर्वों पर हों
उत अनु अहं - अथवा (शक्ति हो तो) प्रतिदिन करे ॥ ३५ ॥

विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः ।
अग्निमाधाय परितः समूहेत् पाणिनोदितम् ॥ ३६ ॥

विधिना विहिते कुण्डे मेखला गर्त वेदिभिः अग्निं आधाय परितः समूहेत् पाणिना उदितम् ॥ ३६ ॥

मेखला गर्त - मेखला, गर्त,
वेदिभिः - वेदियोंसे युक्त
विधिना विहिते - विधानपूर्वक बने
कुण्डे - कुण्डमें
अग्निं आधाय - अग्नि स्थापना करके
उदितं पाणिना - निर्दिष्ट विधिसे हाथसे
परितः समूहेत् - परिसमूहन करे ॥ ३६ ॥

परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ।
प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥

परिस्तीर्य अथपर्युक्षेत् अन्वाधाय यथा विधि प्रोक्षण्या आसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्य अग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥

परिस्तीर्य - कुशास्तरण (कुश कण्डिका) करके
पर्युक्षेत् - पर्युक्षण करे,
अन्वाधाय - (समिधाओंका) अन्वाधान करे
यथा विधि - विधिके अनुसार
प्रोक्षण्या आसाद्य - प्रोक्षणी स्थापित करके
द्रव्याणि प्रोक्ष्य - सामग्री का प्रोक्षण करके[1]
अग्नौ मां - अग्निमें मेरी
भावयेत - भावना करे ॥ ३७ ॥

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शंखचक्रगदाम्बुजैः ।
लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥

तप्त जाम्बूनद प्रख्यं शंख चक्र गदा अम्बुजैः लसत् चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्क वाससम् ॥ ३८ ॥

तदा जाम्बूनद - तपाये स्वर्णके
प्रख्यं - समान वर्ण
शंख चक्र - शंख, चक्र,
गदा अम्बुजैः - गदा, पद्मसे
लसत् चतुर्भुजं - सुशोभित चतुर्भुज
पद्मकिञ्जल्क - पद्मपरागके समान
वाससं शान्तं - पीताम्बर, शान्त ॥ ३८ ॥

स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥

---

१. यहां कर्मकाण्ड के पारिभाषिक शब्द हैं और क्रियायें हैं वैदिक कर्मकाण्डके विद्वान इन्हें जानते हैं । किसी कर्मकाण्ड के विद्वान या 'हवन-पद्धति' ग्रन्थसे इन्हें जानना चाहिए ।

स्फुरत् किरीट कटक कटि सूत्र वर अंगदम् श्री वत्स वक्षसं भ्राजत् कौस्तुभं वन मालिनम् ॥ ३९ ॥

स्फुरत्	- चमकते	**भ्राजत्**	- सुशोभित
किरीट कटक	- मुकुट, कंकण,	**श्रीवत्सवक्षसं**	- वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह
कटिसूत्र	- करघनी,	**कौस्तुभं**	- कौस्तुभमणि एवं
वर अंगदम्	- उत्तम अंगदसे	**वनमालि नं**	- वनमाला धारी ॥ ३९ ॥

ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाभिघृतानि च ।
प्रास्याज्यभागावाधारौ दत्त्वा चोज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

ध्यायन् अभ्यर्च्य दारूणि हविषाभि घृतानि च प्रास्य आज्यभागाः आधारौ दत्त्वा च आज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥

ध्यायन्	- (इस मूर्तिका) ध्यान करके	**आज्यभागाः**	- आज्यभाग एवं
अभ्यर्च्य	- पूजन करे,	**आधारौ**	- आधार नामक दो दो आहुतियां
दारूणि	- सूखी समिधाओंको	**हविषाभि च**	- हविष्य तथा घी से (आहुतिदे)
धृतेन प्रास्य	- घी में डुबाकर देकर	**घृतानि च आज्यप्लुतं**	- फिर घी से भीगी
		हविः दत्त्वा	- हविष्य से आहुति दे ॥ ४० ॥

जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः ।
धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥

जुहुयात् मूल मन्त्रेण षोडश अर्चा अवदानतः धर्म आदिभ्यः यथा न्यायं मन्त्रैः स्विष्ट कृतं बुधः ॥ ४१ ॥

मूल मन्त्रेण	- अपने इष्ट मन्त्रसे,	**बुधः**	- बुद्धिमान पुरुष
अर्चा अवदानतः	- मूर्तिके प्रशस्त मन्त्रसे,	**धर्म आदिभ्यः**	- धर्म आदि देवताओं के लिए भी
षोडश	- (पुरुष सूक्तके) सोलह मन्त्रोंसे	**यथा न्यायं**	- विधिपूर्वक
जुहुयात्	- हवन करे	**मन्त्रैः**	- (उनके) मन्त्रों से (हवन करे)
		स्विष्टकृतं	- स्विष्टकृत आहुति भी दे ॥ ४१ ॥

अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ।
मूलमन्त्रं जपेद् ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥

अभ्यर्च्य अथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यः बलिं हरेत् मूल मन्त्रं जपेत् ब्रह्म स्मरन् नारायण आत्मकम् ॥ ४२ ॥

अथ अभ्यर्च्य	- फिर पूजा करके	**नारायण आत्मकं**	- नारायण स्वरूप
नमस्कृत्य	- नमस्कार करके	**ब्रह्म स्मरन्**	- परम ब्रह्मका स्मरण करते हुए
पार्षदेभ्यः	- पार्षदोंको	**मूल मन्त्रं**	- इष्ट मन्त्रका
बलिं हरेत्	- (हवन कर्मांग) बलि (भेंट) दे	**जपेत्**	- जप करे ॥ ४२ ॥

दत्त्वाऽऽचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ।
मुखवासं सुरभिमत् ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ ४३ ॥

दत्त्वा आचमनं उच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् मुखवासं सुरभिमत् ताम्बूल आद्यं अथ अर्हयेत् ॥ ४३ ॥

आचमनं दत्त्वा	- (भगवानको) आचमन देकर	**अथ मुखवासं**	- फिर (भगवानको) मुखवास के लिए
उच्छेषं	- उनका प्रसाद	**सुरभिमत्**	- सुगन्धित
विष्वक्सेनाय	- विष्वकसेनको	**ताम्बूलआद्यं**	- ताम्बूल आदिसे
कल्पयेत्	- अर्पित करे	**अर्हयेत्**	- पूजित करे ॥ ४३ ॥

उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माण्यभिनयन् मम ।
मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥

उपगायन् गृणन् नृत्यन् कर्माणि अभिनयन् मम मत् कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिकः भवेत् ॥ ४४ ॥

उपगायन्	- मेरी समीप गाते,	**मत् कथाः**	- मेरी कथा
गृणन्	- स्तुति करते,	**श्रावयन्**	- सुनाते या
नृत्यन्	- नाचते,	**शृण्वन्**	- सुनते
मम कर्माणि	- मेरी लीलाओंका	**मुहूर्तं**	- कई मुहूर्त
अभिनयन्	- अभिनय करते,	**क्षणिकः भवेत्**	- क्षणके समान हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ।
स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥

स्तवैः उच्च अवचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैः अपि स्तुत्वा प्रसीद भगवन्न इति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥

उच्च अवचैः	- बड़े-छोटे,	**स्तुत्वा**	- स्तवन करके
पौराणैः स्तोत्रैः	- पुराणोंके स्तोत्रोंसे	**भगवन् प्रसीद**	- 'भगवन् ! आप प्रसन्न हों'
प्राकृतैः अपि	- साधारण लोगों द्वारा भी बनायी	**इति**	- ऐसा कहकर
स्तवैः	- स्तुतियोंसे	**दण्डवत् वन्देत**	- दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४५ ॥

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ।
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥ ४६ ॥

शिरः मत् पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परं प्रपन्नं पाहि मां ईश भीतं मृत्यु ग्रह अर्णवात् ॥ ४६ ॥

शिरः मत्	- सिर मेरे
पादयोः कृत्वा	- चरणपर रखकर
च बाहुभ्यां	- तथा हाथोंसे
परस्परं	- आपसमें (दाहिनेसे दाहिना, बायेंसे बायां चरण पकड़कर कहे)
ईश	- 'स्वामी !
मृत्युग्रह	- मृत्यु रूपी ग्राह युक्त
अर्णवात्	- (संसार) सागरसे
भीतं प्रपन्नं	- डरकर शरण आये
मां पाहि	- मेरी रक्षा कीजिए ॥ ४६ ॥

इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् ।
उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत् पुनः ॥ ४७ ॥

इति शेषां मया दत्तां शिरसि आधाय सादरं उद्वासयेत् चेत् उद्वास्यं ज्योतिः ज्योतिषि तत् पुनः ॥ ४७ ॥

इति	- ऐसा कहकर
मया दत्तां	- मुझे अर्पित
शेषां	- मालादि
सादरं	- आदरपूर्वक
शिरसि आधाय	- सिर पर चढ़ाकर
चेत् उद्वास्यं	- यदि विसर्जन करना हो तो
तत् ज्योतिः	- उस (प्रतिमाकी) ज्योतिका
ज्योतिषि	- (भावना द्वारा अपनी हृदय ज्योतिमें
पुनः उद्वासयेत्	- विसर्जन कर दे ॥४७॥

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ।
सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥ ४८ ॥

अर्चा आदिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र च आर्चयेत् सर्वभूतेषु आत्मनि च सर्व आत्मा अहं अवस्थितः ॥ ४८ ॥

अर्चा आदिषु	- मूर्ति आदिमें
यदा यत्र श्रद्धा	- जब जहां श्रद्धा हो,
मां तत्र	- मेरी वहीं
आर्चयेत्	- पूजा करे,
सर्वभूतेषु	- सब प्राणियोंमें
च आत्मनि	- तथा अपने हृदयमें
अहं सर्व आत्मा	- मैं सबके आत्मारूपसे
अवस्थितः	- स्थित हूँ ॥ ४८ ॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥

एवं क्रिया योग पथैः पुमान् वैदिक तान्त्रिकैः अर्चन् उभयतः सिद्धिं मत्तः विन्दन्ति अभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥

एवं वैदिक-तान्त्रिकैः	- इस प्रकार वैदिक और तान्त्रिक	**अर्चन् पुमान्**	- पूजन करता हुआ पुरुष
		मत्तः उभयतः	- मुझसे दोनों (मोक्ष और भोग) प्रकारकी
क्रिया योग पथैः	- क्रिया योग के मार्गसे	**अभीप्सितां-सिद्धिं**	- अभीष्ट सफलता
		विन्दन्ति	- प्राप्त करते हैं ॥४९॥

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् ।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥

मत् अर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेत् दृढम् पुष्प उद्यानानि रम्याणि पूजायात्रा उत्सव आश्रितान् ॥ ५० ॥

मत् अर्चां	- मेरी मूर्तिकी	**पूजा यात्रा**	- पूजा, यात्रा,
सम्प्रतिष्ठाप्य	- भली प्रकार प्रतिष्ठा करके	**उत्सव आश्रितान्**	- उत्सवोंका सहारा रूप
दृढं मन्दिरं	- सुदृढ़ मन्दिर	**रम्याणि**	- मनोहर
कारयेत्	- बनवाये,	**पुष्प उद्यानानि**	- पुष्प वाटिकायें (लगवायें) ॥ ५० ॥

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ ५१ ॥

पूजा आदीनां प्रवाह अर्थं महापर्वसु अथ अनु अहं क्षेत्र आपण पुर ग्रामान् दत्त्वा मत् सार्ष्टितां इयात् ॥ ५१ ॥

महापर्वसु - बड़े पर्वोंपर
अथ अनु अहं - तथा प्रत्येक दिनकी
पूजा आदीनां - पूजा आदिका
प्रवाह अर्थं - क्रम चलता रहे इसलिए
क्षेत्र आपण - (मन्दिरको) खेत, बाजार
पुर ग्रामान् - नगर या गाँव
दत्त्वा - दान करके
मत् सार्ष्टितां - मेरे समान ऐश्वर्य
इयात् - पाता है ॥ ५१ ॥

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयं पूजा आदिना ब्रह्मलोकं त्रिभिः मत् साम्यतां इयात् ॥ ५२ ॥

प्रतिष्ठया - (मूर्तिकी) प्रतिष्ठा करनेसे
सार्वभौमं - सम्राट् पद,
सद्मना - मन्दिर बनानेसे
भुवनत्रयं - त्रिलोकीका राज्य,
पूजा आदिना - पूजा आदिकी (व्यवस्था) करनेसे
ब्रह्मलोकं - ब्रह्मलोक तथा
त्रिभिः - तीनों करनेसे
मत् साम्यतां - मेरी समानता
इयात् - प्राप्त करता है ॥५२॥

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥ ५३ ॥

मां एव नैरपेक्ष्येण भक्ति योगेन विन्दति भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत् माम् ॥ ५३ ॥

नैरपेक्ष्येण - बिना किसी अपेक्षाके
यः एवं - जो इस प्रकार
मां पूजयेत - मेरी पूजा करता है
स भक्तियोगं लभते - वह भक्ति पाता है और
भक्तियोगेन - उस भक्तिसे
मां विन्दति - मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ५३ ॥

यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ।
वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥ ५४ ॥

यः स्वदत्तां परैः दत्तां हरेत सुर विप्रयोः वृत्तिं स जायते विट् भुक् वर्षाणां अयुत अयुतम् ॥ ५४ ॥

यः स्व दत्तां	- जो अपनी दी हुई या	**स अयुत अयुतं**	-वह करोड़ों
परैः दत्तां	- दूसरे की दी हुई	**वर्षाणां**	- वर्षों तक
सुर विप्रयोः	- देवता या ब्राह्मणकी	**विट् भुक्**	- निष्ठा भोजी कीड़ा होकर
वृत्तिं हरेत्	- आजीविका छीन लेता है	**जायते**	पैदा होता है ॥ ५४ ॥

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ।
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत् फलम् ॥ ५५ ॥

कर्तुः च सारथेः हेतुः अनुमोदितुः एव च कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयः भूयसि तत् फलम् ॥ ५५ ॥

कर्मणां	- ऐसे कर्मोंके	**प्रेत्य भागिनः**	- मरकर हिस्सेदार होते हैं एवं
कर्तुः च सारथेः	- कर्ता तथा सहायक,	**भूयः**	- फिर अधिक हाथ होनेपर
हेतुः	- कारण बनने वाले,	**तत् फलं**	- उसका फल भी
च अनुमोदितुः	- तथा समर्थन करने	**भूयसि**	- अधिक होता है ॥५५॥
एव	वाले भी		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच–

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

पर स्वभाव कर्माणि न प्रशंसेत् न गर्हयेत् विश्वं एकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

प्रकृत्या - प्रकृति
च पुरुषेण - तथा पुरुष द्वारा (व्याप्त)
विश्वं एक आत्मकं - विश्वको एक स्वरूप
पश्यन् - देखता हुआ (सभी में वही प्रकृति एवं पुरुष है यह समझकर)
पर स्वभाव - दूसरे के स्वभाव एवं
कर्माणि - कर्मोंकी
न प्रशंसेत् - न प्रशंसा करे एवं
न गर्हयेत् - न निन्दा करे ॥ १ ॥

परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति ।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥

पर स्वभाव कर्माणि यः प्रशंसति निन्दति स आशु भ्रश्यते स्वार्थात् असत्य अभिनिवेशतः ॥ २ ॥

यः परस्वभाव कर्माणि - जो दूसरोंके स्वभाव एवं कर्मोंकी
प्रशंसति-निन्दति - प्रशंसा या निन्दा करता है
स असत्य - वह मिथ्यातत्त्वमें
अभिनिवेशतः - सत्यत्वबुद्धि होनेसे
आशु स्वार्थात् - शीघ्र अपने वास्तविक स्वार्थसे
भ्रश्यते - च्युत हो जाता है ॥२॥

तैजसे निद्रयाऽऽपन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः ।
मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥ ३ ॥

तैजसे निद्रया आपन्ने पिण्डस्थाः नष्ट चेतनः मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद् वत् नाना अर्थ दृक् पुमान् ॥ ३ ॥

तैजसे - राजस अहंकार (ने कार्य इन्द्रियों) को
निद्रया आपन्ने - निद्रा आजाने पर
पिण्डस्थः - शरीरमें स्थित जीवकी
नष्ट चेतनः - चेतना लुप्त हो जाती है
मायां प्राप्नोति - (तब वह) मायिक दृश्य (स्वप्न) देखने लगता है,
वा मृत्युं - अथवा मर सा जाता (सुषुप्त हो जाता) है
तद्वत् - इसी प्रकार
नाना अर्थ दृक् - पदार्थोंमें अनेकत्त्व बुद्धि वाला
पुमान् - पुरुष (मिथ्या दर्शन या अज्ञानमें उलझ जाता है) ॥ ३ ॥

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥

किं भद्रं किं अभद्रं वा द्वैतस्य अवस्तुनः कियत् वाचा उदितं तत् अनृतं मनसाध्यातं एव च ॥ ४ ॥

अवस्तुनः - मिथ्या (असत्)
द्वैतस्य कियत् - द्वैतकी महत्ता क्या,
किं भद्रं - (उसमें) भला क्या
वा किं अभद्रं - अथवा बुरा क्या,
वाचा उदितं - जो कुछ वाणीसे कहा जाता है
वा मनसा-ध्यातं - अथवा मनसे सोचा जाता है
तत् अनृतं - वह सब मिथ्या है ॥४॥

छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः ।
एवं देहादयो भावा यच्छन्त्या मृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥

छाया प्रत्याह्वया आभासा हि असन्तः अपि अर्थ कारिणः एवं देह आदयः भावा यच्छन्ति अमृत्युतः भयम् ॥ ५ ॥

छाया	- छाया	**एवं देह आदयः**	- इसी प्रकार शरीरादि
प्रत्याह्वया	- प्रतिध्वनि	**भावा**	- पदार्थ
आभासा	- प्रतिबिम्ब	**अमृत्युतः**	- (आत्माकी) मृत्यु न होनेपर भी
हि असन्तः	- क्योंकि सत्ताहीन	**भयं यच्छन्ति**	- उसे भय प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥
अपि	होनेपर भी		
अर्थ कारिणः	- (अनेक) कार्य करने वाले होते हैं		

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥

आत्मा एव तत् इदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः त्रायते त्राति विश्व आत्मा ह्रियते हरति ईश्वरः ॥ ६ ॥

आत्मा एव	- आत्मा ही	**ईश्वरः**	- वह सर्वेश्वर
इदं विश्वं तत्	- इस विश्वमें व्याप्त है,	**त्रायते त्राति**	- रक्षित होता और रक्षा करता है
प्रभुः	- समर्थ विश्व रूप	**ह्रियते हरति**	- संहृति होता एवं संहार करता है ॥ ६ ॥
सृज्यते सृजति	- बनता, बनाता है,		

तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः ।
निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ।
इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥

तस्मात् न हि आत्मनः अन्यस्मात् अन्यः भावः निरूपितः निरूपिता इयं त्रिविधा निमूर्ला भातिः आत्मनि इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥

तस्मात् हि - इसलिए क्योंकि
आत्मनः अन्यः - आत्मासे पृथक
अन्यस्मात् - दूसरे किसीसे पदार्थकी
भावः स्थिति
नि रूपितः न - श्रुति में वर्णित नहीं है
इयं त्रिविधा - यह तीन (अध्यात्म, आधिदैव, अधिभूत) रूप
निरूपिता - जो वर्णित है,
निर्मूला - बिना जड़ (आधार) के
आत्मनि भाति - आत्मामें प्रतीत हो रही है
इदं त्रिविधं - इन तीनों रूपों को
गुणमयं - त्रिगुणमय एवं
माययाकृतं - माया-निर्मित
विद्धि - समझो ॥ ७ ॥

एतद् विद्वान् मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ।
न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥

एतत् विद्वान् मत् उदितं ज्ञान विज्ञान नैपुणं न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥

एतत् मत-उदितं - इस मेरे द्वारा वर्णित
ज्ञान-विज्ञान - ज्ञान-विज्ञानकी
नैपुणं विद्वान् - कुशलताको जानकर
न निन्दति - न किसीकी निन्दा करता
च न स्तौति - और न प्रशंसा करता
सूर्यवत् - सूर्यके समान (तटस्थ भावसे)
लोके चरति - संसारमें विचरण करता है ॥ ८ ॥

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ।
आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षेण अनुमानेन निगमेन आत्मसंविदा आद्य अन्तवत् असत् ज्ञात्वा निःसंगः विचरेत् इह ॥ ९ ॥

प्रत्यक्षेण - प्रत्यक्ष,
अनुमानेन - अनुमान,
निगमेन - शास्त्र तथा
आत्मसंविदा - अपने अनुभवसे
आदि अन्तवत् - (संसारको) आदि-अन्त वाला
असत् ज्ञात्वा - असत् जानकर
निःसंगः - अनासक्त होकर
इह विचरेत् - यहां विचरण करे ।।९।।

उद्धव उवाच–

नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ।
अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ।। १० ।।

न एव आत्मनः न देहस्य संसृतिः द्रष्ट दृश्ययोः अनात्मसु असदृशः ईश कस्य स्यात् उपलभ्यते ।। १० ।।

ईश - स्वामी !
द्रष्टृ आत्मनः - द्रष्टा आत्मा एवं
दृश्ययोः देहस्य - दृश्य शरीरका
संसृतिः न एव - आवागमन नहीं ही होता,
अनात्मसु - (फिर) अनात्मा
असदृशः - (आत्मासे) असमान
कस्यस्यात् - किसका होता है ?
उपलभ्यते - यह होता पाया तो जाता है ।। १० ।।

आत्माव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ।
अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ।। ११ ।।

आत्मा अव्ययः अगुणः शुद्धः स्वयं ज्योतिः अनावृतः अग्निवत् दारुवत् अचित् देहः कस्य इह संसृतिः ।। ११ ।।

आत्मा अव्ययः - आत्मा अविनाशी,
अगुणः शुद्धः - निर्गुण, शुद्ध,
स्वयं ज्योतिः - स्वयं प्रकाश,
अनावृतः - निरावरण है और
देहः- अग्निवत् दारुवत् - शरीर अग्निके समान या काष्ठके समान
अचित् - जड़ है,
इह संसृतिः - अतः इस लोकमें आवागमन
कस्य - किसका होता है ।।११।।

श्रीभगवानुवाच–

यावद् देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः सन्निकर्षणम् ।
संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥ १२ ॥

यावत् देह इन्द्रिय प्राणैः आत्मनः सन्निकर्षणं संसारः फलवान् तावत् अपार्थः अपि अविवेकिनः ॥ १२ ॥

यावत्	- जब तक	**तावत्**	- तब तक
देह इन्द्रिय	- शरीर, इन्द्रियों तथा	**अपार्थः अपि**	- अवास्तविक होनेपर भी
प्राणैः आत्मनः	- प्राणोंके साथ आत्माकी	**अविवेकिनः**	- विवेकहीन के लिए
सन्निकर्षणं	- अत्यन्त निकटता है,	**संसारः**	- संसार
		फलवान्	- (सुख-दुःख रूप) फल देनेवाला है ॥ १२ ॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ १३ ॥

अर्थे हि अविद्यमाने अपि संसृतिः न निवर्तते ध्यायतः विषयान् अस्य स्वप्ने अनर्थ आगमः यथा ॥ १३ ॥

हि अर्थे	- क्योंकि पदार्थोंके	**अस्य विषयान्**	- इस मनुष्यके विषयोंका
अविद्यमाने अपि	- न रहनेपर भी	**ध्यायतः**	- चिन्तन करते रहनेपर
यथा स्वप्ने	- जैसे स्वप्नमें	**संसृतिः**	- आवागमन
अनर्थ आगमः	- अनर्थ (कष्ट) आते हैं	**निवर्तते न**	- छूटता नहीं है ॥१३॥

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥

यथा हि अप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापः बहु अनर्थभृत् स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥

हि यथा	- क्योंकि जैसे	**स एव**	- वही (निद्रा)
अप्रतिबुद्धस्य	- जो जागा नहीं है उसके लिए	**प्रतिबुद्धस्य**	- जाग गये को
		वै मोहाय	- निश्चय भ्रम
प्रस्वापः	- निद्रा	**न कल्पते**	- नहीं उत्पन्न करती ॥ १४ ॥
बहु अनर्थभृत्	- बहुत कष्ट देने वाली है,		

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥ १५ ॥

शोकहर्ष भय क्रोध लोभ मोह स्पृहा आदयः अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म-मृत्युः च न आत्मनः ॥ १५ ॥

शोक हर्ष	- शोक, हर्ष,	**च जन्म मृत्युः**	- तथा जन्म और मृत्यु
भय क्रोध	- भय, क्रोध,	**अहंकारस्य**	- अहंकारके ही देखे
लोभ मोह	- लोभ, मोह,	**दृश्यन्ते**	जाते हैं
स्पृहा आदयः	- स्पर्धादिक,	**आत्मनः न**	- आत्माके नहीं ॥ १५ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोऽभिमानो
जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ।
सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः
संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ ॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः अभिमानः जीवः अन्तरात्मा गुणकर्म मूर्तिः सूत्रं महान् इति उरुधा एव गीतः संसार आधावति कालातन्त्रः ॥ १६ ॥

देह इन्द्रिय	- शरीर, इन्द्रियां,	**सूत्रं महान्**	- सूत्रात्मा या महातत्त्व
प्राण मनः	- प्राण, मन,	**इति उरुधा-**	- इस प्रकार अनेक
अभिमानः	- अहंकार,	**गीतः**	रूपोंमें वर्णित
अन्तरात्मा	- बुद्धि,	**संसार**	- संसार
जीवः	- जीव (लिंग शरीर) जो	**कालतन्त्रः**	- कालके पराधीन
गुण कर्म मूर्तिः	- गुण और कर्म स्वरूप	**आधावति**	- सब ओर दौड़ रहा (गतिशील) है ॥ १६ ॥

अमूलमेतद् बहुरूपरूपितं
मनोवचःप्राणशरीरकर्म ।
ज्ञानासिनोपासनया शितेन-
च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥

अमूलं एतत् बहु रूप रूपितं मनः वचः प्राण शरीर कर्म ज्ञान असिना उपासनया शितेन छित्त्वा मुनिः गां विचरति अतृष्णः ॥ १७ ॥

बहुरूप रूपितं - अनेक रूपोंमें वर्णित
एतत् अमूलं - यह (संसार) बिना जड़का (निराधार)
मनः वचः प्राण - मन, वाणी, प्राण,
शरीर कर्म - एवं शरीरके कर्मों (से बने) रूप इसे
उपासनया - उपासनाके द्वारा
शितेन - तीक्ष्ण की गयी
ज्ञान असिना - ज्ञान रूपी तलवारसे
छित्त्वा मुनिः - काटकर मननशील पुरुष
अतृष्णः - तृष्णा रहित होकर
गां विचरति - पृथ्वीपर विचरण करता है ॥ १७ ॥

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च
प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ।
आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं
कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥ १८ ॥

ज्ञानं विवेकः निगमः तपः च प्रत्यक्षं ऐतिह्यं अथ अनुमानं आदि अन्तयोः अस्य यत् एव केवलं कालः च हेतुः च तत् एव मध्ये ॥ १८ ॥

विवेकः ज्ञानं - (आत्मा-अनात्माका) विवेक ज्ञान है,
निगमः तपः - श्रुतिका श्रवण, तपस्या,
च प्रत्यक्षं- - तथा प्रत्यक्ष,
ऐतिह्यं ऐतिहासिकता,
अथ अनुमानं - एवं अनुमान (प्रमाण) से (यह जानना कि)
अस्य - इस संसारके
आदि अन्तयोः - आदि-अन्तमें
यत् केवलं एव - जो अकेला ही रह जाता है,
तत् एव मध्ये - वही बीच में भी है
च कालः - तथा वही काल
च हेतुः - एवं (इसका) कारण भी है ॥ १८ ॥

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्
पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं
नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात् पश्चात् च सर्वस्य हिरण्मयस्य तत् एव मध्ये व्यवहार्यमाणं नाना अपदेशैः अहं अस्य तत् वत् ॥ १९ ॥

यथा स्वकृतं - जैसे अपनेसे बने
सर्वस्य च - सभी
हिरण्मयस्य - स्वर्णमय (आभूषणों) के
पुरस्तात् - पहिले
च पश्चात् - और पीछे
हिरण्यं - सोना रहता है,
मध्ये - बीचमें
व्यवहार्यमाणं - (आभूषण रूपसे) व्यवहारमें लिए जाते समय भी
तत् एव - वही (सोना) रहता है,
तत् वत् - उसीकी भाँति
नाना अपदेशैः - अनेक नाम-रूप में
अस्य अहं - इस संसारमें मैं हूँ ॥ १९ ॥

विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग
गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ ।

समन्वयेन व्यतिरेकतश्च
येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥ २० ॥

विज्ञानं एतत् त्रियवस्थं अंग गुणत्रयं कारण कार्य कर्तृ समन्वयेन व्यतिरेकतः च येन एव तुर्येण तत् एव सत्यम् ॥ २० ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
एतत् - यह
त्रियवस्थं - ये तीनों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) अवस्थायें,
गुणत्रयं - तीनों गुण,
कारण कार्य-कर्तृ - कारण, कार्य, कर्ता,
विज्ञानं - सब ज्ञान ही है
समन्वयेन - कारणसे कार्यके क्रमसे
च व्यतिरेकतः - तथा कार्यसे कारणके क्रमसे (विचार करनेपर)
येन तुर्येण एव - जिस तुरीयतत्त्वसे ही हैं
तत् एव सत्यं - वही सत्य है ॥१९॥

न यत् पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये
च तन्न व्यपदेशमात्रम् ।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्
तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा ॥ २१ ॥

न यत् पुरस्तात् उत यत् न पश्चात् मध्ये च तत् न व्यपदेशमात्रं भूतं प्रसिद्धं च परेण यत् यत् तत् एव तत् स्यात् इति मे मनीषा ॥ २१ ॥

यत पुरस्तात् न - जो (सृष्टिसे) पहिले नहीं था
उत यत् - तथा जो
पश्चात् न - (प्रलयके पश्चात् नहीं रहेगा
मध्ये च - बीचमें भी
तत् न स्यात् - वह नहीं है
यत् भूतं - जो पदार्थ
व्यपदेशमात्रं - नाम मात्र ही है
यत् परेण - जिस कारणसे उत्पन्न
प्रसिद्धं होता है
तत् एव - वही (कारण रूप
तत् स्यात् - वह (पदार्थ होता है,
इति मे मनीषा - ऐसा मेरा निश्चित मत है ॥ २१ ॥

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो
वैकारिको राजससर्ग एषः ।
ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति
ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥ २२ ॥

अविद्यमानः अपि अवभासते यः वैकारिकः राजस सर्ग एषः ब्रह्म स्वयं ज्योतिः अतः विभाति ब्रह्म इन्द्रिय अर्थ आत्म विकार चित्रम् ॥ २२ ॥

अविद्यमानः - न होनेपर भी	**ब्रह्म** - ब्रह्म ही है,
अपि	**अतः चित्रं** - अतः अनेक रूप
यः एषः- - जो यह विकारमयी	**इन्द्रिय अर्थ** - इन्द्रियों, पदार्थों
वैकारिकः	**आत्मविकार** - अपने विकारोंके रूपमें
राजससर्ग - रजोगुणी सृष्टि	**स्वयं ज्योतिः** - स्वयं प्रकाश
अवभासते - दीख रही है	**ब्रह्म विभाति** - ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है ॥ २२ ॥

एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः
परापवादेन विशारदेन ।
छित्त्वाऽऽत्मसंदेहमुपारमेत
स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥ २३ ॥

एवं स्फुटं ब्रह्म विवेक हेतुभिः पर अपवादेन विशारदेन छित्त्वा आत्म सन्देहं उपारमेत स्व आनन्द तुष्टः अखिल कामुकेभ्यः ॥ २३ ॥

एवं स्फुटं - इस प्रकार स्पष्ट	**आत्मसन्देहं** - अपना संशय
हेतुभिः - कारणों द्वारा	**छित्त्वा** - काटकर
ब्रह्म विवेक - ब्रह्म-विचार में,	**स्व-** - आत्मानन्दसे सन्तुष्ट
विशारदेन - निपुण व्यक्ति	**आनन्दतुष्टः** होकर
पर अपवादेन - आत्मतिरिक्त पदार्थोंका अपवाद करके	**अखिल** - समस्त
	कामुकेभ्यः - कामनाओंसे
	उपारमेत - उपराम हो जाय ॥२३॥

नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि
देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ।
मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्व-
महंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥ २४ ॥

न आत्मा वपुः पार्थिवं इन्द्रियाणि देवा हि असुः वायु जलं हुताशः मनः अन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वं अहङ्कृतिः खं क्षितिः अर्थ साम्यम् ॥ २४ ॥

आत्मा पार्थिवं	- आत्मा पृथ्वीके तत्त्वोंसे	**अन्नमात्रं**	- अन्नमात्र (अन्नसे पोषित)
वपुः	बना देह,	**मनः धिषणा**	- मन, बुद्धि,
इन्द्रियाणि	- इन्द्रियां,	**सत्त्वं अहङ्कृतिः**	-चित्त, अहंकार
देवा असुः	- देवता, प्राण,	**खं क्षितिः**	- आकाश, पृथ्वी
वायु जलं	- वायु, जल,	**च अर्थ साम्यं**	- तथा गुणोंकी साम्यावस्था
हुताशः	- अग्नि या	**हि न**	- क्योंकि नहीं है ॥२४॥

समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभि-
र्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः ।
विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं
घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥ २५ ॥

समाहितैः कः करणैः गुण आत्मभिः गुणः भवेत् मत् सुविविक्त धाम्नः विक्षिप्यमाणैः उत किं नु दूषणं घनैः उपेतैः विगतै खेः किम् ॥ २५ ॥

गुण आत्मभिः	- त्रिगुण स्वरूप	**उत विक्षिप्य**	- अथवा चंचल होनेपर
करणैः	- इन्द्रियोंके	**माणैः**	
समाहितैः	- एकाग्र होनेसे	**नु किं दूषणं**	- भला क्या हानि है,
मत् धाम्नः	- मेरे स्वरूपमें	**घनैः उपेतैः**	- मेघोंके आनेसे या
सुविविक्त	- अनन्य निष्ठासे लगे (महापुरुष)	**विगतै**	- चले जानेसे
		खेः किं	- सूर्यका (हानि-लाभ) क्या है ॥ २५ ॥
कः गुणः भवेत्	- क्या लाभ होगा,		

यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणै-
र्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ।
तथाक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलै-
रहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

यथा नभः वायु अनल अम्बु भू गुणैः गत आगतैः ऋतु गुणैः न सज्जते तथा अक्षरं सत्त्व रजः तमः मलैः अहंमतेः संसृति हेतुभिः परम् ॥ २६ ॥

यथा नभः	- जैसे आकाश	**तथा अक्षरं**	- वैसे ही अविनाशी (आत्मा)
वायु अनल	- वायु, अग्नि,	**सत्त्व रजः-**	- सत्त्व, रजस, तमसके
अम्बु भू	- जल, पृथ्वीके	**तमः**	
गुणैः	- गुणोंसे एवं	**मलैः**	- दोषों तथा
गत आगतैः	- जाने-आने वाली	**संसृति हेतुभिः**	- आवागमनके कारण
ऋतु गुणैः	- ऋतुओंके गुणोंसे	**अहंमतेः परं**	- अहंकारसे परे है ॥२६॥
न सज्जते	- संसक्त नहीं होता,		

तथापि संगः परिवर्जनीयो
गुणेषु मायारचितेषु तावत् ।
मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्
रजो निरस्येत मनः कषायः ॥ २७ ॥

तथा अपि संगः परिवर्जनीयः गुणेषु माया रजितेषु तावत् मत् भक्ति योगेन दृढेन यावत् रजः निरस्येत मनः कषायः ॥ २७ ॥

तथा अपि	- ऐसा होनेपर भी	**यावत् दृढेन**	- जब तक सुदृढ़
तावत्	- तब तक	**मत् भक्ति-योगेन**	- मेरी भक्तिके द्वारा
माया रचितेषु	- माया द्वारा निर्मित	**मनः रजः कषायः**	- मनका रजोगुण रूपी दोष
गुणेषु	- विषयोंकी	**निरस्येत**	- सर्वथा दूर न होजाय ॥ २७ ॥
संगः-परिवर्जनीयः	- आसक्ति सर्वथा त्याज्य है,		

यथाऽऽमयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां
पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ।
एवं मनोऽपक्वकषायकर्म
कुयोगिनं विध्यति सर्वसंगम् ॥ २८ ॥

यथा आमयः असाधु चिकित्सितः नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् एवं मनः अपक्व कषाय कर्म कुयोगिनं विध्यति सर्व संगम् ॥ २८ ॥

यथा असाधु-	- जैसे भली प्रकार	**एवं कर्म**	- इसी प्रकार कर्मके
चिकित्सितः	चिकित्सा न किया गया	**कषाय अपक्व**	- दोष (संस्कार) मिटे बिना
आमयः	- रोग	**मनः कुयोगिनं**	- मन अधूरे योगीको
पुनः पुनः	- बार बार	**सर्वसंगं**	- सभी आसक्तियोंसे
प्ररोहन्	- अपने उभाड़ोंसे	**विध्यति**	- बींध देता (योग भ्रष्ट
नृणां संतुदति	- मनुष्योंको पीड़ा देता है		कर देता) है ॥ २८ ॥

कुयोगिनो ये विहितान्तरायै-
र्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ।
ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो
युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥ २९ ॥

कुयोगिनः ये विहता अन्तरायैः मनुष्यभूतैः त्रिदश उपसृष्टैः ते प्राक्तन अभ्यास बलेन भूयः युञ्जन्ति योगं न तु कर्म तन्त्रम् ॥ २९ ॥

त्रिदश उपसृष्टैः	- देवताओं द्वारा प्रेरित	**ते भूयः**	- वे फिर
मनुष्य भूतैः	- मनुष्यों द्वारा किये गये	**प्राक्तन अभ्यास**	- पुराने अभ्यासकी
अन्तरायैः	- विघ्नोंसे	**बलेन**	- शक्तिसे
ये कुयोगिनः	- जो अधूरे योगी	**योगं युञ्जन्ति**	- योग करते हैं
विहता	- पीड़ित (योग भ्रष्ट) हो जाते हैं	**तु कर्म तन्त्रं न**	- किन्तु कर्म-परवश नहीं होते ॥ २९ ॥

करोति कर्म क्रियते च जन्तुः
केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् ।
न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितोऽपि
निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥

करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केन अपि असौ चोदित आ निपातात् न तत्र विद्वान् प्रकृतौ स्थितः अपि निवृत्ततृष्णः स्वसुख अनुभूत्या ॥ ३० ॥

असौ जन्तुः	- यह जीव	**तत्र प्रकृतौ**	- वहां प्रकृतिमें
केन अपि	- किसी (अज्ञात शक्ति) की ही	**स्थितः अपि**	- स्थित होनेपर भी
		विद्वान्	- ज्ञानी पुरुष
चोदित	- प्रेरणासे	**स्वसुख-**	- आत्मसुख अनुभवसे
आनिपातात्	- मृत्युपर्यन्त	**अनुभूत्या**	
करोति कर्म	- कर्तव्य कर्म	**निवृत्त तृष्णः**	- तृष्णका परित्याग कर चुका है ॥ ३० ॥
क्रियते च	- करता ही है		

तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं
शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ।
स्वभावमन्यत् किमपीहमान-
मात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥

तिष्ठन्तं आसीनं उत व्रजन्तं शयानं उक्षन्तं अदन्तं अन्नं स्वभावं अन्यत् किमपि ईहमानं आत्मानं आत्मस्थ मतिः न वेद ॥ ३१ ॥

आत्मस्थ मतिः	- आत्मामें स्थित बुद्धि पुरुष	**उक्षन्तं**	- मल-मूत्र त्यागते,
		अन्नं अदन्तं	- भोजन करते,
आत्मानं-	- शरीरके खड़े होने,	**स्वभावं अन्यत्**	- आत्मभावसे पृथक
तिष्ठन्तं		**किमपि ईहमानं**	- कोई भी चेष्टा करते
आसीनं उत	- बैठने अथवा	**न वेद**	- नहीं जान पाता ॥ ३१ ॥
व्रजन्तं शयानं	- चलने, सोने,		

यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं
नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् ।
न मन्यते वस्तुतया मनीषी
स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

यदि स्म पश्यत् असत् इन्द्रिय अर्थं नाना अनुमानेन विरुद्धं अन्यत् न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथा उत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥

यदि इन्द्रिय-अर्थं - यदि इन्द्रियोंके विषयोंको
पश्यत् स्म - देखता भी है तो
मनीषी - ज्ञानी पुरुष
नाना अनुमानेन - अनेक युक्तियोंसे
विरुद्धं - विरुद्ध होनेके कारण
अन्यत् - अपनेसे पृथक
वस्तुतया - वास्तविक सत्ता वाला
न मन्यते - नहीं मानता
यथा उत्थाय - जैसे जागकर
तिरोदधानं - लुप्त हुई
स्वाप्नं - स्वप्नके पदार्थोंको (कोई सत्य और अपनेसे पृथक नहीं मानता) ॥ ३२ ॥

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्र-
मज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग ।
निवर्तते तत् पुनरीक्षयैव
न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥

पूर्वं गृहीतं गुण कर्म चित्रं अज्ञानं आत्मनि अविविक्तं अंग निवर्तते तत् पुनः ईक्षया एव न गृह्यते न अपि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥

अंग - प्रिय उद्धव !
चित्रं गुण कर्म - नाना प्रकारके विषय और कर्म
पूर्वं आत्मनि - (ज्ञानसे) पहिले आत्मासे
अविविक्तं - अभिन्न रूपमें
गृहीतं - ग्रहण किये जाते थे
तत् पुनः - फिर वे
ईक्षया एव - (विवेक) दृष्टिसे ही
निवर्तते - निवृत्त होजाते हैं,
आत्मा अपि - आत्मा भी
न गृह्यते - न (वृत्तिसे) ग्रहण किया जाता
न विसृज्य - न त्यागा जा सकता ॥ ३३ ॥

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां
तमो निहन्यान्न तु सद् विधत्ते ।
एवं समीक्षा निपुणा सती मे
हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥

यथा हि भानोः उदयः नृ चक्षुषां तमः निहन्यात् न तु सत् विधत्ते एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात् तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥

हि यथा	- क्योंकि जैसे	**एवं मे निपुणा**	- इसी प्रकारकी मेरे सम्बन्धकी कुशल
भानोः उदयः	- सूर्योदय होना	**सती समीक्षा**	- उत्तम विवेचना
नृ चक्षुषां	- मनुष्योंके नेत्रोंका	**पुरुषस्य बुद्धेः**	- पुरुषकी बुद्धिका
तमः निहन्यात्	- अन्धकार नाश करता है	**तमिस्रं हन्यात्**	- अज्ञान नाश करती है ॥ ३४ ॥
तु सत् न विधत्ते	- किन्तु किसी सत्ताका निर्माण नहीं करता		

एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो
महानुभूतिः सकलानुभूतिः ।
एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे
येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ ३५ ॥

एष स्वयं ज्योतिः अजः अप्रमेयः महा अनुभूतिः सकल अनुभूतिः एकः अद्वितीयः वचसां विरामे येन ईषिता वाक् असवः चरन्ति ॥ ३५ ॥

एष स्वयं-ज्योतिः	- यह (आत्मा) स्वयं प्रकाश,	**एकः अद्वितीयः**	- एक, अद्वितीय,
अजः अप्रमेयः	- अजन्मा, प्रमाणातीत,	**वचसां विरामे**	- वर्णनातीत है,
महा अनुभूतिः	- महान् अनुभव रूप	**येन ईषिता**	- जिसके द्वारा प्रेरित
सकल अनुभूतिः	- समस्त अनुभवोंका स्वरूप,	**वाक् असवः**	- वाणी और प्राण
		चरन्ति	- (सक्रिय होते) चलते हैं ॥ ३५ ॥

एतावानात्मसंमोहो यद् विकल्पस्तु केवले ।
आत्मन्नृत्ते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ॥ ३६ ॥

एतावान आत्म सम्मोहः यत् विकल्पः तु केवले आत्मन् ऋते स्व आत्मानं अवलम्बः न यस्य हि ॥ ३६ ॥

आत्मन् ऋते	- अपनेको छोड़कर	**केवले**	- उस अद्वितीयमें
हि यस्य	- क्योंकि जिसका	**यत् विकल्पः**	- जो विविधता (देखना) है
स्व आत्मानं	- अपने आपका	**एतावान**	- इतना ही
अवलम्बः न	- (दूसरा) आश्रय नहीं है	**आत्म सम्मोहः**	- आत्माका अज्ञान है ॥ ३६ ॥

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् ।
व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥ ३७ ॥

यत् नाम आकृतिभिः ग्राह्यं पञ्चवर्णं अबाधितं व्यर्थेन अपि अर्थवादः अयं द्वयं पण्डित मानिनाम् ॥ ३७ ॥

पञ्चवर्णं	- पांच (शब्दादि) विषयोंके रूपमें	**पण्डित मानिनां**	- अपनेको पंडित मानने वालोंकी
यत् नाम	- जो नाम एवं	**अयं द्वयं**	- यह दोनों (इन्द्रियां और विषय)
आकृतिभिः	- आकृति (रूप) के द्वारा	**अपि व्यर्थेन**	- भी व्यर्थ
ग्राह्यं	- ग्रहण होने वाले (जगत) को	**अर्थवादः**	- निराधार प्रतिपादन है ॥ ३७ ॥
अबाधितं	- अबाधित (सत्य) कहते हैं,		

योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः ।
उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥

योगिनः अपक्व योगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः उपसर्गैः विहन्येत तत्र अयं विहितः विधिः ॥ ३८ ॥

युञ्जतः	- योग साधन करते हुए	**उपसर्गैः**	- रोगादिसे
अपक्वयोगस्य	- अधूरी योग साधना वाले	**विहन्येत**	- (साधना) बाधित होती है
योगिनः	- योगीके	**तत्र अयं विधिः**	-वहां इस उपायका
काय उत्थितैः	- शरीरमें उत्पन्न	**विहितः**	- विधान है ॥ ३८ ॥

योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः ।
तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान् विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥

योग धारणया कांश्चित् आसनैः धारणा अन्वितैः तपः मन्त्र औषधैः कांश्चित् उपसर्गान् विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥

कांश्चित्	- कुछ को	**कांश्चित्**	- कुछ
योगधारणया	- योगकी धारणा (संकल्प) से या	**उपसर्गान्**	- रोगोंको
		तपः मन्त्र	- तपस्या, मन्त्र या
धारणा अन्वितैः	- धारणा युक्त	**औषधैः**	- औषधिसे
आसनैः	- योगासनोंसे,	**विनिर्दहेत्**	- सम्पूर्ण भस्म करदे ॥ ३९ ॥

कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः ।
योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥ ४० ॥

कांश्चित् मम अनुध्यानेन नाम संकीर्तन आदिभिः योगेश्वर अनुवृत्त्या वा हन्यात् अशुभदान् शनैः ॥ ४० ॥

कांश्चित्	- कुछ	**आदिभिः**	- आदि द्वारा
अशुभदान्	- पीड़ादायक रोगोंको	**वा योगेश्वर**	- अथवा योगेश्वरोंके
मम अनुध्यानेन	- बार-बार मेरा ध्यान करके	**अनुवृत्त्या**	- समान आचरण बनाकर
		शनैः हन्यात्	- धीरे धीरे नष्ट करदे ॥ ४० ॥
नाम संकीर्तन	- नाम संकीर्तन		

केचिद् देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् ।
विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥

केचित् देहं इमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरं विधाय विविध उपायैः अथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥

केचित् धीराः	- कुछ धैर्यशाली पुरुष	**वयसि स्थिरं**	- स्थिर आयुका
विविध उपायैः	- अनेक प्रकारके उपायोंसे	**विधाय अथ**	- बनाकर फिर
इमं देहं	- इस शरीरको	**सिद्धये-**	- सिद्धिके लिए योग
सुकल्पं	- पर्याप्त समर्थ और	**युञ्जन्ति**	करते हैं ॥ ४१ ॥

न हि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः ।
अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥

न हि तत् कुशल आदृत्यं तत् आयासः हि अपार्थकः अन्तवत् त्वात् शरीरस्य फलस्य इव वनस्पतेः ॥ ४२ ॥

हि तत्	- क्योंकि वह	**फलस्य इव**	- फलकी भांति
कुशल	- चतुर व्यक्तिके लिए	**शरीरस्य**	- शरीरके
आदृत्यं न	- आदर करने योग्य (मार्ग) नहीं है	**अन्तवत् त्वात्**	- विनाशशील होनेके कारण
वनस्पतेः	- वृक्षके	**हि तत् आयासः**	- क्योंकि वह प्रयास
		अपार्थकः	- व्यर्थ है ॥ ४२ ॥

योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत् कल्पतामियात् ।
तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥

योगं निषेवतः नित्यं कायः चेत् कल्पतां इयात् तत् श्रद्दध्यात् न मतिमान् योगं उत्सृज्य मत् परः ॥ ४३ ॥

नित्यं योगं	- सदा योगका	**मतिमान्**	- बुद्धिमान् पुरुष
निषेवतः	- भली प्रकार सेवन (साधन) करनेसे	**तत्-श्रध्यात् न**	- उसपर श्रद्धा न करे
चेत् कायः	- यदि शरीर	**योगं उत्सृज्य**	- योगका त्याग करके
कल्पतां इयात्	- कल्पपर्यन्त स्थायी हो भी जाय तो	**मत् परः**	- मेरे परायण होजाय ॥ ४३ ॥

योगचर्यामिमां योगी विचरन् मदपाश्रयः ।
नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

योगचर्यां इमां योगी विचरन् मत् अपाश्रयः न अन्तरायैः विहन्येत निस्पृहः स्वसुख अनुभूः ॥ ४४ ॥

मत् अपाश्रयः	- मेरा आश्रय लेकर	**विहन्येत न**	- भ्रष्ट नहीं होता
इमां योगचर्यां	- इस योगाचरणको	**स्वसुख**	- आत्मसुखका
विचरन् योगी	- करते हुए योगी	**अनुभूः**	- अनुभव करता है ॥ ४४ ॥
अन्तरायैः	- विघ्नोंने		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच–

सुदुश्चरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ।
यथाञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत् तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ॥ १ ॥

सदुश्चरां इमां मन्ये योगचर्यां अनात्मनः यथा अञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत् तत् मे ब्रूहि अञ्जसा अच्युत ॥ १ ॥

अच्युत	- अच्युत !	**मन्ये**	- मानता हूं
अनात्मनः	- जिनका मन वशमें नहीं है	**पुमान् यथा**	- पुरुष जैसे
		अञ्जसा	- सरलतासे सफल होजाय
इमां योगचर्यां	- यह योगाचरण	**सिद्ध्येत्**	
सदुश्चरां	- (उनके लिए) अत्यन्त कठिन	**मे तत्-अञ्जसा**	- मुझे वह सरल साधना
		ब्रूहि	- बतलाइये ॥ १ ॥

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः ।
विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तः योगिनः मनः विषीदन्ति असमाधानात् मनोनिग्रह कर्शिताः ॥ २ ॥

पुण्डरीकाक्ष	- कमलनयन !	**असमाधानात्**	- उसके एकाग्र न होनेसे
प्रायशः योगिनः	- प्रायः योगी लोग	**मनोनिग्रह**	- मनको एकाग्र करनेके
मनः युञ्जन्तः	- मनको एकाग्र करते समय	**कर्शिताः**	- (प्रयत्नसे) थककर
		विषीदन्ति	- दुःखी होजाते हैं ॥२॥

अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजं
हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभि-
स्त्वन्मायायामी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥

अथ अत आनन्ददुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन् अरविन्द लोचन सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिः त्वत् मायया अमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥

विश्वेश्वर	- विश्वेश्वर !	**नु योग-**	- भला योग और कर्मसे
अरविन्द लोचन	- कमलनयन !	**कर्मभिः**	
अत हंसाः	- अतः विवेकी पुरुष	**अथ सुखं**	- यह कहीं सुखद है; किन्तु
आनन्ददुघं	- परमानन्द दाता	**त्वत् मायया**	- आपकी मायासे
पदाम्बुजं	- आपके चरण कमलोंका	**विहता अमी**	- प्रताड़ित ये
श्रयेरन्	- आश्रय लेते हैं	**मानिनः न**	- अभिमानी (आपके चरणोंका आश्रय) नहीं लेते ॥ ३ ॥

किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो
दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।
योऽरोचयत् सह मृगैः स्वयमीश्वराणां
श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥

किं चित्रं अच्युत तव एतत् अशेष बन्धो दासेषु अनन्य शरणेषु यत् आत्म सात्त्वं यः अरोचयत् सह मृगैः स्वयं ईश्वराणां श्रीमत् किरीट तट पीडित पादपीठः ॥ ४ ॥

अशेषबन्धो - सर्वसुहृद
अच्युत - अच्युत !
यत् अनन्य - जो अनन्य
शरणेषु - शरणागत
दासेषु - सेवक (भक्त) को
आत्मसात्त्वं - (आपका) अपने समान बना लेना है
एतत् तव किं चित्रं - यह आपके लिए क्या आश्चर्य है
ईश्वराणां - (ब्रह्मादि) संसारके स्वामियोंके
श्रीमत् - शोभा सम्पन्न मुकुटकी
किरीट तट नोक से
यः पाद पीठः - जिनका पादपीठ
पीडित - वन्दित होता था
स्वयं मृगैः सह - (रामावतारमें) वे स्वयं वानरोंके साथ
अरोचयत् - (मित्रता करके) शोभित हुए ॥ ४० ॥

तं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां
सर्वार्थदं स्वकृतविद् विसृजेत को नु ।
को वा भजेत् किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै
किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥ ५ ॥

तं तु अखिलात्म दयित ईश्वरं आश्रितानां सर्व अर्थदं स्वकृतवित् विसृजेत कः नु कः वा भजेत् किं अपि विस्मृतये अनु भूत्यै किं वा भवेत् न तव पादरजः जुषां नः ॥ ५ ॥

तं अखिलात्म-दयित - उस सबके परमप्रिय
ईश्वरं तु - स्वामी
सर्व अर्थदं - समस्त पुरुषार्थदाताको
तु नु कः - तो भला कौन
स्वकृतवित् - अपनी (अल्प) कर्मशक्ति जानने वाला
विसृजेत् - त्याग सकता है,
वा कः किं अपि - अथवा कोई किन्हीं भी
अनुभूत्यै - भोगोंका बार-बार
विस्मृतये - (आत्म) विस्मृतिके लिए
भजेत् - सेवन करेगा
तव पाद रजः-जुषां नः - आपकी चरणरजका सेवन करने वाले हम लोगोंका
वा किं न-भवेत् - अथवा क्या (मंगल) नहीं होगा ॥ ५ ॥

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश
ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्व-
न्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

न एव उपयन्ति अपचितिं कवयः तव ईश ब्रह्म आयुषा अपि कृतं ऋद्ध मुदः स्मरन्तः यः अन्तः बहिः तनुभृतां अशुभं विधुन्वन् आचार्य चैत्य वपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ॥ ६ ॥

यः तनुभृतां	- जो शरीरधारियोंके	**कृतं अपचितिं**	- किये उपकारोंका बदला
अन्तः	- अन्तःकरणमें	**कवयः**	- बुद्धिमान
चैत्य	- अन्तर्यामी और	**ब्रह्म आयुषा**	- ब्रह्माजीकी आयुमें भी
बहिः आचार्य	- बाहर गुरु	**अपि**	
वपुषा	- रूपसे	**न एव उपयन्ति**	-नहीं ही चुका सकते
स्वगतिं	- अपना स्वरूप	**ऋद्धमुदः**	- अतः बढ़ते आनन्दके साथ
व्यनक्ति	- प्रकट कर देते हैं	**स्मरन्तः**	- (उनका) स्मरण करते रहते हैं ॥ ६ ॥
ईश तव	- स्वामी ! उस आपके		

श्रीशुक उवाच–

इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा
पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ।
गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो
जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥

इति उद्धवेन अति अनुरक्त चेतसा पृष्टः जगत् क्रीडनकः स्वशक्तिभिः गृहीत मूर्तित्रय ईश्वर ईश्वरः जगाद सप्रेम मनोहर स्मितः ॥ ७ ॥

अति अनुरक्त - अत्यन्त आसक्त
चेतसा उद्धवेन - चित्त उद्धव द्वारा
इति पृष्टः - ऐसा पूछने पर
स्वशक्तिभिः - अपनी शक्तियों द्वारा
मूर्तित्रय - तीन मूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव)
गृहीत - ग्रहण करके
जगत्- - जगत रूपी खिलौनेसे
क्रीडनकः खेलने वाले
ईश्वर ईश्वरः - लोकपालोंके भी स्वामी
सप्रेम - प्रेमके साथ
मनोहर स्मितः - मनोहर मुस्कान सहित
जगाद - बोले ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच–

हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् सुमंगलान् ।
याञ्छ्रद्धयाऽऽचरन् मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् सुमंगलान् यान् श्रद्धया आचरन् मर्त्यः मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥

हन्त - प्रिय उद्धव !
ते सुमंगलान् - तुमसे श्रेष्ठ मंगलमय
मम धर्मान् - अपने धर्मोंका
कथयिष्यामि - वर्णन करूँगा
मर्त्यः - मरणधर्मा मनुष्य
श्रद्धया यान् - श्रद्धापूर्वक जिनका
आचरन् - पालन करके
दुर्जयं मृत्युं - जीतनेमें अत्यन्त कठिन मृत्युको
जयति - जीत लेता है ॥ ८ ॥

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मत् अर्थं शनकैः स्मरन् मयि अर्पितमनः चित्तः मत् धर्म आत्म मनः रतिः ॥ ९ ॥

मयि मनः चित्तः - मुझे मन तथा चित्त
अर्पित - अर्पित करके
शनकैः स्मरन् - धीरे-धीरे स्मरण करता हुआ
मत् अर्थं - मेरे लिए
सर्वाणि कर्माणि - सब कर्म
कुर्यात् - करे,
मत् धर्म - मेरे धर्म (भक्ति)में
आत्ममनः-रतिः - अपने मनकी प्रीति हो ॥ ९ ॥

देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥

देशान् पुण्यान् आश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् देव असुर मनुष्येषु मद्भक्त आचरितानि च ॥ १० ॥

मत् भक्तैः - मेरे भक्त
साधुभिः श्रितान् - साधुजनों द्वारा आश्रित
पुण्यान् देशान् - पवित्र स्थानोंका
आश्रयेत - आश्रय ले (वहां रहे)
च देव असुर - एवं देवता, असुर,
मनुष्येषु - मनुष्योंमें
मत् भक्त - मेरे भक्तोंके
आचरितानि - आचरणोंका (पालनकरे) ॥ १० ॥

पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ।
कारयेद् गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥

पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्व यात्रा महोत्सवान् कारयेत् गीत नृत्य आद्यैः महाराज विभूतिभिः ॥ ११ ॥

पर्व यात्रा - पर्वोंपर यात्रा
महोत्सवान् - महोत्सव आदि
सत्रेण - सबके साथ मिलकर
वा पृथक् - अथवा अलग
गीत नृत्य-आद्यैः - गायन, नृत्य आदि
महाराज विभूतिभिः - महाराजोंके वैभवोंके समान
कारयेत् - करवाये ॥ ११ ॥

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् ।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥

मां एव सर्वभूतेषु बहिः अन्तः अपावृतं ईक्षेत आत्मनि च आत्मानं यथा खं अमल आशयः ॥ १२ ॥

अमल आशयः - निर्मल चित्त भक्तः
यथा खं - आकाशके समान
मां एव आत्मानं - मुझ आत्माको ही
सर्वभूतेषु - सब प्राणियोंके
बहिः अन्तः - बाहर-भीतर
च आत्मनि - तथा अपनेमें
अपावृतं - आवरण सहित
ईक्षेत - देखे ॥ १२ ॥

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ।
सभाजयन् मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥

इति सर्वाणि भूतानि मत् भावेन महाद्युते सभाजयन् मन्यमानः ज्ञानं केवलं आश्रितः ॥ १३ ॥

महाद्युते - महामति उद्धव !
इति - इस प्रकार
केवलं ज्ञानं - केवल ज्ञान दृष्टिका
आश्रितः - आश्रय लेकर
सर्वाणि भूतानि - सब प्राणियोंको
मत् भावेन - मेरा रूप मानकर
सभाजयन् - आदर करता है ॥१३॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके ।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्ये अर्के स्फुलिंगके अक्रूरे क्रूरके च एव समदृक् पण्डितः मतः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणे पुल्कसे - ब्राह्मण एवं कसाईमें,
स्तेने ब्रह्मण्ये - चोर तथा ब्राह्मणभक्तमें,
अर्के स्फुलिंगके - सूर्य और चिनगारीमें,
च अक्रूरे - तथा शान्त और
क्रूरके एव क्रूरमें भी
समदृक् - (जो) समदर्शी हैं
मतः पण्डितः - मेरे मतसे वह तत्त्वज्ञ है
॥ १४ ॥

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥

नरेषु अभीक्ष्णं मत् भावं पुंसः भावयतः अचिरात् स्पर्धा असूया तिरस्काराः स अहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥

हि नरेषु	- क्योंकि मनुष्योंमें	**स्पर्धा असूया**	- स्पर्धा, गुणमें दोष बुद्धि,
अभीक्ष्णं	- निरन्तर	**तिरस्काराः**	- (दूसरोंका) तिरस्कार
मत्भावं भावयतः	- मेरी भावना करनेवाले	**स अहंकारा**	- अहंकारके साथ
पुंसः	- पुरुषके	**वियन्ति**	- विलीन होजाते हैं ॥ १५ ॥

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥ १६ ॥

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीं प्रणमेत् दण्डवत् भूमाः आश्वः चाण्डाल गोखरम् ॥ १६ ॥

स्मयमानान्	- मुस्कराते हुए	**आश्वः**	- कुत्तेसे लेकर
स्वान दृशं	- अपने लोगोंके देखने	**चाण्डाल गोखरं**	- चाण्डाल, गौ, गधे तक (सबको)
च दैहिकीं व्रीडां	- तथा शारीरिक लज्जा	**भूमाः दण्डवत्**	- पृथ्वीपर दण्डवत
विसृज्य	- त्यागकर	**प्रणमेत्**	- प्रणाम करे ॥ १६ ॥

यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

यावत् सर्वेषु भूतेषु मत् भावः न उपजायते तावत् एवं उपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥

सर्वेषु भूतेषु - समस्त प्राणियोंमें
यावत् मत् भावः - जब तक मेरा भाव
न उपजायते - न उत्पन्न होजाय
तावत् - तभी तक
एवं वाङ्मनः - इस प्रकार वाणी, मन,
कायवृत्तिभिः - तथा शरीरके आचरणसे
उपासीत - उपासना करे ॥ १७ ॥

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतो मुक्तसंशयः ॥ १८ ॥

तस्य सर्वम् ब्रह्मात्मकं आत्म मनीषया विद्यया परिपश्यन् सर्वतः मुक्त संशयः उपरमेत ॥ १८ ॥

सर्वम् - सब कुछ
ब्रह्मात्मकम् - ब्रह्म ही ब्रह्म हो जाता है
आत्म - अपनी
मनीषया - सर्वत्र परमेश्वर दृष्टि से
विद्यया - ब्रह्म साक्षात्कार होनेसे
परि - चारौं तरफ
पश्यन् - ब्रह्म स्वरूप देखता हुआ
सर्वतः - सर्व प्रकारसे सारे
मुक्तः - नष्ट
संशयः - संदेह-संशयः हो जाते हैं और
उपरमेत - संसार दृष्टि से निवृत्त हो जाता है ॥ १८ ॥

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ १९ ॥

अयं हि सर्व कल्पानां सध्रीचीनः मतः मम मत् भावः सर्वभूतेषु मनः वाक् काय वृत्तिभिः ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु - समस्त प्राणियोंमें
मनः वाक् - मन, वाणी एवं
कायवृत्तिभिः - शरीरके व्यवहार द्वारा
मत् भावः - मेरी भावना करना
हि मम मतः - क्योंकि मेरे मतसे
सर्वकल्पानां - समस्त साधनोंमें
अयं सध्रीचीनः - यह समीचीन (श्रेष्ठ) है ॥ १९ ॥

न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ।
मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥

न हि अंग उपक्रमे ध्वंसः मत् धर्मस्य उद्धव अणु अपि मया व्यवसितः समयक् निर्गुणत्वात् अनाशिषः ॥ २० ॥

अंग उद्धव	- प्रिय उद्धव !	**हि मया**	- क्योंकि मैने ऐसा निश्चय
मत् धर्मस्य	- (इस) मेरे (भागवत) धर्मका	**व्यवसितः**	कर दिया है
उपक्रमे	- प्रारम्भ कर देनेपर	**अनाशिषः**	- निश्काम होनेसे
अणु अपि	- कण मात्र भी	**निर्गुण त्वात्**	- इसके निर्गुण होनेसे भी (इसका क्षय नहीं होता) ॥ २० ॥
ध्वंसः न	- नाश नहीं होता		

यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।
तदायासो निरर्थः स्याद् भयादेरिव सत्तम ॥ २१ ॥

यः यः मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् तत् आयासः निरर्थः स्यात् भय आदेः इव सत्तम ॥ २१ ॥

सत्तम	- साधु श्रेष्ठ उद्धव !	**चेत् मयि परे**	- यदि मुझ परमतत्त्वके
यः यः	- जो जो	**कल्प्यते**	- लिये किये गये हैं तो
निष्फलाय	- जो कुछ फल न देने वाले (कभी)	**भय आदेः इव**	- (मुझमें लगे) भय आदिके समान
		निरर्थः धर्मः स्यात्	- वे निरर्थक कर्म धर्म हो जाते हैं ॥ २१ ॥

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥ २२ ॥

एषा बुद्धिमतां बुद्धिः मनीषा च मनीषिणां यत् सत्यं अनृतेन इह मर्त्येन आप्नोति मां अमृतम् ॥ २२ ॥

बुद्धिमतां बुद्धिः - बुद्धिमानोंकी बुद्धिमत्ता
च मनीषिणां - तथा विवेकियोंकी
मनीषा एषा - विवेक शक्ति सही है
यत् इह - जो इस
अनृतेन - असत्
मर्त्येन - मरणधर्मा (शरीर) से
मां सत्यं - मुझ सत्यस्वरूप
अमृतं - अविनाशीको
आप्नोति - प्राप्त करले ॥ २२ ॥

एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य सङ्ग्रहः ।
समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥ २३ ॥

एष ते अभिहितः कृत्स्नः ब्रह्मवादस्य संग्रहः समास व्यास विधिना देवानां अपि दुर्गमः ॥ २३ ॥

एष देवानां - यह देवताओंके लिए
अपि भी
दुर्गमः - दुर्लभ
कृत्स्नः- - सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका
ब्रह्मवादस्य
संग्रहः ते - रहस्य तुमसे
समास व्यास - संक्षेप-विस्तार
विधिना - विधिसे
अभिहितः - वर्णनकर दिया
॥ २३ ॥

अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ।
एतद् विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥

अभीक्ष्णशः ते गदितं ज्ञानं विस्पष्ट युक्तिमत् एतत् विज्ञाय मुच्येत पुरुषः नष्ट संशयः ॥ २४ ॥

ते - तुमसे
युक्तिमत् - युक्तिपूर्वक
विस्पष्ट - अत्यन्त स्पष्ट
ज्ञानं अभीक्ष्णशः - ज्ञान बार-बार
गदितं - कहा है,
एतत् विज्ञाय - इसे जानकर
नष्ट संशयः - सन्देह नष्ट होजानेसे
पुरुषः मुच्येत - पुरुष मुक्त होजाता है
॥ २४ ॥

सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ।
सनातनं ब्रह्मगुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २५ ॥

सुविविक्तं तव प्रश्नं मया एतत् अपि धारयेत् सनातनं ब्रह्मगुह्यं परं ब्रह्म अधिगच्छति ॥ २५ ॥

तव प्रश्नं	- तुम्हारे प्रश्नोंको एवं	**सुविविक्तं**	- अत्यन्त विवेक पूर्वक
मया अपि	- मेरे भी	**धारयेत्**	- (जो) धारण करेगा
एतत् सनातनं	- इस शाश्वत्	**परं ब्रह्म**	- (वह) परमब्रह्मको
ब्रह्मगुह्यं	- ब्रह्म-रहस्यको	**अधिगच्छति**	- प्राप्त कर लेगा ॥२५॥

य एतन्मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात् सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥ २६ ॥

य एतत् मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात् सुपुष्कलं तस्य अहं ब्रह्म दायस्य ददामि आत्मानं आत्मना ॥ २६ ॥

मम भक्तेषु	- मेरे भक्तोंको	**तस्य ब्रह्म दायस्य**	- उस ज्ञानदाताको
यः एतत्	- जो इसको	**अहं आत्मना**	- मैं अपने आप
सुपुष्कलं	- अच्छे विस्तार सहित	**आत्मानं ददामि**	- अपनेको दे दूँगा ॥ २६ ॥
सम्प्रदद्यात्	- समझाकर प्रदान करेगा		

य एतत् समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ।
स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥

य एतत् सम् अधीयीत पवित्रं परमं शुचि स पूयेत अहः अहः मां ज्ञान दीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥

य एतत्	- जो इस	**स अहः अहः**	- वह प्रत्येक दिन्
परमं पवित्रं	- परम पवित्र	**ज्ञान दीपेन**	- ज्ञान दीपक द्वारा
शुचि	- निर्मल (संवाद) का	**मां दर्शयन्**	- (दूसरोंको) मुझे दिखलाता हुआ
सम् अधीयीत	- भली प्रकार अध्ययन करेगा	**पूयेत**	- पवित्र होजायगा ॥ २७ ॥

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ।
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥ २८ ॥

यः एतत् श्रद्धया नित्यं अव्यग्रः शृणुयात् नरः मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिः न स बध्यते ॥ २८ ॥

यः नरः	- जो मनुष्य	**मयि परां भक्तिं**	- मेरी परा भक्ति
श्रद्धया अव्यग्रः	- श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्तसे	**कुर्वन् स**	- करके वह
एतत् नित्यं	- इसे प्रतिदिन	**कर्मभिः**	- कर्मोंसे
शृणुयात्	- सुनेगा,	**न बध्यते**	- नहीं बँधेगा ॥२८॥

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ।
अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥

अपि उद्धव त्वया ब्रह्म सखे सम अवधारितं अपि ते विगतः मोहः शोकः च असौ मनः भवः ॥ २९ ॥

सखे उद्धव	- मित्र उद्धव !	**अपि असौ**	- क्या यह
अपि त्वया	- क्या तुमने	**मनः भवः**	- मनसे उत्पन्न होनेवाला
ब्रह्म	- (इस) ब्रह्मज्ञानको	**ते मोहः च**	- तुम्हारे मोह और शोक
सम अवधारितं	- भली भांति समझ लिया	**शोकः**	
		विगतः	- दूर होगया ? ॥ २९ ॥

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

न एतत् त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च अशुश्रूषोः अभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥

त्वया एतत् - तुमको यह (ज्ञान)	**अशुश्रूषोः** - सेवा न करनेवालेको
दाम्भिकाय - पाखण्डीको,	**अभक्ताय** - जो भक्त न हो उसे
नास्तिकाय - नास्तिकको,	**च दुर्विनीताय** - तथा उद्‌धत व्यक्तिको
शठाय - दुष्टको,	**न दीयतां** - मत देना ॥ ३० ॥

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद् भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥

एतैः दोषैः विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च साधवे शुचये ब्रूयात् भक्तिः स्यात् शूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥

एतैः दोषैः - इन दोषोंसे	**शुचये साधवे** - पवित्र सत्पुरुषको
विहीनाय - रहित	**च भक्तिः-** - और यदि भक्त
ब्रह्मण्याय - ब्राह्मणभक्त,	**स्यात्** युक्त हों तो
प्रियाय - अपने प्रिय	**शूद्र योषितां** - शूद्रों और स्त्रियोंको भी
	ब्रूयात् - बतलावे ॥ ३१ ॥

नैतद् विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नवशिष्यते ॥ ३२ ॥

न एतत विज्ञाय जिज्ञासोः ज्ञातव्यं अवशिष्यते पीत्वा पीयूषं अमृतं पातव्यं न अवशिष्यते ॥ ३२ ॥

जिज्ञासोः - जिज्ञासुके लिए	**पीयूषं पीत्वा** - (जैसे) अमृत पीकर
एतत् विज्ञाय - यह जान लेनेपर	**अमृतं** - अमर हो जानेपर
ज्ञातव्यं - जानने योग्य कुछ	**पातव्यं** - पीने योग्य कुछ
न अवशिष्यते - नहीं बच रहता	**न अवशिष्यते** - नहीं बच रहता ॥३२॥

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे ।
यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे यावान् अर्थः नृणां तात तावान् ते अहं चतुर्विधः ॥ ३३ ॥

तात	- प्रिय उद्धव	**दण्डधारणे**	- दण्डधारण (रूप-राज्य-काम)
नृणां ज्ञाने	- मनुष्यके लिए ज्ञान (मोक्ष)	**यावान् अर्थः**	- जितने पुरुषार्थ हैं
कर्मणि	- कर्म (धर्म)	**ते तावान्**	- तुम्हारे लिए वे सब
च योगे	- तथा योग (मोक्ष साधन)	**चतुर्विधः**	- चारों प्रकारके (पुरुषार्थ)
वार्तायां	- व्यापार (अर्थ)	**अहं**	- मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥

मर्त्यः यदा त्यक्त समस्त कर्मा निवेदित आत्मा विचिकीर्षितः मे तदा अमृतत्त्वं प्रतिपद्यमानः मया आत्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥

यदा मर्त्यः	- जब मनुष्य	**अमृतत्त्वं**	- (वह) अमृतत्त्व
त्यक्त समस्त-कर्मा	- सब कर्मोंका त्याग करके	**मया- प्रतिपद्यमानः**	- मेरे द्वारा प्राप्त कराया जाकर
निवेदित आत्मा	- आत्म समर्पण कर देता है	**वै आत्म-भूयाय च**	- निश्चय (मेरा) आत्मस्वरूप
तदा मे	- तब मेरी	**कल्पते**	- हो जाता है ॥ ३४ ॥
विचिकीर्षितः	- विशेष इच्छासे ही (कर्म) करने वाला हो जाता है ।		

श्रीशुक उवाच–

स एवमादर्शितयोगमार्ग-
स्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ।
बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो
न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ ३५ ॥

स एवं आदर्शित योगमार्गः तत् उत्तम श्लोक वचः निशम्य बद्ध अञ्जलिः प्रीति उपरुद्ध कण्ठः न किञ्चित् ऊचे अश्रुपरिप्लुत अक्षः ॥ ३५ ॥

एवं योगमार्गः	- इस प्रकार अपने मिलनेका मार्ग	**स बद्ध-अञ्जलिः**	- वे हाथ जोड़े (उद्धव)
आदर्शित	- दिखलाकर	**प्रीति उपरुद्ध-**	प्रेमके कारण गला भर जानेसे
उत्तमश्लोक	- पुण्यकीर्ति भगवानकी	**किञ्चित् न ऊचे**	- कुछ बोल नहीं सके,
तत् वचः-निशम्य	- उस बातको सुनकर	**अक्षः**	- नेत्र
		अश्रु परिप्लुत	-आंसू से भर गये ॥ ३५ ॥

विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं
धैर्येण राजन् बहुमन्यमानः ।
कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं
शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥

विष्टभ्य चित्तं प्रणय अवधूर्णं धैर्येण राजन् बहु मन्यमानः कृत अञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशन् तत् चरण अरविन्दम् ॥ ३६ ॥

राजन्	- राजन् !	**शीर्ष्णा**	- मस्तकसे
प्रणय अवधूर्ण	- प्रेम विह्वल	**तत् चरण-**	- उनके चरणकमलका
चित्तं धैर्येण	- चित्तको धैर्यपूर्वक	**अरविन्दं**	
विष्टभ्य	- स्थिर करके	**स्पृशन्**	- स्पर्श करके
बहुमन्यमानः	- (अपनेको) अत्यन्त सौभाग्यशाली समझकर	**कृत अञ्जलिः**	- हाथ जोड़कर
		यदुप्रवीरं	- उन यादव श्रेष्ठसे
		प्राह	- बोले ॥ ३६ ॥

उद्धव उवाच—

विद्रावितो मोहमहान्धकारो
य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ।
विभावसोः किं नु समीपगस्य
शीतं तमो भीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥ ३७ ॥

विद्रावितः मोह महा अन्धकारः यः आश्रितः मे तव सन्निधानात् विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमः भीः प्रभवन्ति अजाद्य ॥ ३७ ॥

यः मोह महा-	- जो मोहरूपी घोर	**नु किं-**	- भला क्या अग्निके
अन्धकारः	अन्धकार	**विभावसोः**	
मे आश्रितः	- मुझमें स्थित था	**समीपगस्य**	- समीप जाने वालेको
तव सन्निधानात्	- आपके सामीप्यसे	**शीतं तमः भीः**	- सर्दी, अन्धकार, भय,
विद्रावितः	- (वह) दूर भगा दिया गया,	**अजाद्य**	- माया आदि
		प्रभवन्ति	- उत्पन्न होसकते हैं ॥ ३७ ॥

प्रत्यर्पितो मे भवतानुकम्पिना
भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ।

हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं
कोऽन्यत् समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥

प्रत्यर्पितः मे भवता अनुकम्पिना भृत्याय विज्ञान मयः प्रदीपः हित्वा कृतज्ञः तव पादमूलं कः अन्यत् समीयात् शरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥

अनुकम्पिना - अनुग्रहमय
भवता - आपने
मे भृत्याय - मुझ सेवकको
विज्ञानमयः - विज्ञानस्वरूप
प्रदीपः - प्रदीप
प्रत्यर्पितः - प्रदान किया,
कः कृतज्ञः - कौन कृतज्ञ
तव पादमूलं - आपके चरणोंको
हित्वा त्वदीयं - त्यागकर आपका जन
अन्यत् शरणं - दूसरेकी शरणमें
समीयात् - कभी जायगा ॥ ३८ ॥

वृक्णश्च मे सुदृढ़ः स्नेहपाशो
दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु ।
प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया
स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥

वृक्णः च मे सुदृढ़ः स्नेहपाशः दाशार्ह वृष्णि अन्धक सात्वतेषु प्रसारितः सृष्टि विवृद्धये त्वया स्वमायया हि आत्म सुबोध हेतिना ॥ ३९ ॥

हि त्वया - क्योंकि आपने ही
सृष्टि विवृद्धये - सृष्टिकी वृद्धिके लिए
स्वमायया - अपनी मायासे
प्रसारितः - जिसे फैलाया था वह
दाशार्ह वृष्णि - दाशार्ह, वृष्णि,
अन्धक - अन्धक,
सात्वतेषु - सात्वत वंशी लोगोंमें
मे सुदृढ़ः - मेरा अत्यन्त दृढ़
स्नेह पाशः - स्नेहका बन्धन
आत्म सुबोध - आत्माके उत्तम ज्ञानरूपी
हेतिना - कुल्हाड़ेसे
वृक्णः च - (आपने) काट भी दिया ॥ ३९ ॥

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम् ।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥

नमः अस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नं अनुशाधि मां यथा त्वत् चरणाम्भोजे रतिः स्यात् अनपायिनी ॥ ४० ॥

महायोगिन्	- महायोगिन्	**यथा त्वत्**	- जिससे आपके
ते नमः अस्तु	- आपको नमस्कार हो,	**चरणाम्भोजे**	- चरण कमलोंमें
मां प्रपन्नं	- (अब मुझ) शरणागतको	**अनपायिनी**	- अनन्य
अनुशाधि	- (ऐसी) आज्ञा दीजिए	**रतिः स्यात्**	- प्रीति हो ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच–

गच्छोद्धव मयाऽऽदिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् ।
तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

गच्छ उद्धव मया आदिष्टः बदरि आख्यं मम आश्रमं तत्र मत् पादतीर्थ उदे स्नान उपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥

उद्धव	- उद्धव !	**तत्र मत्पाद**	- वहाँ मेरे चरणोंके
मया आदिष्टः	- मेरे आदेशसे	**तीर्थ उदे**	- पवित्र जल (अलकनन्दा)के
बदरि आख्यं	- बदरीनाथ नामक	**स्नान उपस्पर्शनैः**	- स्नान, आचमनसे
मम आश्रमं	- मेरे आश्रममें	**शुचिः**	- पवित्र हो जाओगे ॥ ४१ ॥
गच्छ	- चले जाओ,		

ईक्षयालकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः ।
वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक् सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥

ईक्षया अलकनन्दाया विधूत अशेष कल्मषः वसानः वल्कलानि अंग वन्यभुक् सुख निस्पृहः ॥ ४२ ॥

अंग	- प्रिय उद्धव !	**वल्कलानि**	- वल्कल
अलकनन्दाया	- अलकनन्दाके	**वसानः**	- पहिनकर
ईक्षया	- दर्शनसे ही	**वन्यभुक्**	- वनमें उत्पन्न कंदफलादि खाकर
अशेष कल्मषः	- समस्त पाप	**सुख निस्पृहः**	- सुखेच्छा रहित होजाओ ॥ ४२ ॥
विधूत	- नष्ट हो जायंगे,		

तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः ।
शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ४३ ॥

तितिक्षुः द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयत इन्द्रियः शान्तः समाहित धिया ज्ञान विज्ञान संयुतः ॥ ४३ ॥

द्वन्द्व मात्राणां	- (सर्दी-गर्मी आदि) द्वन्द्व तन्मात्राओंको	**शान्तः**	- शान्त,
तितिक्षुः	- सहन करने वाले,	**समाहितधियाः**	- एकाग्र बुद्धिसे
सुशीलः	- उत्तम चरित वाले,	**ज्ञान-विज्ञान**	- ज्ञान-विज्ञानसे
संयत इन्द्रियः	- इन्द्रिय-संयम युक्त,	**संयुतः**	- युक्त होकर ॥ ४३ ॥

मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् ।
मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव ।
अतिव्रज्य गतीस्तिस्त्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥

मत्तः अनुशिक्षितं यत् ते विविक्तं अनुभावयन् मयि आवेशित वाक् चित्तः मत् धर्म निरतः भव अतिव्रज्य गतीः तिस्रः मां एष्यसि ततः परम् ॥ ४४ ॥

यत् ते - जो तुमने
मत्तः अनुशिक्षितं - मुझसे शिक्षा पायी है
विविक्तं - एकान्तमें
अनुभावयन् - उसकी बार-बार भावना करके
वाक्चित्तः - वाणी और चित्त
मयि आवेशित - मुझमें लगाकर
मत् धर्म - मेरे (भागवत) धर्ममें
निरतः भव - तल्लीन होजाओ (इससे)
तिस्रः गतीः - त्रिगुणोंकी गतियोंको
अतिव्रज्य - पार करके
ततः परं - उनसे परे
मां एष्यसि - मुझमें आजाओगे
॥ ४४ ॥

श्रीशुक उवाच–

स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः
प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ।
शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधी-
र्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥ ४५ ॥

सः एवं उक्तः हरिमेधसः उद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः शिरः निधाय अश्रुकलाभिः आर्द्रधीः न्यषिञ्चत् अद्वन्द्व परः अपि अपक्रमे ॥ ४५ ॥

एवं हरि-मेधसः - इस प्रकार अपने ज्ञानसे भवहारी हरि द्वारा
उक्तः सः - कहे जानेपर
उद्धवः वे उद्धव
अद्वन्द्व - द्वन्द्वातीत हो जानेपर
परः अपि भी
अपक्रमे - जाते समय
तं प्रदक्षिणं - उनकी प्रदक्षिणा
परिसृत्य - करके
पादयोः - चरणोंपर
शिरः निधाय - मस्तक रखकर
आर्द्रधीः - द्रवित चित्त
अश्रुकला - आंसुओंसे (उन्हें)
न्यषिञ्चत् - अच्छी प्रकार भिगा दिया
॥ ४५ ॥

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो
न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ।
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके
बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

सुदुस्त्यज स्नेह वियोग कातरः न शक्नुवन् तं परिहातुं आतुरः कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृ पादुके विभ्रत् नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥

सुदुस्त्यज स्नेह	- जिनका स्नेह त्यागना बहुत कठिन है	**पुनः पुनः**	- बार-बार
वियोग कातरः	- उनके वियोग (की कल्पना) से व्याकुल	**कृच्छ्रं ययौ**	- मूर्छित हुए
तं परिहातुं आतुरः	- उनको छोड़नेमें विह्वल होकर	**मूर्धनिभर्तृ-पादुके**	- फिर सिरपर स्वामीकी पादुकाओंको
शक्नुवन् न	- समर्थ न होनेसे	**निधाय**	- रखकर
		नमस्कृत्य ययौ	- प्रणाम करके गये ॥ ४६ ॥

ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य
गतो महाभागवतो विशालाम् ।
यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना
तपः समास्थाय हरेरगाद् गतिम् ॥ ४७ ॥

ततः तं अन्तः हृदि सं निवेश्य गतः महाभागवतः विशालां यथा उपदिष्टां जगत् एक बन्धुनातपः सम आस्थाय हरेः अगात् गतिम् ॥ ४७ ॥

ततः तं - फिर उनको
अन्तः हृदि - हृदयके भीतर
संनिवेश्य - भली प्रकार प्रविष्ट करके
महाभागवतः - महाभागवत उद्धव जी
विशालां गतः - विशालापुरी (बदरीनाथ) गये
जगत् एक - जगत्के एक मात्र बन्धु
बन्धुना श्रीकृष्णने
यथा उपदिष्टं - जैसा उपदेश किया था
तपः- - वैसे भली प्रकार
समआस्थाय तपस्या करके
हरेः गतिं - श्रीहरिके स्वरूपको
अगात् - प्राप्त होगये ॥ ४८ ॥

य एतदानन्दसमुद्रसम्भृतं
ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ।
कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा
सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद् विमुच्यते ॥ ४८ ॥

यः एतत् आनन्द समुद्र सम्भृतं ज्ञान अमृतं भागवताय भाषितं कृष्णेन योगेश्वर सेवित अंङ्घ्रिणा सत् श्रद्धया आसेव्य जगत् विमुच्यते ॥ ४८ ॥

योगेश्वर सेवित - योगेश्वरों द्वारा सेवित
अङ्घ्रिणा - चरण
श्रीकृष्णेन - श्रीकृष्ण द्वारा
भागवताय - भगवद्भक्त उद्धवको
भाषितं - उपदेश किये गये
एतत् आनन्द - इस आनन्द
समुद्र सम्भृतं - समुद्रसे परिपूर्ण
ज्ञानामृतं - ज्ञान-रूपी अमृतको
यः सत् श्रद्धया - जो उत्तम श्रद्धासे
आसेव्य - सेवन करता है (वह)
जगत् विमुच्यते - संसारसे मुक्त होजाता है ॥ ४९ ॥

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं
निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद् वेदसारम् ।
अमृतमुदधितश्चापायद् भृत्यवर्गान्
पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥

भव भयं अपहन्तुं ज्ञान विज्ञान सारं निगमकृत् उपजह्रे भृङ्गवत् वेद सारं अमृतं उदधितः च अपायत् भृत्य वर्गान् पुरुष ऋषभं आद्ये कृष्ण संज्ञं नतः अस्मि ॥ ४९ ॥

निगमकृत्	- वेदोंके प्रकाशकने	**च उदधितः**	- तथा क्षीरसागरसे
भृङ्गवत्	- भ्रमरके समान	**अमृतं**	- अमृत (निकालकर)
ज्ञान विज्ञान सारं	- ज्ञान-विज्ञानका सार रूप	**भृत्य वर्गान्**	- सेवक वर्गको
वेदसारं	- वेदोंका सारांश	**अपायत्**	- पिलाया
भव भय	- संसारके भयको	**कृष्ण संज्ञं**	- उन श्रीकृष्णनामक
अपहन्तुं	- नाश करनेके लिए	**आद्यं पुरुष-ऋषभं**	- आदि पुरुषोत्तमको
उपजह्रे	- एकत्र किया है	**नतः अस्मि**	- (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

राजोवाच–

ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ।
द्वारवत्यां किमकरोद् भगवान् भूतभावनः ॥ १ ॥

ततः महाभागवत उद्धवे निर्गते वनं द्वारवत्यां किं अकरोत् भगवान् भूतभावनः ॥ १ ॥

ततः-	- तब महाभागवत	**भूत भावनः**	- भूतभावन
महाभागवत		**भगवान्**	- भगवानने
उद्धवे वनं	- उद्धवके वनमें	**द्वारवत्यां**	- द्वारिकापुरीमें
निर्गते	- निकल जानेपर	**किं अकरोत्**	- क्या किया ॥ १ ॥

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ।
प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥

ब्रह्मशाप उपसंसृष्टे स्वकुले यादव ऋषभः प्रेयसीं सर्व नेत्राणां तनुं स कथं अत्यजत् ॥ २ ॥

यादव ऋषभः	- उन यादव श्रेष्ठने	**सर्वनेत्राणां**	- सभीके नेत्रोंके लिए
स्वकुले	- अपने कुलको	**प्रेयसीं तनुं**	- अत्यन्त प्रिय अपना श्री विग्रह
ब्रह्मशाप	- ब्राह्मणोंका शाप		
उपसंसृष्टे	- प्राप्त होनेपर	**स कथं-**	- उन्होंने कैसे त्यागा
		अत्यजत्	॥ २ ॥

प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः
कर्णाविष्टं न सरति ततो यत् सतामात्मलग्नम् ।

यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां
दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥

प्रति आक्रष्टुं नयनं अबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्ण आविष्टं न सरति ततः यत् सतां आत्म लग्नं यत् श्रीः वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णुः युधि रथगतं यत् च तत् साम्यं ईयुः ॥ ३ ॥

यत्र लग्नं - जिस (श्री विग्रह) में लगे
नयनं अबला - नेत्रोंको स्त्रियां
प्रति आक्रष्टुं - वहांसे हटा लेनेमें
शेकुः न - समर्थ नहीं होती थीं,
यत् सतां - जिनका (सुयश) सत्पुरुषोंके
कर्ण आविष्टं - कानमें पहुंचनेपर
आत्म लग्नं - (उनमें) लगा चित्त
ततः वहांसे
न सरति - नहीं हटता,
यत् कवीनां - जो (सुयश) कवियों की
वाचां श्रीः - वाणीकी शोभा
जनयति - उत्पन्न करता है
नु रतिं - भला (उससे अधिक) प्रिय और
मानं किं - सम्मानीय क्या होगा
यत् युधि - जिसे (महाभारत) युद्धमें
जिष्णुः रथगतं - अर्जुनके रथपर बैठा
यत् च दृष्ट्वा - जिसका तो दर्शन ही करके (मरने पर)
तत् साम्यं-ईयुः - उनके समयत्वको पहुंच गये ॥ ३ ॥

ऋषिरुवाच–

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् ।
दृष्ट्वाऽऽसीनान् सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥ ४ ॥

दिवि भुवि अन्तरिक्षे च महा उत्पातान् सम उत्थितान् दृष्ट्वा आसीनान् सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदून् इदम् ॥ ४ ॥

दिवि भुवि - आकाश, पृथ्वी,
च अन्तरिक्षे - तथा अन्तरिक्षमें
महा उत्पातान् - बड़े अपशकुन
समुत्थितान् - होते
दृष्ट्वा कृष्णः - देखकर श्रीकृष्णने
सुधर्मायां-आसीनान् - सुधर्मा सभामें बैठे
यदून् इदं प्राह - यदुवंशियोंसे यह कहा ॥ ४ ॥

एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ।
मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

एते घोरा महाउत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः मुहूर्त्तं अपि न स्थेयं अत्र नः यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

यदुपुङ्गवाः	- यादव श्रेष्ठो !	**द्वारवत्यां**	- द्वारिकापुरीमें (होरहे हैं)
यमकेतवः	- यमराजके झंडेके समान	**अत्र नः**	- यहां हम लोगोंको
एते घोरा	- ये भयानक	**मुहूर्तं अपि**	- एक मुहूर्त भी
महा उत्पाता	- बड़े अपशकुन	**न स्थेयं**	- नहीं ठहरना चाहिए ॥ ५ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजन्त्वितः ।
वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक् सरस्वती ॥ ६ ॥

स्त्रियः बालाः च वृद्धाः च शंखोद्धारं व्रजन्तु इतः वयं प्रभासं यास्यामः यत्र प्रत्यक् सरस्वती ॥ ६ ॥

स्त्रियः-	- स्त्रियां, बालक और	**यास्यामः**	- जायंगे
बालाः च		**यव प्रत्यक्**	- जहां पश्चिम वाहिनी
वृद्धाः च इतः	- वृद्ध भी यहांसे	**सरस्वती**	सरस्वती है ॥ ६ ॥
शंखोद्धारं-	- शंखोद्धार क्षेत्र चले		
व्रजन्तु	जायं,		
वयं प्रभासं	- हम लोग प्रभास क्षेत्र		

तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ।
देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥

---

१. अन्य प्रतियों में यहां ऋषिरुवाच है ।

तत्र अभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः देवताः पूजयिष्यामः स्नपन आलेपन अर्हणैः ॥ ७ ॥

तत्र अभिषिच्य - वहां स्नान करके
शुचयः उपोष्य - पवित्र होकर, उपवास करके
सुसमाहिताः - अत्यन्त एकाग्र चित्तसे
स्नपन आलेपन -स्नान, चन्दनादि
अर्हणैः - पूजा द्रव्योंसे
देवताः - देवताओंका
पूजयिष्यामः - (हम लोग) पूजन करेंगे ॥ ७ ॥

ब्राह्मणांस्तु महाभागान् कृतस्वस्त्ययना वयम् ।
गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणान् तु महाभागान् कृतस्वस्त्ययना वयं गो भू हिरण्य वासोभिः गज अश्व रथ वेश्मभिः ॥ ८ ॥

वयं- - हम लोग स्वस्ति
स्वस्त्ययना कृत पाठ कराके
गो भू हिरण्य - गौ, भूमि, स्वर्ण,
वासः भिः - वस्त्र,
गज अश्व रथ - हाथी, घोड़े, रथ,
वेश्मभिः - एवं घर (दान) द्वारा
महाभागन् - महाभाग्यवान
ब्राह्मणान् - ब्राह्मणोंका (पूजन करेंगे) ॥ ८ ॥

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मंगलायनमुत्तमम् ।
देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥

विधिः एष हि अरिष्टघ्नः मंगल अयनं उत्तमं देव द्विज गवां पूजा भूतेषु परमः भवः ॥ ९ ॥

हि एष विधिः - क्योंकि यह विधान
अरिष्टघ्नः - अमंगल नाशक
मंगलायनमुत्तमम - श्रेष्ठ मंगलोंका निवासहै,
देव द्विज - देवता, ब्राह्मण एवं
गवां पूजा - गायोंका पूजन
भूतेषु परमः - प्राणियोंके लिए परम
भवः अभ्युदयदायी है ॥ ९ ॥

इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ।
तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥

इति सर्वे सम आकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः तथा इति नौभिः उत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥

सर्वे यदुवृद्धा	- सब यादव वृद्ध	**तथा इति**	- 'ठीक है, ऐसा कहकर
इति मधुद्विषः	- इस प्रकार भगवान मधुसूदन (की बात)	**नौभिः उत्तीर्य**	- नौकाओंसे (समुद्र) पार उतरकर
समआकर्ण्य	- ध्यानसे सुनकर	**रथैः प्रभासं प्रययू**	- रथोंपर बैठकर प्रभासको - चल पड़े ॥ १० ॥

तस्मिन् भगवताऽऽदिष्टं यदुदेवेन यादवाः ।
चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥

तस्मिन् भगवता आदिष्टं यदु देवेन यादवाः चक्रुः परमया भक्त्या सर्व श्रेय उपबृंहितम् ॥ ११ ॥

तस्मिन्	- उस क्षेत्रमें	**परमया भक्त्या**	- परम भक्ति सहित
यदुदेवेन	- यादवोंके आराध्यदेव	**यादवाः**	- यदुवंशियोंने
भगवता-आदिष्टं	- भगवानके आदेशसे	**सर्वश्रेय उपबृंहितं चक्रुः**	- सम्पूर्ण मंगल - युक्तकर्म किये ॥ ११ ॥

ततस्तस्मिन् महापानं पपुर्मैरेयकं मधु ।
दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

ततः तस्मिन् महापानं पपुः मैरेयकं मधु दिष्ट विभ्रंशित धियः यत् द्रवैः भ्रश्यते मतिः ॥ १२ ॥

ततः तस्मिन् - फिर उस क्षेत्रमें
दिष्ट- - भाग्यवश बुद्धि भ्रष्ट
विभ्रंशितधियः हो जाने से
यत् द्रवैः - जिस द्रव पदार्थसे
मतिः भ्रश्यते - बुद्धि नष्ट हो जाती है वह
मैरेयकं मधु - महुएसे बनी सुराको
महापानं पपुः - बहुत अधिक पिया ॥ १२ ॥

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ।
कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥

महापान अभिमत्तानां वीराणां दृप्त चेतसां कृष्ण माया विमूढानां सङ्घर्षः सुमहान् अभूत् ॥ १३ ॥

महापान - मदिरापानसे
अभिमत्तानां - उन्मत्त हुए
कृष्णमाया - श्रीकृष्णकी मायासे
विमूढानां - अत्यन्त मोहाच्छन्न
दृप्तचेतसां - उद्धतचित्त
वीराणां - वीरोंमें
सुमहान् - अत्यन्त भारी
सङ्घर्षः अभूत् - लड़ाई हुई ॥ १३ ॥

युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ।
धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥

युयुधुः क्रोध संरब्धा वेलायां आततायिनः धनुर्भिः असिभिः भल्लैः गदाभिः तोमर ऋष्टिभिः ॥ १४ ॥

क्रोध संरब्धा - क्रोधसे अत्यन्त उत्तेजित होकर
वेलायां - समुद्र किनारे
आततायिनः - वे (परस्पर) आक्रमणकारी
धनुर्भिः असिभिः - धनुष, तलवार,
भल्लैः गदाभिः - भाले, गदा,
तोमर ऋष्टिभिः - तोमर तथा ऋष्टिसे
युयुधुः - युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः
खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि ।
मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा
न्यहञ्छरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥

पतत् पताकै रथ कुञ्जर आदिभिः खर उष्ट्र गोभिः महिषैः नरैः अपि मिथः सम एत्य अश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन् शरैः दत्भिः इव द्विपा वने ॥ १५ ॥

पतत् पताकैः	- (उनके) झंडे उड़ रहे थे,	सुदुर्मदा	- अत्यन्त घमण्डमें भरे
रथ कुञ्जर	- रथ, हाथी	वने दत्भिः	- वनमें दांतोंसे
आदिभिः	- आदि द्वारा या	द्विपा इव	- हाथियोंके समान
खर उष्ट्रगोभिः	- गधे, ऊंट, बैल,	मिथः सम एत्य	- परस्पर समीप आकर
अश्वतरैः	- खच्चरों	शरैः न्यहन्	- वाणोंसे मारने लगे
महिषैः नरैः	- भैंसे, मनुष्योंपर भी		॥ १५ ॥
अपि	(चढ़कर)		

प्रद्युम्नसाम्बौ युधिरूढमत्सरा-
वक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ।
सुभद्रसङ्ग्रामजितौ सुदारुणौ
गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

प्रद्युम्न साम्बौ युधिरूढ़ मत्सरौ अक्रूर भोजाः अनिरुद्ध सात्यकी सुभद्र सङ्ग्राम जितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रः सुरथौ समीयतुः ॥ १६ ॥

युधिरूढ़ मत्सरौ	- युद्धमें मात्सर्य मग्न होकर	**सुभद्र सङ्ग्रामजितौ**	- सुभद्र संग्रामजित्से
सुदारुणौ	- अत्यन्त भयानक योधा	**गदौ**	- (श्रीकृष्णके भाई) गद (उसीनामके उनके पुत्र)
प्रद्युम्न साम्बौ	- प्रद्युम्न साम्बसे,		गदसे
अक्रूर भोजाः	- अक्रूर भोजसे,	**सुमित्रः सुरथौ**	- सुमित्र सुरथसे
अनिरुद्ध सात्यकी	- अनिरुद्ध सात्यकिसे	**समईयतुः**	- भिड़ गये ॥ १६ ॥

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः
सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ।
अन्योन्यमासाद्य मदान्धकारिता
जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥

अन्ये च ये वै निशठ उल्मुक आदयः सहस्रजित् शतजित् भानु मुख्याः अन्यः अन्यं आसाद्य मदान्धकारिता जघ्नुः मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥ १७ ॥

च ये अन्ये	- तथा जो दूसरे भी	**मदान्धकारिता**	- मदान्ध होकर
निशठ उल्मुक	- निशठ, उल्मुक,	**वै मुकुन्देन**	- निश्चय मुकुन्द द्वारा
सहस्रजित्	- सहस्रजित्	**विमोहिता**	अत्यन्त मोहित होकर
शतजित् भानु	- शतजित् भानु	**अन्यः अन्यं**	- एक दूसरेके समीप
आदयः मुख्याः	- आदि प्रमुख थे,	**आसाद्य**	पहुंचकर
		भृशं जघ्नुः	- बार-बार प्रहार करने लगे ॥ १७ ॥

दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता
मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ।
विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च
मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥

दाशार्ह वृष्णि अन्धक भोज सात्वता मधु अर्बुदा माथुर शूरसेनाः विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयः च मिथः ततः ते अथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥

दाशार्ह वृष्णि - दाशार्ह, वृष्णि,	कुकुराः च - कुकुर तथा
अन्धक भोज - अन्धक, भोज,	कुन्तयः - कुन्ति आदि वंशके लोग
सात्वता मधु - सात्वत, मधु,	ततः ते मिथः - वहां वे परस्पर (रहते थे)
अर्बुदा माथुर - अर्बुद, माथुर,	अथ सौहृदं - अब सौहार्द्र
शूरसेनाः- - शूरसेन, विसर्जन,	विसृज्य - त्यागकर (लड़ने लगे)
विसर्जनाः	॥ १८ ॥

पुत्रा अयुध्यन् पितृभिर्भ्रातृभिश्च
स्वस्त्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ।
मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भि-
र्ज्ञातींस्त्वहञ्ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥

पुत्रा अयुध्यन् पितृभिः भ्रातृभिः च स्वस्त्रीय दौहित्र पितृव्य मातुलैः मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिः ज्ञातीन् तु अहन् ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥

पुत्रा पितृभिः - पुत्र पितासे	मित्राणि मित्रैः - मित्र मित्रोंसे,
च भ्रातृभिः - तथा भाइयोंसे,	सुहृदः सुहृद्भिः - सम्बन्धी सम्बन्धियोंसे
स्वस्त्रीय दौहित्र - भानजेसे, नातीसे,	अयुध्यन् - युद्ध करने लगे,
पितृव्य मातुलैः - चाचासे, मामासे,	मूढाः ज्ञातय - मूर्खतावश जाति वाले
	एव तु ही तो
	ज्ञातीन अहन् - जातिवालोंको मारते थे
	॥ १९ ॥

शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ।
शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्नुरेरकाः ॥ २० ॥

शरेषु क्षीय माणेषु भज्यमानेषु धन्वसु शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिः जह्रुः एरकाः ॥ २० ॥

शरेषु क्षीयमाणेषु- वाणोंके घट जानेपर
धन्वसु भज्य - धनुषोंके टूट जानेपर
शस्त्रेषु क्षीय- - शस्त्रोंके समाप्त
माणेषु होजानेपर
मुष्टिभिः - मुट्ठियोंसे
एरकाः आजह्रुः - एरका घास उखाड़ने लगे ॥ २० ॥

ता वज्रकल्पा ह्यभवन् परिघा मुष्टिना भृताः ।
जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥

ता वज्रकल्पा हि अभवन् परिघा मुष्टिना भृताः जघ्नुः द्विषः तैः कृष्णेन वार्यमाणाः तु तं च ते ॥ २१ ॥

मुष्टिना भृताः - मुट्ठीमें भरी हुई
हि ता - क्योंकि वह (एरका घास)
वज्रकल्पा परिघा - वज्रके समान डण्डा
अभवन् - होगयी,
तैः द्विषः- - उससे शत्रुको मारने
जघ्नुः लगे
कृष्णेन - श्रीकृष्णके मना करनेपर
वार्यमाणाः
ते तं च - वे उन्हें भी (मारने लगे) ॥ २१ ॥

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ।
हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः हन्तुं कृतधियः राजन् आपन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥

मोहिताः - मोंह ग्रस्त होनेसे
बलभद्रं च - बलरामजीको भी
प्रत्यनीकं - विपक्षी
मन्यमाना - मानकर
हन्तुं कृतधियः - मार देनेका निश्चय करके
आततायिनः - वे आततायी
आपन्ना - (उनपर) टूट पड़े ॥ २२ ॥

अथ तावपि सङ्क्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन ।
एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥ २३ ॥

अथ ताः अपि संक्रुद्धाः उद्यम्य कुरुनन्दन एकरका मुष्टि परिधौ चरन्तौ जघ्नतुः युधि ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन	- परीक्षित !	**एरका मुष्टि**	- एरका घासकी मुट्ठी रूपी
अथताः	- फिरवे दोनों भाई	**परिधौ उद्यम्य**	- डण्डे उठाकर
अपि संक्रुद्धाः	- भी कुपित होकर	**युधि चरन्तौ**	- युद्ध करते हुए
		जघ्नतुः	- मारने लगे ॥ २३ ॥

ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ।
स्पर्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मशाप उपसृष्टानां कृष्णमाया आवृत आत्मनां स्पर्धा क्रोधः क्षयं निन्ये वैणवः अग्निः यथा वनम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मशाप	- ब्राह्मणोंका शाप	**यथा वैणवः**	- जैसे बांसोंकी रगड़से
उपसृष्टानां	- जिनके समीप आ गया था,	**अग्निः**	उत्पन्न अग्नि
कृष्णमाया	- श्रीकृष्णकी मायासे	**वनं**	- वनको (जला दे)
आवृत आत्मनां	- ७ की बुद्धि वाले (यादवों) का	**स्पर्धा क्रोधः**	- स्पर्धा और क्रोध ने
		क्षयं निन्ये	- विनाश कर दिया ॥ २४ ॥

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ।
अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥ २५ ॥

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः अवतारितः भुवः भार इति मेने अवशेषितः ॥ २५ ॥

एवं स्वेषु - इस प्रकार अपने
सर्वेषु कुलेषु - सम्पूर्ण कुलके
नष्टेषु केशवः - नष्ट होजानेपर केशवने
अवशेषितः - बचा हुआ
भुवः भार - पृथ्वीका भार
अवतारितः - उतार दिया
इति मेने - ऐसा माना ॥ २५ ॥

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् ।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ २६ ॥

रामः समुद्रवेलायां योगं आस्थाय पौरुषं तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्य आत्मानं आत्मनि ॥ २६ ॥

रामः समुद्र-वेलायां - बलरामजीने समुद्र किनारे
पौरुषं योगं - परमात्मासे एकत्वका
आस्थाय - आश्रय लेकर
आत्मानं आत्मनि - अपनेको आत्मामें
संयोज्य - मिलाकर
मानुष्यं लोकं - मनुष्य लोक
तत्याज - त्याग दिया ॥ २६ ॥

रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ।
निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥

राम निर्याणं आलोक्य भगवान् देवकी सुतः निषसाद धरा उपस्थे तूष्णीं आसाद्य पिप्पलम् ॥ २७ ॥

राम निर्याणं - बलरामजीका परमपद गमन
आलोक्य - देखकर
भगवान् - भगवान
देवकी सुतः - देवकी-नन्दन
पिप्पलं आसाद्य - पीपलके वृक्षके नीचे पहुँचकर
धरा उपस्थे - पृथ्वीके ऊपर
तूष्णीं निषसाद - मौन होकर बैठ गये ॥ २७ ॥

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ।
दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

विभ्रत् चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया दिशः वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥

चतुर्भुजं रूपं - चतुर्भुज रूप
विभ्रत् - धारण किये
विधूम- - धूम्र हीन अग्निके
पावकः इव समान
भ्राजिष्णु - प्रकाशमय
स्वया प्रभया - अपनी कान्तिसे
दिशः वितिमिराः - दिशाओंको अन्धकारहीन
कुर्वन् - कर रहे थे ॥ २८ ॥

श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ।
कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥

श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसं कौशेय अम्बर युग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥ २९ ॥

श्रीवत्स अंकं - श्रीवत्स चिह्न युक्त,
घनश्यामं - मेघके समान श्यामवर्ण,
सुमंगलं - अत्यन्त मंगलमय
तप्त हाटक - तपाये स्वर्णके समान
वर्चसं - कान्तिवाले
युग्मेन कौशेय अम्बर - दो रेशमी वस्त्र
परिवीतं - पहिने हुए ॥ २९ ॥

सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ।
पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥

सुन्दर स्मित वक्त्र अब्जं नील कुन्तल मण्डितं पुण्डरीक अभिराम अक्षं स्फुरन् मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥

नील कुन्तल - काली अलकोंसे
मण्डितं - अलंकृत
सुन्दर स्मित - सुन्दर मुस्कान युक्त
वक्त्र अब्जं - कमलमुख,
पुण्डरीक - कमलके समान
अभिराम अक्षं - मनोरम नेत्र
स्फुरन्- - चमकते मकराकृति
मकर कुण्डलं कुण्डल ॥ ३० ॥

कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ।
हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥

कटिसूत्र ब्रह्मसूत्र किरीट कटक अंगदैः हार नूपुर मुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥

कटिसूत्र	- करधनी,	**हार, नूपुर**	- हार, नूपुर
ब्रह्मसूत्र	- यज्ञोपवीत,	**मुद्राभिः**	- अंगूठियों तथा
किरीट कटक	- मुकुट, कंकण,	**कौस्तुभेन**	- कौस्तुभ मणि द्वारा
अंगदैः	- अंगद,	**विराजितं**	- अत्यन्त सुशोभित ॥ ३१ ॥

वनमालापरीतांग मूर्तिमद्भिःर्निजायुधैः ।
कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥ ३२ ॥

वनमाला परीत अंग मूर्तिमद्भिः निज आयुधैः कृत्वा उरौ दक्षिणे पादं आसीन् पंकज अरुणम् ॥ ३२ ॥

वनमाला	- वनमालासे युक्त	**दक्षिणे उरौ**	- दाहिनी जंघापर
अंग	- श्रीअंग	**पंकज अरुणं**	- कमलके समान लाल
मूर्तिमद्भिः	- मूर्तिमान	**पादं कृत्वा**	- (वाम) चरण रखकर
निजआयुधैः	- अपने आयुधोंसे	**आसीनं**	- बैठे हुए थे ॥ ३२ ॥
परीत	- घिरे हुए		

मुसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा ।
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥ ३३ ॥

मुसल अवशेष अयः खण्ड कृत इषुः लुब्धकः जरा मृगस्य आकारं तत् चरणं विव्याध मृग शंकया ॥ ३३ ॥

मुसल अवशेष - मूसलसे बचा भाग
अयः खण्ड- - लोहेका टुकड़ा बाण
इषुःकृत (की नोक) बनाने वाले
लुब्धकः जरा - व्याध जराने
तत् मृगस्य - उसके मृग (मुख)
आकारं - के आकार वाले
चरणं - चरणको
मृग शंकया - मृग समझकर
विव्याध - बींध दिया ॥ ३३ ॥

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ।
भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ ३४ ॥

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृत किल्बिषः भीतः पपात शिरसा पादयोः असुर द्विषः ॥ ३४ ॥

तं पुरुषं - उसे पुरुष और
चतुर्भुजं दृष्ट्वा - चतुर्भुज देखकर
स कृत किल्बिषः - वह अपराध करने वाला
भीतः असुर - डरकर उन असुर
द्विषः द्वेषीके
पादयोः शिरसा - चरणोंपर सिर रखकर
पपात - गिर पड़ा ॥ ३४ ॥

अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ।
क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥ ३५ ॥

अजानता कृतं इदं पापेन मधुसूदन क्षन्तुं अर्हसि पापस्य उत्तम श्लोक मे अनघ ॥ ३५ ॥

मधुसूदन - मधुसूदन !
अनघ - निष्पाप
उत्तमश्लोक - पुण्यकीर्ति !
मे पापेन - मुझ पापीने
अजानता - अनजानमें
इदं कृतं - यह किया है
पापस्य - इस पापीको (आपको)
क्षन्तुं अर्हसि - क्षमा कर देना चाहिए ॥ ३५ ॥

यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् ।
वदन्ति तस्य ते विष्णो मयासाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥

यस्य अनुस्मरणं नृणां अज्ञान ध्वान्त नाशनं वदन्ति तस्य ते विष्णो मया असाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥

विष्णो प्रभो	- सर्वव्यापक स्वामी !	**नाशनं वदन्ति**	- नाशक (महात्मा लोग) कहते हैं
यस्य अनुस्मरणं	- जिनका बराबर स्मरण	**तस्य ते मया**	- उस आपका मैंने
नृणां अज्ञान-ध्वान्त	- मनुष्योंके अज्ञानान्धकारका	**असाधु कृतं**	- अनिष्ट कर दिया ॥ ३६ ॥

तन्माऽऽशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ।
यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

तत् मा आशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृग लुब्धकं यथा पुनः अहं तु एवं न कुर्यां सत् अतिक्रमम् ॥ ३७ ॥

वैकुण्ठ	- वैकुण्ठनाथ !	**यथा अहं पुनः**	- जिससे मैं फिर
तत् मा	- अतः मुझ	**एवं तु**	- इस प्रकार तो
मृग लुब्धकं	- मृगोंको मारने वाले	**सत् अतिक्रमं**	- महापुरुषोंका अपराध
पाप्मानं	- पापीको		
आशु जहि	- शीघ्र मार दीजिये	**न कुर्यां**	- नहीं कर सकूं ॥ ३७ ॥

यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो
रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ।
त्वन्माययापिहितदृष्टय एतदञ्जः
किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥ ३८ ॥

यस्य आत्मयोग रचितं न विदुः विरिञ्चः रुद्र आदयः अस्य तनयाः पतयः गिरां ये त्वत् मायया पिहित दृष्टय एतत् अञ्जः किं तस्य ते वयं असत् गतयः गृणीमः ॥ ३८ ॥

यस्य आत्म - जिनकी अपनी
योग रचितं - योगमायाका विलास
त्वत् मायया- - आपकी मायासे
पिहित आच्छादित
दृष्टय ये - दृष्टि जो
गिरां पतयः - विद्याओंके स्वामी
एतत् विरिञ्चः - ये ब्रह्माजी और
अस्य तनयाः - इनके पुत्र
रुद्र आदयः - रुद्र आदि
अञ्जः न विदुः - सरलतासे नहीं जानपाते
तस्य ते वयं - उस आपकी हम
असत् गतयः - पापयोनिके लोग
किं गृणीमः - क्या स्तुति कर सकते हैं ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच–

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥

मा भैः जरे त्वं उत्तिष्ठ काम एष कृतः हि मे याहि त्वं मत् अनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥

जरे त्वं मा भैः - जरा ! तुम डरो मत,
उत्तिष्ठ - उठो !
हि एष मे - क्योंकि यह मेरा
कामकृतः - चाहा हुआ (तुमने) किया है (अतः)
मत् अनुज्ञातः - मेरी आज्ञासे
सुकृतिनां पदं - पुण्यात्माओंके स्थान
त्वं याहि - तुम जाओ ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच–१

इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ।
त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥

इति आदिष्टः भगवता कृष्णेन इच्छा शरीरिणा त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥

---

१. यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

इच्छा शरीरिणा - स्वेच्छानुसार शरीर धारी
भगवता कृष्णेन - भगवान श्रीकृष्णके
इति आदिष्टः - ऐसा आदेश देनेपर
तंत्रिः परिक्रम्य - उनकी तीन बार परिक्रमा करके
नत्वा विमानेन - नमस्कार करके विमानमें चढ़कर
दिवं ययौ - स्वर्ग चला गया ॥ ४० ॥

दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ।
वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥

दारुकः कृष्ण पदवीं अन्विच्छन् न अधिगम्य तां वायुं तुलसिका आमोदं आघ्राय अधिमुखं ययौ ॥ ४१ ॥

दारुकः - दारुक
न अधिगम्य - (उन्हें) न पाकर
कृष्ण पदवीं - श्रीकृष्णका स्थान
अन्विच्छन् - अन्वेषण करता हुआ
तां तुलसिका - उस तुलसीकी
आमोदं वायुं - सुगन्धिवाली वायुको
आघ्राय - सूंघकर
अभिमुखं ययौ - उसके सामने गया ॥ ४१ ॥

तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं
ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ।
स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो
रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥ ४२ ॥

तं तत्र तिग्मद्युतभिः आयुधैः वृतं हि अश्वत्थ मूले कृत केतनं पतिं स्नेह प्लुतआत्मा निपपात पादयो रथात् अवप्लुत्य स वाष्प लोचनः ॥ ४२ ॥

तत्र अश्वत्थमूले - वहां पीपलकी जड़के पास
कृत केतनं - आवास बनाये (बैठे)
तिग्मद्युभिः - तीक्ष्ण कान्ति वाले
आयुधैः वृतं - आयुधोंसे घिरे
तं पतिं - उन अपने स्वामीके
पादयो - चरणोंपर
हि स्नेह - क्योंकि स्नेहमें चित्त
प्लुत आत्मा निमग्न था
बाष्प लोचनः - अश्रु भरे नेत्र
स रथात् - वह रथसे
अवप्लुत्य - कूदकर
निपपात - गिर पड़ा ॥ ४२ ॥

अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो
दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा ।
दिशो न जाने न लभे च शान्तिं
यथा निशायामुडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥

अपश्यतः त्वत् चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रणष्टा तमसि प्रविष्टा दिशः न जाने न लभे च शान्तिं यथा निशायां उडुपे प्रणष्टे ॥ ४३ ॥

प्रभो - (बोला) स्वामी !
यथा निशायां - जैसे रात्रिमें
उडुपे प्रणष्टे - चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर (यात्रीकी दशा होती है)
त्वत् चरणाम्बुजं - आपके चरण कमलोंको
अपश्यतः - न देखकर (मेरी)
दृष्टिः प्रणष्टा - दृष्टि नष्ट होगयी,
तमसि प्रविष्टा - अन्धकारमें चली गयी,
दिशः न जाने - दिशाओंको नहीं जानता हूं
शान्तिं च न लभे - शान्ति भी नहीं पाता हूँ ॥ ४३ ॥

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः ।
खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

इति ब्रुवति सूते वै रथः गरुड लाञ्छनः खं उत्पपात राजेन्द्र स अश्व ध्वज उदीक्षतः ॥ ४४ ॥

राजेन्द्र	- महाराज !	**गरुड लाञ्छनः**	- गरुड़ चिह्न युक्त
इति सूते ब्रुवति	- इस प्रकार सारथीके कहते समय	**ध्वज**	ध्वजा वाला
वै उदीक्षतः	- उसके निश्चित रूपसे देखते हुए	**रथ स अश्व**	- रथ घोड़ोंके साथ
		खं उत्पपात	- आकाशमें उड़ गया ॥ ४४ ॥

तमन्वगच्छन् दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ।
तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥

तं अनुअगच्छन् दिव्यानि विष्णु प्रहरणानि च तेन अति विस्मित आत्मानं सूतं आह जनार्दनः ॥ ४५ ॥

दिव्यानि	- दिव्य	**तेन अति-**	- उससे अत्यन्त चकित
विष्णु-	- भगवान विष्णुके	**विस्मित**	
प्रहरणानि च	आयुध भी	**आत्मानं सूतं**	- चित्त सारथीसे
तं अनुअगच्छन्	- उस (रथ) के पीछे चले गये	**जनार्दनः आह**	- जनार्दनने कहा ॥ ४५ ॥

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ।
संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यः ब्रूहि मत् दशाम् ॥ ४६ ॥

सूत	- 'सारथी !	**संकर्षणस्य**	- बलरामजीका
द्वारवतीं गच्छ	- द्वारिका जाओ ! (वहां)	**निर्याणं**	- परमपद गमन और
बन्धुभ्यः	- सम्बन्धियोंसे	**मत् दशां ब्रूहि**	- मेरी दशा बतलाओ ॥ ४६ ॥
ज्ञातीनां मिथः	- जाति वालोंका परस्पर		
निधनं	- मारा जाना		

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबन्धुभिः ।
मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः च स्व बन्धुभिः मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥

स्व बन्धुभिः	- अपने सम्बन्धियों सहित	**मया त्यक्तां**	- मेरी छोड़ी
भवद्भिः च	- तुम लोगोंको भी	**यदुपुरीं**	- यादवपुरीको
द्वारकायां	- द्वारिकापुरीमें	**समुद्रः-**	- समुद्र डुबा देगा
न च स्थेयं	- नहीं ही ठहरना चाहिए	**प्लावयिष्यति**	॥ ४७ ॥

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ।
अर्जुनेनाविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः अर्जुनेन अविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥ ४८ ॥

स्वं स्वं परिग्रहं	- अपना अपना परिवार	**अर्जुनेन अविताः**	- अर्जुन द्वारा रक्षित होकर
च नः पितरौ	- तथा हमारे माता-पिताको	**सर्व इन्द्रप्रस्थं**	- सब इन्द्रप्रस्थ
आदाय सर्वे	- लेकर सब लोग	**गमिष्यथ**	- चले जाना ॥ ४८ ॥

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ।
मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

त्वं तु मत् धर्मं आस्थाय ज्ञान निष्ठ उपेक्षकः मत् माया रचनां एतां विज्ञाय उपशमं व्रज ॥ ४९ ॥

त्वं तु	- तुम तो	**एतां**	- इस संसारको
मत् धर्मं	- मेरे (भागवत) धर्मपर	**मत् माया**	- मेरी मायाकी
आस्थाय	- स्थित होकर	**रचनां विज्ञाय**	- सृष्टि जानकर
उपेक्षकः	- (सबकी) उपेक्षा करके	**उपशमं व्रज**	- शान्त हो जाओ
ज्ञान निष्ठ	- ज्ञान निष्ठासे		॥ ४९ ॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥

इति उक्तः तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः तत् पादौ शीर्ष्ण्य उपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥ ५० ॥

इति उक्तः	- ऐसा कहे जानेपर	**तत् पादौ**	- उनके चरणोंपर
तं परिक्रम्य	- उनकी परिक्रमा करके	**शीर्ष्ण्य उपाधाय**	- मस्तक रखकर
पुनः पुनः	- बार-बार	**दुर्मनाः**	- दुःखी चित्त
नमस्कृत्य	- प्रणाम करके	**पुरीं प्रययौ**	- द्वारिकापुरीको चल पड़ा
			॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच–

अथ तत्रागमद् ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ।
महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥

अथ तत्र अगमत् ब्रह्मा भवान्या च समं भवः महेन्द्र प्रमुखा देवा मुनयः स प्रजेश्वराः ॥ १ ॥

अथ तत्र ब्रह्मा - फिर वहां ब्रह्माजी
च भवान्या समं - तथा पार्वतीके साथ
भवः - शंकरजी
महेन्द्र प्रमुखा- - इन्द्र जिनमें मुख्य हैं
देवा वे देवता
सप्रजेश्वराः - प्रजापतियोंके साथ
मुनयः अगमत् - मुनिगण आये ॥ १ ॥

पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
चारणाः यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥

पितरः सिद्ध गन्धर्वा विद्याधर महा उरगाः चारणाः यक्ष रक्षांसि किन्नर अप्सरसः द्विजाः ॥ २ ॥

पितरः सिद्ध - पितृगण, सिद्धगण,
गन्धर्वा - गन्धर्व,
विद्याधर - विद्याधर,
महा उरगाः - बड़े-बड़े नाग,
चारणाः यक्ष - चारण, यक्ष,
रक्षांसि किन्नर - राक्षस, किन्नर,
अप्सरसः द्विजाः - अप्सरायें, ब्राह्मण ॥ २ ॥

द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ।
गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥

द्रष्टुकामा भगवतः निर्याणं परम उत्सुकाः गायन्तः च गृणन्त च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥ ३ ॥

परम उत्सुकाः - अत्यन्त उत्सुक होकर
भगवतः निर्याणं - भगवानके परमपद गमनको
द्रष्टुकामा - देखनेकी इच्छासे (आये)
शौरेः जन्म - श्रीकृष्णके अवतार
च कर्म च - तथा कर्मोंको भी
गायन्तः च - गाते हुए एवं
गृणन्तः च - वर्णन करते हुए (आये) ॥ ३ ॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ।
कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥

ववृषुः पुष्प वर्षाणि विमान अवलिभिः नभः कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥

राजन् - राजन्
विमान-अवलिभिः - विमानोंके झुण्डोंसे
नभः संकुलं - आकाशको भीड़ भरा
कुर्वन्त - करते हुए
परमया भक्त्या - परम भक्ति
युतः पुष्पवर्षाणि - युक्त पुष्पोंकी वर्षा
ववृषुः - करने लगे ॥ ४ ॥

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ।
संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीः आत्मनः विभुः संयोज्य आत्मनि च आत्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

विभुः भगवान् - सर्व व्यापक भगवानने
पितामहं - ब्रह्माजी एवं
आत्मनः - अपनी विभूतियों
विभूतीः (देवताओं) के
वीक्ष्य आत्मनः - देखकर अपनेको
आत्मानं संयोज्य - आत्म स्वरूपमें मिलाकर
पद्मनेत्रे - कमललोचन
न्यमीलयत् - बन्द कर लिये ॥ ५ ॥

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥ ६ ॥

लोक अभिरामां स्वतनुं धारणा ध्यान मंगलं योगधारणया आग्नेय्या अदग्ध्वा धाम आविशत् स्वकम् ॥ ६ ॥

लोक अभिरामां - त्रिभुवन सुन्दर
धारणा ध्यान - धारणा और ध्यानका
मंगलं - मंगलमय आधार
स्वतनुं - अपने श्री विग्रहको
योग आग्नेय्या - योगकी आग्नेयी
धारणया - धारणासे
अदग्ध्वा - बिना जलाये ही
स्वकं धाम - अपने धाममें
आविशत् - प्रविष्ट होगये ॥ ६ ॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ।
सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥

दिवि दुन्दुभयः नेदुः पेतुः सुमनसः च खात् सत्यं धर्मः धृतिः भूमेः कीर्तिः श्रीः च अनुतं ययुः ॥ ७ ॥

दुन्दुभयो - दुन्दुभियां
दिविः - स्वर्गमें बजने लगीं
च खात् - तथा आकाशसे
सुमनसः पेतुः - पुष्पवर्षा होने लगी,
भूमेः सत्यं - पृथ्वीसे सत्य,
धर्मः धृतिः - धर्म, धृति,
कीर्तिः च श्रीः - कीर्ति एवं लक्ष्मी
तं अनु ययुः - उनके पीछे चली गयीं ॥ ७ ॥

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥

देव आदयः ब्रह्म मुख्या न विशन्तं स्व धामनि अविज्ञात गतिं कृष्णं ददृशुः च अति विस्मिताः ॥ ८ ॥

अविज्ञात गतिं - जिनकी गति जानी नहीं जाती
कृष्णं स्वधामनि - उन श्रीकृष्णके अपने धाममें
विशन्तं - प्रवेश करते हुए
देव आदयः - देवता आदि
ब्रह्ममुख्या - जिनमें ब्रह्माजी प्रमुख थे
ददृशुः च न - देख भी नहीं सके
अति विस्मिताः - (इससे) अत्यन्त चकित हुए ॥ ८ ॥

सौदामन्या यथाऽऽकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

सौदामन्या यथा आकाशे यान्त्या हित्वा अभ्र मंडलम् गतिः न लक्ष्यते मर्त्यैः तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

यथा अभ्रमण्डलं	- जैसे मेघ मण्डलको	**गतिः मर्त्यैः**	- गति मनुष्यों द्वारा
हित्वा आकाशे	- त्यागकर आकाशमें	**लक्ष्यते न**	- पहिचानी नहीं जाती
यान्त्या सौदामन्या	- जाती बिजलीकी	**तथा दैवतैः**	- उसी प्रकार देवताओं द्वारा
		कृष्णस्य	- श्रीकृष्णकी (गति जानी नहीं गयी) ॥ ९ ॥

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ।
विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥

ब्रह्म रुद्र आदयः ते तु दृष्ट्वा योग गतिं हरेः विस्मिताः तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुः तदा ॥ १० ॥

ते ब्रह्म रुद्र	- वे ब्रह्मा शिव	**तां प्रशंसन्तः**	- उसकी प्रशंसा करते हुए
आदयः तु	- आदि तो	**तदा स्वं स्वं**	- आनन्दपूर्वक अपने अपने
हरेः योगगतिं	- श्री हरिकी योगशक्ति	**लोकं ययुः**	- लोक चले गये ॥ १० ॥
दृष्ट्वा विस्मिताः	- देखकर चकित होकर		

राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा
मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्ट्वाऽऽत्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते
संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

राजन् परस्य तनु भृत् जनन अपि ईहा माया विडम्बनं अवेहि यथा नटस्य सृष्ट्वा आत्मना इदं अनु विश्य विहृत्य च अन्ते संहृत्य च आत्म महिमा उपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

राजन्	- राजन् !	**आत्मना इदं**	- अपने आपसे इस
परस्य तनुभृत्	- परम पुरुषका शरीर धारी होकर		जगतकी
		सृष्ट्वा अनु-	- सृष्टि करके (इसमें) फिर
जनन	- उत्पन्न होनेकी	**विश्य**	प्रवेश करके
ईहा अपि	- लीला भी	**विहृत्य च**	- खेलकर भी
यथा नटस्य	- जैसे नटकी होती है	**अन्ते संहृत्य**	- अन्तमें संहार करके
माया विडम्बनं	- मायाका खेल	**आत्म महिमा**	- अपनी महिमामें
अवेहि	- समझो,	**स उपरतः**	- वे उपराम होकर
		आस्ते	- स्थित हो जाते हैं ॥११॥

मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं
त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ।
जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः
किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥

मर्त्येन यः गुरु सुतं यमलोक नीतं त्वां च आनयत् शरणदः परम अस्त्र दग्धं जिग्ये अन्तकान्तकम् अपि ईशं असाः अवनीशः किं स्व अवने स्वः अनयन् मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥

यः शरणदः	- जो शरणदाता
गुरु सुतं	- गुरु-पुत्रको
मर्त्येन	- मनुष्य शरीरसे
यमलोक नीतं	- यमलोकसे ले आये,
परम अस्त्र-	- सर्वश्रेष्ठ अस्त्र
दग्धं	(ब्रह्मास्त्र) से जले
त्वां च-	- तुम्हें भी ले आये
अनयत्	(बचाया)
अनन्तकं अपि	- महाकाल
ईशं असाः	- शिवको भी इन
अवनि ईशः	- भूदेवीके स्वामीने
जिग्ये	- (युद्धमें) जीत लिया,
किं	- और क्या कहें,
स्व अवने	- अपनेपर प्रहार करने वाले
मृगयुं सदेहं	- व्याधको सशरीर
स्वः अनयन्	- स्वर्ग भेज दिया ॥१२॥

तथाप्यशेषस्थितिसम्भवाप्यये-
ष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ।
नैच्छत् प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं
मर्तेयन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

तथा अपि अशेष स्थिति सम्भव अप्ययेषु अनन्य हेतुः यत् अशेष शक्तिं धृक् न इच्छत् प्रणेतुं वपुः अत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थ गतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

यत् अशेष	- क्योंकि समस्त
शक्ति धृक्	- शक्तियोंके धारणकर्ता हैं
अशेष	- सम्पूर्ण जगत्की
स्थिति सम्भव	- स्थिति, सृष्टि,
अप्ययेषु	- प्रलयके
अनन्यहेतुः	- एकमात्र कारण हैं
तथा अपि	- ऐसा होनेपर भी
अत्र वपुः	- इस लोकमें शरीरको
शेषितं	- बचा रखना
न इच्छत्	- नहीं चाहा
मर्त्येन	- मनुष्य शरीरकी
स्वस्थ गतिं	- (सदा) स्वस्थ दशा (में यहां बनाये रखना)
प्रदर्शयन् किं	- दिखलानेसे क्या लाभ ॥ १३ ॥

विशेष - अतः भगवान सशरीर अपने धाम पधारे ।

यः एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ।
प्रयतः कीर्तयेद् भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥

यः एतां प्रातः उत्थाय कृष्णस्य पदवीं परां प्रयतः कीर्तयेत् भक्त्या तां एव आप्नोति अनुत्तमाम् ॥ १४ ॥

यः प्रातः- उत्थाय - जो प्रातः काल उठकर	भक्त्या प्रयतः- भक्ति सहित एकाग्र होकर
एतां कृष्णस्य - इस श्रीकृष्णके	कीर्तयेत् - कीर्तन करेगा
परां पदवीं - परमपद गमनको	तां अनुत्तमां - उस सर्वोत्तम पदको
	एव आप्नोति - ही पावेगा ॥ १४ ॥

दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ।
पतित्वा चरणावस्त्रैर्न्यषिञ्चत् कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥

दारुकः द्वारकां एत्य वसुदेव उग्रसेनयोः पतित्वा चरणौ अस्त्रैः न्यषिञ्चत् कृष्णविच्युतः ॥ १५ ॥

कृष्ण विच्युतः - श्रीकृष्णसे वियुक्त	उग्रसेनयोः - उग्रसेनके
दारुकः - दारुकने	चरणौः पतित्वा - चरणोंपर गिरकर
द्वारकां एत्य - द्वारिका आकर	अस्त्रैः- - उन्हें आंसुओंसे भिगा
वसुदेव - वसुदेव एवं	न्यषिञ्चत् दिया ॥ १५ ॥

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ।
तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशः नृप तत् श्रुत्वा उद्विग्न हृदया जनाः शोक विमूर्च्छिताः ॥ १६ ॥

कृत्स्नशः वृष्णीनां	- समस्त यदुवंशियोंका	उद्विग्न हृदया	- व्याकुल चित्त
निधनं	- मारा जाना बतलाया	जनाः शोक	- लोग शोकसे
कथयामास		विमूर्च्छिताः	- मूर्छित होगये ॥ १६ ॥
तत् श्रुत्वा	- उसे सुनकर		

तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः ।
व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥

तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्ण विश्लेष विह्वलाः व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयः घ्नन्त आननम् ॥ १७ ॥

कृष्ण विश्लेष	- श्रीकृष्णके वियोगसे	यत्र व्यसवः	- जहां निष्प्राण लोग
विह्वलाः	- व्याकुल जातिके लोग	शेरते	पड़े थे
ज्ञातयः		तत्र त्वरिता	- वहां शीघ्रता पूर्वक
आननं घ्नन्त	- अपना सिर पीटते हुए	जग्मुः स्म	- पहुँच गये ॥ १७ ॥

देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ ।
कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥

देवकी रोहिणी च एव वसुदेवः तथा सुतौ कृष्णरामौ अपश्यन्तः शोक आर्ताः विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥

देवकी च-रोहिणी	- देवकी एवं रोहिणी	अपश्यन्तः	- न देखकर
तथा वसुदेव-एव	- तथा वसुदेवजी भी	शोक आर्ताः	- शोकसे व्याकुल होकर
सुतौ कृष्णरामौ	- अपने दोनों पुत्र श्रीकृष्ण-बलरामको	स्मृतिं विजहुः	- संज्ञा छोड़ चुके (मूर्छित होगये) ॥ १८ ॥

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ।
उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

प्राणान् च विजहुः तत्र भगवत् विरह आतुराः उपगुह्य पतीन् तात चितां आरुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥

तात - प्रिय परीक्षित्
भगवत् विरह - भगवानके वियोगसे
आतुराः - व्याकुल होकर
तत्र प्राणान् च - वहीं प्राण भी
विजहुः - त्याग दिये
स्त्रियः पतीन् - (दूसरी) स्त्रियां (अपने) पतियोंका
उपगुह्य - आलिंगन करके
चिंता आरुरुहुः - चिताओंपर चढ़ गयीं ॥ १९ ॥

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ।
वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन् हरेः स्नुषाः ।
कृष्णपत्न्योऽविशन्नाग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥ २० ॥

रामपत्न्यः च तत् देहं उपगुह्य अग्निं आविशन् वसुदेवपत्न्यः तत् गात्रं प्रद्युम्न आदीन् हरेः स्नुषाः कृष्णपत्न्यः अविशन् अग्निं रुक्मिणि आद्याः तत् आत्मिकाः ॥ २० ॥

रामपत्न्यः च - बलरामजीकी पत्नियां भी
तत् देहं - उनके शरीरको तथा
वसुदेवपत्न्यः - वसुदेवजीकी (शेष) पत्नियां
तत् गात्रं - उनके शरीरका एवं
हरेः स्नुषाः - श्रीकृष्णकी पुत्र वधुएँ
प्रद्युम्न आदीन् - प्रद्युम्न आदिका
उपगुह्य - आलिंगन करके
अग्निं-अविशन् - अग्निमें प्रवेश कर गयीं
रुक्मिणि आद्याः - रुक्मिणी आदि
तत् आत्मिकाः - उन्हींमें चित्त लगाये
कृष्णपत्न्यः - श्रीकृष्णकी पटरानियां
अग्निं आविशन् - (श्रीकृष्णका शरीर न होनेसे) अग्निमें प्रवेश कर गयीं ॥ २० ॥

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ।
आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरह आतुरः आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सत् उक्तिभिः ॥ २१ ॥

प्रेयसः सख्युः	- प्रियतम सखा	**कृष्णगीतैः**	- श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित
कृष्णस्य	- श्रीकृष्णके	**सत् उक्तिभिः**	- उत्तम उक्तियोंसे
विरह आतुरः	- वियोगसे व्याकुल	**आत्मानं**	- अपनेको
अर्जुनः	- अर्जुनने	**सान्त्वयामास**	- सान्त्वना दी ॥ २१ ॥

बन्धूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः साम्परायिकम् ।
हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः, ॥ २२ ॥

बन्धूनां नष्ट गोत्राणां अर्जुनः साम्परायिकं हतानां कारयामास यथावत् अनुपूर्वशः ॥ २२ ॥

हतानां बन्धूनां	- मारे गये सम्बन्धियोंमें	**अनुपूर्वशः**	- पूर्वापरके क्रमानुसार
नष्ट गोत्राणां	- जिनके कुलमें कोई नहीं था उनका	**अर्जुनः**	- अर्जुनने
		साम्परायिकं	- मरणोत्तर क्रिया
यथावत्	- विधिपूर्वक	**कारयामास**	- करवायी ॥ २२ ॥

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत् क्षणात् ।
वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥ २३ ॥

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रः अप्लावयत् क्षणात् वर्जयित्वा महाराज श्रीमत् भगवत आलयम् ॥ २३ ॥

महाराज	- महाराज !	**आलयं-**	- भवनको
हरिणा त्यक्तां	- श्रीहरि द्वारा त्यागी हुई	**वर्जयित्वा**	छोड़कर
द्वारकां	- द्वारिकापुरीको	**समुद्रः क्षणात्**	- समुद्रने क्षणभरमें
श्रीमत् भगवत्	- श्रीमान भगवानके	**अप्लावयत्**	- सब ओरसे डुबा दिया ॥ २३ ॥

नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ।
स्मृत्याशेषाशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥ २४ ॥

नित्यं सन्निहितः तत्र भगवान् मधुसूदनः स्मृत्या अशेष अशुभ हरं सर्वमंगल मंगलम् ॥ २४ ॥

स्मृत्या	- स्मरण करनेसे	भगवान्	- भगवान
अशेष अशुभहरं	- सम्पूर्ण पापोंके नाशक	मधुसूदनः	- मधुसूदन
सर्वमंगल	- समस्त मंगलोंको	तत्र नित्यं	- वहां नित्य
मंगलं	- मंगल बनाने वाले	सन्निहितः	- उपस्थित रहते हैं ॥ २४ ॥

स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनञ्जयः ।
इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥

स्त्रीबाल वृद्धान् आदाय हत शेषान् धनञ्जयः इन्द्रप्रस्थं सम आवेश्य वज्रं तत्र अभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥

हत शेषान्	- मरनेसे बचे हुए	इन्द्रप्रस्थं	- (वर्तमान दिल्ली) इन्द्रप्रस्थमें
स्त्री बाल-	- स्त्रियों, बालकों,	सम आवेश्य	- भली प्रकार बसाकर
वृद्धान्	वृद्धोंको	तत्र वज्रं	- वहां (अनिरुद्धके पुत्र) वज्रका
आदाय	- साथ लेकर	अभ्यषेचयत्	- राज्याभिषेक कर दिया ॥ २५ ॥
धनञ्जयः	- अर्जुनने		

श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः ।
त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥

श्रुत्वा सुहृत् वधं राजन् अर्जुनात् ते पितामहाः त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥ २६ ॥

राजन्	- राजन् !	**त्वां तु वंशधरं**	- तुमको तो वंश-चलाने
सुहृत् वधं-	- सम्बन्धियोंका मारा	**अर्जुनात्**	- अर्जुनसे
श्रुत्वा	जाना सुनकर	**कृत्वा**	- बनाकर
ते पितामहाः	- तुम्हारे पितामह लोग	**सर्वे महापथं**	- सब महापथ (हिमालय)
		जग्मुः	- चले गये ॥ २६ ॥

य एतद् देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च ।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

यः एतत् देव देवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च कीर्तयेत् श्रद्धया मर्त्यः सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

देव देवस्य	- देवदेवेश्वरके	**यः मर्त्यः**	- जो मनुष्य
एतत्	- इस	**श्रद्धया-**	- श्रद्धापूर्वक वर्णन
विष्णोः कर्माणि	- श्रीहरिके कर्मों	**कीर्तयेत्**	करता है
च जन्म	- तथा अवतारका	**सर्व पापैः**	- (वह) सब पापोंसे
		प्रमुच्यते	- सर्वथा छूट जाता है ॥ २७ ॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥ २८ ॥

इत्थं हरेः भगवतः रुचिर अवतार वीर्याणि बाल चरितानि च शन्तमानि अन्यत्र च इह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यः भक्तिं परां परमहंस गतौ लभेत ॥ २८ ॥

इत्थं भगवतः	- इस प्रकार भागवत्	**बाल चरितानि**	- बाल-चरितोंको
हरेः	- श्रीहरिके	**गृणन्**	- वर्णन करता
इह च	- यहां तथा	**मनुष्यः**	- मनुष्य
अन्यत्र च-श्रुतानि	- अन्यत्र भी कहीं सुने	**परां भक्तिं**	- परा भक्ति और
		परमहंस गतौ	- परमहंसोंका पद
रुचिर अवतार	- मनोहर अवतार	**लभेत**	- प्राप्त कर लेता है
वीर्याणि	- पराक्रम		॥ २८ ॥
च शन्तमानि	- एवं शान्तिदायक		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामेकादशस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

॥ इत्येकादशः स्कन्धः समाप्तः ॥